रामभक्ति-साहित्य में मधुर उपासना

श्रीभुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव', एम्० ए०

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182723

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H801|M67R Accession No. H2631

Author मिश्र, भुवनेश्वर नाथ 'माधव'

Title रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना।

This book should be returned on or before the date last marked below.

रामभक्ति-साहित्य में मधुर उपासना

श्रीभुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव', एम्० ए०

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना

आत्माराम एन्ड संस
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
कश्मीरी गेट, दिल्ली-६

प्रकाशक
बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद
पटना – ३

प्रथम संस्करण, ज्येष्ठ, शकाब्द १८७९ विक्रमाब्द २०१४, खीष्टाब्द १९५७

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

मूल्य—नव रुपये सजिल्द—दस रुपये पचीस नये पैसे

मुद्रक
समेम्लन मुद्रणा
प्रयाग

वक्तव्य

मर्त्यावतारे मनुजाकृति हरिं रामाभिधेय रमणीयदेहिनम् ।
धनुर्द्धर पद्मविशाललोचन भजामि नित्य न परान्भजिष्ये ।।[1]

'रामभक्ति-साहित्य मे मधुर उपासना'—हिन्दी में अपने विषय का सर्वथा नवीन एव अत्यन्त सरस ग्रन्थ है। ग्रन्थकार स्वय इस उपासना-पद्धति के भावुक साधक है। आपकी भूमिका से पाठको को मालूम होगा कि इसके निर्माण मे आपको कितना अध्यवसायशील होकर परिश्रम करना पडा है। ग्रन्थानुशीलन से यह भी विदित होगा कि आपको अपने अधिकृत विषय के विवेचन एव प्रतिपादन मे कहाँ तक सफलता मिल सकी है। हमारा अनुमान है कि आपके स्वाध्याय की गहनता और आपकी मननशीलता एव रसानुभूति की गम्भीरता इसके अनेक स्थलो के निरीक्षण से प्रकट होगी।

कृष्णभक्ति-साहित्य मे मधुर उपासना काफी है। अब इस ग्रन्थ से यह ज्ञात हो जायगा कि रामभक्ति-साहित्य मे भी मधुर उपासना का टोटा नही है।

हमारे ईश्वरावतारो मे राम और कृष्ण ही सबसे सुन्दर है। मधुर-उपासना इन्ही दोनो अवतारो की होती है। पर दोनो की सुन्दरता मे कुछ अन्तर है। राम की सुन्दरता पर सौम्य शील का आवरण है। कृष्ण की सुन्दरता मे लीला-विलास का बाँकपन है। राम लोकाभिराम है—कृष्ण लोक-ललाम। राम की मुखाम्बुजश्री मे जो प्रसन्नता की कान्ति है, वह शीतल है। कृष्ण के मनमोहन मुखडे पर जो आनन्दोल्लास की कमनीय किरणे किलोलती है, वे दीप्तिमन्त है। राम केवल अधरो और नेत्रो मे ही हँसते है, कृष्ण अधरो और आँखो के अतिरिक्त भौहो मे भी हँसते है, बल्कि उनका अग-अग रोम-रोम हँसता रहता है। इसीलिए, उपासक भक्त की मधुर भावना को जितना कृष्ण उकसाते है उतना राम नही, क्योकि राम के रमणीय रूप मे जो सुहावना भोलापन है उसमे भक्त की मधुर भावना को छेडने की शोखी नही है, किन्तु कृष्ण की चञ्चल-चटुल और मञ्जुल-मृदुल मूर्त्ति तो उपासक की मधुर भावना को बरबस गलबहियाँ मे समेट ले जाती है। अरे, आकर्षण तो भोलापन और बाँकपन दोनो मे है, जिसका रहस्योद्घाटन करके यह ग्रन्थ राम-भक्तो की मधुर उपासना को प्रोत्साहन देगा।

---

१ अध्यात्मरामायण, बालकाण्ड, सर्ग ५, श्लोक ४६

घनश्याम राम श्यामसुन्दर है। रसराज शृगार भी श्यामसुन्दर है। दोनो का वर्ण समान है। आदिरस के अधिष्ठाता देवता भी रमा-रमण राम है। अत शृगार के आधार राम की भक्ति मे मधुर उपासना की सार्थकता समीचीन है। यह समीचीनता इस ग्रन्थ से समर्थित है।

प्रियदर्शन राम, अपनी आह्लादिनी शक्ति सीता के साथ, मधुर भाव के उपासको के प्राणाधार है। 'गिरा अर्थ जल बीचि सम' अभिन्न दोनो की छवि-छटा मे जो सुषमा-सुधा-माधुरी है, वही भक्तो की मधुर उपासना के लिए सञ्जीवनी है। इस ग्रन्थ का यही शुभ सन्देश है।

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र शील-शक्ति-सौन्दर्य-निधान है। यद्यपि उनके शील से भक्तो ने काफी लाभ उठाया है तथापि उसके कारण उनकी ओर भक्त उतनी मात्रा मे आकृष्ट नही हुए है, जितनी मात्रा मे उनके अविरल सौन्दर्य के कारण। उनकी शक्ति के प्रताप से भक्तो को निर्भयता तो प्राप्त हुई है, पर उसके कारण उनमे भक्तो की अनुरक्ति-अनुरक्ति नही हुई है। भक्तो के मन मे मधुर भाव की उपासना का स्रोत बहानेवाला उनका अलौकिक सौन्दर्य ही है।

केवल शील और शक्ति के लिए मधुर भाव की उपासना हो भी नही सकती। मधुर भाव की उपासना तो केवल अनुपम सौन्दर्य के निमित्त ही सम्भव है। राम यदि रूपवान न होकर केवल शीलवान और शक्तिमान ही होते, तो अपने दर्शन मात्र से भक्तो को कदापि मुग्ध न कर सकते। शील और शक्ति तो सौन्दर्य के ही शोभावर्द्धक है।

सौन्दर्य के अतिरिक्त उपास्य के अन्यान्य गुण उपासक के लिए चित्ताकर्षक भले ही बन जायँ, चितचोर नही बन सकते। चितचोर तो केवल अनवद्य सौन्दर्य ही हो सकता है। वास्तव मे चितचोर सौन्दर्य ही दूसरो से अपनी उपासना करा सकता है। वह भी मधुर भाव की उपासना तो एकमात्र सर्वाङ्गसुन्दर की ही हो सकती है। इसीलिए, भगवदैश्वर्य मे भी सौन्दर्य ही सर्वोपरि है।

भक्तजन प्राय कहा भी करते है—किशोर राम का चितचोर रूप जनकपुर की युवतियो के नयन-मन मे घर कर गया था, इसीलिए वे व्रजमण्डल की गोपियाँ होकर अवतरी और उनका मनोरथ सफल करने के लिए राम स्वय ही गोपिकावल्लभ कृष्ण हुए। यह रहस्य तो तत्त्वज्ञ ही जाने, पर इसमे रञ्चमात्र सन्देह नही कि राम के अनिन्द्य-अमन्द रूप ने जड-चेतन पर जादू डालने मे विस्मयविवर्धक सफलता पाई। जहाँ कही राम गये, चराचर पर मोहिनी डाल दी।

जनकपुर मे तो राम सर्वालङ्कारभूषित दुल्लह बने थे। अत वहाँ राजर्षि जनक-जैसे विदेह योगी का भी मन मुट्ठी मे कर लिया था, फिर औरो की तो बात ही क्या। उसके बाद तो जगल के रास्ते मे ग्रामीण नर-नारियो पर, तपोवनो मे ऋषि-मुनियो पर, चित्रकूट मे कोल-भिल्लो पर, रणभूमि मे शत्रु राक्षसो पर, यहाँ तक कि जगली और समुद्री जन्तुओ पर भी राम के रुचिर रूप का जादू चल गया। उनके 'निज इच्छा निर्मित तनु' में कैसा अद्भुत सौन्दर्य भरा था, यह सीता-सखी की उक्ति से ही ज्ञातव्य है—'गिरा अनयन नयन बिनु बानी।'[1] ऐसे अनिर्वचनीय दिव्य

१. प्रभु सोभा सुख जानहिं नयना, कहि नहिं सकहिं तिनहिं नहिं बयना। —(तुलसी)

रूप का रस पीने के लिए निर्विकार दृष्टि चाहिए। वैसी निष्कलक दृष्टि भक्तो अथवा सन्तो की ही हो सकती है। इस ग्रन्थ मे उस कोटि के सन्त भक्तो की उपासना-प्रणाली का वर्णन अतिशय हृदयग्राहिणी शैली मे किया गया है। जहाँ-कही उपासना-परक ग्रन्थो की चर्चा है, वहाँ ऐसा अनुभव होता है कि मधुर भाव का असली भक्ति-साहित्य जब प्रकाशित हो जायगा, तब भगवान् राम का सौन्दर्य-माधुर्य उन मर्यादादर्शवादी भक्तो को भी लुभावेगा, जो 'जटिलस्तपस्वी' रण-रगधीर महारथी राम के उपासक है।

ग्रन्थकर्त्ता इस समय बिहार-राज्य के शिक्षा-विभाग मे उपनिर्देशक है। आप इस परिषद् के और हिन्दू विश्वविद्यालय-कोर्ट के भी सदस्य हैं। पहले आप औरगाबाद (गया) के सच्चिदानन्दसिह-डिग्री कालेज के प्रिन्सिपल थे। उसमे भी पहले आप प्रयाग के प्रसिद्ध मासिक 'चाँद' और साप्ताहिक 'भविष्य' तथा काशी के साप्ताहिक 'सनातनधर्म' के प्रधान सम्पादक रह चुके थे। आप दस वर्षों (सन् १९३२-४२ ई०) तक गीता प्रेस (गोरखपुर) के हिन्दी मासिक 'कल्याण' और अँगरेजी-मासिक 'कल्याण-कल्पतरु' के सयुक्त सम्पादक रह चुके है। आप शाहाबाद जिले के निवासी है। हिन्दू विश्वविद्यालय (काशी) से आपने सन् १९३० ई० मे हिन्दी और अँगरेजी मे एम्० ए० पास किया। हिन्दी के आध्यात्मिक साहित्य को आपकी देन उल्लेखनीय है। भक्ति-साहित्य की रचना मे ही आपकी विशेष अभिरुचि एव प्रवृत्ति है। आपकी प्रकाशित पुस्तको से आपकी परिष्कृत रुचि का परिचय मिलता है—'मीरा की प्रेम-साधना', 'धूपदीप', सन्त-साहित्य', 'मेरे जीवन-मरण के साथी'। प्रथम और अन्तिम पुस्तक मे सहृदय लेखक के जो मनोभाव व्यक्त हुए है, उनका विकसित रूप इस ग्रन्थ मे दृष्टिगोचर होगा।

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् से विशेषत साहित्यिक शोध के योग्य ग्रन्थ प्रकाशित होते है। आशा है कि इस ग्रन्थ के अध्ययन से शोधकर्त्ता सज्जनो को इस दिशा मे अग्रसर होने की पर्याप्त प्रेरणा मिलेगी।

चैत्र पूर्णिमा, शकाब्द १८७९
विक्रमाब्द २०१४, ख्रीष्टाब्द १९५७

शिवपूजन सहाय
(सञ्चालक)

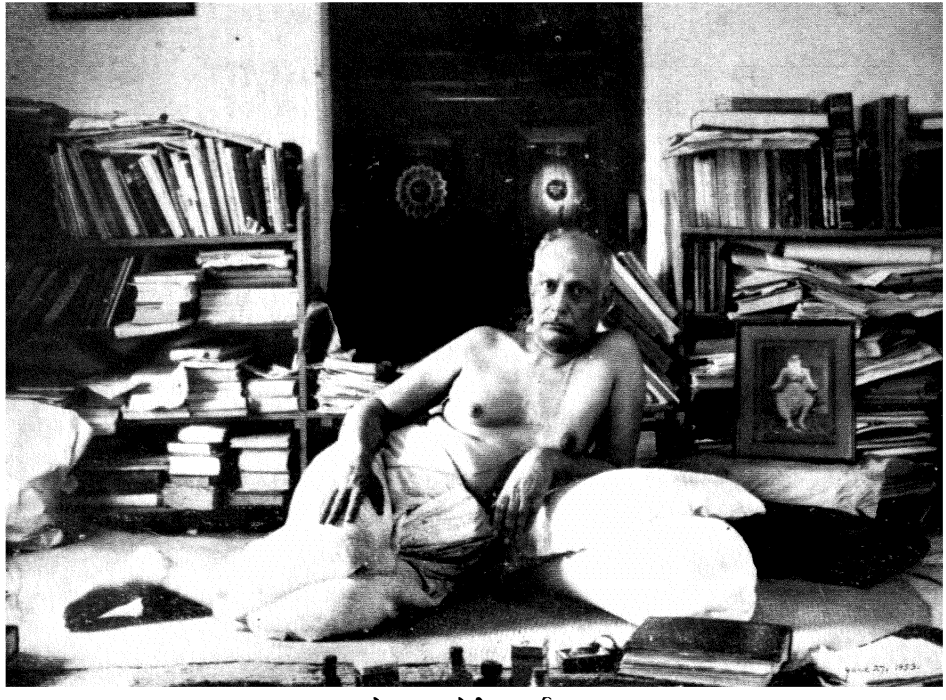

महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

परम गुरुदेव

पुण्यश्लोक

महामहोपाध्याय पंडित श्री गोपीनाथ जी कविराज

की

पुनीत सेवा

में

सादर सभक्ति सप्रीति

समर्पित

'माधव'

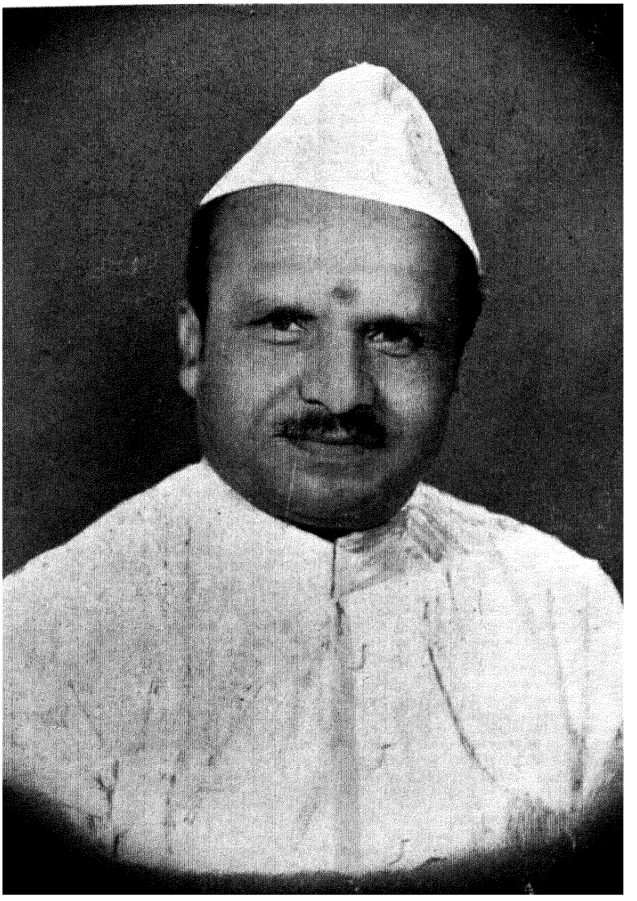

ग्रथकार

निवेदन

भगवान् की कृपा और सन्त-महात्माओ के आशीर्वाद से यह ग्रन्थ पूरा हुआ और इसे आज पाठको के हाथ मे देते हुए मुझे अपूर्व प्रसाद की अनुभूति हो रही है। अवश्य ही इस ग्रन्थ में सन्त-महात्माओ का अनुभव है और मैंने यथासम्भव उसे एक ढग से सजाकर प्रस्तुत कर दिया है। सन्त तुकाराम के शब्दो मे मै कह सकता हूँ—"सन्तो की उच्छिष्ट उक्ति है मेरी वाणी। जानें उसका भेद भला मै क्या अज्ञानी।"

रामभक्ति-साहित्य मे मधुर उपासना-सम्बन्धी जो कुछ भी काव्य है, वह अब तक प्राय उपेक्षित रहा है। इसके कई कारण हो सकते है। परन्तु, मेरी दृष्टि मे इसका मुख्य कारण यह है कि रामभक्ति-साहित्य की धारा मर्यादावादिनी रही है और इसलिए प्राय ऐसा मान लिया जाता रहा है कि उसमें शृगारोपासना के विकास के लिए कम अवकाश है या है ही नहीं। विद्वानो ने इस रसिकोपासना के साहित्य को बड़ी ही उपेक्षा की दृष्टि से देखा। इस साहित्य के सम्बन्ध म आचार्य शुक्लजी ने अपने इतिहास में जो कुछ लिख दिया, उससे भी बहुत भ्रम फैला है। आचार्य शुक्लजी स्वय विशुद्ध मर्यादावादी थे। इसलिए, ऐसा प्रतीत होता है कि वे रामभक्ति के रसिकोपासना-सम्बन्धी साहित्य को देखने का अवसर न पा सके। यहाँ तक कि गोस्वामी तुलसीदास जी की गीतावली के उत्तरकाण्ड में आये हुए कुछ शृंगारिक पदो मे शुक्ल जी ने सूरदासजी की शृगारिक रचना का अनुकरण माना और इस प्रकार लगभग चार सौ वर्ष के इस सुविकसित साहित्य के सम्बन्ध मे अपने स्वच्छन्द दृष्टिकोण का परिचय दिया। इस सम्पूर्ण साहित्य को अमर्यादित बताकर अलग कर देना साहित्य के अध्येता के लिए शोभा नही देता। भगवान् राम के दिव्य पुनीत चरित को और उनकी दिव्य लीलाओ को एक सीमा मे बाँधना उचित नही प्रतीत होता। निश्चय ही यदि शुक्ल जी यह सारा साहित्य देखने का अवसर पा सके होते, तो इसके सम्बन्ध में उन्होने जो विचार व्यक्त किये है, उन्हें सम्भवत बदलना पडता।

स्वामी मधुराचार्य से लेकर श्री रूपकला जी तक अनेक सन्त-महात्माओ और अनुभवी साधको ने रसिकोपासना मे अपने अनुभव को बडी ही भव्य सुन्दर शैली मे व्यक्त किया है और हजारो ऐसे ग्रन्थ है, जिनमे यह उपासना-साहित्य विद्यमान है और जिसका अध्येता कभी घाटे मे नही रहेगा। साहित्य के अध्ययन के लिए अपनी मान्यताओ और निजी राग-द्वेष से मुक्त हो जाना अनिवार्यत आवश्यक है। साहित्य का इतिहास लिखने के लिए तो तटस्थता और राग-

द्वेषशून्यता एक अत्यन्त आवश्यक गुण माना जाना चाहिए। अपनी निजी मान्यताओ की दृष्टि से देखने पर साहित्य का स्वस्थ और स्वच्छ रूप हमारे सामने नही आ सकता। अस्तु,

लगभग बीस-बाईस वर्ष पूर्व मुझे एक हस्तलिखित पोथी अपने प्रिय सुहृद् डा० राजबली पाण्डेय (प्रिन्सिपल, कालेज ऑव इण्डालॉजी, काशी-हिन्दूविश्वविद्यालय) से मिली, जिसका नाम है 'भक्तिरसामृतार्णव'। वह पत्राकार लगभग छ सौ पृष्ठो मे है और जो १७ वी शती के अन्तिम भाग मे लिखी गई है। उसमे रामभक्ति और कृष्णभक्ति की अष्टयाम-उपासना पर अलग-अलग पदो का सकलन किसी भक्त ने किया है, जिसने अपना नाम देना उचित नही समझा। इस पोथी को लिपि की कठिनाई से पढे जाने मे लगभग छ महीने लगे। परन्तु, यह परिश्रम व्यर्थ नही गया। क्योकि, एक बात बहुत स्पष्ट रूप से सामने आई कि कृष्णभक्ति की तरह रामभक्ति की भी अष्टयाम-उपासना का एक सुव्यवस्थित रूप रखा जा सकता है। परन्तु, काल-प्रवाह में वह विचार जैसे खो-सा गया और इस सम्बन्ध मे कुछ आगे करने की रुचि न रही। परन्तु, भक्तिरसामृतार्णव मेरे पीछे पडी रही। मैने उसका साथ छोड दिया, परन्तु वह मेरे साथ लगी रही। और जहाँ भी जाता था, मेरी पेटी मे मेरे साथ-साथ घूमती रही।

लगभग चार वर्ष पूर्व काशी मे स्वनामधन्य महामहोपाध्याय प० गोपीनाथ जी कविराज के दर्शनो के लिए गया। पूज्य श्री कविराज जी महोदय से कुछ लिखने का आदेश माँगा, परन्तु क्या विषय हो, इसका निर्णय न हो सका। बात वही समाप्त हो गई होती, यदि उसी दिन मेरे बाल्यबन्धु और हिन्दी-साहित्य के गौरवस्तम्भ प० हजारीप्रसाद द्विवेदी के दर्शन न हुए होते। आचार्य द्विवेदीजी ने यह राय दी कि रामभक्ति साहित्य की मधुर उपासना पर अभी तक ठीक से विचार नही किया गया है और यह साहित्य बहुत कुछ तिरस्कृत और उपेक्षित पडा है। इसीलिए, इसी पर कुछ लिखा जाना चाहिए। हम दोनो महामहोपाध्याय प० गोपीनाथ कविराज जी के यहाँ गये। उन्होने कृपापूर्वक स्वीकृति प्रदान कर दी।

आरम्भ मे तो इस कार्य को बहुत सुगम और सरल समझा था, पर जैसे-जैसे मै गहराई मे उतरता गया, मेरी कठिनाइयाँ बढती गई। इसमे सन्देह नही कि श्री कविराज जी का वरद हस्त मेरे मस्तक पर था, और भाई हजारीप्रसाद जी का हाथ मेरी पीठ पर था। जहाँ कही भी भटक या भरम गया, वही उन दोनो की सहायता सदा मेरे साथ रही। यह निस्सकोच स्वीकार करना चाहिए कि जो कुछ विचार इस ग्रन्थ मे किये गये है, उन पर यहाँ से वहाँ तक श्री कविराज जी की छाप है। उन्ही से सुनी बातो का आधार लेकर यथाश्रुत और यथागृहीत मैने अपने विचार प्रकट किये है। इस ग्रन्थ के प्रणयन मे आदि से अन्त तक श्री कविराज जी और श्री द्विवेदीजी का हाथ रहा है। परन्तु, मेरा काम बहुत कठिन हो गया होता और शायद मै इसे बीच मे ही छोडकर भाग गया होता, यदि श्री हनुमत्-निवास के महात्मा रामकिशोर शरण जी और श्री प्रमोद रहस्यवन (अयोध्या) के स्वामी परमानन्द जी का सहारा न मिला होता। इन दोनो कृपालु महात्माओ ने उन्मुक्त

रूप मे इस कार्य मे मेरी सहायता की। और, इनके यहाँ प्राचीन हस्तलिखित अत्यन्त दुर्लभ ग्रन्थो का जो सग्रह है, उसे देखने और नोट लेने की स्वतन्त्रता प्रदान कर मेरा अनन्त उपकार इन दोनो ने किया है। अयोध्या मे मणिपर्वत पर श्री रामकुमार दास जी के पास ऐसे ग्रन्थो का एक खासा अच्छा सग्रह है। उनके पुस्तकालय से भी मुझे लाभ हुआ। परन्तु, स्वामी परमानन्द जी और महात्मा रामकिशोरशरण जी की सहायता के बिना मेरा काम कभी पूरा नही हो पाता। आरम्भ मे श्री रूपकलाकुञ्ज के श्री जनकदुलारीशरण जी ने भी इस कार्य मे मेरी बडी सहायता की थी। मुझे दु ख है कि इस ग्रन्थ के पूरा होने के पहले ही उनका साकेतवास हो गया। इस ग्रन्थ के सम्बन्ध मे गालवाश्रम (जयपुर), चित्रकूट, काशी, अयोध्या, जनकपुर (मिथिला) आदि कई स्थानो मे भ्रमण करने का अवसर मिला। अनेक महात्माओ ने अनेक प्रकार से मेरी इसमे सहायता की। काशी के सकटमोचन के महात्मा इस रस के उपासक है। और, उनसे इस उपासना की परम्परा को प्राप्त करने मे बडी सहायता मिली। निश्चय ही सबके मूल मे भगवान् की कृपा रही है जिसके कारण ही अत्यन्त गुप्त और दुलभ हस्तलिखित साहित्य के अवलोकन-अनुशीलन का अवसर मिला। श्रावणकुञ्ज (अयोध्या) से भुशुण्डी रामायण की मूल हस्तलिखित प्रति, जिसमें ६०००० अनुष्टुप् श्लोक के छन्द है, प्राप्त करने मे बडी कठिनाई हुई। उस समय यदि 'कल्याण'-सम्पादक स्वनामधन्य पूज्य श्री भाई जी श्री हनुमानप्रसाद जी पोद्दार ने मेरी सहायता नही की होती, तो इस ग्रन्थ के देखने से मै वञ्चित रह जाता। अन्त मे गीता प्रेस ने इस पूरी पोथी का फोटो-स्क्रिप्ट तैयार कर लिया और अब सम्भवत वह अनमोल ग्रन्थ सबके लिए उपलभ्य हो सकेगा। सैकडो ऐसी पुस्तके, जो सैकडो वर्षों से बेठन मे बँधी चली आ रही है और जिनका एक मात्र उपयोग धूप, दीप और आरती दिखलाकर पूजन के सिवा और कुछ नही है मैंने देखी, पढी और नोट लिये। पूजा की पुस्तको से नोट लेना साधु-महात्माओ की दृष्टि मे एक बडी अटपटी-सी बात थी। परन्तु, भगवान् की कृपा-शक्ति से यह कार्य निर्विघ्न सम्पन्न हुआ। अवश्य ही, चित्रकूट और अयोध्या मे, गलतागद्दी (जयपुर) और जनकपुर मे अभी ऐसे अनेक ग्रन्थ होगे जो रसिकोपासना साहित्य के हृदयगम के लिए अनिवार्यत आवश्यक होगे। जिज्ञासुओ को इनका पता लगाना चाहिए।

रामभक्ति के रसिकोपासना के मतो का एक विशेष अभिज्ञान यह है कि वे तिलक मे श्री के नीच बिन्दी लगात है। प्राय रामरज मे रँगे वस्त्र धारण करते है, गले मे नाना प्रकार के तुलसी के आभूषण पहनते है। हल्दी का तिलक लगाते है और मस्तक को श्री युगलनाम से अकित करते है। लीला-विहार मे मिथिला भाव, अवध भाव और चित्रकूट भाव मुख्य है और इसीके आधार पर 'स्वसुखी', 'तत्सुखी' और 'चित्सुखी' उपासना का क्रम चलता है। जैसे भक्तो ने भगवान् श्री-कृष्ण को मथुरा मे पूर्ण, द्वारिका मे पूर्णतर और वृन्दावन मे पूर्णतम माना है उसी प्रकार यहाँ भी भगवान् राम को अवध मे पूर्ण, मिथिला मे पूर्णतर और चित्रकूट मे पूर्णतम माना गया है।

रसिकोपासना के अधिकाश उपासक चित्रकूट भाव से अष्टयाम भजन करते है, जहाँ परकीया रति की पराकाष्ठा है अवश्य ही यह स्वीकार करना होगा कि इस उपासना के साहित्य मे कुछ अनधिकारियो द्वारा विकृति आई है, पर उससे विचक कर यदि हम आगे खडे हुए और इसके स्वस्थ साहित्य के अध्ययन-अनुशीलन से वचित रह गये तो यह हमारा दुर्भाग्य होगा। प्राय इसी कारण इस साहित्य के प्रति घोर अन्याय हुआ है। परन्तु देखता हूँ, अब इधर इस ओर विद्वानो का ध्यान जाने लगा है और इस साहित्य का अनुशीलन अपेक्षाकृत विशेष अभिरुचि और सहानुभूति के साथ होने लगा है। यह शुभ लक्षण है।

लगभग डेढ वर्ष सामग्री-सकलन करने मे लग गये। जिसमे हजारो मील की यात्रा और हजारो रुपयो का व्यय हुआ। परन्तु, मैं हरि-कृपा से सकल्प बाँधे हुए था कि इस कार्य को पूरा करके ही दम लूँगा। भगवान् भक्त-वाञ्छा-कल्पतरु हैं और मेरी चाह को उन्होने अपनी प्रीति से अभिसिचित कर दिया। लगभग डेढ वर्ष तक काशी मे रहकर, गगाजल का सेवन कर, इस ग्रन्थ को मैंने पूरा किया। जैसे-जैसे अध्याय लिखकर टाइप होते गये, वैसे-वैसे श्री कविराज जी और श्री द्विवेदी जी को इसे दिखाता गया। दोनो महानुभावो ने बडे स्नेह और सहानुभूति से इसमे मेरा पथ-प्रदर्शन किया। प्रेम-कॉपी तैयार होने के पूर्व मैं इसे कुछ और अनुभवी सन्तो तथा रसिकोपासको को दिखला लेना चाहता था। मेरे सामने स्वामी श्री शरणानन्द जी महाराज, श्री अखण्डानन्द जी महाराज और स्वामी श्री चक्रधर जी थ। पाण्डुलिपि की एक प्रति श्री कविराज जी के पास देखने को भेजी। स्वामी चक्रधर जी महाराज ने बडे प्रेम से आरम्भ के दो अध्याय देखे और उनके आदेश के अनुसार उसमे आवश्यक सशोधन के साथ आवश्यक परिवर्त्तन और परिवर्द्धन भी किये। श्री कविराज जी तो आदि से अन्त तक सूत्रधार ही रहे। अत्यन्त समयाभाव होने पर भी भाई श्री द्विवेदीजी समय-समय पर अपने अमूल्य सुझावो से मेरा पथ प्रकाशित करते रहे। इस तीन वर्ष की अवधि को जब मैं पीछे मुड कर देखता हूँ, तब पग-पग पर भगवान् की कृपा और सन्तो के आशीर्वाद के चमत्कारिक प्रभाव के दर्शन होते है। ऐसा लगता है कि प्रभु ने मुझ जैसे अपात्र और अज्ञ को निमित्त बनाकर अपना कार्य स्वय अपने ही सम्पन्न किया।

इस ग्रन्थ को लेकर कई बाते मन की मन मे ही रह गईं। मैं चाहता था कि इस सम्पूर्ण साहित्य का रस, छन्द, अलकार आदि की दृष्टि से एक विधिवत् साहित्यिक मूल्याकन किया जाता। मैंने यह भी सोचा था कि कृष्णभक्ति की मधुर उपासना के साथ-साथ सूफी मधुरोपासना और ईसाई मधुरोपासना की एक तुलनात्मक समीक्षा रामभक्ति की मधुर उपासना के साथ की जाय। मेरे मन मे एक यह भी वासना थी कि इस सम्पूर्ण साहित्य का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया जाय। परन्तु, समय के सकोच से और जीवन की घोर कार्य-व्यस्तता के कारण ये अरमान मेरे मन मे ही रह गये। भगवान् की इच्छा हुई, तो दूसरे सस्करण मे इन प्रसगो का सन्निवेश हो सकेगा। लगभग तीन वर्ष तक ग्रीष्मावकाश और पूजावकाश मे, डा० बी० एल्० आत्रेय (काशी) के 'आत्रेय-निवास'

मे बिल्ववृक्ष के नीचे उस एकान्त कमरे मे रहकर इस ग्रन्थ का प्रणयन किया। डा० आत्रेय ने जिस स्नेह के साथ मुझे अपने सत्सग का लाभ दिया, वह आजीवन चिरस्मरणीय रहेगा। बन्धुवर डा० राजबली पाण्डेय और डा० रामअवध द्विवेदी ये दोनो ही मेरे सतीर्थ है और इन दोनो का स्नेह और सहयोग सदा मुझे प्राप्त रहा।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन मे बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् ने जिस स्नेह और सौहार्द का परिचय दिया है, उसे मै कभी भूल नही सकूँगा। यह ग्रन्थ इतना शीघ्र और इतनी सुन्दरता से प्रकाशित हो सका, इसका सारा श्रेय परिषद् को है। गीता प्रेस (गोरखपुर) ने चित्र छापकर बहुत ही थोडे समय मे दे दिया, यह उसकी कृपा और मेरे प्रति अपनापन है।

इस ग्रन्थ को पूरा कर चुकने पर मुझे गगा-स्नान का आनन्द मिला है। मुझे इस बात की बडी प्रसन्नता है कि 'कल्याण'-सम्पादक पूज्य भाई जी श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार की दृष्टि से यह ग्रन्थ पूत हो चुका है और परमगुरुदेव ऋषिकल्प महामहोपाध्याय प० श्री गोपीनाथ कविराज जी ने इसका समर्पण स्वीकार किया है। मेरा इतना समय भगवान् की लीलाओ के रसास्वादन मे, सन्तो के सत्सग मे, और उनके अनुभवपूर्ण ग्रन्थो के अनुशीलन मे बीता, इसे मै अपना परम-सौभाग्य मानता हूँ। सन्त महात्माओ से मै यह भीख माँगता हूँ कि भगवान् के चरणो मे सदा मेरी प्रीति बढती रहे।

रसिक सम्प्रदाय की उपासना तथा उसके साहित्य पर हिन्दी मे यह प्रथम प्रयास है। निश्चय ही, अनजान मे इसमे अनेक भूले रह गई होगी। सन्त महात्माओ, विद्वान् समालोचको तथा साहित्यिक बधुओ से मेरा नम्र निवेदन है कि मेरी भूलो को बतलाने की कृपा करे, ताकि मै अगले सस्करण मे उनका परिमार्जन कर सकूँ।

हरि ओ तत्सत् श्रीकृष्णार्पणमस्तु

सचिवालय
पटना, जानकी-नवमी
सवत् २०१४ वि०

भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'

विषय-विवरण

पहला अध्याय

रागमयी भक्ति और उसकी वैष्णव-परम्परा

सच्चिदानन्द स्वरूप, उपास्य के दो गुण परत्व, सौलभ्य, विधिभक्ति, रागमय भक्ति, रागमयी भक्ति गोपनीय क्यों? रागानुगा भक्ति साधन नहीं, अपितु साध्य, रागानुगा के प्रकार-भेद, रागानुगा के अवान्तर भेद—प्रेमा, परा, प्रौढा, शृंगार का रसराजत्व, आत्मरति, आत्ममिथुन, सखी-भाव जीव का स्वरूप, रागमयी भक्ति का क्रम विकास 'आलवार', प्रणय का मधुर आत्मसमर्पण, रसिक भक्तों की परम्परा, रागमयी भक्ति की विवृति, भक्ति के लक्षण गौडीय मत में, रागात्मिका और रागानुगा, रागानुगा का मूलकारण, रागानुगा पुष्टिमार्ग में, रागानुगा श्री निम्बार्क मत में, रागानुगा में स्मरण की मुख्यता, साधना का क्रम, साधक देह, सिद्ध देह, मंजरी देह, मानसी सेवा, अजात रति, जात रति, अष्टयाम सेवा, सिद्ध देह एक उदाहरण, भाव देह, उपर्युक्त पुष्टि भक्ति की कुछ ज्ञातव्य बातें, यहाँ असाधना ही साधन है, भक्ति भी भगवान् की एक लीला ही है, लीला ही प्रयोजन, ब्रह्म सबंध तथा ताप, श्री हरिदासजी का 'पुष्टिमार्ग लक्षणानि', शुद्ध भक्ति का लक्षण, 'नारद पाञ्चरात्र' का मत, श्रीमद्भागवत का मत, रागानुगा का मूलस्वरूप उत्तमा भक्ति, उत्तमा भक्ति—क्लेशघ्नी, शुभ-दायिनी, मोक्ष लघुताकृत, सुदुर्लभा, सान्द्रानन्द विशेषात्मा, भगवदाकर्षिणी, रागानुगा के भेद-कामरूपा, संबंध रूपा, संबंधरूपा भक्ति का स्वरूप, कामानुगा के भेद, भाव अथवा रति, जातरति भक्त के लक्षण—क्षान्ति, अव्यर्थ कालत्व, विरक्ति, मानशून्यता, आशाबन्ध, समुत्कण्ठा, नाम-गान में सदारुचि, भगवान् के गुण-कथन में आसक्ति भगवान्, के निवासस्थान में प्रीति, प्रेम, प्रेम का प्रकार-भेद, प्रणय अनुराग महाभाव, रति के प्रकार, अनुभाव, सात्त्विक भाव के प्रकार-भेद,—स्निग्ध, दिग्ध, रूक्ष, सात्त्विक भावों के पुन चार भेद, सात्त्विकाभास, व्यभिचारी या संचारी भाव, स्थायीभाव, प्रीति, मधुरा, भक्ति और शक्ति।

(पृ० सं० १—२१)

दूसरा अध्याय

मधुर रस का स्वरूप और उसकी व्यापकता

जड जगत् चिज्जगत् का प्रतिफलन, चिज्जगत् के रस और जड जगत् के व्यापार, मधुर रस के आश्रय और विषय, मधुर रस की आत्मा, स्वकीया, परकीया, परकीयाभाव की रसात्मक उत्कृष्टता, नित्यगोलोक और नित्यचिन्मयी लीला, ज्योतिर्मय ब्रह्मधाम, व्रज-सुन्दरियो के प्रकार-भेद, सखी-भेद, व्रजरस, नायक भेद, सहायक भेद, परकीया मे रस की उत्कृष्टता क्यो ? कृष्ण रति के उद्दीपन विभाव, व्रजवासी भाव, प्रसाधन, अन्यान्य, रति के अनुभाव, स्थायीभाव, ३३ व्यभिचारी भाव, मुख्य भक्ति रस के रग आदि, गौण भक्ति-रस, उद्दीपन-विभाव की विशेषता, अनुभावो की विशेषता, मधुरा रति क भेद (नायिका की दृष्टि से), मधुरा रति के भेद (भावो के अनुसार), घृतस्नेह और मधुस्नेह, मान, प्रणय, प्रणय के भेद तथा विकासक्रम, राग और उसके भेद, भाव या महाभाव, अधिरूढ, पुनर्मादन, समजस पूर्वराग की दस दशाएँ, साधारण पूर्वराग की छह दशाएँ, नित्य लीला मे नित्यसयोग, सयोग शृगार के दो भेद, सयोग शृगार के भेद-उपभेद, लीला के भद, मूल मे एक आनन्द क लिए दो, मधुररस की उपासना की व्यापकता, सहजसाधनाओ की पृष्ठभूमि, समरस की अवस्था, गुह्य साधना की मान्यताएँ, पुरुषतव, नारीतत्त्व, सुषुम्ना-साधना, शिवतत्त्व, शक्तितत्त्व, बौद्धो का 'सहज' वैष्णव सहजिया मे राधाकृष्ण-तत्त्व, नाथपथ की उपासना सूर्यचन्द्रतत्त्व।

(पृ० स० २२–३७)

तीसरा अध्याय

भारतीय अंतरग (एसाटरिक) धर्मसाधनाओ में मधुर भाव

(क) बौद्धसहजिया

बौद्धधर्म की लोकप्रियता, बौद्धयोगाचार मे अवलोकितेश्वर मैत्रेय और मजुश्री, दो शाखाएँ हीनयान तथा वज्रयान 'मगीति', भगवान् बुद्ध का 'मानुमीतनु', गुह्य साधना का प्रवश क्यो और कैसे ? महायान, मत्रयान, वज्रयान, मनोवैज्ञानिक कारण, आदि बुद्ध के धर्मकाय, सभोगकाय, निर्माणकाय, सहजकाय, असग और नागार्जुन, तत्र की प्राचीनता, तीन भाव और सात आचार,—पशुभाव, वीरभाव और दिव्य भाव—वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार, दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार तथा कौलाचार, 'धारिणी' और उसक भेद, बौद्ध साधना मे मिथुन योग का प्रवेश क्यो और कैसे ? पचमकार का रहस्य, सहजावस्था ही महा-सुख, सुखराज-महामुद्रा की अवस्था है, गुरु कृपा का स्वरूप-वैशिष्ट्य, 'धर्ममेघ' की स्थिति,

शून्यता और करुणा, प्रज्ञा और उपाय, अवधूतिका, युगनद्धतत्त्व, शून्यता और करुणा, 'समरस' का वास्तविक अर्थ, 'सुखावती', सहज विलास की स्थिति।

(ख) सिद्ध-सम्प्रदाय और रसेश्वर-दर्शन में मधुर भाव

रसायन, सूर्य-चन्द्र सिद्धान्त, गीता का मत, बृहज्जाबालोपनिषद् मे सूर्यचद्र तत्त्व, शिव-शक्ति सामरस्य, अमृतरसपान, खेचरी मुद्रा, सूर्यचन्द्र—स्त्री-पुरुष भाव, नाथ सिद्ध और बौद्ध सिद्धाचार्य, सिद्ध देह-दिव्य देह, वैदव देह–शाक्त देह।

(ग) कापालिक, नाथ तथा सत-साधना में मधुर भाव

'सहज' की परम्परा, 'सहज' का सर्वमान्य अर्थ, पिण्ड ही ब्रह्माण्ड है, कौलमत मे सहज साधना, बौद्ध सिद्ध और कौलाचार, कुल और अकुल, शिवशक्ति अविच्छेद्य, योग और मोक्ष, जीव क पाँच बन्धन, कुण्डलिनी योग की साधना, चक्र-भेदन की प्रक्रिया, पशुभाव, वीरभाव, दिव्यभाव, सात प्रकार के आचार, कापालिक मत मे सहज साधना, वज्रयान में और कापालिक मत मे सहजानद या महासुख, बौद्धमत मे सहज साधना का प्रवेश, कामोपभोग का साधना-क्षत्र मे प्रवेश, ललना-रसना-अवधूती, उष्णीष-कमल, सहजानन्द, सहज साधनाओ का मूल अथ, श्री सुन्दरी साधना, कबीर का 'सहज', भक्त और पतिव्रता सती, दादू की मधुर साधना, नीलाम्बर-सम्प्रदाय।

(घ) वैष्णव सहजिया

प्रेम की परकीया रति, 'आनन्द भैरव' मे सहज-साधना का उल्लेख, परकीयारति मे सहज उपासना, रस और रति मदन और मादन, ब्रह्म, परमात्मा, भगवान्, सत् चित् आनन्द, सधिनी, सवित्, ह्लादिनी, भोक्ता भोग्या, लीला के तीन प्रकार, वन वृन्दावन, मन-वृन्दावन, नित्य वृन्दावन, स्वरूप लीला और रूपलीला, 'सहज', आरोप-साधना, आरोप-तत्त्व, रति और रस, रति के तीन भेद समर्था, समञ्जसा, साधारणी, प्रेम-सिद्धि, साधक की तीन कोटियाँ—प्रवर्त्त, साधक, सिद्ध, प्रेम साधना की आनन्दमयी स्थिति।

(पृ० स० ३८–७७)

चौथा अध्याय

सिद्धदेह और लीला-प्रवेश

रागानुगाभक्ति मे प्रवेशाधिकार, लीलाविलास का आस्वादन, भावभक्ति, प्रेमाभक्ति; प्रेम ही परम पुरुषार्थ, सखी भाव मे प्रवेश, सबध-भाव, वयस, नाम, रूप, वास, सेवा,

सिद्ध देह क्या है ? अष्ट सखी अष्टमजरी के नाम, वर्ण, वस्त्र, वय, दिशा, सेवा, साधक-देह और सिद्ध-देह अथवा भाव-देह और सिद्ध-देह, प्राकृत देह और उसके भेद स्थूलदेह, सूक्ष्म देह, कारण देह महाकारण देह, 'स्वभाव', भाव-देह, स्वभाव-देह, स्वरूप-देह, 'स्वभाव' भाव और प्रेम, रस और ज्योति, भावदेह, प्रेमदेह, सिद्धदेह, नित्यलीला, चिन्मय राज्य।

(पृ० स० ७८–८८)

पांचवां अध्याय

अवतारतत्त्व तथा रामोपासना

सभी धर्म साधनाओ मे अवतार-तत्त्व, भगवत्स्वरूप के तीन प्रकार, अवतार के भेद पुरुषावतार, गुणावनार, लीलावतार, मन्वन्तरावतार, युगावतार, स्वयरूप, तदेकात्म रूप, आवेश, अवतार के सामान्य और विशेष हेतु, अवतारो के भेद-प्रभेद, प्रथम पुरुष, द्वितीय पुरुष, तृतीय पुरुष, गुणावतार, लीलावतार, मन्वन्तर अवतार, युगावतार, पूर्णावतार, अवतार-तत्त्व का मूल सिद्धात, मानवीय रस, अवतारवाद मे वैज्ञानिक विकासवाद, भागवत-धर्म का क्रम-विकास, रामभक्ति की ऐतिहासिकता, रामोपासना का क्रम विकास, हस परम-हस, उपासना-तत्त्व का आदिहेतु, ऋग्वेद का विराट् पुरुष, महाभारत का नारायणीय उपा-ख्यान, भागवतधर्म, सात्वत धर्म, रामोपासना के आदि प्रवर्त्तक शिव, रामोपासना वैदिकीया तात्रिकी ? 'सहस्रगीति' मे मधुरभाव, भगवान् राम की मधुरमूर्त्ति, रामभक्ति धारा मे मर्यादा की मुख्यता शरणागति एकमात्र साधन, वैष्णवो का पचकाल, दास्यभाव और शरणागति, दास्य और मधुर का सन्निवेश, भागवत पुराण का प्रभाव।

(१) शिवसहिता एक विहगम दृष्टि—ऐश्वर्य और माधुर्य, माधुर्य अधिकार, भाव-प्रकाशन, भगवान् का सौन्दर्य, माधुर्य, लावण्य, रस क मूर्त्तिमान् विग्रह, स्वरूप-प्रकाशन, 'रसो वै स ', शृगार-साधना का स्वरूप-प्रकाश, भगवान् की प्रमपिपासा, 'राम' शब्द का अर्थ, पारमार्थिक तत्त्व, अयोध्या नित्य रासस्थली।

(२) लोमश-सहिता की दृष्टि में—शृगार-राज्य मे प्रवश, चार मुख्य सखियाँ, चन्द्रकला रासरस की आचार्या।

(३) श्री हनुमत्सहिता : एक विहगम दृष्टि—प्रेमामृत रसावेश, राम-रचना, अर्थ-पंचक, उज्ज्वल भक्ति-रस, उज्ज्वलभक्ति-रस का आश्रय, आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव, सात्त्विकभाव, स्थायीभाव, लीलाविलास, शृगारी रामभक्ति का आधार ग्रथ बृहत् कौशल खण्ड, गोस्वामी जी मे माधुर्य भाव की झलक, गीतावली मे केलिगृह का वर्णन, गीतावली मे केलिगृह का दर्शन, 'लता, प्रिया, अलि, सखी'– मर्यादा मे शृगार, शृगार मे मर्यादा।

(पृ० स० ८९–११८)

छठा अध्याय

रामोपासना की रसिक-परम्परा

श्रीप्रेमलता जी की जीवनी मे रसिक-परम्परा, रसिक-साधना का नाम, निजगुरु की परम्परा, ग्रियर्सन की सूची, तपसीजी की छावनी मे हस्तलिखित ग्रथ मे प्राप्त परम्परा, 'रहस्य-मय' मे प्राप्त रसिक-परम्परा, 'वैष्णव धर्म रत्नाकर' मे प्राप्त परपरा, 'मत्रराज-परपरा' मे प्राप्त परम्परा, मौलाना रशीद की तजकी रतुलफ्क्रा, श्रीसम्प्रदाय की दो शाखाएँ, 'महा रामायण' मे प्राप्त परम्परा, श्री विश्वभरोपनिषद् की टीका मे प्राप्त परपरा, श्री सीतोपनिषद् मे प्राप्त परम्परा, श्री रामनवरत्न सार सग्रह मे प्राप्त परम्परा, 'कल्याण कल्पद्रुम' मे प्राप्त परम्परा, 'प्रपत्ति रहस्य' मे प्राप्त परम्परा, श्रीरूपकला जी क 'भक्ति सुधास्वादतिलक' में प्राप्त परपरा, जयपुर गालवाश्रम की परम्परा, मधुराचार्य, श्री जीव गोस्वामी दरमणि सन्दर्भ, श्रीमधु-राचार्य जी की परम्परा, रसिक प्रकाश भक्तमाल, श्रीअग्रदास स्वामी, रसिक-सम्प्रदाय के मूल तत्त्व। (पृ० स० ११६–१४०)

सातवाँ अध्याय

रसिक-परम्परा का साहित्य

उपनिषद्-ग्रन्थ सस्कृत में

रसिकोपासना का साहित्य उपेक्षित क्यो? श्रीरामतापनीयोपनिषद्, श्री विश्वम्भ-रोपनिषद्, श्रीसीतोपनिषद्, सीता का स्वरूप एव प्रभाव, सीता की इच्छा-शक्ति, ज्ञान-शक्ति, क्रिया-शक्ति, श्रीमैथिलीमहोपनिषद्, श्री रामरहस्योपनिषद्।

सहिता-ग्रन्थ—श्रीहनुमत्सहिता, श्रीशिवसहिता, श्री लोमश सहिता, श्रीबृहद्ब्रह्म-सहिता, श्री अगस्त्य-सहिता, श्री वाल्मीकि-सहिता, श्रीशुक-सहिता, दिव्य-चित्रकूट, गोलोक अयोध्या का प्रतिबिम्ब, श्रीवसिष्ठ सहिता, दिव्य अयोध्या, दिव्य अयोध्या के बारह वन चार पर्वत, सदाशिव सहिता, सप्तावरण, श्रीमहाशभु-सहिता, हिरण्यगर्भ-सहिता, महासदाशिव-सहिता, ब्रह्मसहिता।

स्तवराज और गीति—श्रीरामस्तवराज, श्री जानकीस्तवराज, श्री जानकी गीत, श्रीसहस्रगीति।

रामायण—श्रीवाल्मीकीय रामायण, आनन्दरामायण, महारामायण, आदि रामायण; रामायण-मणिरत्न, मैन्द रामायण, मजुलरामायण, भुशुडी रामायण।

नाटक, उपाख्यान, लीला-चरितकाव्य—महानाटक अथवा हनुमन्नाटक, प्रसन्नराघवम्, मैथिली-कल्याण, उदार राघव, जानकी हरण, सत्योपाख्यान, बृहत् कौशल-खण्ड, माधुर्य केलिकादम्बिनी, राम लिंगामृत।

प्रमाण अथवा सिद्धान्त-ग्रन्थ—श्रीसुदरमणि सदर्भ, श्रीरामतत्त्व प्रकाश, श्री राम-नवरत्नसार सग्रह, श्रीसीतारामनाम प्रताप-प्रकाश, श्रीरामतत्त्वभास्कर, उपासनात्रय सिद्धान्त, श्रीरामपटल, शृगारिक खण्ड काव्य, मेघदूत-काव्य के अनुकरण पर लिखित छह दूतकाव्य—हस-सदेश अथवा हसदूत, भ्रमरदूत, भ्रमर सदश, कपिदूत, कोकिलसदेश और चन्द्रदूत, गीत-गोविन्द के अनुकरण पर लिखित रामसीता सबधी-काव्य—रामगीतगोविन्द, गीताराघव, जानकी गीता, रामविलास, सगीत रघुनन्दन १८ वी शताब्दी, राघवविलास, रामशतक, समार्या-शतक, आर्यारामायण। (पृ० स० १४१–१८६)

आठवाँ अध्याय

रसिक-परम्परा का साहित्य

(हिन्दी मे)

अष्टयाम, श्रीअग्रस्वामीकृत 'भगवान् राम क सखा और सखी'—ध्यान, सखियो की सेवा का वर्णन, सोलह शृगार, ध्यान मजरी—(श्री अग्रस्वामी या अग्रदासजी)—श्रीरामका ध्यान, श्रीसीताजी का ध्यान, पार्षदो का ध्यान, रामाष्टयाम (श्रीनाभादासजी)—द्वादश-वन-वर्णन, महल की शोभा, अन्त पुर का वर्णन, अन्त पुरमे सखिया की सेवा, भाजन क समय नृत्य सगीत, शयन, नह प्रकाश (महात्मा बाल अली जी)—सखियन की नामावली और सवा, सखी और दासी मे भद, श्रीरामजी के वचन सीताजी के प्रति, रस-विलास, प्रेम-विलास, रूप-विलास, सखियो के वचन जानकी के प्रति, सखी-वचन राम क प्रति, सीता की छवि, प्रभाव-वर्णन, ध्यान मजरी (बाल अलीजी), लगन पचीसी (श्रीकृपानिवासजी), अनन्य चिंता-मणि (श्रीकृपा निवासजी), रामरसामृत सिन्धु, रामपद्धति (महाराज कृपा निवासजी), भावनापचीसी (कृपानिवासजी)—श्री जानकी जी की सखियाँ और उनकी सेवा, श्रीरामजी की सखियाँ और सेवा, पदावली (श्रीकृपानिवास), श्रीस्वामी जनकराज किशोरी शरण 'श्री रसिक अली'—लिखित—सिद्धान्त मुक्तावली, सिद्धान्तानन्यतरगिणी अमररामायण (सस्कृत), रहस्य रत्नमाला, सिद्धान्त चौतीसी, होलिका-विनोद, कवितावली, श्रीजानकी करुणा भरण, अध्यायत्रयी, दोहावली, आन्दोलन रहस्य दीपिका (श्रीरसिकअली), पञ्चशतक (श्रीरामचरणदास 'करुणा सिंधु'), विवेकशतक—रामरसामृतखण्ड—शोभा-वर्णन, रसमालिका

(श्रीरामचरणदास जी)—सिद्धान्त, वन-विहार, वसन्त-विहार, सखियो का नृत्य, शृगार, नृत्यविहार, जल-क्रीडा, हिंडोला, अष्टयाम पूजाविधि (श्रीरामचरण जी),—सखियो और सीता का शृगार, श्रीरामजी का शृगार, सखियो द्वारा सीता और राम का शृगार, युगल प्रिया पदावली, शृगार रहस्यदीपिका, अष्टयाम (श्री जीवाराम 'जुगलप्रिया' जी), उज्ज्वल उत्कण्ठा-विलास (श्रीयुगलानन्यशरण 'हेमलता' जी), अर्थपञ्चक (श्रीयुगलानन्यशरण जी), श्री-जानकी सनेहहुलास शतक (श्रीयुगलानन्यशरण जी), सतसुख प्रकाशिका पदावली (स्वामी युगलानन्य शरण जी), श्रीसीतारामनाम परत्व पदावली (स्वामी युगलानन्यशरण जी), श्रीप्रेमपरत्वप्रभा दोहावली (श्रीयुगलानन्यशरणजी), श्रीलवकुशशरण लीलाबिहारी जी—विरह-ज्वर, अष्टयाम-भावना, रूप-सुषमा, श्रीयुगलविनोद विलास—युगलविहार, उभय प्रबोधक रामायण (श्री बनादास), श्रीसीताराम झूलाविलास (श्रीरसरगमणि जी), श्रीराम-नामयशविलास, श्रीरामरूपयश विलास, श्रीसरयू रसरग-लहरी तथा अवधपञ्चक (श्रीरस-रगमणि), श्रीसीताराम शोभावली प्रेमपदावली (श्रीसीताराम शरण रामरसरग मणि)—अग-प्रत्यग-वर्णन, वसन-आभूषण वर्णन, ऋतुवर्णन आदि, श्रीरामशतवदना (श्री सीताराम शरण रामरसरगमणि), श्रीरामरसरगविलास (श्रीरामरसरगमणि),—श्रीराम का ध्यान वर्णन, श्रीसीताजी का ध्यान-वर्णन, श्रीसीताजी का प्रभाव-वर्णन, कनक भवन मे प्रिया-प्रियतम की झाँकी, रामझाँकी विलास (श्रीरामरसरगमणि), सियबरकेलि-पदावली (श्री ज्ञानाअली सहचरि जी),—आत्म-परिचय, राम-जन्म की बधाई, जानकी जन्म की बधाई, लगन, जानकी नौरत्न माणिक्य (रामसखिरचित), रामसखकृत पदावली, नृत्यराघव मिलन (श्रीराम सखजी),—रसिक लक्षण, नर्म सखा, श्रीसीतायन (श्रीरामप्रियाशरण प्रेमकली), बाल-विहार, अयोध्यावर्णन, श्रीकाष्ठजिह्वास्वामी के कुछ लीथो मे छपे ग्रन्थ—श्रीजानकी मगल, श्रीराममगल, भूषण रहस्य, अश्विनीकुमार बिन्दु, हनुमत बिन्दु, श्यामलगन, श्याममुधा, जानकी-बिंदु, कृष्णसहस्र परिचर्या, गयाबिन्दु, शिमा-व्याख्या (सस्कृत) साख्यतरग और वैराग्य प्रदीप, बृहद् उपासना रहस्य (श्रीप्रमलता जी),—नाम प्रसग, रूप प्रसग, धाम प्रसग, उपासक प्रसग—युगलोपासक, उपासना, पञ्चसस्कार प्रसग, अष्टयाम-भावना प्रसग, सबध का महत्त्व, रासकुञ्ज, गुह्य, रघुराजविलास (श्रीरघुराज सिंहजी)—महाराज, भजनरत्नावली (श्रीरामनारायण-दास)—भजन रत्नावली, सीता का रूप, राम का रूप, शृगारप्रदीप (श्रीहरिहर प्रसाद), सियारामचरण चन्द्रिका (कविराज लछिमन), श्रीरामचन्द्र विलास (श्रीनवलसिंह 'श्री शरण' युगल अलि), भावनामृत कादम्बिनी (श्रीयुगलमञ्जरीजी), समय रस वर्द्धिनी (श्रीसिया अली), नित्य रासलीला (श्रीसियाअली), श्यामसखे की पदावली, श्रीसीताराम शृगाररस (श्रीमहाराजदास जी)—दिव्य अयोध्या, श्रीरामप्रेमामजरी—प्रेममजरी विलास, युगलो-त्कठ-प्रकाशिका (जयपुर चन्देली के श्रीसीतारामशरण 'शुभलीला' जी) वैष्णवविनोद (श्री-

वैष्णवदास), बृहत् पद विनोद (रसदेव कवि), विनय चालीसी (श्री रूपसरसजी), झूलन विहार सग्रहावली (श्रीकृपानिवास जी), सियाराम पचीसी, भजनरस माल, रामप्रियाविलास, भक्तिप्रमोदिनी, सीताराम नखशिख वर्णन (प्रमसखी), फूल बँगला (श्री मोदलता जी), सीताराम सयोग पदावली (परमभक्त श्री बैजनाथ कुरमी), श्रीरामविलास-श्रीरामजी का नखशिख-वर्णन, जनकपुर मे सखी के साथ हाव विलास, रामका उत्तर, रम्यपदावली, भक्त-मनरजनी (प्रेमसखी), महारमोत्सव अर्थात् सीताराम-रहस्य,—सखियो के नाम, भावना अष्टयाम अथवा श्रीसीताराम मानसी पूजा (श्रीमीतारामशरण रामरमरगमणि जी)—ध्यान।

(पृ० स० १८७–४२१)

परिशिष्ट (क)

महावाणी। (पृ० स० ४२२–४३२)

रामभक्ति-साहित्य में मधुर उपासना

युगल सरकार

गीताप्रेस, गोरखपुर

पहला अध्याय

रागमयी भक्ति और उसकी वैष्णवपरंपरा

एक अनिर्वचनीय सच्चिदानन्द स्वरूप शाश्वत सत्ता विभु रूप मे व्याप्त है। उसके दो रूप है—एक निर्गुण निराकार निर्विकार स्वरूप और दूसरा निखिल ऐश्वर्य, माधुर्य, आनन्द, सौन्दर्य, अचिन्त्य अनन्त सद्गुणो का परम धाम स्वरूप। एक के ही ये सगुण स्वरूप अनेक है। उनके नित्य चिन्मय दिव्य धाम अनेक है, उनकी नित्य चिन्मय अगजगमोहिनी दिव्य लीला अनन्त है। उन दिव्य धामो मे वही व्यापक निर्गुण ब्रह्म सगुण हो कर नाना रूपो में नित्य क्रीडा किया करता है। जैसे निर्गुण स्वरूप विभु है वैसे ही सगुण स्वरूप भी सर्वगत है। सभी सगुण स्वरूप, उनकी सभी लीलाए सदा सर्वत्र व्याप्त है। देश-काल की कल्पना वहा नही जाती।

वह पूर्ण वस्तु अनन्त ऐश्वर्य-माधुर्यमय है। कारण कि उपास्य मे दो मुख्य गुण होते है–१—परत्व, २—सौलभ्य। परत्व है ऐश्वर्य और माधुर्य है सौलभ्य[1]। कही-कही ऐश्वर्य के तेज का विशेष प्रकाश है, कही-कही माधुर्य के सौन्दर्य की कमनीय कान्ति का। ऐश्वर्य मे वे अपनी महामहिमा मे विराजमान है और जीव अपनी लघुता मे घिरा हुआ। वे विभु है, जीव अणु। परन्तु दोनो मे सबध है—स्वामी सेवक का। जीव का नित्य कैकर्य, नित्य प्रपत्ति और अखण्ड शरणागति ही है इस सम्बन्ध का मूलाधार। इसमे वैधी भक्ति ही चलती है और वेदशास्त्रादि के निर्देश के आधार पर श्रवण कीर्तनादि से लेकर आत्मनिवेदन तक उसका क्रम-विकास होता है। भाव के उदय होने तक यह 'विधि भक्ति' चलती है।

परन्तु भगवान् का माधुर्य जहा प्रधान है वहा 'रुचि भक्ति' अथवा रागमयी भक्ति का आविर्भाव होता है। रागमूला प्रवृत्ति के साधको के लिए रागमयी भक्ति है और विधिमूला प्रवृत्ति के साधनो के लिए वैधी भक्ति है। वैधी मे विधि निषेध का विशेष ध्यान और षोडशोपचार पूजा की बडी महिमा है। वैधी भक्ति का आचरण शास्त्र-निर्देश के अनुसार होता है। इसमे वैदिक क्रियाकलाप, वर्णाश्रमधर्म के नियमादि का पालन करते हुए प्रभु के प्रति कुछ भय, श्रद्धा तथा सभ्रम (Awe) का भाव-विशेष रहता है। यह ऐश्वर्य प्रधान भक्ति है। इसमे कर्म, धर्म पर

---

१ श्री मधुराचार्य का सुन्दरमणि सदर्भ पृ० ६।

२ श्रवण कीर्तन विष्णो स्मरण पादसेवनम्।
अर्चन वन्दन दास्य सख्यमात्मनिवेदनम्॥

श्रीमद्भागवत ७. ५. २३।

विशेष आग्रह रखते हुए भजन की ओर भी मन रहता है। रागमयी भक्ति मे विधि या विधान का सर्वथा परित्याग हो जाता है। ध्यान रहे रागभक्ति मे विधि निषेध का परित्याग किया नही जाता, अपितु स्वत सहज ही हो जाता है। यहा भक्त अपने आन्तरिक भाव से ही प्रेरित होकर भगवान के साथ अपने सम्बन्ध के अनुसार अपने प्राणसखा परम प्रियतम को लाड लडाता है— कभी उसका सखा होकर, कभी प्राणप्रिया प्रियतमा होकर। वस्तुत यह रागमयी भक्ति हृदय की साधना है। यहा हृदय मे ही हृदय के द्वारा हृदयेश्वर की रागमयी उपासना होती है। स्पष्ट शब्दो मे यो कह सकते है कि भक्त के हृदय मे भगवान् के लिए और भगवान् के हृदय मे भक्त के लिए जो स्वाभाविक गाढ तृष्णा होती है वही है रागमयी भक्ति।

समस्त वैष्णव साहित्य मे इस रागमयी भक्ति का सविशेष महत्ववर्णित है, कही प्रच्छन्न गुह्य रूप मे, कही प्रकट व्यक्त रूप मे। इस रागमयी भक्ति को 'परम गोपनीय' रहस्य कहा गया है[1]। यह गोपनीय क्यो है इसे यहा थोडे मे समझ लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

वह शाश्वत तत्व शक्ति एव शक्तिमान् परस्पर अभिन्न होकर भिन्न और भिन्न होकर भी अभिन्न है। वस्तुत वे अभिन्न ही है। क्रीडा के लिए उनका भेद है। इसी भेद से व्यापक निर्गुण तत्त्व मे सत् चित् आनन्द का भाव है और सगुण के साथ वही शक्ति सधिनी सवित् और ह्लादिनी शक्ति के त्रिविध रूप मे उपस्थित होती है। सगुण रूप की भाति ही ये शक्तिया भी नित्य, परस्पर अभिन्न तथा शक्तिमान् से अभिन्न है। नित्य अभेद और नित्य भेद तथा अभेद मे भेद और भेद मे अभेद का यह शास्त्रीय ज्ञान ईश्वरीय वरदान है। अपौरुषेय रूप मे ही यह मनुष्य को प्राप्त हुआ है।

सैकडो जन्मो के जब दान पूजनादि शुभ कर्मो का जब पुण्य उदय होता है तब विशुद्धान्त - करणवाले मनुष्य के हृदय मे कृपापरवश प्रभु अपनी असीम करुणा से भक्ति का दान देते है। ध्यान रहे कि भक्ति मे अपने पुरुषार्थ की अपेक्षा उनकी करुणा ही मुख्य कारण है। इसमे वैधी भक्ति तो ज्ञान का साधन है परन्तु रागानुगा भक्ति का उदय ज्ञान तथा विज्ञान के अनन्तर होता है। रागानुगा भक्ति साधन नही अपितु साध्य है। इस महा आनन्दप्रदायिनी स्वरूपा भक्ति का विषयालम्बन है स्वय आत्मास्वरूप भगवान्।

आत्यन्तिक स्नेह ही रागानुगा का स्वरूप है। निर्मल चित्त मे पूर्ण वैराग्य का उदय होने पर तथा शुद्ध विज्ञान के अनन्तर रागानुगा भक्ति का आविर्भाव होता है। पाप रहित शुद्ध अन्त करण मे भागवत धर्म के अनुष्ठान से भगवत्कृपा द्वारा सासारिक सभी वस्तुओ के प्रति तीव्र वैराग्य, सत् असत् पदार्थों का एव निज स्वरूप पर स्वरूपादिक 'अर्थ पचक' का यथार्थ ज्ञान प्रकट होता है, तत्पश्चात् भगवच्चरणारविन्दो मे अनन्य अविचल अनुरागपूर्वक परम स्नेह स्वरूपा भक्ति

---

१ गोपनीय गोपनीय गोपनीय च सर्वदा

—श्री हनुमत्सहिता ७. ५

राजविद्याराजगुह्य पवित्रमिदमुत्तमम्
प्रत्यक्षावगम धर्म सुसुख कर्तुमव्ययम। गीता

का स्वत अन्त करण मे जो उदय होता है वही भक्ति रागानुगा या प्रेमाभक्ति के नाम से पुकारी जाती है। यह सर्वश्रेष्ठ अ त्च परम दुर्लभ है।

शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और शृगार भेद से रागानुगा के पाच प्रकार है। भाव का जैसे-जैसे विकास एव प्रगाढता होती जाती है वैसे-वैसे शान्त दास्य मे, दास्य सख्य मे, सख्य वात्सल्य मे और वात्सल्य माधुर्य मे परिणत होता जाता है। परन्तु यह ध्यान रहे कि जैसे पृथ्वी जल अग्नि आदि पच तत्त्वो के क्रम विकास मे हम जैसे जैसे आगे बढते है पिछले वाला तत्व भी उसमे सन्निहित रहता है उसी प्रकार भावोके विकास मे जैसे जैसे हम आगे बढते है पिछले वाले भाव या भावो का अश भी सार रूप मे बना रहता है—जैसे दास्य मे दास्य है शान्त भी, वात्सल्य मे वात्सल्य की मुख्यता है परन्तु है उसमे दास्य भाव भी इसी प्रकार शृगार मे दास्य, सख्य, भाव ही है, प्रधानता है माधुर्य की। रस के विशेषज्ञो ने रस की मनोवैज्ञानिक व्याख्या करते हुए बतलाया है कि शान्त और दास्य की परस्पर मैत्री है और सख्य वात्सल्य की इनसे तटस्थता है तथा उज्ज्वल रस से शत्रुता है। सख्य और उज्ज्वल की परस्पर मैत्री है। उज्ज्वल का शान्त और वात्सल्य से शत्रुता है सख्य से तटस्थता है। वात्सल्य का उज्ज्वल तथा दास्य रस से शत्रुता है।

रागानुगा भक्ति के और भी तीन अवान्तर भेद है— प्रेमा, परा, प्रौढा।

प्रेमा—श्रवण कीर्तनादि नवधा भक्ति का सम्यक् प्रकारेण, विधिपूर्वक, सन्त भक्त तथा सद्गुरु के शुभ सान्निध्य मे रह कर सेवन करने से प्रभु के प्रति स्नेह-वृत्ति का उदय होता है जिसे 'प्रेमाभक्ति' कहते है। इसका इतना प्रभाव है कि भक्त के समस्त दोष-विकार और पाप-ताप दग्ध हो जाते है। वर्षा ऋतु मे उमडी हुई नदी की तरह जो समुद्र की ओर प्रखर वेग से भागी जा रही है जब हृदय मे प्रभु के प्रति भाव का प्रवाह उमडे तो उसे 'प्रेमा' कहते है।

परा—भगवान के साथ किसी सबध विशेष मे दृढतापूर्वक बध जाने पर जब भाव मे पूर्ण परिपक्वता आ जाती है, भावना मे स्थिरता आ जाती है और साधक उसी भावना मे सर्वथैवतल्लीन हो जाता है और अन्य समस्त भावो एव व्यापारो का विस्मरण हो जाता है तो इस अनुभवात्मिका भक्ति को 'परा' कहते है। इसमे रति स्थिर हो जाती है।

प्रौढा—प्रौढा भक्ति परमात्मा की साक्षात्कारात्मक होती है। सबसे पहले रसराज का महामधुर रसास्वादन करने पर जब अपने दिव्य स्वरूप का क्रमश पूर्ण आवेश आ जाता है उसके पश्चात तीव्र विरहानल का उदय होता है। अन्त मे सब वृत्तियो का एकान्त निरोध हो जाता है। निरोध के अनन्तर जो परमात्मा का साक्षात्कार होता है वही 'प्रौढा भक्ति' है। प्रेमा और परा भक्ति का दर्शन तो दास्य, सख्य, वात्सल्यादि रसो मे होता है परन्तु प्रौढा भक्ति विशेषत एकमात्र शृगार रस मे ही दृष्टिगोचर होती है। यह प्रौढा भक्ति ही वस्तुत परम पुरुषार्थ स्वरूपा साध्या भक्ति है। 'रस' शब्द का व्यवहार यद्यपि सब रसो मे होता है परन्तु वास्तव मे शृगार ही मुख्य रस है। और रसो मे रसत्व गौण है। शृगार ही रसस्वरूप रसराज है[1]।

---

१ शृंगारमेव रसनाद ररमामनाम श्री मधुराचार्य

दिव्य साकेत धाम मे युगल प्रभु के श्री अगो से कोटि-कोटि सखियो का आविर्भाव होता है। इन सखियो की कृपादृष्टि से ही प्रीतिरूपा भक्ति का उदय होता है तथा रसराज के उपासन मे अधिकार लाभ होता है। साधना अथवा सुकृत तो उनकी शुभ दृष्टि को आकर्षित करने के लिए होता है। यथार्थ लाभ उनकी कृपा से ही होता है। वास्तविक लाभ का अर्थ है रसराज मे प्रवेश का अधिकार, प्रिया प्रियतम का चिद्विलास तथा पुण्य विहार का परात्परतम दर्शन। इसे ही पाकर जीव कृतकृत्य हो जाता है, पूर्णकाम हो जाता है। यही वह स्थिति है जिसे उपनिषदे आत्मरति, आत्मक्रीड, आत्ममिथुन, आत्मरमण, आत्माराम की स्थिति कहती है। अस्तु

परन्तु यहा प्रश्न उठता है कि जब उस परम प्रियतम के रूपरस या लीलारस या सेवारस का आस्वादन नारी-भाव या सखी-भाव से ही हो सकता है तो बिचारा पुरुष क्या करे ? इस प्रश्न पर विचार कुछ विस्तार से हम अगले अध्याय मे करेगे। यहा इतना सकेत रूप मे कह देना अभीष्ट है कि जीव न तो स्त्री है, न पुरुष, न नपुसक। जा-जो शरीर धारण करता है वह शरीर धर्मानुसार उसका अभिमानी होता है[1]। और इसी प्रकार परमात्मा भी न स्त्री है न पुरुष, न कुमार, न कुमारी। विश्व का सब कुछ वही है[2]। अतएव भक्त और भगवान् के बीच कोई भी और सभी प्रकार का सम्बन्ध सभव है--स्वामी सेवक का, सखा सखा का, पिता पुत्र या पुत्र माता का, पति पत्नी या पत्नी पति का। आगे हम यह दिखायेगे कि जीवमात्र भगवान का भोग्य है, भोक्ता है एकमात्र प्रभु ही। जीव भोक्ता हो नही सकता, भोक्ता होने की उसमे सामथ्य नही है। वह प्रभु के कृपा-प्रसाद से ही प्रभु का दिव्य भोग्य है। भोक्ता, भोग्य और प्रेरिता का सम्यक् ज्ञान ही परम ज्ञान है। वास्तव मे भोक्ता भोग्य का विषय बडा ही गभीर एव गोपनीय है। इसकी थोडी बहुत चर्चा हम अगले अध्याय मे सकेत रूप से प्रस्तुत करेगे। अस्तु

रागमयी भक्ति के क्रम-विकास के अध्ययन मे हम दक्षिण भारत के सबसे प्राचीन आलवार वैष्णव भक्तो के साहित्य मे स्पष्ट देखते है कि रागमयी भक्ति का स्वर ही मुख्य है। 'आलवार' शब्द का अथ है आत्मज्ञानी भक्त जो भगवान् के प्रेम मे सदा डूबा रहता है। आलवारो मे १२ मुख्य है उनमे गोरा अन्दाल ठीक मीरा की तरह प्रेम पुजारिन हुई। ईसवी सन् की सातवी से नवी शती मे ये आलवार भक्त हुए। 'आत्मनिवेदन' भक्ति के ये साकार विग्रह थे। वे भागवत के इस वचन को मानते थे कि प्रेमस्वरूप हरि भक्ति से ही प्रसन्न होता है, शेष सब

---

१ **नैव स्त्री न पुमानेषु न चैवाय नपुसक ।**
यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स रक्ष्यते ।।

श्वेताश्वतरोपनिषद् ५।१०

२ **त्व स्त्री त्व पुमानसि त्व कुमार उत वा कुमारी त्व जीर्णो दण्डेन वचयसि त्व जातो भवसि विश्वतो मुख ।**

३ **भोक्ता भोग्य प्रेरितार च मत्वा सर्व प्रोक्त त्रिविध ब्रह्म एतत् ।**

---श्वेताश्वतरोपनिषद् १।१२

विडम्बना है'[1]। आलवारो की भक्ति प्रभु मे उतनी ही दृढ है जितनी विषयी पुरुषो की विषयो मे होती है और यह इतनी प्रगाढ है कि उसकी समता का कोई उदाहरण नही । श्री जे०एस० एम० हूपर ने आलवारो के पदो का तमिल से अग्रेजी मे अनुवाद किया है जो अपने ढग का अद्वितीय है।[3] अभिप्राय यह कि आलवारो की भक्ति सर्वथा रागमयी, प्रीतिमयी भक्ति है और उसमे प्रेम की ही प्रधानता है। प्रीतिपूर्वक आत्मदान, प्रणय का आत्मसमर्पण है। उनके गीतो का मुख्य स्वर है। गोदा अन्दाल आलवारो मे प्रसिद्ध भक्तिन हुई। उसन कहा है कि मै अब पूर्ण यौवन को प्राप्त हो गई हू और अपना सपूर्ण यौवन मै श्री हरि के चरणो मे समर्पित कर दूगी, उनके सिवा इसका उपभोग करन का अधिकारी और है भी कौन? इन्ही आलवारो की परम्परा मे श्री स्वामी रामानुजाचार्य आते है। उनके प्रपत्तिवाद मे सवथा आत्मसमपण का स्वर मुख्य है। शरीर से, वाणी स, मन से, इन्द्रिया से, बुद्धि से, आत्मा से या स्वभाव का अनुसरण करते हुए जो कुछ भी कार्य होता है सब कुछ नारायण का समर्पित है[4]। न तो मुझमे धर्म की निष्ठा है, न आत्मविद् हू, न तुम्हार चरणारविन्द मे भक्ति ही है। ह नाथ, मै सब प्रकार अकिचन हू, तुम्हारे चरणो की शरण मे हू[5]। सहस्र-सहस्र अपराधो से भरा हुआ मै तुम्हारे चरणो मे प्रपन्न हू, नाथ!

---

१ प्रीयतेऽमलया भक्तया हरिरन्यद् विडम्बनम्।

२ या प्रीतिरस्ति विषयेष्वविवेकभाजा सेवाऽच्युते भवति भक्तिपदाभिधेया ।
भक्तिस्तु काम इह तत्कमनीय रूपे, तस्मान् मुनेरजनिकामुकवाक्यभगी।
—दमिडोपनिषद् सगति.

३ Day and night she knows not sleep
In floods of tears her eyes do swim
Lotus like eyes, She weeps and reels
No kinship with the world have I
Which takes for true the life that is not true,
For Thee alone my passion burns,
I cry Rangam, my Lord I
Hooper—Hymns of the Alwars

४ कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्धात्मना वानुसृत स्वभावात्।
करोमि यत् यत् सकल परस्मै नारायणायेति समर्पये तत्।

५ न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी न भक्तिमान्स्त्वच्चरणारविन्दे।
अकिचन· नान्यगति. शरण्य! त्वत्पादमूल शरण प्रपद्ये॥
—स्तोत्र रत्न २२

मुझे स्वीकार करो'। रामानुज के श्री सप्रदाय मे आत्मनिवेदन की पूर्ण विवृति है और शरणागति या 'प्रपत्ति' ही उसमे एकान्तत विकसित हुई है। रागमयी भक्ति का विशेष विकास क्रमश मध्व, निम्बार्क, वल्लभ, चैतन्य, राधावल्लभीय और हितहरिवश मे ही हुआ, जिसका अनुशीलन हम बहुत सक्षेप मे प्रस्तुत कर रहे है।

यहा लक्ष्य करने योग्य एक बात है वह यह कि स्वामी रामानुजाचाय के पूर्ववर्ती आलवार भक्तो मे रागमयी भक्ति विशेष निष्पन्न हुई है तथा इन्ही स्वामी रामानुज की परपरा मे आगे चलकर स्वामी रामानन्द तथा परवर्ती सत भक्तो मे भी इसी रागमयी भक्ति का विशेष विकास एव शृगार हुआ है। अयोध्या के रसिक भक्तो की परपरा परम प्राचीन होती हुई भी स्वामी रामानन्द मे स्पष्ट रूप मे पकड मे आती है। आलवार भक्तो से लेकर स्वामी रामानन्द तक की रसिक परपरा, लगता है कि योग, सहज और अन्य गुह्य साधनाओ के अतराल मे गुप्त रूप मे प्रवाहित होने लगी थी, गुप्त गोदावरी की तरह और पुन स्वामी रामानद के परवर्ती भक्तो मे रसिकता की वह बाढ आई जिसमे सतरहवी शती के बाद हमारा अधिकाश रामसाहित्य ओतप्रोत है। मर्यादा के कठोर आवेष्ठन मे शृगार का ऐसा मधुर विन्यास विश्व-साहित्य मे दुर्लभ है। अवश्य ही गोस्वामी जी ने अपने चारो ओर फैले हुए इस साहित्य को देखा था और वे स्वय मर्यादावादी तथा लोकमगल और व्यक्तिगत साधना मे सामजस्य के प्रबल पोषक होने के कारण भक्ति के शृगार पक्ष पर बल न दे सके, परन्तु यदा-कदा इतस्तत उनके अदर की भावधारा फूट पडी है जैसा हम गीतावली के कुछ पदो का उद्धरण देकर आगे बतायेगे। स्वामी रामानन्द से लेकर श्री 'रूपकला' तक रामोपासना मे शृगार-भावना का जो अखण्ड प्रवाह विद्यमान है और अब भी वह अवध की मुख्य एव परम गुह्य साधना के रूप मे चल रहा है, उसी का विवरण अपना अभीष्ट है। परन्तु यह भूल न जाना होगा कि भक्ति के अन्यान्य सप्रदायो मे भी इस भाव की उपासना विशेष व्यक्त एव उन्मुक्त रूप मे हुई है उनका भी दिग्दर्शन प्रसगत आवश्यक है। अस्तु, यहा हम सक्षेप मे पहले उन भक्ति सप्रदायो का एक सामान्य परिचय प्रस्तुत करना चाहेगे जहा रागमयी साधना का ही स्वर मुख्य है और तभी यह सभव होगा कि हम तुलनात्मक दृष्टि से यह देख सकेग कि उनमे और रामोपासना की शृगारी साधना मे क्या और कितना भेद है और यदि है तो क्यो है। रामावत सप्रदाय की मधुर उपासना के अनुशीलन-परिशीलन में एक बात का ध्यान सदा रखना होगा कि इसमे यहा से वहा तक मर्यादा का भाव अक्षुण्ण रूप मे बना हुआ है। भीतर-भीतर शृगार-उपासना और बाहर-बाहर मर्यादा-भावना। यही कारण है कि रामावत सप्रदाय की मधुर उपासना का विषय अबतक सर्वथा उपेक्षित रहा है और उसे वह महत्त्व न मिल पाया जो कृष्णावत मधुर उपासना को प्राप्त है। फिर भी इस परम

---

१ **अपराध सहस्र भाजन पतित भीम भवार्णवोदरे।**
अगति शरणागत हरे! कृपया केवल आत्मसात्कुरु।

—आलवन्दार स्तोत्र ५१

गुह्यतम साधना का साहित्य अपने-आपमे इतना सुपुष्ट, आकर्षक एव प्रभावशाली है कि इसका अध्येता किसी प्रकार घाटे मे नही रहेगा और हमारे साहित्य के इस उपेक्षित अग पर प्रकाश डालने के लिए अधिक-से-अधिक विद्वानो को इस ओर प्रवृत्त होना चाहिए। अस्तु

अब हम रागमयी भक्ति की जो विवृत्ति विविध भक्ति सप्रदायो मे हुई है, उसका एक सामान्य परिचय प्रस्तुत करेगे।

इष्टे स्वारसिकोराग परमाविष्टता भवेत्।
तन्मयी या भवेद्भक्ति साऽत्र रागात्मिकोदिता॥
विराजन्तीमभिव्यक्त व्रजवासिजनादिषु।
- ¬ि- ।---- या सा रागानुगोच्यते॥

—हरिभक्तिरसामृतसिन्धु पूव, द्वि लहरी ६०,६२

भक्ति के लक्षण—गौडीय मत

इष्ट वस्तु मे गाढ तृष्णा—बलवती लालसा। यही है राग का स्वरूप लक्षण और इष्ट मे परम आविष्टता—यह है तटस्थ लक्षण। श्रीजीव गोस्वामी अपने 'भक्ति-सदर्भ' मे इसकी यो व्याख्या करते हैं—'तत्र विषयिण स्वाभाविको विषयमसर्गेच्छामय प्रेमा राग यथा चक्षुरादीना सौन्दर्यादौ तादृश एवात्र भक्तस्य श्रीभगवत्यपि राग इत्युच्यते।'

अर्थात् जैसे विषयी पुरुषो का स्वभावत ही विषयो के प्रति विषय-ससग की इच्छा से युक्त आकर्षण होता है—जैसे आखो का सौन्दर्य के प्रति एव कानो का मधुर स्वर के प्रति, उसी प्रकार भक्त का जब श्रीभगवान् के प्रति आकर्षण या तृष्णा उत्पन्न हो जाती है, तब उसे 'राग' कहते है।

श्रीकृष्णदास कविराज ने 'श्री चैतन्याचरितामृत' में इसी विषय की व्याख्या की है, जो श्रीरूपगोस्वामी कृत 'हरिभक्तिरसामतसिन्धु' की व्याख्या मे बहुत मिलती-जुलती है—

इष्टे गाढ तृष्णा राग एइ स्वरूप-लक्षण।
इष्ट आविष्टता एइ तटस्थ लक्षण॥—मध्य २२।८६

राग का जो स्वरूप ऊपर बताया गया है,उससे युक्त भक्ति को 'रागात्मिका भक्ति' कहते है और उसी का अनुसरण करती हुई भक्ति की जो धारा प्रसरित होती है, उसे 'रागानुगा' कहते हैं।

रागमयी भक्तिर हय रागात्मिका नाम॥ मध्य० २२।८६

मूल कारण

व्रज के भक्तो की प्रेम-सेवा की चर्चा सुनकर किसी भाग्यवान् के चित्त मे जो तदनुरूप सेवा पाने का लोभ उत्पन्न होता है और जिससे प्रेरित होकर व्रज-वासियो के भावो का आनुगत्य स्वीकार कर के भजन की प्रवृत्ति होती है, वह लोभ ही इस रागानुगा का मूल कारण है। श्री जीव गोस्वामी कहते हैं—

'यस्य पूर्वोक्तरागविशेषे रुचिरेव जातास्ति न तु रागविशेष एव स्वय तस्य तादृश राग-सुधाकरकराभाससमुल्लसितहृदयस्फटिकमणे शास्त्रादिषु तासु तादृश्या रागात्मिकाया भक्ते परिपाटीष्वपि रुचिर्जायते।'

श्री गोविन्द भाष्य मे श्री बलदेव विद्याभूषण इसी को 'रुचि भक्ति' कहते है—

'रुचिभक्तिर्माधुर्यज्ञानप्रवृत्ता, विधिभक्तिरैश्वर्यज्ञानप्रवृत्ता। रुचिरत्र राग। तदनुगता भक्ति रुचिभक्ति। अथवा रुचिपूर्णा भक्ति रुचिभक्ति इयमेव 'रागानुगा' इति गदिता।'

रागानुगा पुष्टि-मार्ग में

इसी रागानुगा भक्ति को पुष्टि मार्ग मे पुष्टि-भक्ति या 'अविहिता भक्ति' कहते है—

'माहात्म्यज्ञानयुते वरत्वेन प्रभोर्भक्तिर्विहिता, अन्यत प्राप्तत्वात् रागाप्राप्तिज त्वविहिता।' —अणुभाष्य

श्री निम्बाक-सम्प्रदायमे श्री हरिव्यास जी न अपनी 'सिद्धान्त-रत्नाजलि' टीका मे अविहिता भक्ति का उल्लेख किया है। 'महावाणी मे उन्होन सखी-भाव से नित्य वृन्दावन मे श्री राधा-गोविन्द की युगल सेवा-प्राप्ति की साधना बताई है।

श्रीनिम्बार्क-मत मे

उक्त साधना मे दास्य, सख्य अथवा वात्सल्य के लिए स्थान नही है। इस प्रकार गौडीय वैष्णवो की रागानुगा भक्ति के साथ श्री हरिव्यासजी की साधना का भेद सुस्पष्ट है। क्योकि महाप्रभु के सम्प्रदाय मे सभी भावो का समावेश हो जाता है —'कुत्रापि तद्रहिता न कल्पनीया।' श्री हरिव्यासजी मे श्रीकृष्ण की देवलीला-परायणता है, परन्तु गौडीय वैष्णव केवल भगवान् की नरलीला मे माधुर्योपासना का पथ अपनाते है।

रागानुगा भक्ति मे स्मरण की प्रधानता[1] है। श्री सनातन गोस्वामी न बृहद्-भागवतामृत मे इसका विस्तार से वणन किया है। इस साधन मे मानसिक सेवा और तदनुकूल सकल्प ही मुख्य है। रघुनाथदास गोस्वामी के 'विलाप-कुसुमाजलि' और श्री जीव गोस्वामी के 'सकल्प-कल्पद्रुम' मे रागानुगा भक्ति अनुकूल सकल्प और मानसी सेवा के क्रम का बहुत सुन्दर वर्णन मिलता है।[2]

स्मरणकी मुख्यता

सेवा साधक रूपेण सिद्धरूपेण चात्र हि।
तद्भावलिप्सुना कार्या व्रजलोकानुसारत।।

---

१ गौडीय आचार्य श्री जीव गोस्वामी 'अविहिता' का निर्णय यो करते है—'अविहिता रुचिमात्रप्रवृत्या विधिप्रयुक्तत्वेनाप्रवृत्तत्वात्' रुचिमात्र से प्रवृत्ति होने के कारण ही इस प्रकार की भक्ति को 'अविहिता' कहते है।

२ रागानुगायां स्मरणस्य मुख्यता

अर्थात् व्रजवासी जनो के भाव से लुब्ध हुए व्यक्ति को इस रागानुगामार्ग में साधक रूप से अर्थात् यथावस्थित देह के द्वारा तथा सिद्ध रूप से—अन्तचिन्तित सिद्ध देह से व्रजवासियो के आनुगत्य स्वीकार करते हुए सेवा करनी चाहिए।

साधना का क्रम

माता-पिता से उत्पन्न हुआ मात्र भौतिक शरीर ही साधक-देह है और अन्तर मे अभीष्ट ी राधा-गोविन्द की साक्षात् सेवा के उपयुक्त अपने जिस देह की भावना की जाती है, वह िद्ध-देह है। सिद्ध-देह से ही व्रज भाव प्राप्त होता है। माधुर्योपासना के अन्तर्गत सिद्ध देह की ावना के सम्बन्ध में 'सनत्कुमार-तत्र' मे कहा गया है—

आत्मान चिन्तयेत्तत्र तासा मध्ये मनोहराम्।
रूपयौवनसम्पन्ना किशोरी प्रमदाकृतिम्॥

अर्थात् गोपी भाव मे अपने का रूप यौवन-सम्पन्न परम मनोहर किशोरी के रूप मे सिद्ध ् से भावना करनी चाहिए।

सखी की आज्ञा के अनुसार सदा सेवा के लिए उत्सुक रहते हुए श्री राधाजी के निर्माल्य रूप अलकारो से विभूषित, साधनो की सिद्धि रूप इस मजरी-देह की भावना निरन्तर की जाती । मजरी स्वरूप मे तनिक भी सभोग के लिए अवकाश नही। इसमे केवल सेवा-वासना है। ृम पुराण, पाताल खड मे इसी प्रसग पर कहा गया है—

आत्मान चिन्तयेत् तत्र तासा मध्ये मनोरमाम्।
रूपयौवनसम्पन्ना किशोरी प्रमदाकृतिम्॥
नानाशिल्पकलाभिज्ञा कृष्णभोगानुरूपिणीम्।
प्रार्थितामपि कृष्णेन तत्र भोगपराङ्मुखीम्॥
राधिकानुचरी नित्य तत्सेवनपरायणाम्।
कृष्णादप्यधिक प्रेम राधिकाया प्रकुर्वतीम्॥
प्रीत्यानुदिवस यत्नसेत् तयो सगमकारिणीम्॥
तत्सेवनसुखाह्लादभावेनातिनिर्वृताम्॥
इत्यात्मान विचिन्त्यैव तत्र सेवा समाचरेत्।
ब्राह्म मुहूर्तमारभ्य यावत् स्यात् तु महानिशा॥५२।७-११

गोपीभाव की उपासना करनेवाले को चाहिए कि वह अपने-आपकी भी प्रिया-प्रियतम ी सेवा मे लगी हुई उन सखियो से ही एक अत्यन्त मनोरम, रूपयौवन-सपन्न किशोर अवस्था की णी के रूप मे भावना कर, जो विविध शिल्पो एव कलाओ मे प्रवीण तथा श्रीकृष्ण के द्वारा ृभोग के योग्य हो, किन्तु श्रीकृष्ण के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर भी जो उनके साथ दिव्य भोग के प्रतिसर्वथा पराङ्मुख हो, जो श्री राधाकिशोरी की सेवा मे सदा परायण रहने वाली नकी अनुचरी हो, जो श्रीकृष्ण की अपेक्षा राधाकिशोरी से ही अधिक प्रेम करती हो और प्रति

दिन बडे ही प्रेम एव तत्परता से उन दोनो का मिलन कराना ही अपना एकमात्र कर्तव्य समझती हो और उन्ही के सेवा-सुख को परम आह्लाद का कारण मान कर अत्यन्त सुखी रहती हो। अपने विषय मे इस प्रकार की भावना कर के ब्राह्म मुहूर्त से ले कर रात्रि के शेष भाग तक दोनो की मानसी-सेवा मे रत रहना चाहिए।

रागानुगा-साधन मे जो 'अजात रति' साधक है—अर्थात् जिन्हे रति की प्राप्ति नही हुई है, उनको अपने लिए गुरुदेव के उपदेशानुसार किसी सखी की सगिनी के भाव से मनो-

जात रति

हर वेशभूषा से युक्त किशोरी रमणी के रूप मे भावना करनी चाहिए। जो जात-रति है, अर्थात् जिनको रति प्राप्त हो गई है, उनमे इस सिद्ध स्वरूप की स्फूर्ति अपने-आप हो जाती है। प्राचीन आलवार भक्त शठारि मुनि के साधक देह मे ही सिद्ध देह का भाव उतर आया था। उन्होने अनुभव किया कि श्री भगवान् ही पुरुषोत्तम है और अखिल जगत् स्त्री-स्वभाव है। इस विषय मे उनका 'तिरुविरुत्तम' नामक ग्रन्थ देखना चाहिए। कहते है शठारि मे सचमुच कामिनी भाव का आविर्भाव हो गया था—

पुस्त्व नियम्य पुरुषोत्तमनाविशिष्ट
स्त्रीप्रायभावकथनाज्जगतोऽखिलस्य।
पुसा च रञ्जकवपुर्गुणवन्तयापि
शौरे शठारियमिनोऽजनि कामिनीत्वम्॥

—वैष्णव धर्म

गौडीय वैष्णव साधकगण 'गोविन्द लीलामृत' और 'कृष्णभावनामृत' आदि ग्रन्थो के क्रमानुसार गुरु गौरागदेव के अनुगत भाव मे श्री राधागोविन्द की अष्टकालीन लीला का स्मरण करते है। इस लीला के ध्यान मे ही मानसोपचार मे इच्छित सेवा होती रहती है। श्री वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग मे भी अष्टयाम की लीलाओ का स्मरण मुख्य साधना है।

'कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता।'

—आचार्य कृत सिद्धान्त-मुक्तावली

श्री हरिरायजी की 'महस्श्लोकी सेवा-भावना' इस विषय का देखने योग्य ग्रन्थ है। इसमे गोपागनाओ की सेवा-भावनाओ का विस्तार मे वर्णन है। इसके अतिरिक्त प्रात काल की मगला-आरती मे लेकर रात के शयन तक भिन्न-भिन्न समयो की भिन्न-भिन्न लीलाओ के लिए भिन्न-भिन्न राग-रागिनियो मे उसी सम्प्रदाय के महानुभावो द्वारा रचित अनेकानेक पद उपलब्ध है एव भक्तो के द्वारा गाये जाते है। जिनसे सहज ही भगवान् की विविध लीलाओ का स्मरण, चिन्तन एव ध्यान होता है और भक्त शरीर से चाह जहा हो, भाव-देह से निरन्तर भगवान् की सन्निधि मे रहते हुए अमृतोपम सुख लूटता है।

साधक-देह मे ही सिद्ध-देह की स्फूर्ति किस प्रकार होती है—इसका ज्वलन्त उदाहरण हमे बगाल के वैष्णव-इतिहास मे इस प्रकार मिलता है। बगाल के साधक **श्रीनिवास आचार्य** किसी

समय मजरी-देह मे श्रीराधाकृष्ण का ध्यान कर रहे थे। उन्होने देखा श्री गोपीजनो के साथ श्रीकृष्ण यमुना में जलक्रीडा कर रहे है। श्रीराधाजी के कान का एक कुण्डल जल मे गिर गया। सखिया खोजने लगी। भावना-देह से इस कुण्डल की खोज करने मे श्रीनिवासजी को बाह्य दृष्टि मे एक सप्ताह का समय लग गया। साधक देह निस्पन्द आसन पर विराजमान था। रामचन्द्र कविराज आये तो वे भी सिद्ध-देह मे श्रीनिवास की सङ्गिनी के रूप मे उनके साथ हो लिये और रामचन्द्र को एक कमलपत्र के नीचे राधाजी का कुण्डल दिखलाई पडा। उसी क्षण उन्होने उसे श्रीनिवासजी के उस भावना-देह के हाथ मे दे दिया। सखी-मजरियो मे आनन्द की तरगे उछलने लगी। श्रीराधारानी ने प्रसन्न होकर अपना चबाया हुआ पान इन्हे पुरस्कार-रूप मे दिया। रामचन्द्र और श्रीनिवास दोनो ही सोकर उठनेवालो की तरह साधक देह मे लौट आये। देखा गया कि सचमुच श्रीराधाजी का दिया हुआ पान-पुरस्कार उनके मुख में था।

भाव-देह

स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर की तरह एक भावशरीर या सिद्ध-देह भी होता है साधक इसी भाव-देह से भगवान् की लीलाओ का रसास्वादन करता है। भाव-देह और सिद्ध-देह की चर्चा हम विस्तार मे यथास्थान करेगे।

उपर्युक्त पुष्टि भक्ति की कुछ ज्ञातव्य बातें

भगवान् के अनुग्रह को ही 'पुष्टि' कहते है—'पोषण तदनुग्रह'। उस अनुग्रहसे जो भक्ति या भगवत्प्रेम होता है, उसे 'पुष्टि भक्ति' कहते है। यह भक्ति स्वरूप मे रागमयी है। शाण्डिल्य ने इसकी परिभाषा 'सा परानुरक्ति रीश्वरे' इस प्रकार की है। नारद इसी को 'सा त्वस्मिन्परमप्रेमरूपा' कहते है तथा 'पाञ्चरात्र' मे उसकी परिभाषा इस प्रकार है—

माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढ सर्वतोऽधिक।
स्नेहा भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्न चान्यथा॥

अर्थात् माहात्म्यज्ञानपूर्वक जो भगवान् के प्रति गाढ एव सर्वोपरि स्नेह होता है, उसी को भक्ति कहा गया है और उसी से मुक्ति होती है, अन्य किसी प्रकार नही।

यहाँ असाधना ही साधन है

यह स्नेहमयी रागात्मिका भक्ति भगवान् के अनुग्रह से प्राप्त होती है। भगवान् का अनुग्रह साधन-साध्य नही, वह साधन से प्राप्त होनेवाली वस्तु नही है, वह किसी साधन के परतत्र नही है। भगवान् भक्त-परतत्र है, भक्त-पराधीन है। अत यहा असाधना ही साधन है।

भक्ति भी भगवान की एक लीला ही है

जैसे सर्ग-विसर्ग आदि श्री पुरुषोत्तम की लीलाए है, यह भक्ति, अनुग्रह या पुष्टि भी भगवान् की लीला ही है। वह 'लीला' क्या है, 'सुबोधिनी' भा० ३, स्कन्ध मे वर्णित है—"लीला' नाम विलासेच्छा। कार्यव्यतिरेकेण कृतिमात्रम्। न तया कृत्या बहि कार्य जन्यते। जनितमपि कार्यं नाभिप्रेतम्। नापि कर्तरि प्रयास जनयति। किन्त्वन्त करणे पूर्णे आनन्दे तदुल्लासेन कार्य जननसदृशी क्रिया [illegible]।'

अर्थात लीला नाम है विलास की इच्छा का। किसी प्रयोजन से रहित क्रिया को ही लीला कहते है। उस क्रिया से बाहर किसी कार्य की सृष्टि नही होती। और उत्पन्न हुआ कार्य भी अभीष्ट नही होता और न वह क्रिया कर्ता मे रचमात्र भी प्रयास की सृष्टि करती है। अपितु अन्त करण मे पूर्ण आनन्द भर जाने से उस आनन्द के उल्लास मे कार्योत्पादन के समान एक क्रिया उत्पन्न होती है, उसी का नाम 'लीला' है।

लीला ही प्रयोजन

भगवान् स्वत परिपूर्ण है, तृप्त है, अतएव विना प्रयोजन के ही, एकमात्र लीला-रस का आस्वादन करने और कराने के लिए ही, तत्र नहि किञ्चित् प्रयोजनमस्ति 'लीला—एव प्रयोजनत्वात्' (अणुभाष्य) लीला करते रहते है। भगवान् स्वत तृप्त होते हुए भी चिर अतृप्त है, निष्काम होते हुए भी विलासेच्छु है। अद्वितीय होते हुए भी भक्त के प्रेम-पराधीन है। रसस्वरूप होते हुए भी रस के पिपासु है।

ब्रह्मसबन्ध तथा ताप

गुरु शिष्य के हृदय मे भगवान् की प्रीति का दान देकर उसका भगवान् मे सम्बन्ध करा देता है, जिसे पुष्टि मार्ग मे 'ब्रह्म सम्बन्ध' कहते है। और इसी ब्रह्म-सम्बन्ध के बाद शिष्य के हृदय मे मिलन की लालसा होती है जिसे 'ताप' कहते है। यह 'ताप' ही पुष्टि मार्ग की साधना का प्राण है। 'पञ्चतापा सदा यत्र'।[1]

---

१ इस सम्बन्ध में श्री हरिदासजी कृत 'पुष्टिमार्गलक्षणानि' उल्लेनीय है—

सर्वसाधनराहित्य फलाप्तौ यत्र साधनम्।
फल वा साधन यत्र पुष्टिमार्ग स कथ्यते ॥१॥
अनुग्रहेणैव सिद्धिर्लौकिकी यत्र वैदिकी।
न यत्नादन्यथा विद्धि पुष्टिमार्ग स कथ्यते ॥२॥
स्वरूपमात्रपरता तात्पर्यज्ञानपूर्वकम्।
धर्मनिष्ठा यत्र नैव पुष्टिमार्ग स कथ्यते ॥३॥
यत्रागीकरणे नैव योग्यतादिविचारणम्।
अवलम्ब. प्रभुकृत पुष्टिमार्ग स कथ्यते ॥४॥
यत्र प्रभुकृत नैव गूढदोषविचारणम्।
तत्कृतावुत्तमज्ञान पुष्टिमार्ग स कथ्यते ॥५॥
न लोकवेदसापेक्ष्य सर्वथा यत्र वर्तते।
सापेक्षता स्वामिमुखे पुष्टिमार्ग: स कथ्यते ॥६॥
वरणे दृश्यते यत्र हेतुर्नाणुरपि स्वत।
वरण च निजेच्छात· पुष्टिमार्ग. स कथ्यते ॥७॥

रागानुगा के मूलस्वरूप उत्तमा या शुद्ध भक्ति का लक्षण श्री रूपगोस्वामी ने अपने हरिभक्तिरसामृतसिन्धु नामक ग्रन्थ में इस प्रकार किया है—

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलन भक्तिरुत्तमा ॥पूर्व प्रथम ११

अर्थात् अन्य अभिलाषा से शून्य, एकमात्र भक्ति की अभिलाषा से युक्त, ज्ञान-कर्म आदि से सर्वथा रहित, भगवान् की प्रीति-सम्पादन के उद्देश्य से की जाने वाली भगवदविषयक सम्पूर्ण चेष्टा का नाम ही उत्तमा भक्ति है।

यत्र स्वतन्त्रता भक्तेराविर्भावानपेक्षणात्।
सानुभावस्वरूपत्व पुष्टिमार्ग स कथ्यते ॥८॥
लोकवेदभयाभावो यत्र भावातिरेकत।
सर्वबाधकतास्फूर्ति पुष्टिमार्ग स कथ्यते ॥९॥
सबध साधन यत्र फल सबध एव हि।
सोऽपि कृष्णेच्छया जात पुष्टिमार्ग स कथ्यते ॥१०॥
तत्सबधिषु तद्भावस्तद्भिन्नेषु विरोधित।
उदासीनेषु समता पुष्टिमार्ग स कथ्यते ॥११॥
विद्यमानस्य देहादेर्न स्वीयत्वेन भावनम्।
परोक्षेऽपि तदर्थित्व पुष्टिमार्ग स कथ्यते ॥१२॥
भजने यत्र सेव्यस्य नोपकारकृति क्वचित्।
पोषण भावमात्रस्य पुष्टिमार्ग स कथ्यते ॥१३॥
भजनस्यापवादो न क्रियते फलदानत।
प्रभुणा यत्र तद्भावात्पुष्टिमार्ग स कथ्यते ॥१४॥
यत्र वा सुखसम्बधो वियोगे सगमादपि।
सर्वलीलानुभावेन पुष्टिमार्ग स कथ्यते ॥१५॥
फले च साधने चैव सर्वत्र विपरीतता।
फलभाव साधनस्य पुष्टिमार्ग स कथ्यते ॥१६॥
पश्चात्ताप सदा यत्र तत्सबधिकृतावपि।
दैन्योद्भावाय सतत पुष्टिमार्ग स कथ्यते ॥१७॥
आविर्भावाय सापेक्ष दैन्य यत्र हि साधनम्।
फल वियोगज दैन्य पुष्टिमार्ग स कथ्यते ॥१८॥
विषयत्वेन तत्त्याग स्वस्मिन् विषयतास्मृते।
यत्र वै सर्वभावेन पुष्टिमाग स कथ्यते ॥१९॥
एव विधैविशेषेण प्रकारैस्तु सदाश्रित।
हृदि धृत्वा निजाचार्यान् पुष्टिमार्गो हि बुध्यताम् ॥२०॥

'नारद पाञ्चरात्र' मे भी यह बात इस रूप मे कही गई है—

सर्वोपाधिविनिर्मुक्त तत्परत्वेन निर्मलम्।
हृषीकेण हृषीकेशसेवन भक्तिरुच्यते॥

इन्द्रियो के द्वारा सब प्रकार की उपाधियो से शून्य, एकमात्र सेवा के उद्देश्य से किया जाने वाला जो निर्मल भगवत्सेवन है, उसे भक्ति कहते है।

श्रीमद्भागवत मे उत्तमा भक्ति का वर्णन इस प्रकार है—

मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ
लक्षण भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम्
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्ति पुरुषोत्तमे॥
सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमान न गृह्णन्ति विना मत्सेवन जना॥
स एव भक्तियोगाख्य आत्यन्तिक उदाहृत।
येनातिव्रज्य त्रिगुण मद्भावायोपपद्यते॥

जिस प्रकार गगा का प्रवाह अखण्ड रूप से समुद्र की ओर बहता रहता है, उसी प्रकार भगवान् के गुणो के श्रवणमात्र से मन की गति का तैलधारावत् अविच्छिन्न रूप से भगवान् के प्रति हो जाना तथा उस पुरुषोत्तम मे निष्काम और अनन्य प्रेम हो जाना यह निर्गुण भक्तियोग का लक्षण कहा गया है। ऐसे निष्काम भक्त दिये जाने पर भी भगवान् की सेवा को छोड कर सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य मोक्ष तक नही लेते। भगवत्सेवा के लिए मुक्ति का तिरस्कार करनेवाला यह भक्ति योग ही परम पुरुषार्थ अथवा साध्य कहा गया है। इसके द्वारा पुरुष तीनो गुणो को लाँघ कर भगवद् भाव को—भगवान् के प्रेम रूप अप्राकृत स्वरूप को प्राप्त हो जाता है।

इस भक्ति मे दो उपाधियाँ है—१ अन्याभिलाषिता २ ज्ञान, कर्म, योगादि का मिश्रण। अन्याभिलाषिता मे भोग कामना और मोक्ष-कामना दोनो ही सम्मिलित है। सच्चा भक्त भुक्ति और मुक्ति दोनो को हेय समझ कर छोड देता है। ज्ञान कर्म एव योग आदि भी उपाधियाँ है, यहा ज्ञान का अर्थ है—अभेद ज्ञान, भगवान ही भजनीय है—इस अनुसधान मे तात्पर्य नही है। कर्म का अर्थ है—स्मृति-प्रतिपादित नित्य-नैमित्तिक आदि कर्म, भगवान् की परिचर्या रूप कर्म अभिप्रेत नही है। जिस ज्ञान के द्वारा भगवान् के स्वरूप और भजन का रहस्य जाना जाता है, जिस कर्म के द्वारा भगवान् की सेवा बनती है तथा जिस ध्यानादि योग मे चित्त भगवान् के गुण, लीला आदि मे लगता है, वे ज्ञान, कर्म, योग बाधक न बन कर भक्ति के साधक ही होते है।

रागानुगा का मूलस्वरूप-उत्तमा भक्ति

उत्तमा भक्ति

उत्तमा भक्ति अथवा शुद्धभक्ति के तीन भेद हैं—साधन भक्ति, भाव भक्ति, प्रेमा भक्ति। उत्तमा भक्ति मे निम्नलिखित गुण होते हैं[1]—१ क्लेशघ्नी, २ शुभदायिनी ३ मोक्षलघुताकृत्, ४ सुदुर्लभा, ५ सान्द्रानन्द विशेषात्मा और ६ भगवदाकर्षिणी।

क्लेशघ्नी—क्लेश तीन प्रकार के है—पाप[2], वासना, अविद्या। पाप का बीज है वासना, वासना का कारण है अविद्या। इन सब क्लेशो का मूल कारण है भगवद्विमुखता[3]। भक्तो की सगति मे भगवान् की सम्मुखता प्राप्त होती है[4]। फिर उपर्युक्त क्लेशो के सारे कारण अपने-आप नष्ट हो जाते है। इसी से उत्तमा भक्ति मे 'सर्वदुःखनाशकत्व' गुण आ जाता है।

शुभदायिनी—'शुभ' शब्द का अर्थ है साधक के द्वारा समस्त जगत् के प्रति प्रीतिविधान और सारे जगत् का साधक के प्रति अनुराग, समस्त सद्गुणो का विकास तथा त्रिविध सुख। सुख के तीन भेद हैं—विषय-सुख, ऐश्वर्य-सुख, (विविध सिद्धियाँ) एव ब्राह्म सुख (मोक्ष)। ये सभी 'शुभ' उत्तमा भक्ति मे प्राप्त होते है।

मोक्ष लघुताकृत्'—यह भक्ति धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष (सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सार्ष्टि और सायुज्य इन पाचो प्रकार की मुक्ति) इन सब मे तुच्छ-बुद्धि पैदा कर के सबसे चित्त को हटा देती है।

सुदुर्लभा—अनासक्त पुरुषो के द्वारा अनेकानेक साधनो का चिरकाल तक अनुष्ठान होने पर भी यह भक्ति प्राप्त नही होती, स्वय भगवान् भी साम्राज्य, सिद्धि, स्वर्ग, ज्ञान आदि तो सहज ही दे देते है, पर अपनी उत्तमा भक्ति नही देते।

सान्द्रानन्द विशेषात्मा—ब्रह्मानन्द को पराद्ध की सख्या से गुणित करने पर भी वह इस भक्ति सुखसागर के एक परमाणु की भी तुलना मे भी नही आ सकता।

भगवदाकर्षिणी—यह उत्तमा भक्ति भगवान् को भक्त के वश मे कर देती है।

साधन भक्ति के भेद—इस उत्तमा भक्ति के जो तीन भेद ऊपर बताये गये है, उनमे प्रथम साधन-भक्ति के दो भेद है—वैधी और रागानुगा। जहा राग तो हो नही, केवल शास्त्राज्ञा से भजन मे प्रवृत्ति हो, उसे वैधी भक्ति कहते हैं। रागानुगा की परिभाषा ऊपर की जा चुकी है।

रागात्मिका की तरह ही रागानुगा के भी दो भेद बन जाते है—कामानुगा और सम्बन्धानुगा। रागात्मिका के दो भेद है—कामरूपा और सम्बन्ध रूपा।

---

१ देखिये भक्तिरसामृतसिधु पूर्व० १—लहरी १३

२ पाप भी दो प्रकार के होते हैं—अप्रारब्धसचित और प्रारब्ध

३ देखिये श्रीमद्भागवत ११।२।३७

४ देखिये श्रीमद्भागवत १०।५१।५४

मैं भगवान् का पिता हूँ, माता हूँ, सखा हूँ, दास हूँ, आदि-आदि भावनाओं से भावित होकर जो यथोचित रूप से रागमयी सेवा करते है, उनकी उस रागमयी भक्ति को सम्बन्ध रूपा रागात्मिका भक्ति कहते है। तथा रागात्मिका कामरूपा भक्ति वह है, जिसमें उपर्युक्त प्रकार का कोई सम्बन्ध नही रहता। केवल मात्र भगवान् की सेवा कर के उन्हे सुखी बनाने की वासना ही समस्त चेष्टाओं का प्रेरित करती है और उस वासना से भावित होकर रागमयी सेवा निरन्तर अनुष्ठित होती रहती है। यहा ध्यान रखने की बात है कि कामरूपा एव सम्बन्ध रूपा दोनो मे ही राग का अवश्य है किन्तु सम्बन्ध रूपा भक्ति मे सम्बन्ध-विशेष का अभिमान ही भगवत्सेवा का प्रयोजक है और कामरूपा मे ऐसा कोई अभिमान हेतु नही है, केवल काम-प्रेममयी सेवा के द्वारा भगवान को सुखी करने की वासना ही प्रवर्तक है। व्रजलीला मे सम्बन्ध रूपा रागात्मिका के पात्र है—श्री नन्द-यशोदादि पितृ-मातृवर्ग, सुबल-मधुमगलादि सखावर्ग एव रक्तक एव पत्रक आदि दासवर्ग, तथा कामरूपा रागात्मिका के पात्र है—मधुर भावभावित श्री व्रज सुन्दरिया। उपयक्त व्रज सुन्दरिया मे ऐसा कोई सम्बन्ध नही है, जो उन्हे भगवत्सेवा के लिए प्रेरित करे—जिसके कारण वे सेवा के लिए लालायित हो। भगवान् को अपनी सेवा समर्पित कर उन्हे सुखी बनाने की ऐकान्तिक वासना प्रेम ही उनकी भक्ति का प्रवतक है। इस वासना को ही भक्तिशास्त्र मे 'काम कहा गया है—प्रमैव गोपरामाणा काम इत्यगमत् प्रथाम्' (गौतमीय तन्त्र)। ठीक इसी के अनुगामी रागानुगा के भी दो ऐसे ही उपर्युक्त भेद बन जाते है—कामानुगा एव सम्बन्धानुगा।

सम्बन्ध रूपा भक्ति का स्वरूप

कामानुगा के दो भेद है—सभोगेच्छामयी और तत्तदभावेच्छामयी। केलि-सम्बन्धी अभिलाषा से युक्त भक्ति का नाम सभोगेच्छामयी और यथेश्वरी व्रज दविया के भाव और माधुर्य प्राप्ति विषयक वासनामयी भक्ति का नाम तत्तद्भावावच्छामयी है।

'भावभक्ति'—भाव शुद्ध सत्व विशेष स्वरूप है—यह भाव का स्वरूप-लक्षण है।

भगवान की सर्व प्रकाशिका स्वरूपशक्ति के वृत्तिविशेष को शुद्ध सत्व कहते है। भगवत्प्राप्ति की अभिलाषा, भगवदनुकूलता की अभिलाषा और उनके प्रति सौहार्द आदि की अभिलाषा—इनके द्वारा चित्त की जो स्निग्धता सम्पादित होती है, वह है 'भाव' का तटस्थ लक्षण। भाव का ही दूसरा नाम रति या प्रमाकुर या प्रीत्यकुर है। प्रेम की पहली अवस्था को ही भाव कहते है। प्रेम के परिणत हो जाने के अनन्तर वृद्धि-क्रम से यही स्नेह, मान, प्रणय राग, अनुराग, भाव और महाभाव के रूप मे व्यक्त होता है। साथ ही यही प्रेम की पहली अवस्था 'रति' भक्तो की भावना के भेद से पाँच प्रकार की बन जाती है—शान्तरति, दास्यरति, सख्यरति, वात्सल्यरति और मधुर रति। रति-भेद से भगवदभक्ति-रस भी पाच प्रकार का बन जाता है—शान्तरस, दास्य-रस, सख्य-रस, वात्सल्य-रस और मधुर-रस।

भाव अथवा रति

जातरति भक्त के लक्षण

१ क्षान्ति—धन, पुत्र, मान आदि का नाश, असफलता निन्दा, व्याधि आदि क्षोभ के कारण उपस्थित होने पर भी चित्त का जरा भी चचल न होना।

२ अव्यर्थकालत्व—क्षणमात्र का भी समय सासारिक कार्यों मे वृथा न बिता कर मन, वाणी, शरीर से निरन्तर भगवत्सेवा-सम्बन्धी कार्यों में जीवन भर लगे रहना।

३ विरक्ति—इस लोक और परलोक के समस्त भोगो से स्वाभाविक अरुचि।

४ मानशून्यता—स्वय उत्तम आचरण, विचार और स्थिति से सम्पन्न होने पर भी मान-सम्मान से सर्वथा दूर रह कर अधम का भी सम्मान करना।

५ आशाबन्ध—भगवान् के और भगवत्प्रेम के प्राप्त होने की चित्त मे दृढ आशा।

६ समुत्कठा—अपने अभीष्ट भगवान् की प्राप्ति के लिए अत्यन्त प्रबल और अनन्य लालसा।

७ नाम-गान मे सदा रुचि—भगवान् के मधुर और पवित्र नाम का गान करने की ऐसी स्वाभाविक कामना, जिसके कारण नाम-गान कभी रुकना ही नही और एक-एक नाम मे अपार आनन्द का बोध होता है।

८ भगवान् के गुण-कथन मे आसक्ति—दिन-रात भगवान् के गुणगान—भगवान् की प्रेममयी लीलाओं का कथन करते रहना और कदाचित् किसी अनिवार्य कारण से ऐसा न होने पर बेचैन हो जाना।

९ भगवान् के निवास स्थान मे प्रीति—भगवान् ने जहाँ-जहाँ मनोहर लीलाएँ की है, जो भूमि भगवान् के चरण-स्पर्श से पवित्र हो चुकी है—मिथिला, अवध, वृन्दावनादि—उन्ही स्थानो मे रहने की उत्कट इच्छा।

प्रेम

भाव की गाढता का नाम 'प्रेम' है। यह प्रेम-नाश का हेतु उपस्थित हो जाने पर भी सर्वदा और सर्वथा अक्षुण्ण बना रहता है—'सर्वथा ध्वसरहित सत्यपि ध्वसकारणे' (उज्ज्वलनीलमणि, स्थायि० ५७)। यह प्रेम दो प्रकार का होता है।

प्रेम का प्रकार भेद

महिमा-ज्ञान युक्त और केवल विधिमाग मे चलनेवाले भक्त का प्रेम महिमा ज्ञानयुक्त है और रागमाग मे चलनेवाले भक्त का प्रेम प्राय केवल अर्थात् ऐश्वर्य ज्ञानशून्य होता है। यही प्रेम क्रमश अपने माधुर्य का प्रकाश करते हुए, सूर्य की भाँति चित-रूपी नवनीत को अपने प्रभाव से द्रवित करते हुए **स्नेह** के रूप मे परिणत होता है। प्रेम की परिणति का नाम ही है स्नेह। यह स्नेह प्रेमविषयक अनुभूति को उसी प्रकार उद्दीप्त कर देता है, जैसे तेल दीपक की ऊष्मा एव प्रकाश को बढा देता है। इस मनोद्रव को कनिष्ठ, मध्यम और श्रेष्ठ—इस तरह तीन प्रकार का माना जाता है। स्नेह को भी स्वरूपत **घृतस्नेह** एव **मधुस्नेह**—दो प्रकार का रसशास्त्रियो ने माना है। स्नेह की उत्कृष्ट परिणति का नाम है **मान**, जिसमे अपने स्वरूप को ढँकने के लिए वाक्य का विकास हो

जाता है। इस मान को भी रसमर्मज्ञोने उदात्त एव ललित—दो रूपो मे वर्णन किया है। इसी मान मे जब विश्रम्भ की—अपने प्राण, मन, देह आदि से प्रेमास्पद के साथ अभेद की भावना जाग्रत हो जाती है, तब उसे **प्रणय** कहते है। यह विश्रम्भ भी मैत्र और सख्य—दो प्रकार का माना गया है। किसी-किसी स्थल-विशेष मे स्नेह से प्रणय का उद्भव होकर उस प्रणय की परिणति मान मे होती है और कही-कही स्नेह से मान का आविर्भाव होकर वह मान प्रणय के रूप मे परिणत होता है। प्रणय की उत्कृष्टता के कारण जहा बडे दु ख का हेतु भी भगवत्प्राप्ति की सम्भावना से सुख के कारण—जैसा प्रतीत होने लगता है, वहाँ प्रणय का नाम **राग** हो जाता है। इस राग के भी दो विभाग माने गये है—१ नीलिमा और २ रक्तिमा। इनके भी अवान्तर भेद है। विस्तार-भय से उनका उल्लेख नही किया गया है। उन्हे रस-ग्रन्थो मे देखना चाहिए। अपने इष्ट मे अनुभव किये हुए सौन्दर्य, गुण, माधुर्य को जो नित्य नवीन रूप मे आस्वादनीय बनाने लग जाय, और स्वय भी नित्य नवीन बनता चला जाय वह राग **अनुराग** के नाम से कहा जाता है। इसके आगे **भाव** की अवस्था आती है। अनुराग प्रतिक्षण बढता चला जाता है। जब इसकी सम्पूर्ण पराकाष्ठा की दशा आ जाती है और इस प्रकार यह स्वयवद्य रूप मे परिणत हो जाता है, तब इसे 'भाव' कहते है। जिस प्रकार समुद्र का जल क्रमश तरगो मे बढता हुआ ज्वार के समय तट को प्लावित कर देता है, साथ ही तट पर जितनी वस्तुए होती है, वे सभी निमग्न हो जाती है, अब आग बढने के लिए मानो उसे स्थान नही रह जाता, उसी प्रकार अनुराग भी क्रमश हृदय मे बढता हुआ सम्पूर्ण हृदय को परिपूर्ण कर देता है तथा उसके विकास के समय सिद्ध भक्त या साधक भक्त, जो कोई भी पास मे हो, उन्हे प्रभावित कर देता है और अन्त मे अपने-आपमे ही उसकी बाढ केन्द्रित हो जाती है। कई रसशास्त्रकार **भाव एव महाभाव** को एक ही वस्तु समझते है और कई इनमे कुछ भेद की कल्पना करते है। जो भेद करनेवाले है, उनकी दृष्टि मे भाव एव महाभाव मे उतना ही अन्तर है, जितना अन्तर मिश्री और शुद्ध (उज्ज्वल) मिश्री मे होता है। महाभाव की अवस्था व्यक्त होने पर जिसमे यह भाव व्यक्त होता है और उसके मन मे कोई अन्तर नही रह जाता।

भगवद्रति विभाव, अनुभाव, सात्विक भाव और व्यभिचारी भाव के साथ मिल कर चमत्कृतिजनक आस्वादन के योग्य बनती है और उस समय उसका नाम भक्ति रस होता है। यो तो यह रस बारह प्रकार का है, उनमे सात गौण और पाँच मुख्य है। वीर, करुण, अद्भुत, हास्य, भयानक, रौद्र और वीभत्स—ये सात गौण है, तथा शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—ये पाँच मुख्य है।

रति के प्रकार

जिसमे, जिसके द्वारा रति आदि का आस्वादन किया जाता है, उसको 'विभाव कहते है। विभाव दो प्रकार के होते है—इनमे से जिसमे रति विभावित होती है, उसका नाम है 'आलम्बन-विभाव', जिसके द्वारा रति उद्दीपित होती है, उसका नाम है 'उद्दीपन-विभाव'। आलम्बन-विभाव भी दो प्रकार का होता है—विषयालम्बन, आश्रयालम्बन। इस भगवद्रति के विषयालम्बन है भगवान और आश्रयालम्बन है उनके भक्तगण। जिनके द्वारा रति का उद्दीपन होता है, वे क्रिया, मुद्रा, रूप, वस्त्रालकारादि एव देश-कालादि वस्तुए है 'उद्दीपन-विभाव।'

नाचना, भूमि पर लोटना, गाना, जोर से पुकारना, अग मोडना, हुकार करना, जँभाई लेना, लबे श्वास छोडना, लोकानपेक्षता, लालास्रव, अट्टहास, घूर्णा, हिक्का आदि। जिन लक्षणो के द्वारा चित्त के भाव बाहर प्रकाशित होते है, उन्हे अनुभाव कहते है। अनुभाव भी दो प्रकार के होत है—'शीत और क्षेपण'। गाना, जँभाई लेना आदि को 'शीत' और नृत्यादि को 'क्षेपण' कहते है।

अनुभाव

भगवान् मे साक्षात् अथवा व्यवहित सम्बन्ध रखनेवाले भावो मे जो आक्रान्त हो जाता है, उस चित् को 'सत्व' कहते है तथा उस 'सत्व' से उत्पन्न हुए का 'सात्विक' कहते है। सात्विक भाव आठ है—स्तम्भ, स्वेद, रोमाच, स्वरभग, कम्प, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय (मूर्च्छा)। य सात्विक भाव 'स्निग्ध', 'दिग्ध' और 'रूक्ष'—भेद से तीन प्रकार के होत है। इनमे स्निग्ध सात्विक के दो भेद होते है—मुख्य और गौण। साक्षात् श्रीकृष्ण के सम्बन्ध स उत्पन्न होनेवाला स्निग्ध सात्विक भाव मुख्य है और किचित् व्यवधानपूर्वक श्रीकृष्ण के सम्बन्ध से उत्पन्न होनेवाला स्निग्ध सात्विक भाव गौण है।

सात्विक भाव के प्रकार-भेद

जात-रति भक्तो के सात्विक भाव को 'दिग्ध' भाव कहते है और रति शून्य किन्तु भक्त मे प्रतीत होनेवाले मनुष्य मे कही-कही भगवच्चरित्र के श्रवणादिजन्य आनन्द-विस्मयादि के द्वारा उत्पन्न होने वाले भाव को 'रूक्ष' भाव कहते है।

दिग्ध, रुक्ष

ये सब सात्विक भाव पुन चार प्रकार के होते है—धूमायित, ज्वलित, दीप्त और उद्दीप्त। कही-कही इनके अतिरिक्त सूद्दीप्त नाम का एक पाँचवाँ भेद भी माना जाता है। जो सात्विक भाव अकेले या अन्य सात्विक भावो के साथ किचित् व्यक्त हो तथा जिनका गोपन सम्भव हो, वे 'धूमायित' कहलाते है। एक ही साथ भलीभाँति व्यक्त हुए और कठिनता से गोपन-योग्य दो तीन भावो का नाम 'ज्वलित' है। बढे हुए और एक ही साथ व्यक्त होनेवाले तीन, चार या पाँच सात्विक भावो को 'दीप्त' कहते है। इन 'दीप्त' भावो को छिपा कर नही रखा जा सकता। परमोत्कर्ष को प्राप्त एव एक ही साथ उदय होनेवाले पाँच, छह या सभी सात्विक भावो का नाम 'उद्दीप्त' है। ये उद्दीप्त भाव ही महाभाव मे सूद्दीप्त हो जाते है। उस समय इन सबकी पराकाष्ठा हो जाती है।

सात्विक भावो के पुन चार भेद

इसके अतिरिक्त सात्विकाभास भी होते है। उनके चार प्रकार है—रत्याभासज, सत्वाभासज, निसत्व और प्रतीप। मुमुक्षु आदि मे उत्पन्न सात्विकाभास का नाम 'रत्याभासज' है। स्वभाव से ही शिथिल हृदय मे आनन्द, विस्मय आदि का आभास जब बढ जाता है, तब उसे सत्वाभास कहते है। और उससे उत्पन्न सात्विकाभास का नाम 'सत्वाभासज' है। जो स्वभावत ऊपर से शिथिल और भीतर से कठिन है, ऐसे चित्त मे तथा भगवद्भजन मे परायण अन्त करण

सात्विकाभास

में सत्वाभास के विना भी कही-कही जो अश्रु-पुलकादि होते है, उन्हे 'नि सत्व' कहते है। भगवान् से विद्वेष रखनेवाले जीवो मे क्रोध, भय, आदि से उत्पन्न सात्विकभाव को 'प्रतीप' कहते है। यहाँ स्मरण रखने की बात है कि ये सात्विकाभास ऐसे लोगो मे ही प्रकट होते है, जिनका मन स्वभाव से शिथिल अथवा ऊपर से शिथिल, किन्तु भीतर से कठिन होता है।

व्यभिचारी या सचारी भाव

जो भाव विशेष रूप से अभिमुख हो कर स्थायी भाव के प्रति सचरित होते हैं, उन्हे 'व्यभिचारी' कहते है। इनका ज्ञान वाणी, भ्रू-नेत्र आदि अगो तथा सत्व से उत्पन्न अनुभावो के द्वारा होता है। ये व्यभिचारी भाव तैंतीस है—निर्वेद, विषाद, दैन्य, ग्लानि, श्रम, मद, गर्व, शका, त्रास, आवेग, उन्माद, अपस्मार, व्याधि, मोह, मरण, आलस्य, जाडय, व्रीडा, अवहित्था (भाव-गोपन), स्मृति, वितर्क, चिन्ता, मति, धृति, हर्ष, उत्सुकता, उग्रता, अमर्ष, असूया, चपलता, निद्रा, सुप्ति और बोध। इन तैंतीस व्यभिचारी भावो को 'सचारी भी कहते है, क्योकि इन्ही के द्वारा भाव की गति का सचालन होता है।

स्थायी भाव

हासादि अविरुद्ध एव क्रोधादि विरुद्ध भावो को दबा कर जो महाराजा की भाँति प्रतिष्ठित होता है, उसे 'स्थायी भाव' कहते है। इस भक्तिशास्त्र मे भगवद्विषयिणी रति ही 'स्थायी भाव' कहलाती है। इस रति के 'मुख्या' और 'गौणी' दो भेद माने गये है। 'मुख्या' को भी स्वार्था और परार्था—दो प्रकार की माना गया है। पुन यह 'स्वार्था' और 'परार्था'—रूप मुख्या रति पञ्चविध मानी गई है—'शुद्धा', 'प्रीति', 'सख्य', 'वात्सल्य' और 'प्रियता'। 'शुद्धा' के तीन भद माने गये है—'सामान्या', 'स्वच्छा', और 'शान्ति'। साधारण पुरुषो की जो रति उन-उन प्रीति आदि विशेष अवस्थाओ को नही प्राप्त होती, उसे 'सामान्या' कहते है। साधको की जो रति नानाविध भक्तो क सग से उन-उन साधनो क कारण विविध रूप धारण कर लेती है, वह 'स्वच्छा' कहलाती है। जब जिस प्रकार के भक्त का सग होता है, स्फटिक मणि की भाँति उस समय वैसा ही रूप धारण कर लेने के कारण इसे 'स्वच्छा' कहते है। प्राय जिनमे 'शम' (मन की निर्विकल्पता) का बाहुल्य हो, वैसे व्यक्तियो की भगवान् मे ममता-गन्ध-शून्य तथा परमात्म बुद्धि से उत्पन्न जो रति होती है, वह 'शान्ति' रति कहलाती है।

अपन से जो न्यूनजन है, व भगवान् के लिए अनुग्रह के पात्र है—इस भावना से भगवान् के प्रति आराध्य-बुद्धि लेकर जिनकी रति प्रसरित होती है, उनकी उस रति का 'प्रीति' कहते है। भगवान् के प्रति यह आसक्ति भगवान् के अतिरिक्त अन्य समस्त वस्तुओ मे लगी हुई प्रीति को नष्ट कर देने वाली होती है।

भगवान् के प्रति तुल्यत्व (समकक्षता) का अभिमान पोषण करनेवाले जो व्यक्ति है, वे भगवान् के सखा कहे जाते है। इस तुल्यता के कारण इन लोगो की विश्रम्भ-रूप जो रति होती है, उसे 'सख्य' कहते है। यह विश्रम्भ परिहास, प्रहास आदि का कारण होता है, फिर भी इस रति मे खेद के लिए अवसर नही होता।

भगवान् के जो गुरुजन है, वे पूज्य कहे जाते है। उनकी जो भगवान् के प्रति अनुग्रहमयी रति होती है, उसे 'वात्सल्य' कहते है। यह वात्सल्य लालन, शुभकामना, चिबुकस्पर्श आदि का प्रयोजक होता है।

भगवान् एव उनकी प्रियतमाओ का परस्पर मिलन आदि करानेवाली जो रति है, उसे 'प्रियता' कहते है। इसी का दूसरा नाम 'मधुरा' है। इसमे कटाक्ष, भ्रूक्षेप, प्रियवाणी, स्मित आदि का स्थान मिलता है।

इनके अतिरिक्त गौणी रति के भी सात प्रकार माने गये है—हास्य, विस्मय, उत्साह, शोक, क्रोध, भय तथा जुगुप्सा। इनका विस्तृत विवरण विभिन्न रसग्रन्थो मे देखना चाहिए।

साधना के आरम्भ मे भी भक्ति है और अत मे भी भक्ति है। भक्ति ही साधना का प्राण है। जीव की आत्मा शिव-स्वरूप है। मोह और अज्ञान से आच्छन्न होने के कारण वह मूर्च्छित पडी रहती है। यह शिवरूपी आत्मा व्योम-तत्त्व मे अर्थात् विशुद्ध चक्र मे शवरूप मे अवस्थित रहती है। यह बडी ही गम्भीर प्रसुप्ति है। इस सुप्त आत्मा को अर्थात् शवरूप शिव को जगाये बिना आत्मज्ञान के पथ पर अग्रसर होना कठिन क्या, असम्भव है। परन्तु इस सोयी हुई आत्मा को जगानेवाली है एकमात्र शक्ति। शक्ति के बिना शिव को कोई जगा ही नही सकता। अथच, स्वय शक्ति भी निद्रा से अभिभूत होकर आधार-चक्र मे जड पिण्ड की भाँति पडी रहती है। इसलिए साधक का सर्वप्रधान एव सर्वप्रथम कर्तव्य यह है कि इस सुप्त शक्ति को जाग्रत कर उसकी सहायता से शवरूपी शिव को प्रबुद्ध करे। मूलाधार से विशुद्ध-चक्र तक पाँच चक्र पाँच भौतिक तत्त्वो के केन्द्र है। शक्ति व्यापक-भाव से सर्वत्र ही सुप्त रहती है। शक्ति है एक और अभिन्न, तथापि चक्र-भेद से उसकी स्थिति पृथक्-पृथक् है। मूलाधार मे शक्ति जाग्रत होने से उसके प्रभाव से स्वाधिष्ठान मे स्थित शक्ति भी जाग्रत हो जाती है और इसी प्रकार क्रमश पाँचो चक्रो मे शक्ति जाग्रत हो जाती है। जैसे-जैसे शक्ति जाग्रत हो कर ऊपर की ओर उठती है, वैसे-वैसे उसका जागरण क्रमश अधिक उज्ज्वल और स्पष्ट होता जाता है और चरमावस्था मे जब शक्ति पूर्णत जाग्रत हो जाती, तब पाँचो चक्र खुल जाते है और तब लेशमात्र को भी जडत्व का आभास कही रह नही जाता। इस अवस्था मे, अर्थात् आकाश-तत्त्व मे शक्ति के पूर्ण जागरण का फल यह होता है कि शवरूपी शिव जाग्रत हो जाते है, आत्मा की अनादि निद्रा भग हो जाती है और तभी सिद्ध होता है शिव-शक्ति-सामरस्य।

भक्ति और शक्ति

दूसरा अध्याय

मधुर रस का स्वरूप और उसकी व्यापकता

मधुर रस के सम्बन्ध मे उपनिषदो मे यत्र-तत्र सकेत रूप मे उल्लेख मिलता है। पुराणो मे श्रीमद्भागवत तथा ब्रह्मवैवर्त मे इसका बडा ही भव्य एव दिव्य वर्णन है। यह नि सकोच स्वीकार करना होगा कि श्रीमद्भागवत और ब्रह्मवैवर्त ही मधुर रस के आकर-ग्रन्थो मे मुख्य एव शिरोमणि है। वृहद् गौतमीय तत्र ब्रह्म सहिता समोहन तत्र आदि ग्रन्थो मे भी इस तत्त्व की विशद व्याख्या है। कतिपय अन्य सहिताओ मे भी मधुर रस की विवृति है परन्तु भक्ति का जैसा सागोपाग मार्मिक वैज्ञानिक, सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन गौडीय वैष्णव-सप्रदाय मे हुआ है, वह अन्यत्र दुलभ है। गौडीय वैष्णवो ने इसका पुखानुपुख विचार किया है। अस्तु यहाँ श्री रूप गोस्वामी के भक्ति-रसामृत-सिधु तथा 'उज्ज्वलनीलमणि' के आधार पर मधुर रस के तात्त्विक स्वरूप एव रहस्य का आकलन प्रस्तुत किया जा रहा है। तदनन्तर हम दिखायेंगे कि रामावत-सम्प्रदाय की मधुर उपासना पर इसका क्या प्रभाव है।

जड जगत् चिज्जगत् का प्रतिफलन

यह जड जगत् चिज्जगत् का प्रतिफलन है। इसमे गूढ तत्त्व यह है कि प्रतिफलित प्रतीति स्वभावत विपरीत धर्म को प्राप्त कर लेती है, अर्थात् आदर्श जहा सर्वोत्तम होता है प्रतिफलन सर्वाधम, आदर्श जहाँ अत्यन्त निम्न कोटि का होता है प्रतिफलन अत्यन्त उच्च कोटि का। दर्पण मे का परम दिव्य अपूर्व रस जड जम प्रतिबिम्ब उलटा पडता है वही दशा यहा भी है। चिज्जगत् जगत् मे विपरीतस्त होकर जड जगत् मे स्थूल रूप धारण कर लेता है। वस्तुत परम वस्तु रस-रूप-तत्त्व है। उसकी अद्भुत विचित्रता है। इस जगत् मे उसकी जो परछाई पडती है उसी का अवलम्बन करके आगे बढा जाय तो उस अतीन्द्रिय रस का अनुभव हो सकता है।[1]

चिज्जगत् के रस और जड जगत् के व्यापार

चिज्जगत के अत्यन्त निम्न भाग मे है शान्त रस, उसके ऊपर दास्य रस, उसके ऊपर सख्य रस, उसके ऊपर वात्सल्य रस और सबसे ऊपर मधुर रस। इस जड जगत् मे विपर्यस्त प्रतिफलन के द्वारा मधुर रस सब से नीचे है। उसके ऊपर है वात्सल्य रस, उसके ऊपर सख्य रस, उसके ऊपर दास्य रस और सबसे ऊपर शान्त रस। दिव्य मधुर रस की जो स्थिति और क्रिया है, वह इस जड जगत् मे नितान्त तुच्छ और लज्जास्पद है।

---

१ द्रष्टव्य--जैव धर्म, अध्याय ३१।

चेज्जगत् मे पुरुष और प्रकृति का सम्मिलन अत्यन्त पवित्र एव तत्त्वमूलक है। चिज्जगत् मे एक मात्र भगवान् ही भोक्ता है। शेष समस्त चित्सत्त्वगण प्रकृति-रूप मे उसकी भोग्या है। इस जड जगत् मे कोई जीव भोक्ता है और कोई भोग्या—इस प्रकार मूलतत्त्व के विरोध मे यह सारा व्यापार लज्जाजनक एव घृणास्पद हो जाता है। तत्त्वत जीव जीव का भोक्ता हो नही सकता। सकल जीव भोग्या है, एकमात्र श्रीकृष्ण ही भोक्ता है। कहाँ जीव जीव का उपभोग और कहाँ कृष्ण और जीव का उपभोग! परन्तु इस हेय के भीतर से भी एक अत्यन्त उपादेय तत्त्व उपलब्ध हो जाता है। कैसे, इसका विवेचन आगे करेगे।

कृष्ण ही मधुर रस के विषय है और उनकी वल्लभाए इस रस का आश्रय है। दोनो मिल कर रस के आलम्बन है। मधुर रस के विषय श्रीकृष्ण है परम सुन्दर, परम मधुर, नवजलधर

मधुर रस के आश्रय और विषय

वर्ण, सब सद्गुणयुक्त बलिष्ठ, नवयौवनशाली, प्रियभाषी, विदग्ध, कृतज्ञ, प्रमवश्य, रमणीजनमनोहारी, नित्य नूतन, अतुल्य-केलि, सौन्दर्यशाली, प्रियतम वशीवादनशील। उनके चरणो की नखद्युति कोटि-कोटि कदर्पो का दर्प चूर्ण कर देती है और उनके कटाक्ष से सबका चित्त विमोहित हो जाता है।

नायकचूडामणि श्रीकृष्ण का गोपियो के साथ जो लीला-विलास है वही है मधुर रस की आत्मा। इसका स्थायी भाव है दोनो की प्रियता या मधुरा रति[1] जो दोनो को दोनो मे सयोग की प्रेरणा देती रहती है। युक्त विभावो, अनुभावो और [illegible] रति भक्तो के हृदय मे रसास्वादन की स्थिति तक पहुँचती है, तब इसे भक्ति-रस-राज 'मधुर रस' कहते है। कृष्ण का कान्तत्वेन स्फुरण ही मुख्यत इस रस का आधार है पर कान्त को दोनो ही भाव मे लिया जा सकता है। पतिरूप मे, उपपति रूप मे। शृगार रस का तो उपपति रूप मे ही परमोत्कर्ष माना जाता है। शृगार का चिद् व्यापार एक रहस्यमणि की माला की तरह है तो उसमे परकीय मधुर रस का उस मणिमाला मे कौस्तुभ विशेष मानना चाहिए। जैसे शान्त से दास्य मे, दास्य से सख्य मे, सख्य से वात्सल्य मे और वात्सल्य से मधुर मे इसका अधिकाधिक उत्कर्ष होता चला जाता है, उसी प्रकार स्वकीय की अपेक्षा परकीय मे रस अपने चरमोत्कर्ष पर आ जाता है।[2]

---

१ मिथो हरेर्मुगाक्ष्यश्च सभोगस्यादिकारणम्।
मधुरापरपर्या प्रियताख्योदिता रति ॥—उज्ज्वल नीलमणि

श्रीकृष्ण की द्विविध लीलाओ में ऐश्वर्य की अपेक्षा माधुर्य की लीला श्रेष्ठ है।
—दे० जीवगोस्वामी का प्रीति-सदर्भ पृ० ७०४-७१५।

२ स्वाद्यता हृदि भक्तानां अनीता।—उ० नी० म०

३ अत्रैव परमोत्कर्ष शृगारस्य प्रतिष्ठित।—उ० नी० म०

श्रीकृष्ण का अवतार ही रसास्वादन के लिए हुआ।' परकीया या तो कल्पका हो सकती है या प्रौढा। लोकदृष्ट्या, यह भाव गर्हित हो सकता है, पर यह परकीया-भाव ही वैष्णवो का परमादर्श हुआ और इसी का आधार लेकर आत्माएँ अपने-आपको सर्वभावेन श्रीकृष्ण को समर्पित करती रही है। श्रीकृष्ण के इसी भाव को लेकर वैष्णव शास्त्रो ने द्वारकामे उन्हे पूर्ण, मथुरा मे पूर्णतर तथा व्रज मे पूर्णतम माना है। नायक नायिका परस्पर अत्यन्त 'पर' होकर जब राग की तीव्रता द्वारा मिलते है, तब एक अद्भुत आनन्द रस का सचार होता है। यही है परकीय रस। गोपियो और श्रीकृष्ण का प्रेम अपनी सघनता, प्रच्छन्न कामना तथा विवाह के अव्यक्तत्व के कारण ही परकीया-भाव की उत्कृष्ट अवस्था को प्राप्त हुआ।

परकीया-भाव की रसात्मक उत्कृष्टता

यह लक्ष करने की बात है कि श्रीकृष्ण की चिन्मयी लीला नित्य है। उस नित्य गोलोक की नित्य चिन्मयी लीला मे कृष्ण-कृपा से दिव्य देह से प्रवेश का विषय आग यथास्थान आयेगा। यहा इतना निवेदन करना अपेक्षित है कि श्रीकृष्ण त्रिपाद विभूति चिज्जगत् मे है और जड जगत् मे एक पाद विभूति है। एक पाद विभूति चौदहो लोकात्मक मायिक विश्व है। मायिक विश्व एव चिज्जगत के बीच 'विरजा' नदी है और विरजा के पार है

नित्य गोलोक और नित्य चिन्मयी लीला

परकीया-भाव के सम्बन्ध मे विश्वनाथ चक्रवर्ती कहते है कि 'यन्त गोकुले स्वीयाऽपि पित्रादिशकया परकीया इव।' जीव गोस्वामी ने अपने 'प्रीति-सदर्भ (पृ० ६७६–६८६) में विस्तार से इस विषय पर प्रकाश डाला है। वे कहते है कि श्रीकृष्ण का गोपियो के साथ विहार 'प्राकृत काम' नही है, प्रत्युत् 'शुद्ध प्रेमन्' है और प्रकट लीला मे ही स्वकीय-परकीय का प्रश्न उठता है। 'वस्तुत परमस्वीयाऽपि प्रकटलीलाया परकीयामाना श्री व्रजदेव्य ।'

१ रसनिर्यासस्वर्थ अवतारणि ।—उ० नी० म० (पृ० ५४७)

श्रीकृष्ण सदर्भ में जीव गोस्वामी ने व्रजलीला की रहस्यपरक दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की है। उनका कहना है कि मथुरा और द्वारका की गोपियाँ श्रीकृष्ण की 'स्वरूपा शक्ति' है। गोपियो का परकीया-भाव वस्तुत है नही, वह प्रकट वृन्दावन लीला में आभास मात्र है। इतना ही नही, उनका कहना है कि व्रजसुन्दरियो का कभी अपने पतियो के साथ सगम हुआ ही नहीं—'न जातु व्रजदेवीना पतिभि सह सगम ।'

२ Even if orthodox poetics deprecates love to a married woman she is according to Vaisnav s idea, the highest type of heroine and forms the central theme of the later parakiya doctrine of the school in which the love of the mistress for her lover becomes the universally accepted symbol of the soul s passionate devotion to God

– S K De Vaisnava Faiths & Movement P 54

चिज्जगत्। इस चिज्जगत् को वेष्टन-प्राकार की तरह घेरे हुए है ज्योतिर्मय ब्रह्मधाम। उसे भेद करने पर परव्योम रूप वैकुण्ठ दिखता है। वैकुण्ठ प्रबल है। यहाँ के राजराजेश्वर हैं अनन्त चिद्विभूतिपरिसेवित नारायण। वैकुण्ठ है भगवान् का स्वकीय रस। श्री, भू आदि शक्तिगण स्वकीय स्त्री रूप मे उनकी सेवा उस लोक मे करती रहती है। वैकुण्ठ के ऊपर है गोलोक। वैकुण्ठ मे स्वकीया पुरवनितागण यथास्थान सेवा मे तत्पर रहती है और गोलोक मे व्रज-वनितागण निज रस मे कृष्ण-सेवा करती रहती है।

व्रज सुन्दरियो के प्रकार-भेद

इन व्रजवनिताओ के कई भेद है और इनका प्रकार-भेद काव्यशास्त्र के अनुसार किया गया है—स्वकीया, और परकीया। इनके तीन भेद—मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा। इसमे 'मान' के आधार पर मध्या और प्रगल्भा के भेद है—धीरा, अधीरा, धीराधीरा। नायक के साथ इनके सम्बन्ध के आधार पर पुन इनके आठ भेद है—१—अभिसारिका, २—वासकसज्जा ३—उत्कठिता, ४—विप्रलब्धा ५—खडिता, ६—कलहान्तरिता, ७—प्रोषितभर्तृका, और ८—स्वाधीनभर्तृका। नायक के प्रेम के आधार पर पुन उत्तमा, मध्यमा और कनिष्ठा ये तीन भेद है।

सखी भेद

यह तो हुआ सामान्य शास्त्र के आधार पर किया हुआ विभाजन, परन्तु धर्मशास्त्र के आधार पर किया हुआ विभाजन सर्वथैव नूतन है और भक्ति रसराज मधुर रस मे वही गृहीत है—

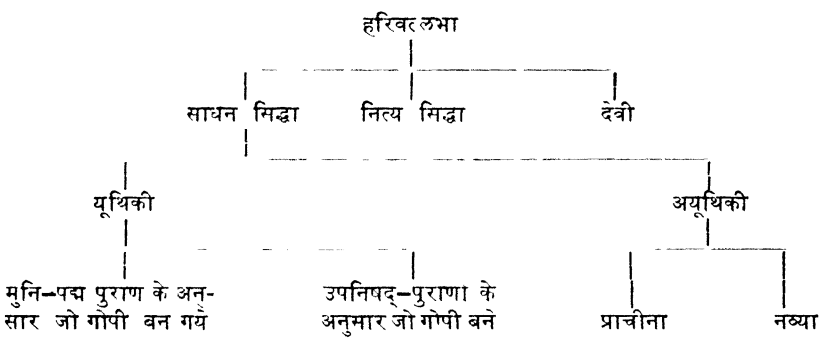

इनमे राधा वृन्दावनेश्वरी, कृष्ण की नित्य सहचरी, परम प्रियतमा ह्लादिनी महाशक्ति है। राधा की सखियाँ पाँच प्रकार की है—सखी, नित्य सखी, प्राण सखी, प्रिया सखी और परम प्रेष्ठा सखी।

यह एक बात ध्यान मे रहे कि कोटि-कोटि मुक्त पुरुषो मे एक भगवद्भक्त दुर्लभ है। जो लोग अष्टाग योग या ब्रह्मज्ञान के द्वारा मुक्ति पा जाते है, वे ब्रह्मधाम मे ही आत्म-विस्मृति का आनन्द लेते रहते है। जो भगवान् के ऐश्वर्यपरायण भक्त है वे लोग भी गोलोक मे नही जाते। वे वैकुण्ठ मे अपने भावानुसार भगवान् की ऐश्वर्य-मूर्त्ति की सेवा करते रहते है। जो लोग व्रजरस से भगवान् का भजन करते है वे ही गोलोक देख पाते है। गोलोक मे शुद्ध चित्प्रतीति है। गोलोक स्वप्रकाश वस्तु है। भक्तो के हृदय मे गोलोक प्रकाशित होता है।

व्रजरस

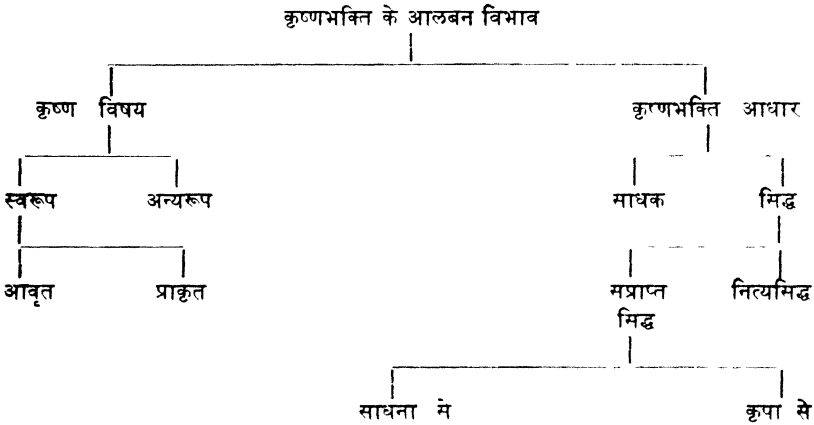

नायक के चार भेद—(१) अनुकूल, (२) दक्षिण, (३) शठ और (४) धृष्ट। इनमे से प्रत्यक के चार-चार भेद—धीरोदात्त, धीर ललित, धीरोद्धत और धीरशान्त।

नायक भेद

नायक के सहायको के पाँच भेद है—चेट, विट, विदूषक, पीठमदक और प्रियनर्मसखा। दूती के दो प्रकार—स्वय और आप्त। विभिन्न चेष्टाओ और सकेतो से, जैसे भ्रूविलास, अधरदशन आदि द्वारा जो नायक को नायिका की ओर आकृष्ट करती है वही स्वय दूती है। आप्त दूती वह है जो नायक का पत्र आदि ले जाती है। उनके तीन भेद है—अमितार्था, विसृष्टार्था और पत्रहारिका। इनमे शिल्पकारी, दैवज्ञ, लिगिनी, परिचारिका, धात्रेयी, सखी, वनदेवी आदि कई भेद है। सकेत वाच्य भी हो सकता है, व्यग्य भी। साक्षात् भी हो सकता है अथवा व्यपदेशन भी।

सहायक भेद

ऊपर कहा जा चुका है कि श्रीकृष्ण द्वारकापुरी मे पति भाव से और व्रजपुरी में उपपत्ति भाव से लीला करते है। सकल व्रजवासिनी ललना व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण की परकीया है।

परकीया में रस की उत्कृष्टता क्यो ?

कारण कि परकीया के अतिरिक्त मधुर रस का अत्यन्त उत्कृष्ट विकास हो नही सकता। थोडा इसे विस्तार से समझना आवश्यक प्रतीत होता है। स्त्रियो मे जो वामता, दुर्लभता, निबन्धन-निवारणादि प्रतिबधकता है, वही है कदर्प का परम आयुध। जहाँ निषेध विशेष है और ललना दुर्लभ है, वही नागर का हृदय अतिशय आसक्त होता है। नन्दनन्दन श्रीकृष्ण गोप है। वे गोपी के सिवा किसी से रमण करते नही। गोपियाँ जिस भाव से श्रीकृष्ण की भजन-सेवा करती थी, शृगार रसाधिकारी साधक भी उसी भाव से कृष्ण का भजन करते है। भावनामार्ग से अपने को व्रजवासी मान कर किसी सौभाग्यवती व्रजवासिनी के परिचारिका-भाव से उसके निर्देश पर राधा-कृष्ण की सेवा करे। अपने को प्रौढा जाने बिना रसोदय होगा नही। यह प्रौढाभिमान ही व्रजगोपीत्व धर्म है।[1]

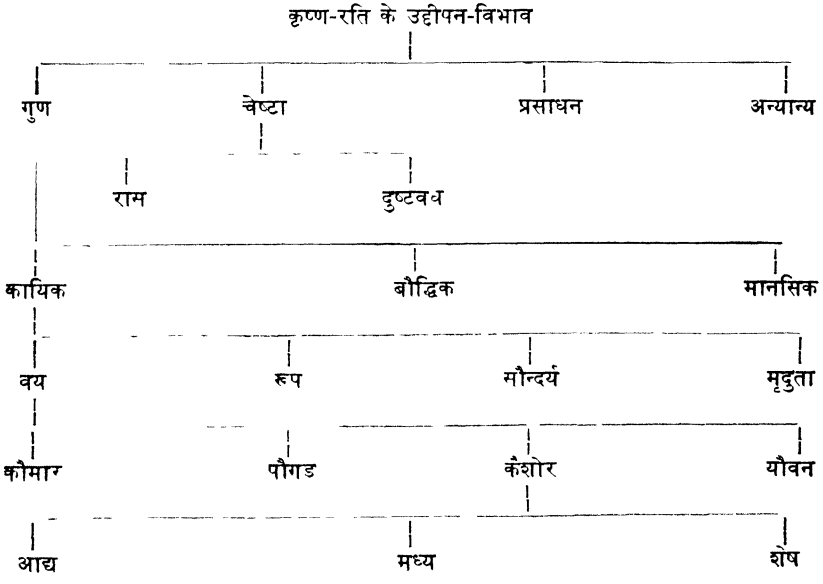

---

१ श्री रूपगोस्वामी लिखते है—

मायाकल्पितता वृक्-स्त्री-शीलनेनानसुयिभि ।
न जातु व्रजदेवीना पतिभि सह सगमः ॥

परन्तु यह प्रश्न उठता है कि पुरुष साधक अपने को 'प्रौढा' किस प्रकार माने ? पुरुष इस 'प्रौढाभिमान' को कैसे सिद्ध कर सकेगा ? उत्तर यह है कि पुरुष मायिक स्वभाववश ही ससार मे अपने को पुरुष समझता है। शुद्ध चित्स्वभाव मे कृष्ण के अतिरिक्त यावत्जीवमात्र स्त्री है। चिद्गठन मे वस्तुत स्त्री पुरुष चिह्न है नही, इसलिए जो कोई भी व्रजवासिनी होने का अधिकार लाभ कर सकते है। जिन्हे मधुर रस की स्पृहा है उन्हे तो व्रजवासिनी होना ही पडेगा। स्पृहा के अनुरूप साधना करते-करते सिद्धि का उदय होता है।

व्रजवासी भाव

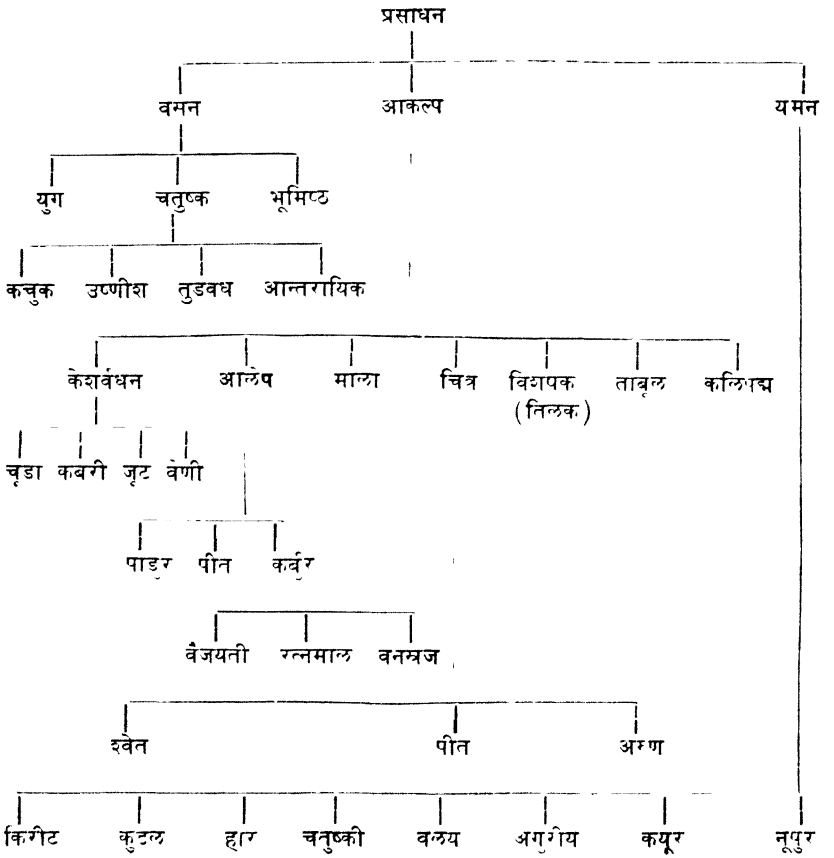

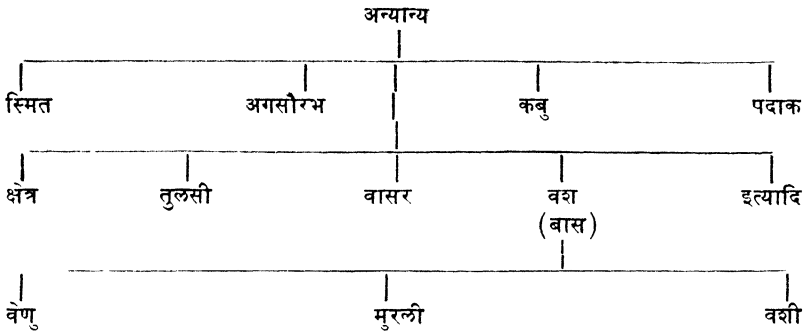

रति के अनुभाव कृष्ण-रति के अनुभाव हैं—नृत्य, विलुठित, गीत, क्रोशन, तनु-मोटन, हुकार, जृ भन, श्वासभृयन, लोकानपेक्षिना, लालास्त्रव, अट्टहास, घूर्णा, हिक्का।

अष्ट सात्विक भाव स्तभ, स्वेद, रोमाच, स्वरभग, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु, प्रलय।

स्थायी भाव काव्य-शास्त्र के अनुसार रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय और निर्वेद, परन्तु भक्ति-शास्त्र के अनुसार शृगार, हास्य, करुणा, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त।

व्यभिचारी भाव ३३ निर्वेद, विषाद, दैन्य, ग्लानि, श्रम, मद, गर्व, शका, त्रास, आवेग, उन्माद, अपस्मार, व्याधि, मोह, मृति, आलस्य, जाड्य, व्रीडा, अवहित्था, स्मृति, वितक, चिन्ता, मति, धृति, हर्ष, औत्सुक्य, उग्रता, अमर्ष, असूया, चापल्य, निद्रा, सुप्ति, बोध।

मुख्य भक्ति-रस के रग आदि

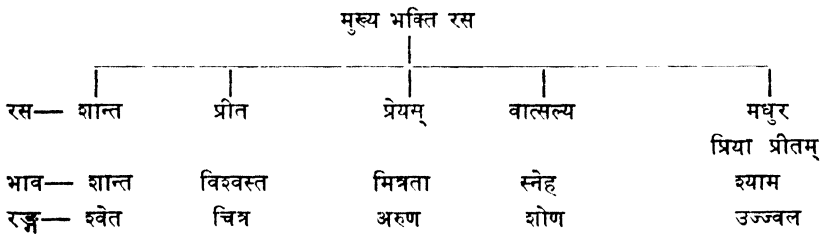

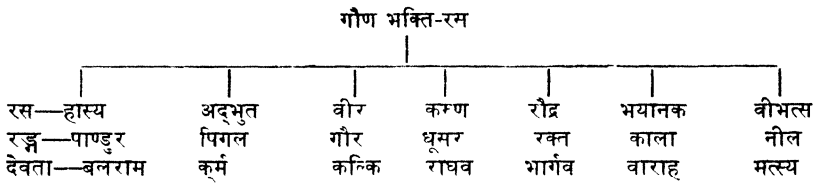

ऊपर हम उद्दीपन-विभाव का विवरण प्रस्तुत कर चुके है। उद्दीपन मे तटस्थ वस्तुओ मे वसन्तागमन, कोकिल-कूजन, मेघमाला का घिर आना, चन्द्रदर्शन आदि मुख्य है। कायिक सौन्दर्य मे रूप, लावण्य, मार्दव आदि मुख्य है। यौवन की तीन अवस्थाएँ है—नव्य, व्यक्त और पूर्ण। श्रीकृष्ण का नाम, चरित, लीला, उदाहरणार्थ वशीवादन, गोदोहन, गोवर्धनधारण आदि विशेष रूप मे उद्दीपन विभाव मे आते है। वृन्दावन, इसकी नदियाँ, कुञ्ज, वृक्ष-गुल्मलता, पुष्प, पक्षी, पशु आदि भी प्रेम को उद्दीप्त करते है।

उद्दीपन-विभाव की विशेषता

अनुभावो का विवरण भी ऊपर की तालिकाओ मे आ गया है। उसमे बाईस अलकार, सात उद्भास्वर और तीन अङ्गज है। अङ्गज अनुभावो मे भाव, हाव, हेला और स्वभावज मे लीला, विलास, विच्छित्ति, मोट्टायित आदि मुख्य है। 'लीला' का अर्थ है प्रियतम के चरित का क्रीडामय अनुकरण, 'विलास' का अर्थ है क्रीडा के सकेत, 'विच्छित्ति' का अर्थ है अलकरण और 'मोट्टायित' का अर्थ है इच्छा का स्पष्ट उल्लेख। ये सब तो काव्य-शास्त्र की परम्परा मे भी है, पर सात उद्भास्वर सर्वथा नये है—वे है नीवीविस्रसन उत्तरीय-स्खलन, जृभा-जँभाई लेना, केश-सस्रन इत्यादि। ये वस्तुत विलास और मोट्टायित के अन्तगत आ जाते है। द्वादश वाचिक अनुभावो मे है आलाप, विलाप, प्रलाप, अनुताप, अपलाप, सन्देश, अतिदेश, अपदेश, उपदेश, निर्देश और व्यपदेश।

अनुभावो की विशेषता

आष्टसात्विक भाव तो काव्य-शास्त्र की तरह ज्यो-के-त्यो यहाँ भी है। परन्तु उनकी चार अवस्थाएँ है—धूमायित, ज्वलित, दीप्त और उद्दीप्त।

नायिका की दृष्टि मे मधुरा रति के तीन भेद है—(१) साधारणी—आत्मतर्पणैकतात्पर्या—जिसमे अपनी ही तृप्ति मुख्य है—जैसे कुब्जा। यह प्रेमावस्था तक जाती है। (२) समञ्जसा—उभयनिष्ठारति—जिसमे अपना सुख और कृष्ण का सुख समान रूप से अपेक्षित है— जैसे रुक्मिणी। यह अनुराग अवस्था तक जाती है। (३) समर्था केवल कृष्णार्थ—जैसे गोपियाँ। यह महाभाव अवस्था तक जाती है। रामभक्ति-साहित्य मे इसी को (१) स्वसुखी (२) चित्सुखी और (३) तत्सुखी नाम से अभिहित किया गया है जो वस्तुत और भावत सर्वथा इससे अभिन्न है।

मधुरा रति के भेद (नायिका की दृष्टि से)

१ प्रेम—प्रेम का अर्थ है भावबन्धन। यही है रति का अमर बीज और उत्कृष्टता की दृष्टि से इसके तीन भेद होते है—प्रौढ, मध्य और मन्द। २ स्नेह—यह प्रेम की विकसित एव उन्नीत अवस्था है। शब्द सुनकर, रूप देखकर या स्मृति मे हृदय द्रवित होता है, क्योकि 'हृदय-द्रावण' इसका मुख्य लक्षण है। इसमे भी उत्कृष्टता की दृष्टि मे तीन भेद है—श्रेष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ। इस स्नेह के दो मुख्य भेद है—

मधुरा रति के भेद (भावो के अनुसार)

घृत-स्नेह और मधु-स्नेह

(क) घृत-स्नेह—अखण्ड घृतधारावत्, उत्कण्ठा—घृत की तरह तरल भी घनी भी। रति का उदय।

(ख) मधु-स्नेह—अखण्ड और मधुर। रति स्थिर हो जाती है।

३ मान – अर्थात् प्रेमातिरेक की अवस्था मे उपेक्षा का अभिनय। इसके दो भेद—उदात्त (घृतस्नेहवत्) और ललित (मधुस्नेहवत्)।

४ प्रणय—विश्रम्भ—इसके मुख्य दो भेद (१) मैत्र और (२) सख्य। उदात्त और ललित के सम्पर्क मे इन दोनो प्रकार के प्रणय के फिर दो भेद होते है—सुमैत्र और सुसख्य। विकास-क्रम मे इसकी गति होती है—

प्रणय के भेद तथा विकासक्रम

स्नेह प्रणय मान

अथवा—

स्नेह मान प्रणय

५ राग—शृङ्गार मे दु ख का सुख मे बदलना। इसके दो रङ्ग माने गये है (१) नीलिमा या (२) रक्तिमा। नीलिमा के फिर दो भेद—(१) नीली राग—जिसका रङ्ग न बदले और जो अव्यक्त हो या श्यामा राग—धीरे-धीरे पूर्णता को प्राप्त होनेवाला और जरा-जरा प्रकाशित। रक्तिमा राग के भी दो भेद—कुसुभ राग—हलके रङ्ग का—जो जल्दी दूसरे राग मे घुल जाय और दूसरे रागो को अभिव्यक्त करे या मञ्जिष्ठ राग—स्थायी और स्वतन्त्र।

राग और उसके भेद

६ अनुराग—नित नूतन प्रेम। इसके कई स्तर है—(१) परवशी भाव—आत्म-समर्पण और (२) प्रेमवैचित्य—विरह की स्नेहमयी आशका (३) अप्राणि-जन्म—प्यारे के स्पर्श पाने के लिए निर्जीव वस्तुओ के रूप मे जन्म लेने की आकाक्षा और (४) विप्रलम्भ विस्फूर्त्ति—विरह मे प्रिय की झलक।

७ भाव या महाभाव—(१) रूढ—जहाँ सात्विको की परम उद्दीप्त स्थिति हो गई है। सम्भोग या विप्रलम्भ दोनो ही अवस्थाओ मे (क) निमिष मात्र को भी विरह असह्य हो जाता है, (ख) आसन्न जनता के हृदय को विलोडित करने की शक्ति होती है, (ग) एक क्षण कल्प की तरह और एक कल्प क्षण की भाँति हो जाता है, (घ) प्रियतम की सुखमय अवस्था मे भी

आर्त्ति-शका के कारण खिन्नता और (ङ) मोह, मूर्च्छा आदि के अभाव मे भी पूर्ण आत्म-विस्मरण।[1]

(२) अधिरूढ—उपर्युक्त रूढ भाव की विशेष उत्कर्ष दशा। इसके दो प्रकार—(क) मोदन—सात्विको का अत्यन्त उद्दीप्त सौष्ठव—जो केवल राधा-वर्ग मे मिलता है। इसीका और विकसित रूप है (ख) मादन सात्विको का सुदीप्त सौष्ठव—प्रिया के आलिङ्गन मे होते हुए भी प्रिय का मूर्च्छित होना[2]—तथा स्वय असह्य दु ख स्वीकार करके भी प्रिय के सुख की कामना[3]—तथा सारे ससार को दु खी कर डालने की प्रवृत्ति[4]—पशुलोक का रोदन—मृत्यु का वरण करके भी प्रियतम के साथ अङ्ग-सङ्ग की अभिलाषा—और अन्त मे है दिव्योन्माद। दिव्योन्माद की अवस्था मे नाना प्रकार की अवश क्रियाएँ तथा चेष्टाएँ हो सकती है जिसे 'उद्घूर्ण' कहते है। प्रियतम के किसी मित्र से मिलने पर नाना प्रकार की बातचीत हो सकती है जिसे 'चित्रजल्प' कहते है। इस चित्र-जल्प की दस अवस्थाएँ होती है—प्रजल्प परिजल्प, विजल्प, उज्जल्प, सजल्प, अवजल्प, अभि-जल्प, आजल्प, प्रतिजल्प और सुजल्प।

पुन मादन

'मादन' का अर्थ है समस्त भावो का अकुरित हो जाना। यह केवल राधा मे मिलता है। इसका लक्षण यह है—मान के कारण न होने पर भी मान करना और प्रियतम के साथ सम्भोग की अवस्था मे भी विरहाशका या नायक के सम्बन्ध की विविध बातो का चिन्तन-स्मरण।

मधुरा रति का स्थायी भाव ही मधुर रस या शृङ्गार रस हो जाता है। इसके दो भेद है—सम्भोग और विप्रलम्भ। विप्रलम्भ के अनेक अवान्तर भेद है।[7]

---

१ **पचत्वं तनुरेतु भूतनिवहा स्वाशे विशातु स्फुटम्।**
धातार प्रणिपत्य हन्त शिरसा तत्रापि याचे वरम्॥
तद्वापीषु पयस्तदीयमुकुरे ज्योतिस्तदीयागने।
व्योम्नि व्योम तदीयवर्त्मनि धरा तत्तालवन्तेऽनिला॥

—श्री जीव गोस्वामी

२ **'कान्ताश्लिष्टेऽपि मूर्छना।'**

३ **'असह्यदु खस्वीकारादपि तत्सुखकामिता।'**

४ **ब्रह्माण्डक्षोभकारित्वम्।'**

५ **'तिरश्चामपि रोदनम्।'**

६ **'मृत्युस्वीकारात् स्वभूतैरपि तत्सगतृष्णा।'**

७ **'रसार्णव-सुधाकर' में विप्रलभ के चार प्रकार है—पूर्वानुराग, मान, प्रवास और करुणा।**

१ पूर्वराग—प्रसुप्त प्रेम, मिलन के पूर्व का प्रेम। प्रियतम के प्रथम दर्शन, श्रवण, स्वप्नदर्शन, चित्रदर्शन से उद्भूत प्रणय-पिपासा। यह 'प्रौढ', 'समञ्जस' या 'साधारण' भेद से तीन प्रकार का होता है। प्रौढ पूर्वराग की दस दशाएँ हैं—

लालसा, उद्वेग, जागरण, तानव (दुर्बलता), जडिमा (शरीर का सुन्न पड जाना), वैवग्र्य (व्यग्रता), व्याधि (पीला पड जाना), उल्लास, मोह (मूर्च्छा) और मृत्यु।

समजस पूर्वराग की दस दशाएँ

समञ्जस पूर्वराग की दस दशाएँ है—अभिलाष, चिन्ता, स्मृति, गुण-कीर्त्तन, उद्वेग, विलाप, उन्माद, व्याधि, जडता और मृति।

साधारण पूर्वराग की छह दशाएँ

साधारण पूर्वराग की छह दशाएँ है जो समञ्जस पूर्वराग की प्रथम छह के समान ज्यो-की-त्यो अभिलाष से आरम्भ होकर विलाप पर समाप्त हो जाती है।

२ मान[1] —प्रेम की परिणति मे बाधा डालने वाला तथा प्रणयोल्लास को उभारने वाला क्रोधाभास। प्रेमास्पद की कोई चेष्टा या 'हरकत' देखकर, सुनकर या अनुमान कर जो मान होता है वह 'सहेतुक' है। मान का दूसरा भेद है निर्हेतुक या कारणाभाससहित। मधुर शब्द से, उपहार आदि से, आत्म-प्रशसा से अथवा उपेक्षा से मान का उपशमन हो जाता है।

३ प्रेमवैचित्त्य—अर्थात् प्रेमास्पद की उपस्थिति मे भी विरह की आशका।

४ प्रवास—प्रिय के वियोग मे मानसिक क्षोभ। प्रवासजन्य क्लेश की दस दशाएँ है—चिन्ता, जागरण, उद्वेग, तानव, मलिनाङ्गता, प्रलाप, व्याधि, उन्माद, मोह और मृत्यु।

नित्य लीला मे कृष्ण का व्रजदेवियो से कथमपि वियोग नही होता, क्योकि इनका मिलन नित्य है। प्रकट लीला मे ही श्रीकृष्ण के मथुरा जाने पर गोपियो को प्रवासजन्य क्लेश होता है।

नित्य लीला मे नित्य सयोग

अर्थात् प्रकट लीला मे बाहर-बाहर से देखने भर को ही श्रीकृष्ण का मथुरागमन होता है, वास्तव मे तो सच यह है कि 'वृन्दावन परित्यज्य पादमेक न गच्छति।'

सयोग-शृङ्गार के दो भेद (१) मुख्य और (२) गौण। मुख्य सयोग है साक्षात् प्रकट मिलन और गौण है स्वप्नादि मे मिलन। इन दोनो के पुन चार भेद है[2]—(१) सक्षिप्त, (२)

---

१ 'मान' शब्द भी 'रस' की भाँति बडा ही व्यापक और गभीर अर्थ वाला है। हर्ष, विषाद, भय, आशा, अहकार और क्रोध, प्रेम और वितृष्णा आदि का सम्मिलित रूप 'मान' अपने-आपमें कितना रहस्यमय शब्द है, बाहर-बाहर से उदासीनता और भीतर-भीतर से प्रबल आसक्ति। इसके व्यक्त रूप की कल्पना ही की जा सकती है, चित्रण नही।

२ 'रसार्णव-सुधाकर' ने भी सयोग के चार उपर्युक्त भेद माने है। जीव गोस्वामी ने पूर्वराग के बाद सभोग के चार भेद माने है और उनके नाम है—सदर्शन, सस्पर्श, सजल्प, सप्रयोग।

सकीर्ण, (३) सम्पन्न और (४) समृद्धिमत्। इसके अनेक प्रकार हैं—दर्शन, स्पर्श, मन्द-मन्द वार्तालाप, राह रोकना, रास, जलक्रीडा, वृन्दावन-क्रीडा, यमुना जल-केलि, नौका-विहार, चीर-हरण, वशी-चोरी, पुष्पचौर्य, दान-लीला, कुञ्जो मे आँख-मिचौनी, मधुपान, कृष्ण का स्त्रीवेश धारण, कपट-निद्रा, द्यूत-क्रीडा, वस्त्राकर्षण, नखार्पण, विम्बाधरसुधापान, निधुवनरमणादि सप्रयोग, चुम्बन, आलिङ्गन आदि-आदि और अन्त मे सम्भोग। सम्प्रयोग की अपेक्षा लीला विलास मे अधिक सुख है।

सयोग-शृगार के भेद उपभेद

लीला के दो भेद—प्रकट लीला और अप्रकट लीला। वन-वृन्दावन मे प्रकट लीला, मन-वृन्दावन मे अप्रकट लीला और नित्य-वृन्दावन मे नित्य लीला। परन्तु प्रकट व्रज-लीला के भी दो भेद है—नित्य और नैमित्तिक। व्रज मे जो अष्टकालीन लीला है वही नित्य है और पतना-वधादि दूरप्रवासादि नैमित्तिक लीला है। निशान्त, प्रात, पूर्वाह्न, मध्याह्न, अपराह्न, साय, प्रदोष और रात्रि-भेद मे अष्टकालीन लीला।[1]

लीला के भेद

ऊपर बहुत सक्षेप मे हमने गौडीय मतानुसार मधुर रस के स्वरूप की चर्चा प्रस्तुत की है। मधुर रस का द्विविध रूप है—सामान्य रूप मे वह सवगत व्यापक है परन्तु विशेष रूप मे वह परिच्छिन्न है। सामान्य रूप मे वह उपनिषदादि मे विद्यमान है। मूल मे एक अद्वय वस्तु, परन्तु आनन्द के लिए दो, स्त्री-पुरुष अथवा प्रकृति-पुरुष। ये दोनो परस्पर पूरक है और एक दूसरे को पाकर पूर्ण होना चाहता है। इसी प्रकार ज्ञाता और ज्ञेय की एकता त्रिपुरी-भङ्ग द्वारा होती है। मिलन की पूर्णता के आधार पर ही भाव का विकास होता है। पूर्ण मिलन—नि सकोच और निरावरण मिलन-मधुर मे ही होता है।

मधुर रस की उपासना ससार की प्राय सभी साधनाओ मे प्रकट या गुप्त रूप मे विद्यमान है। ईसाई सन्तो और सूफी फकीरो की अनुभूतियो मे मधुर रस की ही धारा है। समस्त सगुण उपासना मे मधुर भाव की स्वत स्फूर्त्ति है, क्योकि जीव अपने-आप को पूर्णत देकर अपने प्राणाराम को पूर्णत पा लेना चाहता है। जीव-जीवन की यह एक परम सामान्य, परन्तु साथ ही परम विलक्षण विशेषता है कि वह अपने प्यारे का प्रियतम बनना चाहता है, जिसे प्यार करता है उसके प्यार पर अपना एकाधिकार या इजारा चाहता है।[3] सगुण साधना मे यह चाह सहज

---

१ **निशान्त प्रात पूर्वाह्नो मध्याह् नश्चापराह्नोक । साय प्रदोषरात्रिश्च कालाष्टौच यथाक्रमम् ।।**

२ One longs for another for perfection —*M M G N Kaviraj*
इसी को प्रो० रायस (Royce) 'Man's homing instinct' **कहते है।**

३ **इश्क अल्लाह महजुब अल्लाह ।—अल बस्तामी**
The lover of God is the beloved of God
He who chooses the Divine has been chosen by the Divine
—*Sri Aurobindo*

रूप मे बलवती एव फलवती होती है, परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि जो अत्यन्त गुह्य अर्थात् 'एसाटरिक' साधनाएँ है उनमे भी किसी-न-किसी रूप मे मधुर भाव की उपासना बनी हुई है। ईसाई तथा सूफी साधना मे मधुर भाव का प्रसङ्ग हम यथास्थान कुछ विस्तार से प्रस्तुत करेगे। यहाँ हम इतना ही देखना चाहते है कि भारतीय गुह्य सहज साधनाओ मे मधुर भाव का क्या स्वरूप है और उसकी पूर्ण निष्पत्ति का क्रम क्या है। क्योकि बौद्ध धर्म मे भी प्रज्ञापारमिता तथा आदि बुद्ध के सम्मिलन से 'महासुख' की उपलब्धि होती है। तन्त्रादि मे भी इसकी विशेष व्याख्या है। नाथ, सिद्धो और सन्तो मे भी इस उपासना का विशेष उल्लेख है। वैष्णव-सहजिया-सम्प्रदाय मे इसका साङ्गोपाङ्ग विवरण है। इस प्रकार ऐतिहासिक क्रम से देखने पर ही मधुर रस की साधना हमारे देश की परम प्राचीन साधना है, इसमे सन्देह नही किया जा सकता।

सहज साधनाओ की पृष्ठभूमि

भारतवर्ष की समस्त गुह्य (एसाटरिक) धर्म-साधनाओ की पृष्ठभूमि तथा लक्ष्य एक है। वासना के विवर्जन या तिरस्करण के स्थान पर वासना के शोधन एव उन्नयन द्वारा मानव-मन के अन्दर सोये हुए दिव्य आनन्द को उद्‌बुद्ध एव उल्लसित करना ही इसका लक्ष्य है। इसके लिए शरीर की दृढता, मन की निर्मलता, बुद्धि की तीक्ष्णता एव आत्मा की विजयोत्कण्ठा अनिवार्यत आवश्यक है। समस्त सहज साधनाओ मे वाणी, मन, श्वास, वीर्य और प्राण पर सहज रूप से नियन्त्रण स्थापित कर इनका ऊर्ध्व दिशा मे उन्नयन आवश्यक माना गया है। लक्ष्य इनका है समरस की स्थिति मे प्रवेश करना। यह स्थिति योग से प्राप्त हो या प्रेम से प्राप्त हो— साधन-भेद या प्रस्थान-भेद जो भी हो—लक्ष्य मे कोई भेद नही है।

समरस की अवस्था

समरस की अवस्था दिव्य आनन्द की वह अवस्था है जिसमे दो का एकीकरण होता है। सहजिया यह मानते है कि मनुष्य समस्त जीवन पर्यन्त सघर्ष झेलकर भी काम को सर्वथा निर्मूल या उच्छिन्न नही कर सकता। अतएव इसका उन्नयन (सब्लीमेशन) कर इसे ही दिव्य प्रेम और दिव्य आनन्द अर्थात् महासुख और महानुभव का निर्मल एव अमोघ साधन बनाया जा सकता है। उनकी मान्यता है कि मनुष्य राग द्वारा ही बँधता और राग द्वारा ही मुक्त होता है— 'रागेन बध्यते जीवो रागेनैव प्रमुच्यते।'

समस्त गुह्य साधनाओ की एक सामान्य मान्यता यह भी है कि एक से दो हुआ और दो से अनेक। इसीलिए एक वचन द्विवचन तब बहुवचन। 'स एकाकी ना रमतएकोऽह बहु स्या प्रजायेम' का भाव यही है। एक से ही यह अनेक है, परन्तु इस अनेक के प्राण मे पुन उसी 'एक' मे लौट आने की प्रबल वासना है जिसमे से वह निकला है। इसीलिए इन आन्तर गुह्य साधनाओ का चरम और परम लक्ष्य है द्वैत का सर्वथा निरसन और अद्वय स्थिति की उपलब्धि। इस अद्वय स्थिति मे दो का एकीकरण हो जाता है अथवा एक ही मे दोनो समाविष्ट होते है जिसे उनकी भाषा मे अद्वय, मिथुन, युगनद्ध, यामल, युगल, समरस, सहज आदि नामो से अभिहित किया गया है। हिन्दू-तन्त्रो ने परापर तत्त्व के द्विधात्मक रूप को शिव और शक्ति अथवा पुरुष और प्रकृति के

रूप मे स्वीकार किया है। और, इन अन्तरङ्ग गुह्य साधनाओ ने ब्रह्माण्ड और पिण्ड की एकता को स्वीकार करते हुए यह माना है कि मूल तत्त्व मे, जो कुछ भी ब्रह्माण्ड मे है, वह पिण्ड मे भी है। शिवका निवास सहस्रदल कमल —सहस्रार मे है और शक्ति का मूलाधार मे। शक्ति मूलाधार मे सर्प की तरह गेडुर मारे बैठी रहती है। साधना के द्वारा इसे जगाकर मूलाधार से उठाकर सहस्रार मे शिव के साथ इसका सम्मिलन कराया जाता है। शिव शक्ति का यह सम्मिलन ही आनन्द का आदि विलास है।

इसी सन्दर्भ मे यह भी लक्ष्य करने योग्य है कि प्रत्येक पुरुष-शरीर के वाम भाग मे नारी और दक्षिण भाग मे पुरुष तत्त्व विद्यमान रहता है, इसी से सदाशिव के अधनारीश्वर रूप मे वामार्ध मे उमा और दक्षिणार्ध मे महेश्वर है। इसी प्रकार वैष्णव सहजिया मे रसिक साधक वामार्ध मे राधा, दक्षिणार्ध मे कृष्ण, बाई आँख मे राधा और दाहिनी आँख मे कृष्ण है—ऐसा मानते है।[1] अस्तु, प्रत्येक पुरुष और प्रत्येक नारी मे पुरुष तत्त्व और नारी तत्त्व विद्यमान है—पुरुष मे पुरुष-तत्त्व की प्रधानता है नारी मे नारी-तत्त्व की, परन्तु है दोनो मे दोनो ही। ठीक जैसे वाम और दक्षिण का अर्थ है नारी और पुरुष वैसे ही वाम का अर्थ है इडा और दक्षिण का पिङ्गला, वाम का अर्थ है प्राण और दक्षिण का अर्थ है अपान। साधना के द्वारा इन्हे सम करके प्राण-प्रवाह को सुषुम्ना मे प्रवाहित किया जाता है। यही 'सुषुम्ना-साधना' है।

इस दृश्य जगत् मे पुरुष और नारी का जो भेद हम देखते है वह भेद परात्पर तत्त्व मे भी ज्यो-का-त्यो विद्यमान है—शिवशक्तिरूप मे। शिवशक्ति का सामरस्य ही परात्पर सत्य है। अस्तु, प्रत्येक पुरुष और नारी शरीर मे शिव और शक्ति विद्यमान है। अस्तु, परम सत्य के साक्षात्कार के लिए यह अनिवार्यत आवश्यक है कि प्रत्येक पुरुष अपनेको शिव रूप मे और प्रत्येक स्त्री अपने को शक्ति रूप मे अनुभव करे और तब परस्पर शारीरिक, मानसिक एव आध्यात्मिक सम्मिलन द्वारा परम आनन्द की उपलब्धि करे। समस्त अन्तरङ्ग गुह्य साधनाओ की यही चरम परिणति है। समस्त गुह्य साधनाओ के अन्दर यही है परम रहस्य, जिसका सन्धान साधक और साधिका करते है।

बौद्धो का 'सहज'

बौद्ध सहजिया साधना मे, जिसका हम कुछ विस्तार से विवेचन आगे करेगे, परात्पर तत्त्व 'सहज' है—वह आत्म-अनात्म-निरपेक्ष है। शून्यता और करुणा—दूसरे शब्दो मे 'प्रज्ञा' और 'उपाय' उस सहज के प्रधान लक्षण है। यह 'प्रज्ञा' और 'उपाय' और कुछ नही है बल्कि हिन्दू-तन्त्रो के शिव और शक्ति है। 'प्रज्ञा' (नारी-तत्त्व) और 'उपाय' (पुरुष-तत्त्व) का सम्मिलन ही बौद्ध सहजिया साधना का लक्ष्य है। प्रज्ञा और उपाय का एक और भी अर्थ है और वह है प्रज्ञा इडा, उपाय पिङ्गला। इन दोनो का सम करने पर प्राण-प्रवाह सुषुम्ना मे होकर ऊपर

---

१ वामे राधा दाहिने कृष्ण देखे रसिक जन।
दुई नेत्रे विराजमान राधा कृष्ण श्याम दुई नेत्रे हम।
सजल नयन द्वारे भावप्रेमे आस्वादय।

की ओर उठता है। इस प्रकार प्रज्ञा और उपाय के सम्मिलन मे योगी 'अन्त सम्मिलन' की साधना मे प्रवेश पाता है। उपाय ही है बज्रसत्व जिसका सहस्रार मे निवास है और प्रज्ञा है शक्ति जो मूलाधार मे रहती हे। अन्तर्मिलन का अर्थ है नाभिदेश मे शक्ति को उद्‌बुद्ध कर सहस्रार मे शिव के साथ युगनद्ध करना।

वैष्णव सहजिया में राधाकृष्ण तत्त्व

वैष्णव सहजिया साधना मे चिर भोक्ता और चिर भोग्या के रूप मे क्रमश कृष्ण और राधा की उपासना चलती है और इस साधना विशेष मे यह मानकर चलना होता है कि प्रत्येक पुरुष कृष्ण और प्रत्येक स्त्री राधा है। 'आरोप' के द्वारा जब पुरुष अपनेको कृष्ण और स्त्री अपनेको राधा रूप मे अनुभव करने लगती है तब पुरुष और स्त्री का सम्मिलन तत्त्वत पुरुष स्त्री का सम्मिलन न होकर कृष्ण और राधा का सम्मिलन हो जाता है। बौद्ध सहजिया मे योगसाधना की मुख्यता है, पर वैष्णव सहजिया मे प्रेमसाधना या रस-साधना की।

नाथ पथ की उपासना सूर्य चद्रतत्त्व

नाथपन्थ मे युगलोपासना एक और ही रूप मे व्यक्त हुई। यहाँ सूय और चन्द्र प्रतीक रूप मे लिये गये—सूर्य कालाग्नि रूप मे और चन्द्र अमृत रूप मे। नाथ सिद्धो का लक्ष्य रहा हे दिव्य शरीर मे अमृतत्व की उपलब्धि। हठयोग की नाना क्रियाओ, बन्ध, मुद्रा आदि द्वारा तथा रसायन द्वारा काया-शोधन और काय-सिद्धि की प्रणाली सिद्धो मे विशेष रूप मे पाई जाती है। नाथ सिद्धो की काय-सिद्धि और रस-सिद्धि की यह साधना रसायन-सम्प्रदाय से बहुत मिलती-जुलती है, भेद इतना ही है कि रसायनियो मे रससिद्धि की ही प्रधानता रही जहां नाथ पन्थ मे यौगिक क्रियाओ की। साथ ही वैष्णव सहजियो की भाँति नाथ पन्थियो ने भी अन्तरङ्ग साधना के लिए प्रेम का ही सर्वोपरि मान्यता प्रदान की। सहज उपासना मे बौद्ध सहजियो का लक्ष्य 'महासुख' और वैष्णव सहजियो का लक्ष्य 'परम प्रेम' रहा, पर दोनो ही प्रकार के लक्ष्य की सिद्धि के लिए यह अनिवार्यत स्वीकार किया गया कि सबल और निर्मल शरीर के बिना यह साधना हो नही सकती, इसीलिए सभी प्रकार की अन्तरङ्ग साधनाओ मे किसी-न-किसी रूप मे हठयोग की प्रधानता बनी रही।

इन साधनाओ की चर्चा कुछ विस्तार मे करके हम यह देखेगे कि प्रकट या अप्रकट रूप मे, कियदश मे ही सही, इन्होने रामावत-सम्प्रदाय की मधुर उपासना को प्रभावित किया है।

तीसरा अध्याय

भारतीय अंतरंग (एसाटरिक) धर्म-साधनाओं में मधुर भाव

(क) बौद्ध सहजिया

महाराजा चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय इस देश मे चीनी यात्री फाहियान आया था और उसने बौद्ध धर्म के सूत्रो की प्रतिलिपि की। उसके लेखो से प्रकट है कि बौद्ध धर्म जनसाधारण मे अतिशय लोकप्रिय हो गया था और स्थान-स्थान पर बौद्ध सघारामो की भरमार थी, जहा बौद्ध साधक रहते थे। फाहियान के बाद हुएनसग इस देश मे महाराजा हर्षवर्धन के शासनकाल मे आया था, ईसवी सन् की सातवी शताब्दी मे। उसने भी सैकडो सघारामो का विवरण दिया है जिनमे सहस्र-सहस्र बौद्ध साधक निवास करते थे। शीलभद्र के प्रति हुएनसग की बडी श्रद्धा थी। यह शीलभद्र नालन्दा के आचार्य धर्मपाल के शिष्य थे और बाद मे उस विश्वविद्यालय मे प्राचार्य-पद पर प्रतिष्ठित हुए थे। शीलभद्र के शिष्य और भतीजे बुद्धभद्र भी नालन्दा के एक प्रख्यात पडित और अध्यापक थे और बौद्ध योगाचार के समज्ञ थे।

बौद्धधर्म की लोकप्रियता

कहते है, इन्होने अवलोकितेश्वर मैत्रेय और मजुश्री से प्रेरणा पाई थी। अस्तु बौद्ध धर्म की दो प्रधान शाखाएँ है—हीनयान तथा वज्रयान। हीनयान त्रिपिटको के आधार पर व्यवस्थित अपरिवर्त्तनवादी शाखा है। इसमे आचार विचार, सयम का रखाव खूब तगडा है। यह बौद्ध धर्म का 'आर्थोडक्स स्कूल' कहा जा सकता है। ये लोग अपने को 'थेरवादी' (स्थविरवादी) कहते है।

बौद्ध योगाचार में अवलोकितेश्वर मैत्रेय और मजुश्री

दूसरी शाखा जिसे 'महायान' कहते है सुधारवादी (रिफार्मर स्कूल) है। हीनयान है अपरिवर्त्तनवादी (नो चेजर) और महायान है परिवर्त्तनवादी (चेजर)। हीनयान समय के साथ चलना नही चाहता था। वह रूढिया का पकडे रहा, परन्तु महायान समय के साथ चलनेवाला आवश्यक सुधार,सशोधन और उदारता के भाव को लेकर आगे बढा और यह स्वाभाविक ही था कि इसका अधिक-से-अधिक लोगो पर प्रभाव पडता। परिणामत, इस शाखा के अनुयायियो की सख्या बेतरह बढी।

दो शाखाएँ हीनयान तथा बज्रयान

भगवान् बुद्ध के निर्वाण के अनन्तर अनुयायियो मे घोर विवाद चला कि तथागत के वचनो का वास्तविक अभिप्राय क्या है। इसी के लिए बौद्ध धर्मानुयायियो के सम्मेलन या 'सगीति' होने लगी पहली। सगीति मगध की राजधानी राजगृह मे हुई, परन्तु लोगो को इससे सतोष नही हुआ, अस्तु पुन कौशाम्बी मे दूसरी सगीति हुई जिसमे बौद्ध सघ मे दो प्रधान भेद हो गये—(१) स्थविरवादी और (२) महासघिक। 'विनय' मे किसी प्रकार का भी परिवर्त्तन स्वीकार न करनेवाले कट्टर अपरिवर्त्तनवादी भिक्षु स्थविरवादी (थेरवादी) हुए और उसमे आवश्यक परिवर्त्तन, सशोधन, सुधार आदि स्वीकार कर चलनेवाले तथा सख्या मे अधिक होने के कारण दूसरा दल 'महासघिक' कहलाया। इस प्रकार शनै-शनै बौद्ध धर्म मे शाखाएँ-प्रशाखाएँ होने लगी और उनके अलग-अलग 'कैप' हो गय।[1]

'सगीति'

'यान' का अर्थ है रथ, सवारी। साधना के ये मार्ग अपनी-अपनी सवारियो की प्रशसा मे और अन्तिम लक्ष्य की ससिद्धि मे अपनी विशिष्टता एव अजेय अमोघता का डका पीट रहे थे।

महासघिको ने भगवान् बुद्ध के 'मानुसी तनु' की अवहेलना कर उन्हे मानव-लोक से ऊपर उठाकर दिव्यलोक मे पहुचा दिया। इतना ही नही आगे चलकर वैतुल्यवादियो ने यह स्पष्ट स्वीकार किया कि भगवान् बुद्ध कभी इस धराधाम पर आये ही नही और न कभी उपदेश दिया। बात यही रुक जाती तो कोई विशेष अनर्थ न होता। इन्होंने यह भी माना कि एकाभिप्रायेण मैथुन का सेवन किया जा सकता है। इसी से तान्त्रिक बौद्धधर्म या वज्रयान का आविर्भाव हुआ, ऐसा नि सन्देह मानना पडता है।

भगवान् बुद्ध का 'मानुसी तनु'

परन्तु इस विषय पर थोडा जम कर विचार करना होगा कि बौद्ध धर्म मे गुह्य साधना का प्रवेश क्यो और कैसे हुआ और वज्रयानी शाखा के आविर्भाव तथा विकास का हेतु क्या है, कहा है।

त्रिपिटका के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि भगवान् बुद्ध की मूल शिक्षा मे ही तत्र-मत्र के बीज सन्निहित थे। स्थविरवादियो ने भी इसे स्वीकार किया है कि तथागत मे अनेक अलौकिक सिद्धियाँ थी। वे यह मानते है कि बौद्ध धर्म मे लौकिक कल्याण तथा पारलौकिक कल्याण का समान रूप से विधान है। इस लोक मे प्रज्ञा, आरोग्य, वैभव आदि की उपलब्धि के लिए स्वय बुद्ध ने 'मत्रधारिणी' आदि तान्त्रिक विषयो की शिक्षा दी, ऐसा विचार शान्तरक्षित का है।[2] 'गुह्य समाज तत्र' मे भी यह उल्लेख है कि तथागत ने अपने अनुयायियो

गुह्य साधना का प्रवेश क्यो और कैसे ?

---

१ देखिये डा० चन्द्रधर शर्मा इडियन फिलॉसफी, पृ० ८६।

२ तदुक्तमन्त्रयोगादिनियमाय विधिवत् कृतात्।
प्रज्ञारोग्यविभुत्वादिदृष्टधर्मोऽपि जायते॥—तत्त्व-सग्रह, श्लोक ३४८६

को शिक्षा देते समय कहा कि जब मैं दीपकर बुद्ध और कश्यपबुद्ध के रूप मे प्रकट हुआ था तब मैंने तान्त्रिक शिक्षा इसलिए नही दी कि मेरे श्रोताओ मे उन शिक्षाओ को ग्रहण करने की क्षमता न थी। 'विनय-पिटक' की दो कथाओ मे अलौकिक सिद्धियो का विवरण है। अभिप्राय यह है कि बौद्धधर्म मे तन्त्र-मन्त्र का प्रवाह-क्रम स्वय भगवान् बुद्ध से ही चला, परवर्ती क्षेपक नही है।[1]

महायान, मन्त्रयान वज्रयान

महायान उदारतावादी परिवर्त्तनवादी एव क्रान्तिवादी शाखा के रूप मे प्रकट हुआ। इसी का विकास 'मन्त्रयान' और पुन वज्रयान के रूप मे हुआ। मन्त्रयान सौम्यावस्था है और उसी का उग्ररूप है वज्रयान। पालवशीय राजा रामपाल ने जगद्दल के महाविहार मे आलोकितेश्वर और महातारा की मूर्तियो की प्रस्थापना की। जगद्दल विहार मे मोक्षकार गुप्त एक सुप्रसिद्ध तर्कशास्त्री थे और उनका लिखा 'तर्कशास्त्र' एक प्रसिद्ध ग्रन्थ माना जाता है। उन्ही के भाई शुभकर गुप्त ने 'सिद्धैकवीर तन्त्र' नामक एक तन्त्र ग्रथ पर भाष्य लिखा और उसी विहार मे रहनेवाले धर्मकर ने कृष्ण की 'सवर व्याख्या' का अनुवाद किया। अभिप्राय यह कि धीरे-धीरे बौद्ध धर्म मे तन्त्र-साधना की ओर साधको और विद्वानो का ध्यान विशेष रूप मे आकृष्ट होने लगा।

मनोवैज्ञानिक कारण

इसका मनोवैज्ञानिक कारण भी ढूँढने के लिए कोई विशेष श्रम नही करना होगा। योगाचार मे जनसाधारण की कुतूहल-वृत्ति को कुछ समय तक तो परितोष मिला अवश्य, परन्तु विज्ञानवाद की गूढ़ ग्रन्थियो एव गहन सिद्धान्तो ने मानव मन को बेतरह थका दिया और लोग इससे ऊबने लगे और भागने लगे। वे कुछ ऐसी चीज चाह रहे थे जिसके द्वारा सद्योफलब्धि अधिक-से-अधिक मात्रा मे और कम-से-कम समय मे हो सके। इसी प्रवृत्ति विशेष ने वज्रयान को जन्म दिया। इसमे बौद्ध देवो और देवियो की विशेषत वज्र सत्त्व और महातारा की मूर्तिया युगनद्ध रूप मे मिलती है। इस बौद्ध धर्म पर शाक्त प्रभाव भी कहा जा सकता है।

ऊपर हम कह आये है कि महायान शाखा मे धर्म का लोकप्रिय रूप खब खिला। सामान्य जनता धर्म की गूढ़ ग्रन्थियो, सिद्धान्त या रहस्य मे रस नही ले सकती। उसे तो एक ठोस आधार चाहिए, धर्माचरण की एक विधि या प्रणाली मिलनी चाहिए, जिसे वह सहज रूप मे चरितार्थ करती रहे और विकास की ओर उन्मुख रहे। महायान ने धर्म और साधना के 'साधारणीकरण' पर विशेष लक्ष्य रखा और फलस्वरूप असख्य देवी-देवताओ की परिकल्पना, मत्र, जप, पूजा, अर्चा आदि का सन्निवेश सहज रूप मे हो गया और महायान की एक स्वतन्त्र शाखा मन्त्रनय अथवा मन्त्रयान बन गई। इस प्रकार महायान की दो शाखाए हुई—(१) पारमितानय और (२) मन्त्रनय।

---

१ प० बलदेव उपाध्याय—'बौद्ध दर्शन', पृ० ४२५-३०।

महायान ने भगवान् बुद्ध को मानव से उठाकर दिव्य रूप मे प्रतिष्ठित किया। परमतत्व ही हुए आदि बुद्ध और उनके चार काय माने गये —(१) धर्मकाय, (२) सभोग काय, (३) निर्माण काय और (४) सहज काय। इसमे मात्र निर्माण काय ऐतिहासिक है। धर्मकाय, सभोग काय और सहज काय ऐतिहासिक नही है। महायान का लक्ष्य रहा—(क) दु ख निवृत्ति, (ख) निर्वाण, (ग) बुद्धत्वलाभ। आदि बुद्ध का सहज काय ही परमार्थत सत्य है। शुचिता के ज्ञान होने मे यह विशुद्ध है। वास्तव 'करुणा' का उदय इसी काय मे होता है। अत यह 'ज्ञानवज्र' है। धर्मकाय निर्विकल्पक चित्त की भूमि होने से इसे 'चित्तवज्र' या 'धर्म योग' कहा जाता है। सभोगकाय मे मत्र का उदय होता है। इसे 'वाग्वज्र' या मत्रयोग' कहते है। 'निर्माणकाय' का सबध जाग्रत दशा से है। इसी के द्वारा, भगवान बुद्ध क्लेश का नाश करते है। यही कायवज्र तथा 'सस्थान योग' कहलाता है।[1]

आदि बुद्ध के धर्मकाय, सभोग-काय, निर्माणकाय, सहजकाय

'असग' योगाचार सम्प्रदाय का प्रबल समर्थक था। बौद्ध धर्म मे तत्रवाद के प्रवेश का कारण भी वही माना जाता है। कहते है मैत्रेय ने उसे इस पथ मे दीक्षित किया था। कुछ लोगो का कहना है कि माध्यमिक सम्प्रदाय के नागार्जुन ने गुह्य साधना की ओर प्रवृत्ति का सूत्रपात किया। नागार्जुन के गुरु बुद्ध वैरोचन और बुद्ध वैरोचन के गुरु दिव्य बोधिसत्व वज्रसत्व थे। कुछ विद्वानो के मत मे असग के 'महायान सूत्रालकार' मे बौद्ध धर्म के मिथुन भाग के अभ्यास के स्पष्ट सकेत है। उक्त 'सूत्रालकार' मे भगवान् बुद्ध के दिव्य गुणो मे 'प्रवृत्ति' का उल्लेख बार-बार आता है। उसमे एक श्लोक है—

असग और नागार्जुन

मैथुनस्य परावृत्तौ विभुत्व लभ्यते परम्।
बुद्ध-सौख्यविहारेऽथ दारा-सकेश-दर्शने।।

इस श्लोक मे आए हुए 'मैथुनस्य परावृत्तौ' का अर्थ भिन्न-भिन्न विद्वानो ने भिन्न-भिन्न ढग से किया है। सिलवन लेवी का कथन है कि यहा मैथुन का अर्थ है बुद्ध और बोधिसत्व का सम्मिलन। विंटरनीज़ का कथन है कि 'परावृत्ति' का अर्थ है—उपेक्षा, विरति। महामहोपाध्याय प० गोपीनाथ कविराज 'परावृत्ति का अर्थ रूपान्तर, शोधन (ट्रासफारमेशन) करते है। कुछ विद्वानो का मत है कि स्वय बुद्ध ने मुद्राओ, मण्डलो और तत्रो का उपदेश अधिकारी विद्वानो को दिया था।

---

१ सेकोद्देश टीका—गायकवाड़ ओरियटल सिरीज, पृ० ५५-५९।

जो हो, पर इतना तो निश्चित है कि तत्र भारतीय साधना की परपरा मे उतना ही पुरातन है जितना वेद। मनुष्य सदा से ही सिद्धि का सरल मार्ग खोजता आ रहा है। अस्तु तत्र सदा ही ज्ञान-विस्तार का व्यावहारिक पक्ष प्रस्तुत करता रहा है। जहा कही भी पटल, पद्धति, कवच, सहस्रनाम और स्तोत्र का सन्निवेश है, वही 'तत्र' है। बाद में इसमे पुरश्चरण, वशीकरण, स्तभन, विद्वेषण, उच्चाटन तथा मारण-मोहन तथा पचमकार का भी प्रवेश हो गया।

तत्र की प्राचीनता

तत्रो की विशेषता यह रही है कि यहा अधिकार-भेद के अनुसार साधना की शैलिया और विधियो का निर्देश है और इसीलिए यहा पशुभाव, वीर भाव और दिव्य भाग—ये तीन भाव है तथा वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार, दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार तथा कौलाचार—ये सात आचार है। इन भावो और आचारो की चर्चा हम कुछ विस्तार मे यथास्थान करेगे। यहा इतना ही अभीष्ट है कि तत्र-साधना भारत की परम प्राचीन साधना है। प्राचीन वैदिक युग मे भी तत्र-मत्र का प्रयोग था, पर परवर्तीकाल मे भ्रष्ट हो गया था। गहराई मे जाकर देखा जाय तो बौद्ध तत्र और हिन्दू तत्र मे मूलत कोई बहुत असामान्य भेद नही है। वे मूलत एक है और परस्पर अविरोधी है। अस्तु।

तीन भाव और सात आचार

मत्रतत्त्व मे महायानी बौद्धो ने 'धारिणी' पर बहुत बल दिया है। धारिणी का अर्थ है 'धार्यते अनया इति' अर्थात् जो चित्त को सम अवस्था मे धारण कर सके। उसके मुख्यत चार प्रकार है—धर्म धारिणी, अर्थ धारिणी, मत्र धारिणी और धारिणी। धर्म धारिणी की साधना से साधक मे स्मृति, प्रज्ञा और बल का सचार होता है। अर्थ धारिणी मे धर्म का आन्तरिक और गुह्य अर्थ खुलता है, मत्र धारिणी से पूर्णता की प्राप्ति होती है और धारिणी मे शान्ति की उपलब्धि होती है।

'धारिणी' और उसके चार भेद

बौद्ध साधना का मार्ग जब जन-साधारण के लिए उन्मुक्त और प्रशस्त हो गया तब सहज ही लोग अपने-अपने विश्वास, परम्परा, मान्यताए एव सस्कार के कारण देवी देवता मे आस्था, भूतप्रेत, पिशाच, हाकिनी, डाकिनी की पूजा, जादू-टोना, मोहिनी, मारिणी, उच्चाटनी आदि विद्याओ मे विश्वास आदि लेकर इस पथ मे आ गये और साथ ही साधनाक्रम मे शनै शनै हठयोग, लययोग, मत्रयोग, राजयोग को भी आदर का स्थान मिलने लगा। आरम्भ मे मत्र, मुद्रा, मण्डल, अभिषेक पर विशेष बल था, पर कालान्तर मे मिथुन योग का भी सन्निवेश होता गया। तत्र मे मुद्रा का अर्थ है—गुह्य साधना के लिए किसी कुमारी का वरण। धीरे-धीरे साधना के अग रूप में मत्स्य, मास, मुद्रा, मदिरा और मैथुन का प्रवेश हो गया और वज्र यानी शाखा मे 'पच मकार'की उपासना ही मुख्य बन बैठी। 'पच मकार' शब्द का व्यवहार

बौद्ध साधना में मिथुन-योग का प्रवेश क्यो और कैसे ?

तो इस साधना मे नही मिलता, पर प्राय मदिरा, मास और मत्स्य की चर्चा आती है और मुद्रा तथा मिथुन के प्रयोग की चर्चा एक सामान्य बात हो गई थी।

'पचमकार' की उपासना का रहस्य, यहा सक्षेप मे, प्रस्तुत करना अप्रासगिक न होगा। 'पचमकार' मे, जैसा ऊपर कह आये है, मद्य, मास, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन है। इनका ठीक-ठीक अर्थ न जानने के कारण ही इस सम्बन्ध मे नाना प्रकार की भ्रान्त धारणाएँ फैली हुई है। इन पाचो तत्वो का सम्बन्ध अन्तर्योग से है। ब्रह्मरध्र मे स्थित सहस्रदल कमल से स्रवित अमृत ही 'मद्य' है।[1] जो साधक ज्ञानरूपी खड्ग से पुण्य और पाप की बलि देता है, वही 'मास' का सेवन करने वाला है अथवा जो वाणी का सयम करता है, वही मासाहारी है। बाई नाडी है इडा और दाहिनी है पिगला—जिसे क्रमश 'गगा'-'जमुना' भी कहते है। इसमे प्रवाहित होने-वाले श्वास-प्रश्वास ही 'मत्स्य' है। श्वास-प्रश्वास का नियमन का प्राण-वायु को सुषुम्ना मे प्रवाहित करना ही 'मत्स्य सेवन' है।[2] अमत् सग का त्याग कर सन्सग सेवन ही 'मुद्रा' है[3]। सुषुम्ना और प्राण का सगम ही मैथुन है।[4] ये शब्द प्रतीकात्मक थे और इनकी साधना अन्तर्योग की थी, परन्तु आगे चलकर अधिकारी न होने के कारण और मानव प्रकृति निम्नगामिनी होने के कारण लोग इसे बाह्य और स्थूल रूप मे ग्रहण करने लगे।

पच मकार का रहस्य

---

१ व्योम-पकज-निस्यन्द-सुधापानरतो नर।
मधुपायी सम प्रोक्त इतरे मद्यपायिन॥ —कुलार्णवतत्र

कुण्डल्या मिलनादिन्दो श्रवते यत् परामृतम्।
पिबेत योगी महेशानि! सत्य सत्य वरानने॥ —योगिनी तत्र

२ पुण्यापुण्यपशु हत्वा ज्ञानखड्गेन योगवित्।
परे लव नयेत् चित्त मांसाशी स निगद्यते॥ —कुलार्णवतत्र

३ मा शब्दात् रसना ज्ञेया तदशान् रसनाप्रियान्।
सदा यो भक्षयेत् देवी, स एव मास-साधक॥ —आगमसार

४ गगायमुनोर्मध्ये मत्स्यौ द्वौ चरत सदा।
तौ मत्स्यौ भक्षयेत् यस्तु स भवेत् मत्स्यसाधक॥ —आगमसार

५ सत्सगेन भवेत् मुक्तिरसत्सगेषु बन्धनम्।
असत्सगमुद्रण यत्तु तन्मुद्रा परिकीर्तिता॥ —विजयतत्र

६ इडापिगलयो प्राणान् सुषुम्नायो प्रवर्तयेत्।
सुषुम्ना शक्तिरुद्दिष्टा जीवाऽयन्तु पर शिव॥
तथोस्तु सगमो देवं सुरत नाम कीर्तितम्॥ —मेरुतत्र

वज्रयान का ही दूसरा नाम 'सहजयान' है। इसमे एकमात्र सहजावस्था[1] पर ही अधिक बल है। यह सहजावस्था ही बौद्ध सहजियो की साधना एव सिद्धि की चरमावस्था है। इसी को निर्वाण, महासुख, सुखराज, महामुद्रा, साक्षात्कार आदि नामो से अभिहित करते है। अर्थात् इस अवस्था में मन और प्राण का सचार नही होता, जहाँ सूर्य और चन्द्र को प्रवेश करने का अधिकार नही है, वही योगी विश्राम लेता है। यह सहजावस्था ही उन्मनी अवस्था है। वही महासुख की अवस्था ह।[2] यह अवस्था न प्रवचन, न मेधा, न बहु श्रवण से प्राप्त होती है। यह प्राप्त होती है—एकमात्र गुरु कृपा से।

सहजावस्था ही महासुख, सुख राज महामुद्रा की अवस्था है

गुरुकृपा का क्या स्वरूप है, इस सम्बन्ध मे बौद्ध साधना का अपना वैशिष्ट्य है और वह यह कि गुरु शून्यता और करुणा की युगनद्ध मूर्त्ति है। बोधिचित्त की प्राप्ति के लिए शून्यता और करुणा अनिवार्यत आवश्यक है। चित्त की सम अवस्था और जगत् के प्रति करुणा का भाव है—साधनात्मक बोधिचित्तत्व।

गुरुकृपा का स्वरूप-वैशिष्ट्य

शून्यता और करुणा के सयोग की चरम स्थिति को 'धर्ममेघ' की स्थिति कहते है। इसी प्रकार गुरु है—प्रज्ञा और उपाय के मिथुनी-भूत रूप। न केवल प्रज्ञा से और न केवल उपाय से ही बुद्धत्व की प्राप्ति हो सकती है। दोनो का योग अनिवार्य है तभी बुद्धत्व की उपलब्धि हो सकती है।[3]

'धर्ममेघ' की स्थिति

---

१ यह सहजावस्था सरहपा के शब्दो में ऐसी है—

जन्ह मन पवन न सचरइ रवि ससि नाह प्रवेश।
तहि वट चित्त विसाम करु, सरहे कहिय उवेश॥

२ जयति सुखराज एक. कारणरहित सदोदितो जगताम्।
यस्य च निगदनसमये वचनदरिद्रो बभूव सर्वज्ञ॥

अर्थात् इस सुखराज की जय हो जो कारण रहित है और जिसका निर्वचन करते समय स्वय सर्वज्ञ भी वचन से दरिद्र हो गये। सेकोद्देश टीका पृ० ६३ पर, सरहपाद का वचन।

३ न प्रज्ञा केवलमात्रेण बुद्धत्व भवति नाप्युपायमात्रेण।

किन्तु यदि पुन प्रज्ञोपायलक्षणौ समतास्वभावौ भवत एतौ द्वौ अभिन्नरूपौ भवत', तदा भुक्तिर्मुक्तिर्भवति। —ज्ञानसिद्धिः १३

यह शून्यता और करुणा तथा प्रज्ञा और उपाय को ही पुरुष तत्त्व और नारी तत्त्व मान लिया गया और इनके अद्वय मिलन को ही साधना की परिणति। उपाय पुरुष तत्त्व है और प्रज्ञा नारी तत्त्व। शून्यता नारी तत्त्व और करुणा पुरुष तत्त्व। अर्थात् शून्यता प्रज्ञा-नारीतत्त्व शक्तितत्त्व, करुणा-उपाय पुरुष तत्त्व-शिवतत्त्व। प्रज्ञा और उपाय का योगिक भाषा मे और नाम है। वह है—क्रमश इडा और पिगला, चन्द्रनाडी और सूर्यनाडी, बाम और दक्षिण, स्वर और व्यजन।

शून्यता और करुणा, प्रज्ञा और उपाय

इडा और पिगला के बीच जो सुषुम्ना है, उसे ही बौद्ध साधना मे 'अवधूतिका' कहते है।

अवधूतिका

इस 'अवधूतिका' के मार्ग से ही बोधिचित्त निर्माण-काय या निर्माण चक्र (नाभिदेश-स्थित) मे ऊपर चढता है और क्रमश धर्मकाय अथवा धर्मचक्र (हृदयस्थित) पर पहुचकर सभोग-काय या सभोग चक्र (ग्रीवास्थित) पर आता है और अन्तत उष्णीश कमल में पहुँचकर परम आह्लाद को प्राप्त होता है। यही महासुख की अवर्णनीय अवस्था है, जहा प्रज्ञा और उपाय, शून्यता और करुणा का महामिलन सघटित होता है।[1]

'युगनद्ध' पर कुछ और विचार करना चाहिए। क्योकि यही है बौद्ध सहजियो की सहज साधना का प्राण। 'पचकर्म' के पाचवें अध्याय मे युगनद्ध कर्म की बडी ही स्पष्ट और विस्तृत व्याख्या है। वहा यह लिखा है कि 'युगनद्ध' वह स्थिति है, जहा 'सक्लेश' और 'व्यवदान' की अभिज्ञा के द्वारा ससार का सर्वथा निरसन हो जाता है, परम निवृत्ति की अवस्था प्राप्त हो जाती है। यह ग्राहक और ग्राह्य का, सान्त और अनन्त का, प्रज्ञा और उपाय का, शून्यता और करुणा का, पुरुष और नारी का पूर्णत सम्मिलन-सामरस्य है। शरीर, मन और वचन से 'तथता' मे स्थित होकर फिर इस दु खपूर्ण ससार की ओर लौटना—केवल इसलिए कि 'सवृत्ति' और 'परमार्थ' का सम्यक् ज्ञान हो जाय और फिर इस सवृत्ति और परमार्थ को पूर्णत मिलाकर एक कर देने का नाम 'युगनद्ध' है।[2]

युगनद्ध तत्व

---

१ उभयोर्मिलन यच्च सलिल क्षीरयोरिव।
अद्वयाकार - योगेन प्रज्ञोपाय तदुच्यते॥
चिन्तामणिरिवाशेष जगत सर्वदा स्थितम्।
भुक्तिमुक्तिप्रद सम्यक् प्रज्ञोपाय स्वभावत॥

—हेवज्रतत्र

२ द्रष्टव्य—प्रो० हर्बर्ट वांन गुथर का 'युगनद्ध' ग्रन्थ, चौखभा सिरीज स्टडीज अ० ३।

'अद्वयवज्र सग्रह' के 'युगनद्ध प्रकाश' मे हम देखते है कि शून्यता और करुणा का एकान्त और नितान्त सम्मिलन सर्वथा अनिर्वचनीय है, अचिन्तनीय है। वे चिर सम्मिलन की स्थिति मे नित्य विद्यमान है। उक्त ग्रन्थ के 'प्रेम पचक' मे यह बताया गया है कि शून्यता करुणा की पत्नी है और इनके इसी भाव मे अखण्ड मिलन को 'सहज प्रेम' कहा जाता है। युगनद्ध या अद्वय या समरस स्थिति एक ही है। शैव और शाक्त तत्रो मे जिसे 'मैथुन' या 'कामकला' कहा गया है, वह भी यही है।[1] इन तत्रो मे परात्पर तत्त्व की दो शक्तिया—चल-अचल, ऋणात्मक और धनात्मक (Static and, Dynamic Positive & Negative) के मिलन और परम सत्य की उपलब्धि का जहा विवरण है, वहा पुरुष-तत्त्व और नारी तत्त्व अथवा बीज और योनि का प्रसग प्रतीकात्मक रूप मे आया है। आरभ मे तो यह प्रतीकात्मक साधना अपने स्वस्थ गुह्य साधना के रूप मे रही, परन्तु बाद मे चलकर क्या हिन्दू-तत्र और क्या बौद्ध तत्र ने इनके स्थूल और भ्रष्ट रूप को ही साधना के रूप मे स्वीकार कर लिया। मानव-प्रकृति की अधोगामिनी प्रवृत्ति के लिए यह एक सहज आधार मिल गया। परिणाम यह हुआ कि शन्यता और करणा अथवा प्रज्ञा और उपाय के सम्मिलन को बौद्ध तत्रो ने देवताओ और देवियो के शारीरिक सम्मिलन को आदर्श स्थिति के रूप मे अकित किया—चित्रो मे भी और मूर्तियो मे भी।

शून्यता और करुणा

'समरस का वास्तविक अर्थ है—विश्व की विविधता मे एकता की अनुभूति, तथा समस्त विषमताओ के भीतर एक अविच्छिन्न अखण्ड आनन्द -विलास की धारा। 'हेवज्रतत्र' मे यह उल्लेख है कि 'सहजावस्था' मे न प्रज्ञा का भाव रहता है न उपाय का, द्वैत का किसी प्रकार अनुभव ही नही होता। ऐसी स्थिति मे उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ सब समान है। योग साधना के द्वारा साधक एक ऐसी स्थिति मे प्रवेश करता है, जहा से सारा ससार आनन्द का एक अपरिमेय पारावार-सा दीखने लगता है, जिसमे सारी द्वैतभावना, विषमता, द्विधा, विरोध या भेद नष्ट हो चुके होते है और आनन्द-ही-आनन्द रह जाता है। यही 'महासुख' की सहजावस्था है। महासुख की इस सहजावस्था को बौद्ध तत्र प्रज्ञा और उपाय अथवा शून्यता और करुणा के सम्मिलन से सिद्ध होना मानते है और इसी को हिन्दू-तत्र शिव और शक्ति के 'समरस' होने से उद्भत मानते है। अत 'महासुख' बौद्धो मे साधक की एक विशिष्ट स्थिति का नाम है जो लगभग 'निर्वाण' का पर्याय-वाची है। महासुख भावात्मक या धनात्मक है और निर्वाण है अभावात्मक या ऋणात्मक। परन्तु

समरस' का वास्तविक अर्थ

---

१ दे० कामकला विलास १२, पद २, ५, ७।

२ हीन मध्योत्कृष्टान्य एव अन्यानि यानि तानि च।
सर्वे तानि समानीति द्रष्टव्य तत्वभावत ॥
—हेवज्रतत्र (ह० लि०) पृ० २२
प्रो० शशिभूषण दास गुप्त के 'आब्सक्योर रिलिजस कल्ट' के पृ० ३४ से उद्धृत।

यह लक्ष्य करने की बात है कि 'निर्वाण' ही बौद्ध साधना का केन्द्र-विन्दु एव परम लक्ष्य है। उसका विवरण 'पर', 'शान्त', 'विशुद्ध', 'पुनीत', 'शान्ति', 'अक्खर', ध्रुव', 'सच्चा', 'अनन्त', 'अजात', 'असखता', 'एकता', 'केवल', 'शिव' आदि शब्दो मे किया गया है।'

तन्त्रो ने भी प्राय 'निर्वाण' और 'महासुख' को एक ही अर्थ मे व्यवहृत किया है। निर्वाण का अर्थ ही हैं--सतत् सुखमय स्थिति, आनन्द और मुक्ति का केन्द्र, अखण्ड परमानन्द, समस्त वस्तुओ का बीज, आप्त कामना की पराकाष्ठा, बुद्धो का परम सस्थान--'सुखावती'।

'सुखावती'

मुद्रा--मन स्थिति और आनन्द की साधन-प्रक्रिया यो हैं--

मुद्रा--कर्ममुद्रा, धर्ममुद्रा, महामुद्रा, समयमुद्रा--

मन स्थिति--विचित्र, विपाक विमर्द, विलक्षण

आनन्द, आनन्द, परमानन्द, विरमानन्द, सहजानन्द

'महासुख' की अवस्था को भी प्राय इन्ही शब्दो मे व्यक्त किया गया है। न इसका आदि है, न मध्य और न अन्त। प्रज्ञा और उपाय के सम्मिलन से महासुख की जो स्थिति होती है, वही वज्र सत्त्व की स्थिति है। 'हेवज्र-तन्त्र' मे महासुख का एक बडा ही भव्य और उदात्त रूप मिलता है--सुख ही है परात्पर तत्व, यही है धर्मकाय, यह स्वय भगवान् बुद्ध है। सुख का रग काला है, नीला है, रक्त है, श्वेत है, हरा है, यही सारा विश्व ब्रह्माण्ड है, यही प्रज्ञा है, यही उपाय है, यही स्वय युगल-मिलन है, यह सत् है, असत् है, यह स्वय भगवान् बज्रसत्व है।

ऊपर हम कह आये है कि वज्र-यान का ही दूसरा नाम सहजयान है और इसमे 'महासुख' को ही केन्द्र मे रखकर समस्त साधना चलती है तथा इस साधना-शैली मे योगाभ्यास के साथ मिथुन योग ऐसा घुला मिला है कि इन्हे पृथक् किया ही नही जा सकता। अस्तु, महासुख ही है समस्त गुह्य (Esoteric) साधनाओ का सार-समुच्चय और यही है समस्त गुह्य धर्म-साधनाओ की 'सहजावस्था', जिसका भी उल्लेख हम ऊपर कर आये है। 'सहज' शब्द जितना सीधा-सादा देखने मे लगता है, उतना यह वास्तव मे है नही। यो इसका अर्थ है 'सह जायते इति सहज।'

---

१ Rhys Davids A Dictionary of Pali language **में 'निर्वाण' के पर्यायवाची शब्दो में**—The harbour of refuge,t he cool cave, the island amidst the floods, the place of bliss, emancipation, libration, safety, tranquillity, the home of ease, the calm, the end of suffering, the medicine for all suffering, the unshaken, the ambrosia, the unmaterial, the imperishable, the abiding, the further shore, the unending, the bliss of effort, the supreme joy, the ineffable, the holy city **इत्यादि-इत्यादि दिए हैं।**

२ **तस्मात् सहज जगत्सर्व सहज स्वरूपमुच्यते।**
स्वरूपमेव निर्वाण विशुद्धाकार—चेतस.॥ **पृ० ३९**

यद्यपि महासुख की साधना मे सहज स्थिति की उपलब्धि होती है, परन्तु यह भूलकर भी नही मानना चाहिए कि यह 'देहज' है—

'देहस्थोऽपि न देहज'। यह सहज स्थिति स्वसबध है। वहाँ न ज्ञाता है न ज्ञेय और न ज्ञान।

शक्ति जब वज्र-काय या सहजकाय मे पहुचती है तब वह स्वय 'शून्यता' हो जाती है और साधक का शुद्ध बुद्ध-चित्त ही भगवान् वज्रसत्व बन जाता है। इस प्रकार जब वज्रसत्व और शून्यता का पूर्ण सम्मिलन साधक के सहज काय मे हो जाता है तब वह 'महासुख' की स्थिति को प्राप्त होता है। चित्त महासुख की मदिरा पीकर मदमत्त हो जाता है, स्वय वज्रसत्व हो जाता है। इस सहज विलास की स्थिति मे बोधिचित्त के उदय से अज्ञान वैसे ही भाग जाता है जैसे सूर्य के उदय से अधकार। यही है परम ज्ञान और परम आनन्द की चरम परिणति जो बौद्ध साधना का लक्ष्य है।

सहज विलास की स्थिति

(ख) सिद्ध सम्प्रदाय और रसेश्वर दर्शन में मधुरभाव

सिद्ध सम्प्रदाय अपने देश मे गुह्य धर्म साधना का एक परम प्राचीन सम्प्रदाय है जिसमे काय साधना पर विशेष बल है। इस शरीर को ही सुदृढ कर अमरत्व लाभ की साधना ही इस सम्प्रदाय की अपनी निजी विशेषता है। सिद्धो का रसायनियो से घनिष्ठ सम्बन्ध प्रतीत होता है। 'सर्व-दर्शन-सग्रह' मे रसायनियो को भी एक सप्रदाय विशेष के रूप मे सायण-माधव ने स्वीकार किया है और रसायन के अनेक प्रामाणिक ग्रन्थो मे इस दर्शन की विशेषताओ का निदर्शन किया है। रसायनियो मे 'रस' विशेष के द्वारा शरीर को ही अजर-अमर बनाने तथा अमर-सिद्धि लाभ की व्यवस्था है। चीन और तिब्बत मे रसायनियो का बहुत पहले बडा ही व्यापक विस्तार था और वहाँ यह अत्यन्त गुह्य परन्तु अत्यन्त लोकप्रिय साधना थी। तिब्बत मे ही यह भारत मे आई ऐसी मान्यता इतिहासकारो की है। जो हो, परन्तु है यह परम प्राचीन साधना-प्रणाली। महर्षि पतजलि अपने 'योगसूत्र' के कैवल्य पाद में कहते है कि औषधि के द्वारा भी सिद्धि लाभ होता है।[1] इसपर भाष्य करते हुए व्यास और वाचस्पति ने कहा है कि यहा ओषधि का अर्थ 'रस' है और निश्चय ही इसका सकेत उन योगियो की गुह्य साधना मे है जो रसायन के द्वारा सिद्धि-लाभ करते थे। नेपाल, तिब्बत तथा हिमालय की उपत्यका मे नाथ सिद्धो तथा बौद्ध सिद्धाचार्यों का मिलन हो गया और दोनो सम्प्रदायो की विचारधारा, साधना-शैली, आचार आदि में बहुत अशो मे

रसायन

यह जगत् स्वरूपत. सहज है, यह सहज ही जगत् का सार है, विशुद्ध चित्तवालों के लिए यही निर्वाण है। **—हेवज्रतत्र सहिता**

१ जन्मौषधिमन्त्रतप समाधिजाः सिद्धयः।

—योगसूत्र कैवल्यपाद ४–१

समानता आ गई। समस्त गुह्य साधनाओ मे एक विचित्र अखण्ड एकरूपता मिलती है और यह दो प्रकार की है (१) आचार की सकुल प्रणाली और (२) योगाभ्यास। किम्वदन्ती और जनश्रुति है कि जब क्षीरोद सागर मे देवी को यह रहस्य बतलाया जा रहा था तब मत्स्येन्द्र नाथ ने मत्स्य रूप मे यह रहस्य विद्या पहले पहल पाई। इनके पहले गुरु आदिनाथ है जो हिन्दुओ के शिव और बौद्धो के बुद्ध है। इन्ही गुरु आदिनाथ से योग साधना की धारा चली। बौद्धो की तरह नाथो के यहा भी सिद्धि की चरमावस्था को सहज समाधि की अवस्था कहते है। और 'अकुलवीर तत्र' मे जो मत्स्येन्द्र नाथ का लिखा बताया जाता है उस सहज अवस्था का एक पद है जिसमे यह स्पष्ट उल्लेख है कि सहज समाधि की स्थिति परम शान्ति, परम अद्वय की स्थिति है जिसमे योगी का चित्त तरग-हीन समुद्र की तरह सम और गम्भीर हो जाता है और समस्त जगत उसमे एकाकार हो जाता है। उस समय स्वय साधक ही देवी है, देव है, गुरु है, शिष्य है, ध्यान है, ध्याता है और स्वय सर्वेश्वर देवता है[1]। नाथो ने शरीर के भीतर ही सभी तीर्थ माने है—उनके नाम है —पीठ, उपपीठ, क्षेत्र, उपक्षेत्र सन्देह आदि। ८४ सिद्ध और ९ नाथ है। सिद्धो मे '८४' शब्द ही रहस्यमय ढग से व्यापक पाया जाता है।

सूर्य चन्द्र सिद्धान्त

तत्र और योग की प्रक्रिया मे सूर्य और चन्द्र का उल्लेख बार बार आता है और इन दोनो के सम्मिलन को 'योग' कहा गया है। सूर्य और चन्द्र का अर्थ साधारणतया दाहिने और बाये की दो नाडिया से है और इनके मिलन से प्राण और अपान की समता प्राप्त होती है। 'सिद्ध सिद्धान्त पद्धति' मे जो गोरख का लिखा बताया जाता है, वह स्पष्ट है कि भौतिक शरीर के पाच तत्त्वो या कारणो के समवय से सगठित किया है और वे पाच तत्त्व है—कर्म, काम, चन्द्र, सूर्य और अग्नि। इसमे पहले दो अर्थात् कर्म और काम पिण्ड शरीर के कारण है और दूसरे तीन सूर्य, चन्द्र और अग्नि है शरीर के मल कारण। सूर्य और अग्नि एक ही तत्त्व है अस्तु इन तीनो मे दो ही प्रधान रूप से है और वे है चन्द्र और सूर्य। चन्द्र है रस तत्त्व या सोम तत्त्व और सूर्य है अग्नि तत्त्व। इस प्रकार यह शरीर सोम अग्नि के सगठन से हुआ। रस या सोम है उपभोग्य और अग्नि है उपभोक्ता। इसी प्रकार इस स्थूल जगत मे अग्नि और चन्द्र का प्रकाशन क्रमश पिता के शुक्र और माता की रज के रूप मे हुआ और इन दोनो के सयोग से ही यह शरीर हुआ। 'हठयोग प्रदीपिका' का

---

१ **स्वय देवी स्वय देव स्वय शिष्य स्वय गुरु।**
स्वय ध्यान स्वय ध्याता स्वय सर्वेश्वरो गुरु॥

—अकुलवीर तत्र २६

२ **कर्मकामाश्चन्द्र सूर्योअग्निरीति प्रत्यक्ष कारण पचकम्।**

—१६२

३ **कि च सूर्याग्नि-रूपम पितु शुक्र सोम रूपम च मातरज। उभयो सयोगे पिण्डोत्पत्तिर्भवति।**

यह भी सिद्धान्त है कि हठयोग मे ह-सूर्य और ठ-चन्द्र के मिलन से साधना पूरी होती है। सूर्य चन्द्र के सम्बन्ध मे स्वय गीता कहती है—

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यऽह ओजसा।
पुष्णाणि चौषधि सर्व सोमो भूत्वा रसात्मक ।।
अह वैश्वानरो भूत्वा प्रगिना देहमाश्रित ।
प्राणोपानसमायुक्त पचाम्यन्न चतुर्विधम् ।।

'बृहज्जावालोपनिषद' के दूसरे ब्राह्मण मे सूर्य चन्द्र-तत्त्व की बडी ही मार्मिक व्याख्या है।[1] चन्द्र-सूर्य तत्त्व का एक और भी अथ है और वह है शिव शक्ति। चन्द्रमा अमृत है सूर्य कालाग्नि। चन्द्रमा सहस्रार मे ठीक सहस्र दल कमल के नीचे स्थित है नीचे की ओर मुह किए और सूर्य है नाभिदेश के मूलाधार मे ऊपर की ओर मुह किए। शरीर मे बिन्दु के दो रग है—पाण्डुर बिन्दु और लोहित बिन्दु। पहला है शुक्र और दूसरा महा रजस्। चन्द्रमा मे पाण्डुर बिन्दु है, सूय मे लोहित बिन्दु है। चन्द्रमा ही है शुक्र अर्थात् शिव और सूय ही है रजस् अर्थात शक्ति। बौद्ध तत्रो तथा बौद्ध सहजिया गानो मे सूय को निर्माण काय मे गौर चन्द्रमा को बोधिचित रूप मे उष्णीश कमल मे स्थित मानते है। 'गोरक्षविजय मे सूय चद्रतत्त्व का अनेक रूपो मे विवरण आया है। चन्द्र सूर्य के मिलने की विविध व्याख्याओ मे पहली और मुख्य व्याख्या है शिव शक्ति का सहस्रार मे

---

१ अग्निसोमात्मक विश्वमित्यग्निराचक्षते।
रौद्री घोरा या तैजसी तनू सोम शतयमृतमय शक्तिकरी तनू ।
अमृत यत्प्रतिष्ठा सा तेजो विद्या कला स्वयम्।
स्थूल सूक्ष्मषु भूतेषु स एक रसतेजसी ।।१।।
द्विविधा तेजसो वृत्ति सूर्यात्मा चानलात्मिका।
तथैव रसशक्तिश्च सोमात्मा चानलात्मिका ।।२।।
वैद्युदादिमय तेजो मधुरादिमयो रस ।
तेजो रस विभेदैस्तु वृत्तमेतच्चराचरम्।
अग्नेरमृत निष्पत्तिरमृतेनाग्निरेधते।
अतएव हवि क्लृप्तमग्नीसोमात्मक जगत् ।।
ऊर्ध्वशक्तिमय सोम अधोशक्तिमयो बल ।
ताभ्या सपुटिततस्तस्माच्छश्वविश्वमिद जगत् ।।
शिवश्चोर्ध्वमयी शक्तिरूर्ध्वशक्तिमय शिव ।
तदित्थ शिवशक्तिभ्या नाव्याप्तमिह किचन ।।

—बृहज्जाबोलोपनिषद् २।१-८

२ दे० पृ० १४०

मिलन।[1] दूसरी व्याख्या है योग की एक विशिष्ट प्रक्रिया जिसमे योगी और योगिनी का मिलन होता है और रेतस् और रजस् के सम्मिलित द्रव पदार्थ को वज्रौली मुद्रा द्वारा योगी या योगिनी पान कर जाते है। तीसरी व्याख्या है, प्राणायाम द्वारा प्राण और अपान को समकर के इडा और पिगला नाडियो को वश मे करना। इडा और पिगला और सुषुम्ना को नाथ पथ मे सोम सूर्य और अग्नि नाडी के रूप मे भी वर्णन मिलता है। नाथ पथ मे सूर्य चन्द्र के सम्मिलन का एक और, और महान रहस्यमय अर्थ है वह यह कि सूय को वश मे करके चन्द्रमा से झरते हुए अमृतरस से शरीर को नव नवायमान कर दिया जाय। सूय का अर्थ है सहार, चन्द्रमा का अर्थ है सृजन। दोनो को वशीभूत करके योगी शरीर मे ही अमरत्व लाभ करता है। योग की प्रक्रिया मे यह माना जाता है कि शरीर का मूल तत्त्व है सोम या अमृत जो सहस्रार स्थित चन्द्रमा मे जमा रहता है। सहस्रार से एक नाडी जिसे 'शखिनी' कहते है जिह्वा के मूल तक चली गई है। यही है योगियो का 'वकनाल' जिसके द्वारा सोम रस या महारस का पान होता है। इस शखिनी नाडी का वर्णन 'गोरक्षविजय' मे दोना छोर पर मुँह वाली नागिन के रूप मे मिलता है। शखिनी का मुह जिससे चन्द्रमा को अमृत झरता रहता है 'दशम द्वार' कहा जाता है। योगियो की यह मान्यता है कि चन्द्रमा से झरता हुआ अमृत रस या सोम रस सूय मे गिरने के कारण कालाग्नि मे जलकर भस्म होता जाता है और इसी कारण मनुष्य जीवन को मृत्यु मे पर्यवसित हो जाना पडता है। यदि किसी प्रकार इस अमृत रस को सूर्य मे गिर कर जल जाने से बचाया जा सके, तो मनुष्य काल को जीत कर अमर बन सकता है। इसके लिए यदि दसवे द्वार को बन्द कर दिया जाय और चौकसी रखी जाय, तो अमरत्व की सिद्धि प्राप्त हो सकती है। यदि यह द्वार खुला रहा तो 'महारस' को सूर्य या काल खा जाएगा। इसी दसवे द्वार से योगी अमृत रस का पान करते है और अमरत्व लाभ करते है।

प्रश्न यह है कि इस महारस को नष्ट होने से बचाया कैसे जाय? इसके लिए योग की अनेक प्रक्रियाए है जिनमे 'खेचरी मुद्रा' बहुत ही प्रभावशालिनी है। जीभ को उलट कर 'राज-दन्त' या शखिनी के द्वार तक पहुचा देते है और दृष्टि को मध्य मे स्थित कर योगी उस सोमरस का पान करता है। योग शास्त्र मे 'खेचरी' की बडी प्रशसा है और कहा गया है कि खेचरी सिद्ध हो जाने पर किसी रमणी द्वारा आलिगित होने पर भी 'विन्दु' चचल नही होता।

---

१ बिन्दु शिवोरज शक्ति बिन्दुरिन्दु रजो रवि।
उभयो सगमादेव प्राप्यते परम पदम्॥

—गोरस सिद्धान्त सग्रह पृ० ४१

२ चन्द्रात् सार स्रवति वपुष तेन मृत्युर्नराणाम्।
त० बध्नीयात् सुकर्ण अतो नान्यथा कार्य-सिद्धि॥

—गोरक्षपद्धति १५

'गोरक्षपद्धति'[1] तथा 'हठयोग प्रदीपिका' मे खेचरी मुद्रा की अत्यधिक प्रशसा है। चन्द्रमा से झडते हुए अमृत रस, सोमरस, महारस को 'अमर वारुणी' भी कहते है। नाथयोगियो मे खेचरी मुद्रा के द्वारा जिह्वा को उलट कर ऊपर चढाने का नाम है 'मास भक्षण' और सोमरस के पान का नाम है वारुणीपान।

ऊपर हम कह आए है कि सूर्य है रसज् और चन्द्रमा है रेतस्। सूर्य का अर्थ है शक्ति और चन्द्रमा का अर्थ है शिव। चन्द्रमा को सूर्य की वह्नि से बचाना चाहिए। दूसरे शब्दो मे पुरुष को स्त्री के स्पर्श से बचना चाहिए। स्त्री को नाथ-पथवाले बाघिन

सूर्य चन्द्र—स्त्री पुरुष भाव

के रूप मे रखते है। वह दिन मे 'जादूगरनी' और रात मे 'बघिनी' है। नाथ सिद्ध सभी के सभी नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे और इस बात पर वे सतत सावधान थे कि बाघिनी के पजे मे न पडे। गोरख ने कहा है कि स्त्री के श्वास-मात्र से शरीर सूख जाता है और नष्ट हो जाता है।[2]

---

१ पृ० ३७, ३८ बम्बई सस्करण।
तु० 'हठयोग प्रदीपिका' में चतुर्थोपदेश का श्लोक ४४-४६।

२ गोमास भक्षयेनित्य पिबेत अमरवारुणीम्।
कुलीन तमहमन्ये चेतरे कुलघातका॥
गोशब्देनोदित जिह्वातत्प्रवेशोहि तालुनि।
गोमास भक्षण ततु महापातक नाशनम्॥
जिह्वा प्रवेशा सभ्ता वह्निननोत्पादित खलु।
चन्द्रात् स्रवति य सार सस्यादमरवारुणी॥ —गोरक्ष पद्धति ३७-३९

तथा हठयोग प्रदीपिका ३ ४७-४८-४९

३ दिन का मोहिनी रात का बाघिनी पलक पलक लहु चुसे।
दुनिया सब बौरा हो के घर घर बाघिनो पोसे॥ —कश्चित

तुलनीय— नारी की झाई परत अधा होत भुजग।
कबिरा तिन की कौन गति, नित नारी के सग॥
नारी निरखि न देखिये, निरखि न कीजै दौर।
देखे ही ते विष चढ़ै, मन आवै कछु और॥
नैनो काजर लाइ कै, गाढ़े बाँधे केस।
हाथो मेंहदी लाइ कै, बाघिनि खाया देस॥ —कबीर

४ गुरु जो ऐसा काम ना कीजै।
जामें अमी महारस छीजै॥

नाथ सिद्ध और बौद्ध सिद्धाचार्य

नाथ सिद्धो और बौद्ध सिद्धाचार्यो मे कतिपय ऐसे असामान्य भेद है, जो स्पष्टत परिलक्षित होते है। बौद्ध सहजियो मे मिथुन योगाभ्यास का प्रचलन था जो मिथुनानन्द को महासुख मे परिवर्तित कर देता है। बौद्ध सहजियो ने स्त्रियो की बडी प्रशसा की और उनके गुण गाये और उन्हे प्रज्ञा, नैरात्मा या शून्यता का अवतार माना और उनके सग को साधना की सिद्धि के लिए आवश्यक जाना। ठीक इसके विपरीत नाथो ने स्त्री मात्र की भर्त्सना की, उन्हे बाघिनी और जादूगरनी कहा। नाथ साधनामे स्त्री-सग सर्वथैव वर्जित माना गया है। पर नाथ सिद्ध भी वज्रौली, अमरौली, सहजौली आदि मुद्राए जानते और इनका प्रयास तथा प्रयोग करते थे।[1] 'रसार्णव' मे रस के सम्बन्ध मे विस्तृत व्याख्या है। पार्वती ने शिव से जीवनमुक्ति के सम्बन्ध मे पूछा है। शिव ने कहा— मरणान्तर मुक्ति किस काम की? मुक्ति तो वह जो जीवन मे ही, जीते-जी प्राप्त कर ली जाय? इस पर उन्होने 'रस' की चर्चा की। 'रस' का अर्थ है 'पारद', क्योकि वह मनुष्य को उस पार पहुचा देता है 'पार ददातीति पारद'। यह 'रस' ही शिव का शुक्र है और अभ्रक है गौरी का रजस्। इन दोनो के सयोग से जो वस्तु तैयार होती है, उसी मे मनुष्य को अमरत्व प्रदान करने की क्षमता है।[2] रसायनिया ने सिद्ध देह और दिव्य देह की चर्चा की है। यह वह देह है जो जन्म-जरा-मरण से मुक्त है। नाथ सिद्ध और रस सिद्ध दोनो ने ही शरीर मे अमरत्व लाभ को साधना का लक्ष्य माना है। रस सिद्धो ने सिद्ध देह के दो भेद किये है—एक है जीवनमुक्त का और दूसरा है परामुक्त का। पहला है शुद्ध माया का शुद्ध शरीर जिसे 'प्रणवतनु' या 'मत्र तनु' कहते है। यह जरा-मृत्यु से रहित है, परन्तु जब सिद्ध देह परामुक्ति की चिन्मय अवस्था मे प्रवेश करती है तो वहा इसका तिरोधान हो जाता है। तात्रिक पारिभाषिक शब्दावली मे इन्हे 'वैदव देह' और 'शाक्त देह' कहते है।

(ग) कापालिक, नाथ तथा सत-साधना मे मधुर भाव

उत्तर मध्यकालीन निर्गुण सन्त यद्यपि अपनेको वैष्णव ही कहते है, परन्तु मूल वैष्णव-साधना से उनकी साधना-पद्धति अनेक बातो मे सिर्फ भिन्न ही नही है, विपरीत भी मालूम पडती है। इसका कारण मुस्लिम प्रभाव नही है। सतो के साहित्य मे जो वाह्याचार विरोधी स्वर पाया जाता है, उसकी परम्परा बहुत पुरानी है। इस साहित्य मे सहज, शून्य, गगन, गगनोपम, खसम, उनमनि, इडा, पिगला आदि शब्द इतनी अधिक मात्रा मे प्रयुक्त हुए है कि इन शब्दो को व्यापक व्यवहार करने वाले कौल, वज्र यानी, कापालिक, शाक्त साधको की बात आये बिना

---

१ रसार्णव प्रो० पी० सी० राय द्वारा सम्पादित।

२ अभ्रक तव बीज तु मम बीज तु पारद।
अनयोर्मेलन देवि! मृत्युदारिद्र्यनाशनम्॥

—सर्व दर्शन सग्रह पृ० २०४।

नही रहती। कबीर, दादू आदि ने कभी सहज समाधि लगाने की सलाह दी है, कभी सहज सुख पाने की व्यग्रता प्रकट की है, कभी शून्य सरोवर मे स्नान करने का महत्व बताया है, कभी सहज शून्य के द्वार पर खडा होकर मुनियो के भाग्य पर तरस खाई है। कबीर दास ने तो एक स्थान पर बडी व्याकुलता से पुकारा है कि ऐसा कोई सन्त है जो सहज सुख उत्पन्न करा सके? सिर्फ उसी प्रकार एक बून्द उस राम रस को दे सके जिस प्रकार कलाली चषक भरकर मादक रस दिया करती है। मै सारा जप-तप उस दलाली मे देने को प्रस्तुत हू।

है कोउ सत सहज सुख उपजै
जाको जप तप दऊ दलाली।
एक बून्द भरि दइ राम रस
ज्यो भरि दइ कलाली॥

सहज शब्द की दीघ परम्परा है। नाना जाति के साधका की चित्त-गगा मे स्नान करता हुआ यह शब्द कबीर के हृदय मे राम रस के रूप मे आविर्भत हुआ है। इसकी दीघ यात्रा की कहानी मनोरजक भी है और सन्त साहित्य के समझन मे सहायक भी। भक्तप्रवर, दादूदयाल ने अपने गुरुदव को सम्बोधन करके प्रश्न किया है—'कौण सहज कहु कौन समाध कौण भगति कहु कौण अराध।' और उत्तर दिलाया है—

आपा गर्व गुमान तजि मद मच्छर अहकार।
गहे गरीबी बदगी सवा मिरजन हार॥

यहा 'सहज' गरीबी ग्रहण करक बदगी करने के अथ मे प्रयुक्त हुआ है। वैसे तो 'सहज' शब्द का प्रयोग बहुत पुराना है। गीता मे भगवान श्रीकृष्ण कहत है—

'सहज कम कौन्तेय सदोषमपि न त्येजत्'

अर्थात् सहज कम को सदाष होने पर भी नही छोडना चाहिए। आगे चलकर सातवी शताब्दी के बाद के कौला, शाक्तो और बौद्धो के साहित्य मे इस शब्द का बडा व्यापक प्रभाव दिखाई पडता है। बज्रयानी सिद्धा का 'सहज' बहुत कुछ उपनिषद के ब्रह्म के समान अनिवचनीय और अचिन्त्य गुणरूप बन गया है।[1] सातवी स चौदहवी शताब्दी तक इस शब्द का साधना-जगत् मे व्यापक प्रभाव रहा है।

---

१ तस्मात् सहज जगत् सर्व सहज स्वरूपमुच्यते।
स्वरूपमेव निर्वाण विशुद्धाकार चेतस॥

'सहज' शब्द का व्यवहार क्यो होने लगा? जैसे-जैसे धर्म साधना मे आडम्बर प्रधान बाह्याचारो का प्रभाव बढता गया, कृच्छाचार को सिद्धिसोपान समझा जाने लगा, तीर्थ, व्रत, होम, यज्ञ, लुचन, मुचन, तत्र, मत्र का प्रभाव बढने लगा वैसे वैसे भी धर्मों के वास्तविक भक्तो के चित्त मे प्रतिक्रिया हुई। इस समूची प्रतिक्रिया को यह 'सहज' शब्द सूचित करता है। परन्तु बाह्याडबर और कृच्छाचार का विरोध इसका अभावात्मक पक्ष है। इसका भावात्मक पक्ष यह है कि भगवान् का प्राप्त करने के लिए उसे तीर्थो मे, क्रियाओ मे और घटाटोपपूर्ण आचारो मे नही, अपने अन्तर मे देखना चाहिए। यह मनुष्य का शरीर ही सब तीर्थों का निवास है। इसी मे सब ब्रह्माण्ड निहित है, इसी मे परम प्राप्तव्य का वास है। इस प्रकार मनुष्य का शरीर ही सब साधनाओ का उत्तम साधन है। फिर एक बार जो इस तथ्य को समझ लेता है, उसके लिए न याग की जरूरत होती है, न वैराग्य की न प्राणायाम की, न कृच्छ-साधना की। वह सहज भाव मे रहकर उस परम तत्व को पा लेता है, जो मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य है।

'सहज' का सर्वमान्य अर्थ

सहज मत का सबसे महत्वपूण सिद्धान्त यह है कि मनुष्य का यह शरीर ही सब कुछ है। 'जाइ जाइ पिंडे सोइ ब्रह्माण्डे' 'ब्रह्माण्डे यास्ति यत् किंचित् तत पिण्डेऽप्यस्ति सर्वथा'। इस सिद्धान्त का सभीने स्वीकार किया है। परन्तु इसी मूल सिद्धान्त को स्वीकार करने के फलस्वरूप सहज मत की दर्जनो व्याख्याए और कई रूपान्तर हो गए है। सरहपा नामक बौद्ध सिद्ध ने यह बताया है कि इसी शरीर मे सरस्वती है इसी मे यमुना है, इसी मे गगा है और समुद्र है। इसी मे प्रयाग है, इसी मे वाराणसी है, इसी मे चन्द्रमा और सूय है। इसी मे सब क्षेत्र है, सब सिद्धपीठ है, सारे उपपीठ है मै इसी महातीथ मे घमता रहता हूँ—मैने इस देह के समान शुभ-तीर्थ नही दखा।'

पिण्ड ही ब्रह्माण्ड है

कबीर ने इसी स्वर मे गाया था—

यहि घट अतर बाग बगीचे यहि मे सिरजन हारा।
यहि घट अतर सात समुद एही मे नौलख तारा॥ इत्यादि

ऐसी युक्तिया सतो के साहित्य मे भरी पडी है।

इस शरीर की पाच वस्तुए मध्ययुग के साधको को बहुत शक्तिशाली दिखी है—मन, प्राण, वाक, शुक्र और कुण्डलिनी। इन पाच बातो के आश्रय करके मोटे तौर पर (१) राजयोग मूलक साधनाए, (२) हठयोग मूलक साधनाए, (३) मत्र जप, (४) उर्ध्वरेतम् साधना, सहजो-

---

१ एत्थु से सरसुह जमुना एत्थु से गगा साअरु।
एत्थु पआग बराणसि एत्थु से चद दिवाअस॥
एत्थु पीठ उपपीठ एत्थु मह भमइ परिट्ठओ।
देह सरिस तिथ्थ मह सुह आराण न दिट्ठयो॥

लिका साधना, सोमसिद्धान्ती साधना, कपालवनिता, युगनद्ध मूर्ति, नीलाम्बरी साधना, रसेश्वर सिद्धान्त, सहजिया वैष्णव साधना इत्यादि तथा (५) कुण्डलिनी योग मूलक साधनाए प्रचलित हुई है।

कौलमत में सहज साधना

बौद्धमत मे सहज साधना का प्रवेश कौल मत के द्वारा ही हुआ। 'कौल ज्ञान निर्णय' के अनुसार मत्स्येद्रनाथ कौलज्ञान के प्रथम प्रवर्त्तक है। 'तन्त्रालोक' की टीका मे सकुल कुल शास्त्र का अवतारक कहा गया है। आदि युग मे जो कौल ज्ञान था, वह द्वितीय अर्थात् त्रेता युग मे 'महत्कौल' नाम से परिचित हुआ और तृतीय अर्थात् द्वापर मे 'सिद्धामृत' नाम से और इस कलिकाल मे 'मत्स्योदर कौल' नाम से प्रकट हुआ है। दन्त कथाओ से यह स्पष्ट है कि मत्स्येन्द्रनाथ अपना असली मत छोडकर कदली दश की स्त्रियो की माया मे फस गय थे। ये कदली स्त्रिया योगिनी थी। वह शास्त्र कामरूप की योगिनिया के घर-घर मे विद्यमान था।[1] और मत्स्येन्द्रनाथ उसी कामरूपी स्त्रियो के घर जाकर अनायास लब्ध शास्त्र का सार सकलन कर रहे थे। कामरूप की योगिनियो के माया-जाल से गोरक्षनाथ ने मत्स्येन्द्रनाथ का उद्धार किया था, यह भी दन्तकथाओ मे स्पष्ट है। वह सिद्ध मत पूर्ण ब्रह्मचर्य पर आश्रित था, देवी अर्थात शक्ति उसकी प्रतिद्वद्विनी थी और उसमे स्त्री-सग पूर्णरूपेण वर्जित था। गोरक्षनाथ ने कामरूप म मत्स्यन्द्रनाथ का उद्धार करके इसी मत मे प्रतिष्ठित किया था। कौल ज्ञान सिद्धि परक विद्या है और यद्यपि इस शास्त्र मे अद्वैत भाव की चर्चा है पर मुख्यत यह उन अधिकारियो के लिए लिखा गया है जो कुल और अकुल –शक्ति और शिव—के भेद का भूल नही सके है। इसके विपरीत 'अकुल वीर तत्र' का अधिकारी वह है जिसे अद्वैतज्ञान हो गया है और जो अच्छी तरह समझ गया है कि कुल और अकुल मे कोई भेद नही है, शक्ति और शिव अविछिन्न भाव स विराज रहे है। यह निश्चित है कि 'अकुल वीर तत्र' मे प्रतिपादित साधना वास्तविक सहज साधना है। इसी को कभी अवधूत माग कभी सिद्ध माग और कभी सहज मार्ग कहा गया है।

बौद्ध सिद्धो की कई बातो से 'कौलज्ञान निर्णय' की कई बाते मिलती है—(१) सहज पर जोर देना, (२) वाह्याचार का विरोध, (३) कुलक्षेत्र और पीठो का वर्णन, (४) वज्रीकरण का प्रयोग, (५) पचपवित्र आदि पारिभाषिक शब्द।[2] पुराना सिद्ध मार्ग मुख्य रूप स योग परक था और पच मकारो या पच पवित्रो की व्याख्या उसमे सदा रूपक मे हुआ करती थी। इस प्रकार मत्स्येन्द्रनाथ ने जिस प्राचीन कौल मार्ग की चर्चा की है, वह निश्चय ही शाक्त मत था, बौद्ध नही।' अकुल वीर तत्र मे बौद्धो को स्पष्ट रूप से मिथ्यावादी और मुक्ति का अपात्र बताया

---

१ **तस्य मध्ये इम नाथ सारभूत समुद्धृत।**
कामरूपे इव शास्त्र योगिनीना गृहे गृहे॥ २२.१०

२ **देखिए डा० पी० सी० बागची की 'कौलज्ञान निर्णय' की भूमिका।**

गया है।[1] इसी 'अकुल वीर तत्र' से कौल मत की सहज साधना विवृत्त हुई है। इसलिए कौल सहज साधना निश्चित रूप से बौद्ध-साधना से भिन्न है।

कुलतत्र शब्द द्वैत परक है और अकुल तत्र अद्वैत परक और भेद विरोधी सहज परक। कौल लोगो के मत से 'कुल' का अर्थ है शक्ति और अकुल का 'शिव'। कुल से अकुल का सम्बन्ध स्थापन ही कौल मार्ग है।[2] इसलिए कुल और अकुल को मिलाकर समरस बनाना ही कौल साधना का लक्ष्य है और 'कुल' और 'अकुल' का सामरस (समरस होना) ही कौल ज्ञान है। शिव का नाम अकुल होना उचित ही है, क्योकि उनका कोई कुल गोत्र नही है, आदि-अन्त नही है।[3] शिव की सिस्टक्षा—अर्थात् सृष्टि करने की इच्छा का नाम ही शक्ति है। शक्ति से समस्त पदार्थ उत्पन्न हुए हैं। शक्ति शिव की क्रिया है। परन्तु शिव और शक्ति मे कोई भेद नही है। चन्द्रमा और चन्द्रिका का जो सम्बन्ध है, वही शिव और शक्ति का सम्बन्ध है।[4] 'सिद्ध सिद्धान्त सग्रह' के चतुर्थ उपदेश में कहा गया है कि शिव अनन्य, अखण्ड, अद्वय, अविनश्वर, धर्महीन और निरग है। इसीलिए उन्हे अकुल कहा जाता है। चूकि शक्ति सृष्टि का हेतु है और समस्त जगत् रूपी प्रपच की प्रवर्तिका है, इसलिए उसे 'कुल' (वश) कहते है।[5] शक्ति के विना शिव कुछ भी करने में असमर्थ है।[6] इकार

कुल और अकुल

---

१ विकल्प बहुला स मिथ्यावादा निरर्थकः।
न ते मुचन्ति ससारे अकुल वीर विवर्जितः॥ —अकुल वीर तत्र।

२ कुल शक्तिरिव प्रोक्तमकुल शिव उच्यते।
कुले कुलस्य सबध कौलमित्यभिधीयते॥
—सौभरिय भाष्कर पृ० ५३

३ वर्ण गोत्रादिराहित्यादेक एवाकुलमतम्।
अनन्तत्वादखडत्वादद्वयत्वादनाशनात्॥
निर्धर्मत्वाद् कुल स्याग्निरन्तरम्॥ —सिद्ध सिद्धान्त सग्रह पृ० ४।

४ शिवस्यामान्तरे शक्ति शक्ते रम्यन्तरे शिव।
अन्तर नैव जानीयात् चन्द्र चन्द्रिकयोरिव॥

५ कुलस्य सामरस्येति सृष्टि हेतु प्रकाशम्।
सा चापरपराशक्ति राज्ञेशस्यापर कुलम्॥
प्रपचास्य समस्तस्य जगद्रूपप्रवर्तनात्।
—सिद्ध सिद्धान्त सग्रह, सं० ४-१२-१३।

६ शिवोऽपि शक्ति रहितः कर्तुशक्तो न किंचन।
शिव स्वशक्तिसहितो सभासाद् भासको भवेद्॥
—सि० सि० स० ४।१६।

शक्ति का वाचक है और शिव मे से इकार निकाल देने से वह 'शव' हो जाता है।[1] इसलिए शक्ति ही उपास्य है। इस शक्ति के उपासक शाक्त ही कौल है। यह मत बौद्धसाधना से मूलत भिन्न है। इस साधना मे लक्ष्य है अखण्ड, अद्वय और अविनश्वर शिव और बौद्धसाधना का लक्ष्य है नैरात्म्य भाव। जिस प्रकार वृक्ष के विना छाया नही रह सकती, अग्नि के विना धूम नही रह सकता, उसी प्रकार शिव शक्ति आविच्छेय है, एक के विना दूसरे की कल्पना नही की जा सकती।[2]

कौल मार्ग का अत्यन्त सक्षिप्त परन्तु अत्यन्त शक्तिशाली उपस्थापन 'कौलोपनिषद्' मे दिया हुआ है। आरम्भ मे कहा गया है कि ब्रह्म का विचार हो जाने के बाद ब्रह्मशक्ति (धर्म) की जिज्ञासा होती है। ज्ञान और बुद्धि ये दोनो ही धर्म (शक्ति) के स्वरूप है, जिनमे एकमात्र ज्ञान ही मोक्ष का कारण है। योग और मोक्ष दोनो ही ज्ञान है। अधर्म का कारण अज्ञान है, पर यह अज्ञान भी ज्ञान से अभिन्न है। प्रपच (शब्द स्पर्श, रस, गन्ध, रूप) ही ईश्वर है और अनित्य भी नित्य है क्योकि वह भी ब्रह्म-शक्ति का रूप ही है। मतलब यह है कि ब्रह्म और ब्रह्मशक्ति मे कोई भेद नही है। जीव के पाच बन्धन है—(१) अनात्मा मे आत्मबुद्धि (२) आत्मा में अनात्म बुद्धि (३) जीवो मे परस्पर भेद-ज्ञान (४) उपास्य और उपासक मे भेद-बुद्धि (५) चैतन्य अर्थात् पर ब्रह्म से आत्मा को पृथक् समझने की बुद्धि।

ये पाचो बन्धन भी ज्ञान रूप ही है, क्योकि ये सभी ब्रह्म-शक्ति के विलास है। इन्ही बन्धनो के कारण मनुष्य जन्म-मरण के चक्रो मे पडता है। इसी देह मे मोक्ष है। ज्ञान यह है कि समस्त इन्द्रियो मे नयन प्रधान है, अर्थात् आत्मा। सभी कुछ शाभवी (शक्ति) का रूप है। इस मार्ग के साधक के लिए वेद नही है। मत्र-सिद्धि के पूर्व वेदादित्याग करना चाहिए। अपना रहस्य शिष्टभिन्न किसीको भी नही बताना चाहिए। भीतर से शाक्त, बाहर मे शैव और लोक में वैष्णव होकर रहना चाहिए—यही आचार है।[1] आत्मज्ञान से ही मुक्ति होती है। लोक-निन्दा वर्जनीय है। अध्यात्म यह है—व्रताचरण न करे, नियम पूर्वक न रहे। नियम मोक्ष का बाधक है। किसी कौल सम्प्रदाय की स्थापना नही करनी चाहिए। सबमे समता की बुद्धि रखना ऐसा करनेवाला ही मुक्त होता है, वही मुक्त होता है। सक्षेप मे यही सहज साधना है। सब प्रकार के द्वन्द्वो से मुक्त, सब प्रकार के टटे मे अलिप्त स्पष्ट ही 'कौलोपनिषद्' और 'अकुल

---

१ शिवोऽपि शवतां याति कुण्डलिन्या विवर्जित।

—देवी भागवत का कवच

२ न शिवेन विनाशक्तिर्नशक्तिरहित शिव.।
अन्योन्य च प्रवर्तन्ते अग्निर्धूमो यथा प्रिय।
न वृक्षरहिता छाया नच्छायारहितो द्रुम.॥ —१७ ८-९

१ अन्तः शाक्ताः बहिर्शैवा समामध्ये च वैष्णवा'।
नाना रूप धरा कौला विचरन्ति महीतले॥

वीर तत्र' सहज साधना को सब प्रकार के दिखावे से मुक्त और आन्तरिक शक्ति पर आधारित मानते हैं।

स्पष्ट है कि इस समूचे जगत्-प्रपच का कारण शिव और शक्ति का पृथक्-पृथक् हो जाना ही है और इस प्रपच की समाप्ति दोनो के मिलन मे है। जबतक शिव और शक्ति समरस नही हो जाते, तबतक जीव प्रपचग्रस्त है। इसलिए इनका समरस ही प्रधान लक्ष्य है। इस सामरस्य के अनेक रूप है। विविध सहजमत इसी सामरास्य को प्राप्त करने के उपाय अपने अपने ढग से बताते है।

शाक्ततत्रो मे कुण्डलिनी योग साधना का बहुत उल्लेख है। कौल और नाथ मत मे भी कुण्डलिनी-योग की खूब चर्चा है। साधक का प्रधान कर्त्तव्य जीव-शक्ति कुण्डलिनी को उद्बुद्ध करना है। शक्ति ही महा कुण्डलिनी रूप से जगत् मे व्याप्त है,

कुण्डलिनी योग की साधना

मनुष्य के शरीर मे वह कुण्डलिनी रूप से सस्थित है। 'कुण्डलिनी और प्राणशक्ति को लेकर ही जीव मातृकुक्षि मे प्रवेश करता है। सभी जीव साधारणत तीन अवस्थाओ में रहते हैं—जाग्रत, सुषुप्ति और स्वप्न। इन तीनो अवस्थाओ में कुण्डलिनी शक्ति निश्चेष्ट रहती है।

पीठ मे स्थित मेरुदण्ड जहाँ सीधे जाकर पायु और उपस्थ के मध्य भाग मे लगता है, वहाँ एक 'स्वयम् लिङ्ग' है, जो एक त्रिकोण चक्र मे अवस्थित है। इसे 'अग्निचक्र' कहते है। इसी त्रिकोण या अग्निचक्र में स्थित स्वयम् लिङ्ग को साढे तीन

चक्र भेदन की प्रक्रिया

वलयो या वृत्तो मे लपेटकर सर्पिणी की भाँति कुण्डलिनी अवस्थित है। इसके ऊपर चार दलो का एक कमल है, जिसे 'मूलाधार चक्र' कहते है। फिर उसके ऊपर नाभि के पास 'स्वाधिष्ठान चक्र' है, जो छ दलो के कमल के आकार का है और उसके भी ऊपर, हृदय के पास 'अनाहत चक्र' है। ये दोनो क्रमश दश और बारह दलो क पद्म के आकार के है। इसके भी ऊपर कण्ठ के पास 'विशुद्धारव्य' चक्र जो सोलह दल के पद्म के आकार का है। और भी ऊपर जाकर भूमध्य मे 'आज्ञा' नामक चक्र है जिसके सिर्फ दो ही दल है। ये ही षट्चक्र है। इन चक्रो को क्रमश पार करती हुई उद्बुद्ध कुण्डलिनी शक्ति सबसे ऊपरवाले सातवे चक्र (सहस्रार) मे परम शिव से मिलती है। इस चक्र मे सहस्रदल होने के कारण इसे 'सहस्रार' कहते है और परम शिव का निवास होने के कारण 'कैलाश' भी कहते है[1]। इस प्रकार सहस्रार मे परम शिव, हृत्पद्ममे जीवात्मा और मूलाधारमे कुण्डलिनी विराजमान है। जीवात्मा परम शिव से चैतन्य और कुण्डलिनी से शक्ति प्राप्त करता है। इसीलिए

---

१ अत ऊर्ध्वं दिव्य रूप सहस्रार सरोरुहम्।
ब्रह्माण्ड व्यस्त देहस्य वा तिष्ठति सर्वदा॥
कैलाशोनाम तस्यैव महेशो यत्र तिष्ठति॥

—शिव सहिता ५, १५१-५२

कुण्डलिनी जीवशक्ति है। साधना के द्वारा निद्रिता कुण्डलिनी को जगाकर मेरुदण्ड की मध्य स्थिता नाडी सुषुम्ना के मार्ग से सहस्रार मे स्थित परम शिव तक उत्तोलित करना ही कौल साधक का कर्तव्य है। वही शिव-शक्ति का मिलन होता है। शिव-शक्ति का यह सामरस्य ही परम आनन्द है।[1] जब यह आनन्द प्राप्त हो जाता है, तब साधक के लिए कुछ भी करने को नही रह जाता।[2]

प्रत्येक मनुष्य इस साधना के लिए समान भाव से विकसित नही है। कुछ साधक ऐसे होते हैं, जिनमे सासारिक आसक्ति अधिक होती है। इस प्रकार मोह रूपी पाश या पगहे मे बँधे हुए जीवो को 'पशु' कहते है। और शास्त्रो में ऐसे जीवो के लिए अलग ढङ्ग की साधना निर्दिष्ट है। परन्तु कुछ साधक ऐसे होते हैं, जो अद्वैत ज्ञान का एक उथला-सा आभासमात्र पाकर साधनमार्ग मे उत्साहित हो जाते है। और प्रयत्नपूर्वक मोह-पाश को छिन्न कर डालते है। इन्हे **'वीर'** कहा जाता है। यह साधक क्रमश अद्वैत ज्ञान की ओर अग्रसर होता रहता है और अन्त में उपास्य देवता के साथ अपने-आपकी एकात्मता पहचान जाता है। जो साधक सहज ही अद्वैत ज्ञान को अपना सकता है, वह उत्तम साधक 'दिव्य' कहलाता है। इस प्रकार साधक तीन प्रकार के हुए —पशु, वीर और दिव्य। ये उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होते है। दिव्य भाव के साधक की साधना 'सहज' कही जाती है। तन्त्रशास्त्र मे दिव्य साधक की साधना का नाम ही 'कौलाचार' है।

पशुभाव, वीरभाव, दिव्यभाव

तन्त्रशास्त्रो में सात प्रकार क आचार बताये गये हैं—वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार, दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार और कौलाचार। इनमें जो वेदाचार है, उसमे वैदिक का कर्म यज्ञयागादि विहित है। तत्र के मत से यह सबसे निचली कोटि की उपासना है। (२) वैष्णवाचार में निरामिष भोजन, पवित्र भाव मे व्रत उपावास, ब्रह्मचर्य और भजनासक्ति विहित है। (३) शैवाचार मे यज्ञ नियम, ध्यान, धारणा, समाधि और शिव शक्ति की उपासना तथा (४) दक्षिणाचार मे उपर्युक्त तीनो आचारो के नियमो का पालन करते हुए रात्रि काल में भाग आदि का सेवन करके इस मत्र का जप करना विहित है। परन्तु ये चारो ही आचार पशुभाव के साधक के लिए ही विहित है। इसके बाद वाले आचार वीरभाव के साधक के लिए है। (५) वामाचार में आत्मा को वामा (शक्ति) रूप में कल्पना करके साधना विहित है। 'सिद्धान्ताचार' मे मनको अधिकाधिक शुद्ध करके यह बुद्धि उत्पन्न करने का उपदेश है कि शोधन से ससार की प्रत्येक वस्तु शुद्ध हो जाती है। ब्रह्म से लेकर ढेले तक मे कुछ भी ऐसा नही है, जो परम शिव से भिन्न हो। इन सब में श्रेष्ठ है कौलाचार इसमें कोई भी नियम नही है। इस आचार के साधक साधना की

सात प्रकार के आचार

---

१ समरसानन्द रूपेण एकाकार चराचरे।
य च तात स्वदेहस्थमकुलवीर महाद्भुतम्॥

—अकुलवीर तंत्र ११५।

२ देखिये—नाथ सम्प्रदाय पृ० ७३।

सर्वोच्च अवस्था में उपनीत हो गए होते हैं और जैसा कि 'भावचूडामणि' मे शिव जी ने कहा है—कर्दम और चन्दन मे, पुत्र और शत्रु मे, श्मशान और गृह मे तथा स्वर्ण और तृण मे लेश मात्र भी भेदबुद्धि नही रखते।[1]

इस प्रकार यह साधना भी अन्ततक अकुल वीर तत्र की सहज साधना के समान बन जाती है।[2]

बौद्ध और नाथ मत मे जालन्धर नाथ और कान्हूपा या कानपा (कृष्णपाद) समान भाव मे समादृत सत है। कानुपा ने अपनेको कापालिक कहा है और अपने गुरु को जालधर पाद का शिष्य बताया है। कृष्णपाद ने अपने दोहो मे महासुख की आवास भूमि ककाल दण्ड रूप मेरुगिरि के शिखर को कहा है और 'मेखला टीका' मे इस मेरुगिरि का नाम 'जालधर' बताया गया है। अनुमानत मेखला टीका कृष्णपाद की शिष्या मेखला योगिनी की लिखी हुई है।

कापालिक मत में सहज साधना

जो हो, कृष्णपाद के मन मे जालधर पाद के प्रति कितनी भक्ति थी, वह इस नामकरण से ही स्पष्ट हो जाती है। जिस कापालिक मत को जालधर पाद और कृष्णपाद इतना बहुमान दे गये है, वह शैव कापालक मार्ग था या बौद्ध बज्रयानी—यह प्रश्न निरर्थक है। वस्तुत उन दिनो इन तात्रिक मार्गों मे बहुत नैकटच का भाव था। भवभूति के 'मालती माधव' नामक प्रकरण से मालूम होता है है कि सौदामिनी नामक बौद्ध भिक्षुणी श्री पर्वत पर कापालिक साधना सीखने गई थी। यह कापालिक साधना निश्चित रूप से शैव साधना थी। श्री पर्वत उन दिनो का प्रसिद्ध तात्रिक पीठ था, वहा बौद्ध, शैव, शाक्त सभी प्रकार की तात्रिक साधनाए एक दूसरी की बगल मे पनप रही थी। वाणभट्ट ने कादम्बरी मे और हर्षचरित मे श्री पर्वत को शाक्त तत्र की साधना के पीठ के रूप में लिखा है। 'चर्याचर्य विनिश्चय' की टीका मे दौमोडीपाद का श्लोक उद्धृत है, जिसमे बताया गया है कि 'कापालिक' किसे कहते है। प्राणी अर्थात् साधक का शरीर ही वज्रधर है। जगत् की जो कोई भी स्त्री 'कपालवनिता' है और प्राणी के भीतर स्थित 'सोऽह' रूप आत्मा ही हेरुक भगवान् की मूर्ति है, जो हमसे अभिन्न है। (१) श्री पद्म और (२) इन्द्रिय आदि सूक्ष्म ग्राह्य तत्त्व तथा पृथ्वी प्रभृति स्थूल ग्राह्य तत्त्व को दहन करनेवाला (३) मदन ये ही तीन रत्न हैं। इनको यथा गौरव ध्यान करता हुआ योगीश्वर परमसिद्धि को प्राप्त करता है।[3] कपालवनिता रूप स्त्री

---

१ कर्दमे चन्दने भिन्न पुत्रो शत्रो तथा प्रिये।
श्मशाने भवने देवि! तथा वै कांचने तृणे।
भेदो यस्य लेशोऽपि स कौल. परिकीर्तित.॥

२ दे० नाथ सम्प्रदाय पृ० ४।

३ म० म० प० हरप्रसाद शास्त्री का पाठ इस प्रकार है—
प्राणी वज्रधरः कपालवनितातुल्योजगत् स्त्रीजन.।
सोऽह हेरुक मूर्त्तिरेव भगवान् योनः प्रभिन्नांऽपिच॥

जन्म साध्य होने के कारण यह साधना 'कापालिक' कही जाती है और इसी के साधक 'कापालिक' कहे जाते है। बज्रयानी लोग बौद्धधर्म के प्रसिद्ध तीन तत्र (बुद्ध, धर्म और सघ) के स्थान मे बज्र, पद्म और मदन को तीन रत्न मानते हैं। कापालिक साधना मे स्त्री की सहायता आवश्यक थी। आधुनिक नाथ मार्ग मे 'बज्रोली'[1] नामक जो मुद्रा पाई जाती है, उसमें ही स्त्री का होना

श्री पद्मसदन च भेकुदहन कुर्वन, यथागौरवात्।
सतत् सर्वमतीन्दुर्यक मनसा योगीश्वर सिद्धयति॥

१ 'बज्रोली', 'अमरोली', और 'सहजोली' मुद्राओ का विवरण 'हठयोग प्रदीपिका' उपदेश ३ में निम्नलिखित प्रकार से है—

बज्रोली

मेहनेन शनै सम्यगूर्ध्वाकुचनमभ्यसेत्।
पुरुषोम्यथवा नारी बज्रोलीसिद्धिमाप्नुयात्॥
चलत शस्तनालेन फूत्कार बज्रकवरे।
शनै शनै प्रकुर्वीता वयुसचारकारणात्॥
नारी भगे पतद्विन्दुमभ्यासेनोर्ध्वमाहरेत्।
चलित च निज बिंदुमूर्ध्वमाकृष्य रक्षयेत्॥
एव सरसयेद् बिन्दू मृत्युजयति योगवित्॥ —ह० प्र० ३ ८५-८८।

सहजोली

सहजोलिश्चामरोलिर्वज्रोल्याभेद एकत।
जरा सुभस्मनिक्षिप्य दग्धगोमयसभवम्॥
बज्रोली मैथुनादूर्ध्वं स्त्रीपुसो स्वागलेपनम्।
आसीनयो सुखेनैव मुक्त व्यापारबो क्षणाद्॥
सहजोलिरिय प्रोक्ता श्रद्धेया योगिभि सदा।
अय शुभकरो योगो भोगयुक्तोऽपि मुक्तिद॥ —ह० प्र० ३ ९२-९४

अमरोली

पित्तोल्वणत्वात्प्रथमांबुधारां विहाय नि सारतयांत्यधारा।
निष्कल शीतलमध्यधाराकापालिके खण्डमतेऽमरोली॥
अमरी य पिबेन्नित्य नस्य कुर्वन्दिन दिने।
बज्रोलीमभ्यसेत्सम्यगमरोलेति कथ्यते॥
अभ्यासानिःसृतां बांद्रीं विभूत्या सहमिश्रयेत्।
धारयेदुत्तमांगेषु दिक दृष्टिः प्रजापते॥ —ह० प्र० ३ ९६-९८

परम आवश्यक माना गया है। मालती माधव का कापालिक अघोरघट अपनी शिष्या कपाल-कुण्डला के साथ योग-साधन करता था। सब मिलाकर ऐसा लगता है कि क्या शैव और क्या बौद्ध दोनो कापालिक साधनाओ मे स्त्री की सहायता आवश्यक थी।[1]

'मालती माधव' से इतना स्पष्ट है कि (१) भवभूति का जाना हुआ कापालिक मत परवर्ती नाथ पथियो के समान नाडियो और चक्रो में विश्वास करता था, (२) शिव और जीव की अभिन्नता मे आस्था रखता था और (३) योग द्वारा चित्त के चाचल्य को रोकने से ही कैवल्य रूप में अवस्थित शिव रूप आत्मा का साक्षात्कार होता है, यह मानता था और (४) शक्ति युक्त शिव की प्रभविष्णुता मे विश्वास रखता था। मालती माधव मे आये हुए 'पचामृत' का असली अर्थ है—शुक्र, शोणित, मेद, मज्जा और मूत्र। इनको आकर्षण करके ऊपर उठाने की प्रक्रिया से शरीर को बज्रवत् बनाया जा सकता है, अणिमादिक सिद्धिया पाई जा सकती हैं। वज्रयानी साधको मे तथा कौलमार्गी तात्रिको मे भी यह विधि है। नाथमार्ग मे जो वज्रबोली साधना है, उसे इस साधना का भग्नावशेष समझना चाहिए। ऐसा जान पडता है कि अन्यान्य तात्रिको की भाति कापालिक लोग भी विश्वास करते थे कि परम शिव ज्ञेय है, उपास्य है, उनकी शक्ति और तद्युक्त ऊपर या सगुण शिव। इसी बात को लक्ष्य करके 'देवी भागवत' मे कहा गया है कि कुण्डलिनी अर्थात् शक्ति से रहित शिव भी शव के समान (अर्थात् निष्क्रिय है)—'शिवोऽपिशवता याति कुण्डलिनीविवर्जित' और इसी भाव को ध्यान में रखकर शकराचार्य ने 'सौन्दर्य लहरी' मे कहा है कि शिव यदि शक्ति से युक्त हो तभी कुछ करने में समर्थ है, नही तो वे हिल ही नही सकते।[2] तात्रिक लोगो का मत है कि परम शिव के न रूप है, न गुण और इसीलिए उनका स्वरूप-लक्षण नही बतलाया जा सकता। जगत् के जितने भी पदार्थ है, वे उससे भिन्न है और केवल 'नेति-नेति' कहा जा सकता है। निर्गुण शिव (पर शिव) केवल जाने जा सकत है, उपासना के विषय नही

अमरोली आदि मुद्राए समाधि के सिद्ध होने पर ही सिद्ध होती है। जब अन्त करण रूप चित्त ध्यान करने योग्य वस्तु के आकारवृत्ति-प्रवाह को प्राप्त हो जाता है अर्थात् ब्रह्माकार हो जाता है और प्राणवायु सुषुम्ना में प्रविष्ट हो जाती है अर्थात् इस प्रकार जब चित्त सम हो जाता है तभी अमरोली, बज्रोली, सहजोली मुद्राए भली प्रकार हो जाती है। जिसने प्राण और चित्त को नहीं जीता, उसको सिद्ध नहीं होती। इसी पर हठयोग प्रदीपिका उ० ४ श्लो० १४ यो है—

चित्तेसमत्वमापन्ने वायो ब्रजति मध्यमे।
तदामरोली बज्रोली सहजोली प्रजापते॥

१ क्षीर चैक द्वितीय तु नारी च वशवर्तिनी —ह० प्र० ३. ८४

२ शिव. शक्तया युक्तो यदि भवति शक्त. प्रभवित।
न चेद देव देवी न खलु कुशस्त्रः स्पन्दितुमपि॥

है। शिव केवल ज्ञेय है, उपास्य तो शक्ति है। इस उक्ति की उपासना के बहाने भवभूति ने शक्ति के क्रीडन और ताण्डव का बडा शक्तिशाली वर्णन किया है। शक्तियो से वेष्ठित 'शक्ति-नाथ' की महिमा वर्णन करने के कारण यह अनुमान असगत नही जान पडता कि कापालिक लोग भी परमशिव को निष्क्रिय निरजन होने के कारण केवल ज्ञेय मानते थे।' 'मालती माधव'की टीका मे और 'कर्पूर मजरी' मे सोमसिद्धान्तियो की चर्चा आती है। ये 'उमयासहितो रुद्र' को 'सोम' कहते और इसी प्रकार की हर-पार्वती के मिथुन रूप की उपासना करते थे। बज्रयानी और शैव-दोनो प्रकार की कापालिक साधना मे भोग मूलक योग-साधना की महिमा स्वीकार की गई है। यहा सामरस्य स्त्री-पुरुष के स्थूल शरीर के मिलने से उत्पन्न माना गया है। इस प्रकार सहज मत का सामरस्य इन साधनाओ को स्थूलशरीर-मिलन के रूप में प्रकट हुआ है। परन्तु यह सम-झना भूल है कि स्थूल मिलन ही इस साधना का यथार्थ रूप है। स्थूल मिलन पच पवित्र के आकर्षण और ऊर्ध्वचालन का साधन है, जिससे शरीर बज्र के समान बन जाता है और मन अचचल हो जाता है।'[1]

बज्रयान में और कापालिक मत में सहजानद या महासुख

महायान बौद्धो की परवर्ती शाखा वाले यान मे सबसे बडे सुख को 'सहजानन्द' कहा गया है। इसे ही 'महासुख' भी कहा गया है। एक ऐसा समय गया है जब सहजयानी और बज्रयानी साधकशून्य को निषेधात्मक न मानकर विधात्मक और धनात्मक रूप में समझने लगे थे। इसी भाव के बताने के लिए वे 'सुखराज' या 'महासुख' शब्द का व्यवहार करते थे। ये साधक चार प्रकार के आनन्द मानते थे—प्रथमानन्द, परमानन्द, विरमानन्द और सहजानन्द। सबसे श्रेष्ठ आनन्द सहजानन्द है यही सुखराज है, यही महासुख है। इसे किसी शब्द से नही समझाया जा सकता। यह अनुभवैकगम्य है। इसमें इन्द्रियबोध लुप्त हो जाता है, आत्मभाव या अस्मिता विलुप्त हो जाती है, 'केवल' रूप मे अवस्थिति होती है।[2]

---

१ दे० नाथ सम्प्रदाय पृ० ८६।

२ सरह पाद ने इसी भाव को बताने के लिए कहा है—

इन्द्रिअजत्थ विलअ गउ णड्डिउ अप्प सहावा।
सो हले सहजन ततु फुड पुच्छहि गुरु पावा॥

सर्वज्ञ भगवान् बुद्ध भी इस सुखराज या महासुख की व्याख्या करते समय मौन रह गये, क्योकि वह वाणी से परे था—

जयति सुखराज एव कारणरहित. सबोदितो नगताम्।
यस्य च निगदनसमये वचनवरिद्रो बभूव सर्वज्ञ.॥

—नउपाद की सेकोदेश की टीका में सरहपाद का वचन

' अर्थात् जय हो इस कारणरहित सुखराज की जो जगत् के नाशवान चचल पदार्थों में एक मात्र स्थिर वस्तु है और सर्वज्ञ भगवान् बुद्ध को भी इसकी व्याख्या करते समय वचन-वरिद्र हो जाना पड़ा था।

सो यह 'सुखराज' ही सार है, यही शून्यावस्था है क्योकि इसका न आदि है न अन्त है, न मध्य है, न इसमें अपनेका ज्ञान रहता है, न परायें का। न यह जन्म है न मोक्ष, न भव न निर्माण।[1]

बौद्ध मत में सहज साधना का प्रवेश

समस्त बौद्ध, बज्रयानी और सहजयानी साधक मानते है कि दो प्रकार के सत्य होते हैं—(१) लोक सवृत्ति सत्य और लौकिक सत्य और (२) पारमार्थिक सत्य अर्थात् वास्तविक सत्य। लोक में बोधि का अर्थ है स्थूल शारीरिक शुक्र जब कि परमार्थिक सत्य मे वह ज्ञात रूप चित्त है। इसी प्रकार पद्म और बज्र के सावृत्तिक अर्थ स्त्री और पुरुष के जननेन्द्रिय है परन्तु पारमार्थिक अथवा वास्तविक अर्थ आध्यात्मिक है। जो साधक साधना मार्ग मे अग्रसर होने की इच्छा रखता है उसके लिए चित्त को वश मे करना परम आवश्यक है। इस चित्त मे यदि कामनाओ के उपभोग न करने के कारण क्षोभ हुआ तो साधना मिट्टी मे मिल जायगी। यही सोचकर अनग वज्र ने कहा था कि इस प्रकार प्रवृत्त होना चाहिए जिससे चित्त क्षुभित न हो, यदि चित्त रत्न सक्षुब्ध हो गया तो कभी सिद्धि नही मिल सकती[2]। फिर यह विक्षोभ दमन कैसे किया जाय? वासनाओ के दबाने से वे मरती नही, केवल और भी अन्तस्तल मे जाकर छिप जाती है। अवसर पाते ही वे उद्बुद्ध हो जाती है और साधक को दबोच लेती है। इसीलिए उनको दबाना ठीक नही। उचित पथ यह है कि समस्त कामनाओ का उपभोग किया जाय तभी शीघ्र चित का सक्षोभ दूर होगा और सच्ची सिद्धि प्राप्त होगी।[3] इस प्रकार कामोपभोग का साधना-क्षेत्र मे प्रवेश हुआ। इस साधना की पृष्ठभूमि शून्यवाद था। शून्यता और समस्त अभावो और अभावो से मुक्त नि स्वभावता ही साधक का चरम लक्ष्य है। कामनाओ के उपभोग के लिए स्त्री की आवश्यकता है, इसलिए बज्रयान मे पाच बुद्धो और अनेक बोधिसत्वो की शक्ति की कल्पना की गई है। सिद्धि प्राप्ति के लिए गुरु की आवश्यकता है इसलिए जो बुद्ध सिद्ध हो गये है उनके भी गुरु है। यह गुरु शून्यता ही है। जैसे गुड का धर्म माधुर्य है और अग्नि का धर्म है उष्णता, उसी प्रकार समस्त

---

१ इसी अपूर्व महासुखराज को सरहपाद ने इस प्रकार कहा है—

आइ ण अन्त ण मज्झ णउ णउ भव णउ णिव्वाण।
एहु सो परम महासुहु, गउ पर णउ अप्पाण॥

—ज० सि० ले० पृ० १३

दे० नाथ सम्प्रदाय पृ० ८९

२ तथा तथा प्रवर्तेत यथा न क्षुभ्यते मन।
सक्षुब्धे चित्तरत्ने तु सिद्धिर्नैव कदाचन॥

३ दुष्करैर्नियमैस्त्रीभ्रैः सेव्यमानो न सिद्धयति।
सर्व कामोपभोगैस्तु सेव्यश्यांशु सिद्धति॥

धर्मों का धर्म, समस्त स्वभावो का स्वभाव शून्यता है।[1] शून्यता का मूर्त रूप ही वज्रसत्व है। वज्रसत्व, वज्रधर, वज्रपाणि, तथागत इसी शून्य के नाम है। यही वज्रधर समस्त बुद्धो के गुरु है।[2] इस मानव शरीर का प्रधान आधार उसकी रीढ या मेरूदण्ड है। सो, इस मेरुदण्ड के भीतर तीन नाडियो से होता हुआ प्राण वायु सचारित होता है। बाईं नासिका से 'ललना' और दाहिनी नासिका से 'रसना' नामक प्राणवायु की वहन करनेवाली नाडियाँ चलती है, जिनमे पहली प्रज्ञा-चन्द्र है और दूसरी, उपाय सूर्य। प्रज्ञा और उपाय नाथ पथियो की इच्छा और क्रियाशक्ति की समशील है। मध्यवर्ती नाडी 'अवधूती' है जो नाथ पथियो की सुषुम्ना की समशीला है। इस नाडी से जब प्राणवायु उर्ध्वगति को प्राप्त होता है तब ग्राह्य और ग्राहक का ज्ञान नही रहता। इसीलिए अवधूती नाडी को ग्राह्य-ग्राहक वर्जित कहा जाता है।[3] मेरुगिरि के शिखर पर महासुख का आवास है जहा एक चौसठ दलो का कमल है। यह कमल चार मृणालो पर स्थित है, प्रत्येक मृणाल के चार क्रम है और प्रत्येक क्रम के चार-चार दल है। इस प्रकार यह (४ × ४ × ४) चौसठ दलो का कमल है, जहा वज्रधर योगी इस पद्म का आनन्द उसी प्रकार लेता है जिस प्रकार भ्रमर प्रफुल्ल कुसुम का।[4] इन चार मृणालो के दलो को शून्य, अतिशून्य, महाशून्य और सर्वशून्य का आवास है, उसीका नाम 'उष्णीश कमल' है, यही डाकिनी जालात्मक जालधर गिरि नामक महा मेरुगिरि का शिखर है, यही महासुख का आवास है।[5] इसी गिरि शिखर पर

---

१ गुडे मधुरता चाग्नेरुष्णत्वप्रकृतिर्यथा।
शून्यता सर्वधर्माणां तथा प्रकृतिरिष्यते॥

२ इस विषय में विशेष विवरण के लिए देखिये 'विश्वभारती पत्रिका', खड ४, अक १ में प्रकाशित भदन्त शान्ति भिक्षु का लेख।

३ हे व्रज में सरोरुह पाद ने कहा है—

ललना प्रज्ञा स्वभावेन रसनोपायसस्थिता।
अवधूती मध्यदेशेतु ग्राहच ग्राहक वर्जिता॥

४ ललना रसना रवि शशि तुड़िया वेन विपासे।
चउपमर चउक्रम चउमृणालथिउ महासुहवासे॥५॥
एव काल वीअलउकुसुमिम अरविन्दए।
महुच्च रुए सुर अवीर जिघयम अरन्दए॥

—बौद्धगान ओ दोहा पृ० १२४

५ शून्यातिशून्य महाशून्य सर्वशून्यमितिचतु शून्य रूपेण पत्र चतुष्टयं चतुरादि स्वरूपेण चतुर्मृणालसस्थिता कुत्रेत्याह। महासुख वसति अस्मिन्निति महासुखवासे उष्णीष कमल तत्र सर्व शून्यालयो डाकिनी जालात्मक जालधरामिधान मेरुगिरि शिखरनिसर्वेः।

—पृ० १२४

पहुचने पर योगी स्वय वज्रधर कहा जाता है, यही वह सहजानन्द रूप महासुख को अनुभव करता है।[1] पहले जो चार प्रकार के आनन्द बताये गये है उनमे प्रथम आनन्द कायात्मक है अर्थात् शारीरिक आनन्द है, दूसरे और तीसरे वाचात्मक और मानसात्मक है। अतिम आनन्द ज्ञानात्मक है और इसी लिए सहजानन्द कहा जाता है। इसी आनन्द से महासुख की अनुभूति होती है। सक्षेप में तात्पर्य यह है कि सहज मत के विभिन्न साधको ने (१) शरीर को सब प्रकार के साधना का साधन माना है। (२) शिव और शक्ति के मिलन या सामरस्य को कभी (क) प्रज्ञा-उपाय के योग से, (ख) कभी स्थूल शरीर मिलन से (ग) कभी कुण्डलिनी रूपी शक्ति के साथ शून्य चक्र या सहस्रसार स्थित शिव के मिलन के रूप मे (घ) कभी पच पवित्रो के आकर्षण योग से और (ङ) कभी मत्र-जप आदि से साध्य समझा है।

(३) सबने ऊपरी दिखावे, पूजापाठ, ध्यान-धारणा, और विधि-विधान का विरोध किया है, पर अन्ततक चलकर सब साधनाओ ने बहुत जटिल रूप धारण किया है।

(४) यद्यपि सभी साधनाओ ने शरीर मे ही परम प्राप्तव्य को प्राप्त करने का प्रयास किया है और वैराग्य तथा कृच्छ्राचार की आलोचना की है पर प्रेममूलक साधना उन्हे नही प्राप्त हो सकी। वे सिद्धि, मुक्ति और निर्वाण के चक्कर मे ही पडे रहे। प्रेम भक्ति से दूर ही बने रहे।

सातवी से ११वी-१२वी शताब्दी तक के साहित्य मे यद्यपि सहज साधना नाना अर्थों मे व्यवहृत हुई है, परन्तु उसका मूल अर्थ बराबर याद रखा गया है। वह मूल अर्थ यह है—

(१) वाह्याडबर और कृच्छ्राचार से परम सत्य का साक्षात्कार नही होता।

(२) परम प्राप्तव्य मनुष्य के शरीर मे ही है।

(३) परम प्राप्तव्य का स्वरूप अनिर्वचनीय है, केवल गुरु ही उसे बता सकते है।

(४) स्त्री-त्याग, वैराग्य और कृच्छ्रसाधना मुक्ति के लिए आवश्यक नही है।

नाना साधनाओ के ससर्ग से इस मूल अर्थ के कई प्रकार के परिवर्धन हुए है। विशेष रूप से शरीर को ही सिद्ध सोपान मानने के सिद्धान्त ने योगमूलक और भोगपरक साधना पद्धतियो को बल दिया है। ११वी-१२वी शताब्दी के अन्त मे इन वाह्याचार और आडम्बर विरोधी साधनाओ ने भी घोर तत्र-मत्र-अभिचार और रहस्यात्मक जटिलरूपो मे आत्मप्रकाश किया। इसके विरुद्ध भी प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक था। प्रतिक्रिया का प्रथम तीव्र रूप नाथ साधको मे दिखाई देता है। उन्होने बौद्धो, सौममार्गियो और शाक्त साधको पर कसके प्रहार किया। पुरानी साधनाओ से जो बाते किसी प्रकार सरकती हुई उनके मार्ग मे आ गई थी, उनका रूपकात्मक अर्थ किया और दृढता के साथ ब्रह्मचर्य, वाक्सयम और शुद्ध चित्त का समर्थन किया। गोरखनाथ ने कहा है—

---

१ एहु सो गिरिवर कहिअ मनि एहु सो महासुह पाव।
एत्थुरे निरुगा सहज रवगुन हइ महासुह जाव ॥२६॥

इद्री का लडबडा जिह्वा का फूहडा।
गोरख कहे ये परत चूहडा।।
काछ का जती मुष का सती।
सो सत्पुरुष उत्तमो कथी।।

गोरक्ष पूर्व सहज मार्गियो मे दोनो ही बाते बढ गई थी। परन्तु गोरखनाथ का हठ योग सहज साधना का सहायक नही था। वह सिद्धि प्राप्त करने का मार्ग मात्र रह गया था। उसमें भी परम प्राप्तव्य की प्राप्ति के प्रयास से विकट साधना उत्तर भारत मे व्याप्त हो गई थी। ऊपर के विवेचन से स्पष्ट हो जायगा कि सहज मार्ग की विभिन्न साधना-धाराओ मे एक बहुत बडी कमी थी। वे वाह्याचार मूलक धर्म साधना का विरोध अवश्य करते और शरीर मे ही परम प्राप्तव्य को प्राप्त करने का प्रयास करते थे, पर इन समूची साधनाओ मे प्रेम को कोई स्थान नही है। प्रेम के विना भक्ति हो नही सकती। और मध्ययुग का यह समूचा कायायोग मूलक सहज मार्ग भक्ति से शून्य है। चौदहवी शताब्दी मे दक्षिण मे भक्ति की प्रेम प्रधान धर्मसाधना उत्तर में पूर्ण रूप मे परिचित हो गई थी। इसी समय ईरान के सूफी साधको की मधुर भाव की साधना भी धीरे-धीरे लोकप्रिय होने लगी। नाथ सिद्धो ने सहज साधना को श्री सुन्दरी साधना के दलदल से निकाल लिया था। परन्तु उसमे वास्तविक प्रेम मूलक सहज साधना का स्वर दक्षिण के आचार्यों और पश्चिम के सूफी साधको के समर्थ के कारण प्रधान हो गया। कबीर ने सहज साधना की जो नई व्याख्या की, उसमे सहज जीवन पर जोर था—

सहज सहज सब कोइ कहै सहज न चीन्है कोइ।
जिन सहजै विषया तजी सहज कही जै सोइ।।
सहज सहज सब कोइ कहै सहज न जानै कोइ।
जिन सहजै हरिजू मिलै सहज कहीजै सोई।

उन्होने नाथ पथियो के घटाटोप प्रधान समाधि के स्थान पर सहज समाधि ग्रहण करने की सलाह दी। सहज समाधि—जो अन्तरतर के परम प्रेममय 'आराध्य' को पहचान लेने के बाद अनायास सिद्ध हो गई है, जो अहेतु आत्मसमर्पण का फल है।

साधो सहज समाधि भली।
गुरु प्रताप जा दिन से उपजी दिन दिन अधिक चली।
जह जह डोलौं सोइ परिकरमा जो कुछ करौ से सेवा।
जब सोवौ तब करौ दण्डवत पूजो और न देवा।
कहूँ सो नाम सुनू सो सुमिरन खाव पियो सो पूजा।
गिरह उजार एक सम लेखौं भाव न राखौं दूजा।
आख न मूदो, कान न रूधो तनिक कष्ट नहिं धारो।
खुले नयन पहिचानौं हसि हसि सुन्दर रूप निहारौं।।

सबद निरन्तर से मन लागा मलिन वासना त्यागी।
ऊठत बैठत कबहू न छूटै ऐसी ताडी लागी।
कह कबीर यह उनमनि रहनी सो परगट करि भाई।
दु ख सुख से कोउ परे परम पद ओहि पद रहा समाई।

पूर्ववर्ती सहज साधनाओ मे अतरस्थित परम प्राप्तव्य को भाव-निरपेक्ष रूप मे ग्रहण करने का प्रयास था, इसीलिए उसमे शुष्कता आ गई और बहक जाने की सम्भावना बनी रही। इस साधना मे भावगृहीत मधुर रूप को पाने का प्रयास था इसलिए इसमे स्थिरता और सरसता दोनो बनी रही। इस परम प्रेममय अन्तरस्थित देवता को पाने के बाद मोह, ममता और आसक्ति अन यास चली जाती है, इसीलिए यह सच्ची सहज साधना है। कबीर ने कहा है—

सहजहिं सहजहि सब गए सुत वित कामिनी काम।
एकैंक ह्वै रमि रह्या दास कबीरा राम।।

ऐसा भक्त अपनेको पतिव्रता सती से तुलनीय मानने लगता है—सती जो सिन्दूर की महिमा और गौरव ही जानती है। सिन्दूर को काजल से नही बदला जा सकता, राम को भी काम से नही बदला जा सकता—

कबीर रेख सदूर की काजल दिया न जाइ।
नैनू रमिया रमि रह्या दूजा नही समाया।।

यही सच्ची सहज साधना है। इस मार्ग का साधक परिपूर्ण प्रेम का आनन्द पाता है। दादू ने कहा है—

दादू सुमिरण सहज का दीन्हा आप अनन्त।
अरस परस उस एक सो खेलै सदा वसन्त।।

सो, यह प्रेम भक्ति मूलक मार्ग ही सहज मार्ग है। यही मधुर भाव की साधना है। इसमे अखण्डानन्द सन्दोह परम प्रिय का प्रेम सहज ही प्राप्य है, वह अन्तर की स्वाभाविक व्याकुलता के मार्ग से अनायास ही, सहज भाव से आ जाता है। भक्तवर दादू दयाल ने बडी मीठी भाषा मे इस तत्त्व को समझाया है—

पीव की प्रीति तो पाइये जो सिर होवे भाग।
यो तो अनत न जाइसी रहसी चरननि लागि।
अनते मन निवारिया रे मोहि एकै सेती काज,
अनत गए दुख उपजै मोहि एकैहि सेती राज रे।।
साइ सो सहजो रमौ रे और नहि आन देव।
तहा मन विलबिया जहा अलख अभेव रे।।
चरन कवल चित्त लाइयां रे भौरे ही ले भाव।
दादू जन अचेत हैं सहजै ही लू आव रे।

इस प्रकार सहजमत की सर्वाधिक हृदयग्राही और सरस परिणति सत साहित्य की सहज भक्ति साधना में हुई है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने अपने 'मध्यकालीन धर्म साधना'[1] मे एक ऐसे सम्प्रदाय की चर्चा की है, जिनका साहित्य अब मिलता नही, परन्तु जो कभी बहुत प्रख्यात रहा है, वह है नीलपटो या नीलाम्बरो का सम्प्रदाय। यो लोग अत्यन्त निचली श्रेणी के भोग परक धर्म का प्रचार करते थे। खाओ, पियो, और मौज करो—यही इनका आदर्श था। पुरुष और स्त्री के जोडे नग्न होकर एक ही नीले वस्त्र मे लिपटे रहते थे। द्विवेदी जी ने अपने उसी प्रबध मे एक स्थान पर इस सम्प्रदाय के सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए लिखा है—राजा भोज की कन्या ने ऐसे ही एक जोडे से धर्म विषयक प्रश्न किया जिस पर 'दर्शनी' ने उपदेश दिया—

पिव खाव च वामलोचने यदतीत वरगामि तन्नते।
नहि भीरु गत निवर्तते सुमदय मात्रमिद कलेवरम्॥

खाओ, पियो, मौज करो। जो बीत गया सो कभी लौट नही सकता। अगर तुमने तप किया और कष्ट उठाया तो वह तुम्हारे लिए बिल्कुल बेकार है, क्योकि वह जो गया सो गया। असल बात यह है कि यह शरीर सिर्फ जड तत्त्वो का सघातमात्र है, इसके आगे कुछ भी नही है।

राजा भोज को जब यह बात मालूम हुई तब उन्होने इस सप्रदाय का उच्छेद कर दिया। खोज-खोज कर नीलपटो के सभी जोडे समाप्त कर दिये गये। इसमें चार्वाकियो और सहजियो का अपूर्व सम्मिश्रण दीखता है।

(घ) वैष्णव सहजिया

बौद्ध सहजिया साधना के क्रम-विकास मे हम यह देख आये है कि किस प्रकार प्रज्ञा और उपाय अथवा शून्यता और करुणा का सम्मिलन ही महासुख की अवस्था है। यह प्रज्ञा और उपाय अथवा शून्यता और करुणा तान्त्रिको का शिवशक्ति ही नामान्तर भेद से है तथा उष्णीश कमल मे 'अवधूतिका' मिलन तत्र के अनुसार सुषुम्ना का सहस्रार मे प्रविष्ट होकर शिवशक्ति सामरस्य है। यह प्रज्ञा और उपाय, शिव और शक्ति, राधा और कृष्ण एक ही तत्त्व है, प्रस्थान भेद से, साधना शैली के भेद से तथा अधिकार भेद से एक ही मूलतत्त्व को भिन्न-भिन्न नाम से अभिहित किया गया है। वैष्णव सहजियो ने प्रेम में परकीया भाव ही लक्ष्य माना। मानवप्रेम के द्वारा ही दिव्यप्रेम की परिकल्पना हुई। प्रेम केवल प्रेम के लिए ही जहा लोक और वेद की शृखला को तोडकर अपने प्रेमास्पद का वरण करता है, वही वह आदर्श है। विवाहिता पत्नी के प्रति चिर सहवास, प्रगाढ परिचय के कारण प्रेम का रस-रहस्य बहुत कुछ नष्टप्राय हो जाता है। उसमें

प्रेम की परकीया रति

---

१ सहज साधना का यह अश 'नाथ संप्रदाय' के आधार पर लिखा गया है।

उतना तीव्र आकर्षण, रहस्य, उत्कठा, आदि का भाव नही रहता, या जितना परकी प्रेम में होता है। स्वकीय मे प्रेम कर्त्तव्य प्रधान, समाज बन्धन का आश्रित, रग मे फीका और रस में उदास हो जाता है। ससार में देखा जाता है कि परकीया मे ही प्रेम अपनी तीव्र उत्कठा, रहस्यमयता और प्रखर आकर्षण के कारण अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है, जो लोकलाज और कुलकानि को तिलाजलि दे देता है। वैष्णव सहजियो ने प्रेम के इस परकीया भाव की तीव्रता को अपनी प्रेम साधना का आदर्श माना।[1] किम्बदन्ती है कि स्वय श्री चैतन्य देव ने सार्वभौम की कन्या 'साठी' के सग सहज साधना की।[2] इतना ही नही, प्राय सभी वैष्णव भक्त कवियो ने किसी-न-किसी कुमारिका के सग मे सहज साधना की। जयदेव, विद्यापति और चण्डीदास को तो छोड ही दीजिये, रूप गोस्वामी ने मीरा के साथ, रघुनाथ भट्ट ने करमा बाई के साथ, सनातन गोस्वामी ने लक्ष्मी हीरा के साथ, लोकनाथ गोस्वामी ने चण्डालिनी कन्या के सग, कृष्णदास गोस्वामी ने ब्रजदेवी पिंगला के साथ, जीव गोस्वामी ने श्यामा नाइन के साथ, रघुनाथ गोस्वामी ने राधाकुण्ड पर मीराबाई के साथ, गोपाल भट्ट गोस्वामी ने गौरीप्रिया के साथ और राय रामानन्द ने देवकन्या के साथ सहज साधना सम्पन्न की।

'आनन्द भैरव' में सहज साधना का उल्लेख

'आनन्द भैरव' में सकेतत यह उल्लेख है कि स्वय शिव विभिन्न शक्तियो के साथ कुचनीस देश मे सहज साधना की और बौद्धसहजिया कहते है कि स्वय भगवान् बुद्ध ने अपनी प्रिया गोपा के साथ सहज साधना की। परकीया भाव मे यह सहज साधना क्या है, इस पर हम आगे विचार करेंगे।

पालो के पतन के पश्चात् सेनो के शासन-काल में बौद्धधर्म का पतन और वैष्णव का उत्थान हो रहा था। राजा लक्ष्मण सेन के राजकवि थे जयदेव। इनका आविर्भाव बारहवी शताब्दी मे उत्तर काल मे हुआ। मिथिला कोकिल विद्यापति, जो चण्डीदास के समकालीन थे, राधाकृष्ण के प्रेम पूरक गीतो के कारण अत्यधिक लोकप्रिय हुए। किम्बदन्ती है कि उन दिनो वैष्णवो की बडी-बडी सभाओ मे स्वकीया भाव और परकीया भाव को लेकर प्रचण्ड शास्त्रार्थ हुआ करते थे और अन्तत स्वकीया पक्ष की ही हरबार हार हो जाती थी। वे अपनी हार को केवल मौखिक रूप मे स्वीकार ही नही करते थे, अपितु लिखकर पर पक्ष को दे भी देते थे।

यहा परकीया रति मे यह सहज साधना क्या है, इस पर कुछ विचार कर लेना आवश्यक है। यह भूल न जाना चाहिए कि यह साधना का मार्ग है भोग का नही—यहां भोग को भी उन्नीत पर साधना का दिव्य मगलमय रूप देना होता है। सहज साधना मे मिथुन सुख को जीतकर उसे अपना वशवर्ती 'दास' बना लेना होता है और फिर उसे दिव्य बनाकर परात्पर प्रेमानन्द विलास

---

१ बग साहित्य परिचय, खण्ड २, पृ० १६५०।

२ चै० च० मध्यलीला, अ० १५

अकिंचन दास—'विवर्त विलास'

का साधन बना लिया जाता है। कृष्ण ही है रस और राधा है रति, कृष्ण है मदन, राधा है मादन। शिव शक्ति की तरह, प्रज्ञा उपाय की तरह राधा और कृष्ण का लीला विलास एव आनन्दोल्लास ही साधक का चरम लक्ष्य है। इसे चरितार्थ करने के लिए उसे यह साधना द्वारा अनुभव करना होता है कि यावत् पुरुष और स्त्री कृष्ण और राधा के व्यक्त रूप हैं और इनका प्रेम और सम्मिलन ही सहजियो की चरम स्थिति है। प्रेम की यह दिव्यधारा अखण्ड भाव से तैलधारावत् विश्व के कण-कण में प्रवाहित हो रही है और इसे साधना के द्वारा उद्घाटित किया जाता है।

अब प्रस्तुत विषय है कि दिव्य प्रेम की यह अजस्र धारा कैसे उद्घाटित होती है और मानव प्रेम का दिव्यीकरण (Divinisation) किस प्रकार होता है। परात्पर तत्त्व की हम तीन रूपो मे भावना कर सकते है—ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्[1]। भगवान् रूप मे कृष्ण की तीन शक्तिया है—स्वरूपा शक्ति, जीव शक्ति या तटस्था शक्ति, और माया शक्ति। भगवान् की स्वरूपा शक्ति मे तीन तत्त्व निहित है—सत्, चित् और आनन्द। सत्, चित् और आनन्द का ही दूसरा नाम सधिनी शक्ति, सवित शक्ति, और ह्लादिनी शक्ति है। राधा ही यह ह्लादिनी शक्ति है।

ब्रह्म, परमात्मा, भगवान्

भगवान् मे ही भोक्ता और भोग्या दोनो भाव सन्निहित है। भोग्या के बिना भोक्ता की स्थिति या आनन्दोल्लास सभव भी कैसे है? राधा चिर भोग्या और कृष्ण चिर भोक्ता है—मूल मे एक, पर लीलाविलास के लिए दो। यह लीला भी तीन प्रकार की होती है—प्रातिभासिक, मायिक, व्यावहारिक। इसका यथास्थान हम विवरण प्रस्तुत करेगे। अभी यह ध्यान रहे कि लीला भोग नही है। विन्दु का जब ऊर्ध्व गमन होता है, तब वह लीला है और अधोगमन होता है, तब वह भोग है। लीला और भोग के बीच का यह असामान्य भेद भूल जाने से ही लीला के हृदयगम मे कठिनाई उपस्थित होती है।

भोक्ता भोग्या

यह लीला वन वृन्दावन, मन वृन्दावन और नित्य वृन्दावन में होती रहती है। वन वृन्दावन मे होती है लीला की आन्तरिक लीला और नित्य वृन्दावन मे जिसे नित्य देश या गुप्त चन्द्रपुर कहते है राधा और कृष्ण की नित्य, दिव्य मनोहारिणी, प्रेम लीला और रास-विलास होता रहता है। यही 'सहज है'। प्रेम साधना से जब प्रेममय प्रभु के प्रेम का एक कण मिल जाता है, तभी साधक इस नित्य लीला में दिव्य भाव मे और सिद्ध देह से प्रवेश पा सकता है। भाव देह और सिद्ध देह क्या है, इसकी चर्चा हम यथास्थान आगे करेंगे।

वन वृन्दावन, मन वृन्दावन, नित्य वृन्दावन

---

१ वदन्ति तत् तत्त्वविद तत्त्व यज् ज्ञानयद्वयम्। ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति उच्यते।
—भागवत—१.२.११.

वैष्णव सहजियो ने नित्य वृन्दावन की नित्य लीला को माना, पर उनकी मान्यता यह है कि नित्य वृन्दावन की राधा कृष्ण की नित्य लीला केवल वन-वृन्दावन की प्रकट लीला के रूप मे ही अवतरित नही होती अपितु प्रत्येक पुरुष मे कृष्ण और प्रत्येक स्त्री मे राधा का अवतार होता है और यह स्त्री-पुरुष के मिलन के रूप मे राधा और कृष्ण की लीला चलती रहती है। प्रत्येक मनुष्य के भीतर जा वास्तविक सत्व है वह कृष्ण ही है और यही मनुष्य का वास्तविक 'स्वरूप' है और उसका बहिर्मुखी जीवन तथा उसके शरीरिक स्थूल कार्य-व्यापार उसका 'रूप' है। और ठीक इसी प्रकार प्रत्येक स्त्री आन्तरिक रूपमे वस्तुत राधा ही है जो उसका वास्तविक स्वरूप है और उसा वाह्यत जीवन व्यापार उसका रूप है। परन्तु इस रूप के अन्दर ही वह स्वरूप रहता है, अतएव प्रत्येक पुरुष और प्रत्येक स्त्री क रूपमे और कोई नही केवल कृष्ण और राधा का ही लीला-विलास चल रहा है।[1] राधा कृष्ण की यह रूप-लीला और स्वरूप-लीला ही क्रमश प्राकृत लीला और अप्राकृत लीला के रूप मे मानी गई है। इस प्रकार प्रत्येक पुरुष को कृष्ण और प्रत्येक स्त्री को राधा रूप मे देखने और अनुभव या भावना करने की यह प्रणाली सहजियो की नई नही है। हम देख आये है कि तन्त्रो ने प्रत्येक पुरुष को शिव और प्रत्येक स्त्री को शक्ति रूप मे तथा बौद्ध दर्शन ने प्रत्येक पुरुष को उपाय और प्रत्येक स्त्री को प्रज्ञा के रूप मे भावना करने का उपदेश किया है।

स्वरूप लीला और रूप लीला

ऊपर हम कह आये है कि कृष्ण ही है रस और राधा है रति, कृष्ण ही है काम और राधा है मादन। कृष्ण काम या कन्दर्प रूप मे जीव-जीव के प्राण को अपनी ओर आकृष्ट करते रहते हैं—'नाम समत कृतसकेत वादयत मृदु वणुम्'। राधा है मादन जा भोक्ता का आनन्द विलास की प्रदात्री है। रस और रति, काम और मादन के बीच जो दिव्य प्रेम की अजस्र धारा प्रवाहित हो रही है वही 'सहज' है।

'सहज'

पुरुष का कृष्ण रूप मे और स्त्री का राधा रूप मे अनुभव या भावना को आरोप की साधना कहत है। निरन्तर शुद्ध चिन्तन और शुद्ध भावना के द्वारा अपने अन्दर के सारे मल-आवरण आदि विकारो को नष्ट कर अपने अन्दर के पशु का बलि देकर साधक सर्वथा पवित्र हो जाय और पुरुष मे कृष्ण की और स्त्री मे राधा की भावना दृढ करे। इस प्रकार भावना दृढ होते-होते जब पुरुष को अपने वास्तविक स्वरूप अर्थात् अपने कृष्णत्व का और स्त्री को अपने राधात्व का अनुभव होने लगे, तब उनका प्रेम साधारण स्त्री-पुरुष का पार्थिव प्रेम न होकर राधा-कृष्ण का दिव्य प्रेम हो जाता है। प्रेम की यह दिव्य अनुभति ही सहज की अनुभूति है।

आरोप साधना

---

१ दे० रति विलास पद्धति—ह० लि० क० वि०, स० ५६४ पृ० १३ अ।
प्रो० शशिभूषण दास गुप्त के Obscure Religious Cults, से उद्धृत।

ऊपर हम कह आये है कि मनुष्य का वाह्य जीवन 'रूप' है और आन्तरिक या आध्यात्मिक जीवन जो शुद्ध 'कृष्णत्व' या 'राधात्व' की स्थिति है 'स्वरूप' है। रूप को इस स्वरूप की प्राप्ति होनी चाहिए तभी हमारे वास्तविक, आध्यात्मिक जीवन का शुभारभ है। स्मरण रखने की बात यह है कि रूप पर स्वरूप के आरोप का अर्थ रूप की सुप्ति नही है, प्रत्युत् रूप के एक-एक कण को स्वरूप के रसबोध से सराबोर करना पडता है। यह मानव शरीर तथा मानव-जीवन व्यर्थ या हेय नही है। महजियो ने इसे बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना है। मानवीय सौन्दर्य की मादकता मे ही साधक को दिव्य सौन्दर्य की झलमल ज्योति का प्रतिबिब मिलता है। दिव्य सौन्दर्य तथा दिव्य प्रेम का अर्थ यह कदापि नही है कि मानवी सौन्दर्य और मानवी प्रेम का तिरस्कार किया जाय। मानवी प्रेम और मानवी सौन्दर्य की शृखला को स्वीकार करते हुए, उसके भौतिक आकर्षण और नशा को मानते हुए ही साधक मन का निग्रह सफलता पूवक कर सकता है और परम दिव्य आनन्द और दिव्य सौन्दय की ओर साधना द्वारा अग्रसर हो सकता है। अभिप्राय यह कि जैसे पारा या गधक शोधा जाता है, उसी प्रकार इस लौकिक मानवी प्रेम और मानवी सौन्दय को शोध कर दिव्य प्रेम और सौन्दर्य की समिद्धि होती है जो अपने-आपमे निरन्तर, अपरिमेय और अनिर्वचनीय है। यह दिव्य प्रेम मानवी प्रेम की परिणति है अथवा यो कहा जाय कि दिव्य प्रेम का जन्म मानवी प्रेम के गर्भ से होता है, ठीक जैसे कीचड मे कमल का। जहाँ ठेठ वैष्णवो ने 'निजेन्द्रिय प्रीति इच्छा' को काम और 'कृष्णेन्द्रिय प्रीतिइच्छा' का प्रेम की सज्ञा दी है, वहाँ वैष्णव सहजियो ने इस भेद को मिटा दिया है। वे कहते है कि दिव्यीकरण के अनन्तर निजेन्द्रिय प्रीति इच्छा और कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छा मे कोई अन्तर नही रहता—निजेन्द्रिय तर्पण और कृष्णेन्द्रिय तर्पण एक ही वस्तु है। स्पष्ट शब्दो मे, उनकी मान्यता है कि प्रेम का जन्म काम से होता है। काम के बिना प्रेम हो नही सकता अस्तु काम का निर्बीज करने की, उच्छिन्न करने की कतई आवश्यकता नही है। सहजियो की दृष्टि मे भगवान् के चरणो मे भक्त की प्रीति का नाम 'प्रेम नही है। प्रेम है राधा और कृष्ण की प्रगाढ प्रीति जो रूप मे स्वरूप के आरोप द्वारा प्रत्येक स्त्री और पुरुष मे उपलभ्य है। इसी मे पुरुष और स्त्री शरीर की चरितार्थता है। इसीलिए यह शरीर और यह जीवन हेय नही है।[1] मनुष्यत्व ही देवत्व की जननी है। प्रेम मे ही मनुष्य देवता बन जाता है, इसीलिए मनुष्य

आरोप तत्त्व

---

१ चण्डीदास का एक गीत है—

शुन हे मानुष भाइ
सबेर उपरे मानुष सत्य
ताहार उपरे नय।

तथा च—

मानुष देवेर सार जार प्रेम जगते प्रचा
जगतेर श्रेष्ठ मानुष जार बलि
प्रेम प्रीति रस मानुष करे केलि॥ —सहजिया गान २७

ही सर्वश्रेष्ठ हुआ, क्योकि उसी मे परात्पर दिव्य प्रेम का अनन्तरस-सागर लहरे मारता है। इस प्रकार मनुष्य से परे देव अथवा भगवान् की सत्ता को सहजिया नही मानते। राधा और कृष्ण को भी देवी-देवता रूप मे ये नही पूजते। इनकी मान्यता यह है कि मानव शरीर मे ही राधा और कृष्ण की उपलब्धि हो सकती है। दिव्य दृष्टि से देखने पर रूप और स्वरूप मे ऐसी अभिन्न अविभेद्य एकता और सघनता है कि उन्हे पृथक किया नही जा सकता। ऐसी दृष्टि खुलने पर मानव और देव मे कोई भेद नही रह जाता। रूप मे स्वरूप उसी प्रकार परिव्याप्त है जैसे पुष्प मे सुगधि। स्वरूप की उपलब्धि रूप के द्वारा ही होती है, इसलिए पूज्य हुआ रूप अर्थात् मानव शरीर। मनुष्य सदा किसी प्रेम मे तडपता रहता है। यह जलन क्यो है और किसके लिए है, वह समझ नही पाता। यह जलन और यह तडप 'प्रेमा' के लिए है, हृदय की रानी के लिए, प्राणो की प्राण के लिए है। दिव्य प्रेम के द्वारा ही पुरुष और स्त्री दिव्यत्व को प्राप्त होते है, परन्तु मानवी प्रेम के द्वारा ही पुरुष-स्त्री मे पावन प्रेम का उदय होता है, जिसमे वे अपने कृष्णत्व और राधात्व की उपलब्धि करते है।

आरोप सहित प्रेम से ही साधक वृन्दावन मे प्रवेश पाता है, स्वरूप का रूप पर आरोप किए बिना मात्र रूप की उपासना सीधे नरक को ले जानेवाली है। सहज साधना का साधक सामान्य रस का मनुष्य नही होता, न वह राग मनुष्य होता है, वह तो अयोनि मनुष्य होता है और क्रमश सहज मनुष्य और नित्य मनुष्य की स्थिति लाभ करता है। इसी प्रकार सामान्य स्त्री इस साधना मे प्रवेश नही पा सकती। यह साधना 'विशेष रति' के द्वारा राधात्व प्राप्त करने पर ही सभव है। अभिप्राय यह कि विशुद्ध रस को प्राप्त मनुष्य अपने कृष्णत्व के द्वारा और विशुद्ध रति को प्राप्त स्त्री अपने राधात्व के द्वारा ही सहज साधना मे प्रवेश पाते है। 'उज्ज्वल नीलमणि' मे श्री जीव गोस्वामी ने रति के तीन भेद माने है— समर्था, समञ्जसा और साधारणी। समर्था मे नायिका नायक को सुख प्रदान करने के लिए ही नायक से मिलती है। वह निःशेष आत्मदान के द्वारा अपने प्रियतम को परम आनन्द देना चाहती है। राधा ही समर्था के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। समजसा रति मे प्रिया प्रीतम की समान सुख कामना होती है जैसे रुक्मिणी आदि। साधारणी रति मे नायिका स्वसुखेच्छया नायक से मिलती है जैसे कुब्जा। सहजियो ने रति के इस वर्गीकरण को स्वीकार किया है और वे मानते है कि एकमात्र समर्था रति ही सहज साधना के लिए वरेण्य है।

रति और रस

प्रेमसाधना की सिद्धि के लिए सहजियो मे बडे ही कठोर नियम एव कृच्छ्र साधना की विधि है। वास्तविक प्रेम सपादन के लिए यह आवश्यक है कि साधक शव हो जाय अर्थात् उसके अन्दर की सारी निम्न वृत्तियाँ और पशु भाव समूल नष्ट हो जाय, जिसमे उसपर दिव्य वृत्तियाँ और दिव्य भाव अपना पूरा रग डाल सके। उसका रूप स्वरूप की ज्योति और रस से ओतप्रोत हो। मतलब यह कि पुरुष अपने पुरुषत्वाभिमान का परित्याग कर जो उसका वास्तविक नारी

प्रेम सिद्धि

स्वभाव है उसे प्राप्त कर ले तब इस साधना मे पैर रखे। इस साधना की कठिनाई को व्यक्त करने के लिए सिद्धो ने कई ऊलटबासियाँ कही है—समुद्र मे स्नान पर रचमात्र भी भीगता नही, साँप के आगे मेढक का नृत्य, मकरी के तार से हाथी बाँधना इत्यादि। सहजियो ने प्रेमसाधना मे साधक की तीन कोटियाँ मानी है—प्रवर्त, साधक, और सिद्ध। इनके लिए पचाश्रय है—नाम, मत्र, भाव, प्रेम और रस। प्रवर्त स्थिति के साधक के लिए नाम और मत्र, साधक स्थिति के लिए, भाव और सिद्ध स्थिति के लिए प्रेम तथा रस। अभिप्राय यह कि सिद्ध अवस्था प्राप्त होने पर ही साधक प्रेम और रस की साधना का अधिकारी होता है। सिद्धि के लिए शरीर और मन दोनो का बलवान् होना नितान्त आवश्यक है। सबल शरीर के बिना सहज साधना असभव है। इसलिए प्रेम साधना मे कायसाधना भी एक अत्यन्त प्रमख अग है। वह 'तत्व' है इस देह मे ही अतएव देह की उपेक्षा कर के उस तत्व की प्राप्ति कठिन क्या असभव है। जो इस भाण्ड (शरीर) को जान जाता है वह ब्रह्माड को जान जाता है। चैत्त रूप ही सहज रूप है और वह शरीर के भिन्न कमलो मे निवास करता है। राधा और कृष्ण का सारा रहस्य इस शरीर के भीतर ही जाना जा सकता है। प्रेम की साधना मे द्वैत का सर्वथा निरसन हो जाता है दो शरीर एक आत्मा—एक शरीर एक आत्मा, दो का एक मे सर्वथा विलयन। प्रेमी और प्रेमास्पद प्रेम मे जब सर्वथा धुल कर 'एकमेक' हो जाते है तभी इस साधना की सिद्धि मानी जा सकती है। चण्डीदास ने गाया है—

पीरिति उपरे पीरित बइसइ
ताहार उपरे भाव
भावरे उपरे भावरे बसति
ताहार उपरे लाभ ।।
प्रेमेरे माझारे पुलकर स्थान
पुलक उपरे धारा
धारार ऊपरे धारर बसति
ए सुख बुझाये कारा ।।
मृत्तिका उपरे जलेर बसति
ताहार उपरे हेउ
ताहार उपरे पीरीति बसति
ताहा को जानाय केउ ।। —चण्डीदास

जब साधक के हृदय मे वास्तविक प्रेम का उदय होता है तब प्रेमास्पद प्रेम का एक प्रतीक मात्र बन जाता है और सारा विश्व अपनी अनन्त गरिमा, रहस्य तथा अपरिमेय सौन्दर्य के साथ प्रेमास्पद के शरीर मे ही घनीभूत होकर स्फुटित हो जाता है, इतना ही नही, वह प्रेमास्पद ही परम सत्य परम शिव और परम सुन्दर का प्रतीक हो जाता है। प्रेम के ऐसे दिव्य आवेश मे चण्डीदास ने 'रामी' को सबोधित करते हुए गाया है—

तुमि हउ पितृ मातृ, तुमि वेदमाता गायत्री ।
तुमि से मत्र तुमि से तत्र
तुमि से उपासना रस ।

अर्थात् तुम्ही हो मेरी माता, पिता, तुम्ही हो वेदमाता गायत्री
तुम्ही से है सारे तत्र-मत्र और तुम्ही हो उपासना रस का मल उत्स ।

प्रेम साधना मे यही है आनन्द की वह स्थिति, जिसे तैत्तिरीयोपनिषद् ने ब्रह्म से अभिन्न कहा है तथा यह माना है कि इसीसे सबकी उत्पत्ति हुई, इसीसे सबका पोषण होता है तथा इसी मे सबका अभिसवेश होता है ।[1]

---

१ आनन्दो ब्रह्मेति व्याजानात्। आनन्दाद्धेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्द प्रयन्त्यभिसविशन्तीति।

—तै० उ० ३.६

चौथा अध्याय

सिद्ध देह और लीला-प्रवेश

यह स्मरण रखना होगा कि इस भौतिक स्थूल देह, विषयासिक्त मन, बहिर्मुखी बुद्धि तथा मलिन अन्त करण से भगवान की मधुर लीला मे प्रवेश नही होता। वैधी भक्ति के एकादश अगो—शरणापत्ति, गुरुसेवा, श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसवा, अचना, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन के साधन मे जब शरीर, इन्द्रियो और मन के द्वारा पूर्णत एक मात्र प्रभु की उपासना[1] होने लगती है तब वह वैधी साधन भक्ति कहलाती है। वैधी साधना का क्या स्वरूप है इसका प्रकरण यथास्थान आगे आयगा। अभी यहा इतना अभीष्ट है कि वैधी साधना को सागोपाग सम्पन्न कर चुकने के अनन्तर ही साधक का रागानुगा भक्ति मे प्रवेश होता है। 'रागानुगा' के अनन्तर है रागात्मिका भक्ति जो मधुर रसमयी है और जिसमे केवल ब्रज की गोप-कन्याओ का प्रवेश है। इन ब्रजवासिनी गोप-कन्याओ की प्रीतिमयी भक्ति का जिनके द्वारा अनुगमन होता हो वही है रागानुगा। ब्रजभाव की प्राप्ति के लाभ का ही नाम है 'रागानुगा'। ब्रजभाव की लिप्सा से ब्रजलोकानुसारत ब्रज सवन मे रागानुगा की उपलब्धि होती है। इस प्रकार की साधना मे सखी भाव या राधा भाव मे स्थित होकर उसी प्रकार की लीला, वेश और स्वभाव का आचरण करते हुए आनन्दोल्लास मे मग्न रहना चाहिए। पहले हम कह आये है कि रागानुगा मे स्मरण ही मुख्य साधन है। स्मरण की प्रगाढता मे ही उसमे विशेष सफलता मिलती है।

प्रवेशाधिकार

---

१ 'कायषीकान्तकरणाना उपासना'

२ विराजन्ती अभिव्यक्त व्रजवासी जनादिषु
रागात्मिकामनुसृता या सा रागानुगोच्यते॥

—जीव गोस्वामी।

३ विश्वनाथ चक्रवर्ती का कथन है—
व्रजलीला परिकरास्था शृगारादि भावमाधुर्ये श्रुते इद ममापि भूयात्
इति लोभोत्पत्तिकाले शास्त्रयुक्तयापेक्षा न स्यात्॥

४ 'रागानुगाया स्मरणस्य मुख्यताम्।

इसीसे भावयोग द्वारा साधक का भगवान् से मिलन होता है और इसी ही 'आतर मिलन' (Mystic Union with the Beloved) कहा जाता है।' भाव की तीव्रता मे साधक केवल वृन्दावन लीला का साक्षात्कार नही करता, अपितु इसमे सखी भाव से प्रवेश कर इस लीला-विलास का आस्वादन भी करता है। रागानुगा भक्ति का आदर्श है व्रजवासियो की रागात्मिका भक्ति की उपलब्धि। रागात्मिका के कई रूप है—(१) कामजन्य जैसे गोपियो का, (२) द्वेष जन्य जैसे कस का, (३) भयजन्य जैसे शिशुपाल का, (४) स्नेहजन्य जैसे यादवो का। रागात्मिका मे सिद्ध देह से नित्य धाम मे लीलास्वादन होता है। दीक्षा मे अष्ट सखियो मे से किसी एक की लाइन मे मजरी के द्वारा प्रवेश होता है। रागात्मिका मे मजरी ही गुरु है। सिद्ध देह की अभिप्राप्ति परे मजरी के द्वारा ही सखी देह प्राप्त होता है। सखी देह का कायव्यूह ही श्री राधा जी है। रागात्मिका के दो भेद है—(१) कामरूपा (२) सबधरूपा। कामरूपा का अर्थ है सभोग-तृष्णा। यह सभोगतृष्णा एक मात्र श्री कृष्ण को सुख पहुँचाने के लिए है—'कृष्ण सौख्य-यैकव केवल उद्यम' और इसकी परिणति व्रजदेवियो की प्रीति मे होती है। 'कामानुगा' का भाव है 'केलितात्पर्यवती सभोगेच्छा' केलि के लिए सभोगेच्छा। कुब्जा की रति कामप्राया है, कामरूप नही।

---

१ As the little water drop poured into a large measure of wine seems to lose its own nature entirely and to take on both these taste and colour of the wine, or as the iron heated red-hot loses its own appearance and glows like fire or as air filled with sunlight is transformed with the same brightness so that it does not so much appear to be illuminated as to be itself light so must all human feeling towards the Holy one be self dissolved in unspeakable wise and wholly transfused into the will of God —D Dilgendo Deo C 10

२ **विश्वनाथ चक्रवर्ती ने अपने 'रागवर्त्मचन्द्रिका' मे रागानुगा का बडे विस्तार से वर्णन किया है और उदाहरण स्वरूप यह बतलाया है कि महाप्रभु श्री चैतन्य देव का जब अवतार हुआ तब उनके साथ ही कई गोपियाँ उनके सखा के रूप मे अवतीर्ण हुईं, उदाहरणार्थ—**

रूप मजरी	—	रूपगोस्वामी के रूप में
लावण्य मजरी	—	सनातन गोस्वामी के रूप मे
रति मजरी	—	रघुनाथदास के रूप में
गुण मजरी	—	गोपाल भट्ट के रूप मे
विलास मजरी	—	जीव गोस्वामी के रूप मे
रस मजरी	—	रघुनाथ भटट के रूप में

सबध रूपा रति मे माता, पिता या मित्र के रूप मे श्रीकृष्ण से सबध होता है—जैसे नन्द, यशोदा, गोप।

भावभक्ति की प्राप्ति साधन भक्ति के परिपाक से होती है। यह कृष्ण-कृपा वा कृष्ण-भक्त कृपा से प्राप्त होती है। इसीलिए इसके तीन भेद किये गये है—साधनाभिनिवेशजा, (२) कृष्णप्रसादजा (३) कृष्णभक्तप्रसादजा। भाव भक्ति मे अभी भाव रसदशा तक नही पहुँचा है। परन्तु भावभक्ति किसी वाह्य प्रयत्न से साधित नही होती। शुद्ध सत्व विशेष से ही इसकी स्फूर्ति होती है और प्रेम की प्रथम छवि है—'प्रेम्ण प्रथम छविरूप'। भावभक्ति से 'रुचि' के द्वारा चित्त मसृण हो जाता है। यह 'रुचि' ही भगवत्प्राप्ति की अभिलाषा जगाती है और परिणाम यह होता है कि अनुभावो का स्फुरण होने लगता है—जैसे शान्ति, अव्यर्थकालता, विरक्ति, मान-शून्यता, आशाबन्ध, समुत्कण्ठा, नामगान मे रुचि, भगवद्गुण-व्याख्या मे आसक्ति, भगवान् के वासस्थल मे प्रीति।

भावभक्ति

भावभक्ति के परिपाक से उत्पन्न होती है प्रेमाभक्ति। भाव जब सान्द्रात्मा-प्रेम की स्थिति मे पहुँच जाता है तब प्रेमाभक्ति का उदय होता है। इसमे हृदय सर्वथैव सम्यक् प्रकारेण मसृण हो जाता है और अनन्य ममता का आविर्भाव होता है। यह साधना भक्ति मे हो, रागानुगा मे हो या भावभक्ति मे हो, परन्तु होता है भगवत्प्रसाद से ही। यह प्रसाद 'केवल' निर्हेतुक हो सकता है या माहात्म्य ज्ञान से हो सकता है। इसमे 'केवल' प्रसाद रागानुगा मे प्राप्त होता है और माहात्म्य ज्ञानजन्य प्रसाद वैधी मार्ग मे होता है। इसका क्रमविकास यो होता है—श्रद्धा साधुसग, भजन क्रिया, अनर्थनिवृत्ति, निष्ठा रुचि, आसक्ति भाव और अन्त मे प्रेम।

प्रेमाभक्ति

प्रेम के मूल मे है 'इच्छा'—भक्त की इच्छा भगवान से मिलने की और उधर भगवान् की इच्छा भक्त से मिलने की। भक्त के मन मे मिलन की इच्छा उठते ही भगवान् के मन मे भी मिलन की इच्छा जाग्रत हो जाती है। उनकी इच्छा सर्वसमर्थ है और उसी के द्वारा मिलन सभव होता है। इसीलिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से परे यह प्रेम ही पचम पुरुषार्थ माना गया है। कारण यह है कि मधुर भाव के बिना अखण्ड और सकोचहीन मिलन असभव है।

प्रेम ही परम पुरुषार्थ

---

१ आदौ श्रद्धा तत सगस्ततोऽथभजन क्रिया।
ततोऽनर्थनिवृत्ति. स्यात्ततो निष्ठारुचि स्तत ॥
अथासक्तिस्ततो भावस्तत· प्रेमाभ्युदञ्चति।
साधकानामय प्रेम्ण प्रादुर्भावे भवेत् क्रम ॥

—भक्तिरसामृत सिन्धु

सखी भाव में प्रवेश

व्रजभाव अथवा सखी भाव मे प्रवेश करने के पूर्व दो बाते आवश्यक है—उपासक परिस्मृति और उपास्य परिस्मृति। उपासक परिस्मृति मे ग्यारह भाव है। (१) सबध, (२) वयस, (३) नाम, (४) रूप, (५) यूथ, (६) वेश, (७) आज्ञा, (८) वास, (९) सेवा, (१०) पराकाष्ठा श्वास एव (११) पाल्यदासी भाव। इनमे सबध-भाव ही प्राप्ति की आधारशिला है। सम्बन्धकाल मे श्रीकृष्ण के प्रति जिसका जो भाव होता है तदनुरूप ही उसका चरम लाभ होता है।

सबध-भाव

कृष्ण से प्रभु भाव मे सबध करने पर साधक उनका दास हो जाता है, सखा भाव से सम्बन्ध करने पर उनका सखा, पुत्रभाव से सबध करने पर उनका पिता-माता, स्वकीय पति भाव मे सम्बन्ध करने पर वनिता हो जाता है। व्रज म शान्त रस तो है नही, दास्य भी सकुचित है। उपासक की स्वाभाविक रुचि के अनसार ही सम्बन्ध स्थापित होता है जिनका श्रीकृष्ण के प्रति स्त्रीत्व भाव मे परकीया रस मे रुचि है वे व्रजवनेश्वरी के अनुगत होकर रसास्वादन करते है। वह ऐसा मानते है कि मै श्री राधिका की परिचारिका हू और श्रीराधारानी मेरी जीवनेश्वरी है। सुतरा राधावल्लभ ही हमारे प्राणेश्वर है। यह तो सम्बन्ध भाव के सबध मे हुआ।

वयस्

अब 'वयस' के सबध मे यह निवेदन है कि श्रीकृष्ण के साथ हमारा जो भी सम्बन्ध है उसमे एक अपूर्व स्वरूप का उदय होगा—यह स्वरूप है व्रजललना-स्वरूप। उसमे सेवा के उपयुक्त स्वरूप की अत्यन्त आवश्यकता है। अस्तु, किशोरवयस् ही वास्तविक वयस है। दस वर्ष से सोलह वर्ष तक 'किशोर' है। सोलह वर्ष की अवस्था ही नव सधि है। व्रजललनाएँ नित्य किशोरी है कारण कि उनमे बाल्य, पौगण्ड, एव वृद्धावस्था का आविर्भाव कदापि नही होता। इसलिए इस रस का साधक अपनेको किशोरी रूप मे भावना करे।'

नाम

इसके अनन्तर है नाम भाव। व्रजरानी की परिचारिका की परिचारिका का सम्बन्ध ज्ञात होते ही सखी रूप का जो नाम है, वही साधक का नाम हो जाता है। साधक की रुचि देखकर गुरु जो नाम दे दे, वही साधक का नित्य नाम है। नाम द्वारा ही साधक व्रजललनाओ के समीप 'मनोरम' होता है। उसकी रुचि के अनुसार प्रिया, लता, अली, सखी, कला आदि नाम उसे प्राप्त होते है।

---

१ आत्मान चिन्तयेत्तत्र तासा मध्ये मनोहराम्।
रूपयौवनसम्पन्ना किशोरीं प्रमदाकृतिम्॥

—सनत्कुमार तत्र

'रूप' के सम्बन्ध मे लक्ष करने की बात यह है कि रूप-यौवन सम्पन्न किशोरी हो जाने पर रुचि के अनुसार ही गुरुदेव सिद्ध रूप का निर्णय करते है। अचिन्त्य चिन्मय रूप विशिष्ट हुए बिना श्री राधारानी की परिचारिका कौन हो सकता है?

रूप

किस 'यूथ' मे साधक का सखी रूप मे वरण हुआ है, यह जानने के लिए यह जानना होगा कि श्रीमती राधिका ही यूथेश्वरी है। राधिका की अष्ट सखियो मे से किसी एक के यथ मे रहना होगा। ललिता, विशाखा, चन्द्रावली आदि किसी सखी के यूथ मे सम्मिलित होकर उसी की आज्ञा मे श्रीराधामाधव की सेवा की जाती है।

चन्द्रावली आदि सखिया राधामाधव के लीला सम्पादन के लिए निरन्तर यत्नवती रहती है और विपक्ष-पक्ष होकर रसवृष्टि करने के लिए वही वह भाव ग्रहण करती है। वस्तुत स्वय श्रीराधिकाजी ही यूथेश्वरी है और श्रीकृष्ण की विचित्र लीला की अभिमानिनी है। जिनकी जो सेवा है उनका वही 'अभिमान' है। जो सवा मिली है, उस सेवा के उपयोग नानाविध गुणा को धारण करने का आदेश गुरुदेव देते है।

यह आज्ञा दो प्रकार की है—नित्य और नैमित्तिक। करुणामयी सखी जो नित्य सवा की आज्ञा दे उसे निरपेक्ष होकर अष्टकाल मे जहा जो आवश्यक हो निर्भ्रान्त होकर करना उचित है। बीच-बीच मे समय और प्रयोजन के अनुसार भी सेवा मिलती रहती है।

वास

व्रज के किस ग्राम मे वास होना चाहिए, गोपी होकर कहाँ जन्म हुआ किस गाव मे विवाह हुआ किस कुण्ड के पास किस कुज मे रहना आदि के सबध मे गुरुदेव का आदेश होता है।

'सेवा' मे जो यूथेश्वरी की आज्ञा हो वही करना होता है जो श्रीराधिकाजी की ही सवा मे लीन रहती है। कृष्ण यदि ऐसी सखी के प्रति रति का प्रकाश करे तो उसे स्वीकार नही करना चाहिए, क्योकि राधिका जी की दासी का ऐसा करना अनुचित है।

सेवा

राधिका की अनुमति के बिना कृष्ण-सेवा स्वतन्त्र होकर नही करना चाहिए। इसी का नाम है सेवा। श्री राधा की अष्टकालीन सेवा ही दासी के लिए कर्त्तव्य है। 'पाल्यदासी' का अर्थ है—जो गाढ प्रेमरस से परिप्लुत होकर प्रियता द्वारा प्रागल्भ्य लाभ कर लेती है अर्थात् 'धृष्ट' हो जाती है और प्रति दिन क्रम से प्राणप्रिय राधाकृष्ण का लीला-विहार कराती है और वैदग्ध क्रम से अपनी सखी श्री राधिका के रसपूर्वक मान की शिक्षा देती है। वही श्री ललिता अपना पाल्यदासी बना ले, यही साधक की कामना होती है।[1]

---

१ सान्द्रप्रेमरसै प्लुता प्रियतया प्रागल्भ्यमाप्ता तयो
प्राणप्रेष्ठ वयस्ययोरनुदिन लीलाभिसगक्रमै ।
वैदग्ध्येन तथा सखीं प्रति सदा मानस्य शिक्षा रसै ।
येऽय कारयतीह हन्त ललिता गृह्णातु सा मा गणै ।। ---व्रजविलासस्तव श्लोक २९

सेवा में ताम्बूलरचना, चरणमर्दन, पय दान, अभिसारादि कार्य के द्वारा श्री राधा जी को नित्यतुष्ट रखना ही मुख्य है।

श्री राधाकृष्ण के प्रणय लक्षित कौतुक की पात्री बनना, संगीत वाद्य के द्वारा उनका मनोरंजन करना यह भी सेवा मे सम्मिलित है। राधिका के शृंगार की पुष्टि के लिए सपत्नी भाव मे स्थित सौभाग्य, गर्व, विभ्रम प्रभृति गुणा की गुणवती के साथ श्री कृष्ण कुछ क्षणा के लिए क्रीडा करते है, यह सौभाग्य केवल चन्द्रावली जी को प्राप्त है।

सिद्ध देह क्या है ?

यह सिद्ध देह न तो अस्थि-मास-रक्तमय जड देह है और न साख्य प्रोक्त सूक्ष्म और कारण देह ही है। यह है दिव्यानन्द चिन्मय रस प्रतिभावित नित्य शुद्ध सुचारु समुज्ज्वल परम सुन्दरतम सच्चिदानन्दमय रस विग्रह। वैष्णव साधना के क्षेत्र मे इस सच्चिदानन्दरसमय मूर्ति को 'मजरी' कहते है। ये सखियो की अनुमति के अनुसार श्री राधामाधव की सेवा मे नियुक्त रहती है और परमानन्द का अनुभव करती है। इनका यह देह नित्य शुद्ध, नित्य सुन्दर, नित्य मधुर, नित्य नव सुषमा सम्पन्न और नित्य समुज्ज्वल रहता है। इस पर देश-काल का कोई प्रभाव नही पडता। इस मार्ग मे साधना की परिपक्व स्थिति मे इस सिद्ध देह की स्वयमेव स्फूर्ति हुआ करती है। पाँच भौतिक देह छूट जाती है, पर यह सच्चिदानन्द रसविग्रहमयी व्रज सुन्दरियां भगवान के प्रेमधाम मे स्फूर्ति प्राप्त करके श्री युगल स्वरूप की सेवा मे नित्य नियुक्त रहती है।

अष्ट सखी, अष्ट मजरी के नाम, वर्ण, वस्त्र, वय, दिशा, सेवा

इस साधना के क्षेत्र मे तथा भगवान् श्री राधामाधव के प्रेमधाम मे भगवान् श्री वृन्दावनेश्वर तथा श्री वृन्दावनेश्वरी, उनकी अष्ट सखी और अष्ट मजरियो के नाम वर्ण, वस्त्र, वय तथा सखी और मजरियो की दिशा और उनकी सेवा इस प्रकार मानी गई है।

दिशा	नाम	देह का वर्ण	वस्त्र का रग	वयस	सेवा
	श्री नन्दनन्दन श्यामसुन्दर	इन्द्रनील मणि	नीला	वर्ष मास दिवस १५ ६ ७	
	श्री मती राधिका रामश्वरी	तपाया स्वर्ण	पीला	१४ २ १५	
			सखी		
उत्तर	श्री ललिता	गोरोचन	मयूरपिच्छ	१४ ३ १२	ताबूल
ईशान कोण	श्री विशाखा	बिजली	तारावर्ण	१४ २ १५	वस्त्रादि
पूर्व	श्री चित्रा	काश्मीर	काच वर्ण	१४ १ ४	चित्र
अग्निकोण	श्री इन्दुलेखा	हरिताल	दाडिमपुष्प	१४ २ १२	अमृतासन
दक्षिणनै ऋत्य	श्री चम्पकलता	चम्पापुष्प	चीलवर्ण	१४ २ १४	चवर

कोण	श्री रग देवी	पद्मकिंजल्क	जवापुष्प	१४ २ ८	चन्दन
पश्चिम	श्री तुगविद्या	काश्मीर	पाण्डुवर्ण	१४ २ २०	गानवाद्य
वायव्य कोण	श्री सुदेवी	पद्मकिंजल्क	जवापुष्प	१४ २ ८	जल

मजरी

उत्तर	श्री रूप मजरी	गोरोचन	मयूरपिच्छ	१३ ६ ०	ताबूल
ईशानकोण	श्री मजुलीला मजरी	तप्तस्वर्ग	किंशुक पुष्प	१३ ६ ७	वस्त्र
पूर्व	श्री रस मजरी	चपा पुष्प	हमवर्ण	१३ वर्ष	चित्र
अग्निकोण	श्री रति मजरी	बिजली	तारावर्ण	१३ २ ०	चरणसेवा
दक्षिण	श्री गुण मजरी	बिजली	जवापुष्प	१३ २ २७	जल
नैऋत्यकोण	श्री विलास मजरी	स्वर्ण केतकी	भ्रमरवर्ण	१३ ० २६	अजन सिदूर
पश्चिम	श्री लवग मजरी	बिजली	तारावर्ण	१३ ६ १	माला
वायव्यकाण	श्री कस्तूरी मजरी	स्वण वर्ग	काचवण	१३ वर्ष	चन्दन

इन सखियो और मञ्जरियो के नाम, सेवा आदि मे व्यतिक्रम भी माना जाता है। जैसे श्री सुदेवी जी के देह का वण उद्दीप्त स्वर्ण के समान भी माना गया है—'प्रोत्तप्त शुद्ध कनकच्छवि चारुदेहाम्'। प्रधान अष्ट मञ्जरियो के नाम मे भी अन्तर माना गया है। उपर्युक्त सूची के स्थान पर ये नाम भी मिलते है—

(१) श्री अनङ्ग मञ्जरी, (२) श्री मधुमती मञ्जरी, (३) श्री विमला मञ्जरी, (४) श्री श्यामलता मञ्जरी, (५) श्री पालिका मञ्जरी, (६) श्री मङ्गला मञ्जरी, (७) श्री धन्या मञ्जरी, (८) श्री तारका मञ्जरी। इनमे से प्रत्येक के अनुगत दो-दो मञ्जरियाँ अथवा प्रिय नम सखियाँ क्रमश इस प्रकार है—(१) श्री लवङ्ग मञ्जरी, (२) श्री रूप मञ्जरी, (३) श्री रस मञ्जरी, (४) श्री गुण मञ्जरी, (५) श्री रति मञ्जरी, (६) श्री मृदु मञ्जरी, (७) श्री लीला मञ्जरी, (८) श्री विलास मजरी, क (९) श्री विलास मञ्जरी, ख (१०) श्री केलि मञ्जरी, (११) श्री कुन्द मञ्जरी, (१२) श्री मदन मञ्जरी, (१३) श्री अशोक मञ्जरी, (१४) श्री मञ्जुलीला मञ्जरी, (१५) श्री सुधा मञ्जरी, (१६) श्री पद्म मञ्जरी। प्रधान अष्ट सखियो का क्रम भी कही-कही ऐसा माना गया है—श्री रग देवी, श्री सुदेवी, श्री ललिता, श्री विशाखा, श्री चम्पकलता, श्री चित्रा, श्री तुग विद्या, श्री इन्दु लेखा, अथवा श्री ललिता, श्री विशाखा, श्री चम्पकलता, श्री इन्दु लेखा, श्री तुग विद्या, श्री रङ्गदेवी, श्री सुदेवी, श्री चित्रा। सखियो एव मञ्जरियो की सख्या इतनी ही नही है। ये तो मुख्य आठ-आठ है। सिद्ध देह मे मञ्जरियो की स्फूर्ति और तद्रूपता प्राप्त हो जाती है।

कुछ और सखियो और मजरियो के नाम

यह परमगोपनीय साधन राज्य का विषय है। यह स्मरण रहे कि इस राजमार्ग मे रति, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव—ये आठ स्तर माने गये है। इनमे रति प्रथम है और यह रति तभी मानी जाती है जब कि इस लोक और परलोक के समस्त भोगो से तथा मोक्ष से भी सर्वथा विरति होकर केवल भगवच्चरणाविन्द मे ही रति हो गई हो। साधक के चित्त मे केवल एक ही भावना दृढ होकर बद्धमूल हो जाय कि इस लोक मे, परलोक मे सर्वत्र सर्वदा और सर्वथा एक मात्र श्रीकृष्ण ही मेरे है और श्रीकृष्ण के सिवा मेरा और कोई भी, कुछ भी, किसी काल मे भी, नही है। अतएव यहा दूसरी वस्तु मात्र तथा तत्त्व का अभाव हो जाता है, तब काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ईर्ष्या और असूया आदि दोषो के लिए तो कल्पना ही नही की जा सकती। ये तो साधक देह मे ही समाप्त हो जाते है। सिद्ध देह मे तो सत्य निरन्तर श्रीकृष्णानुभव के अतिरिक्त और कुछ रहता ही नही। अस्तु,

ऊपर हम कह आये है कि इस भौतिक देह से लीला मे प्रवेश नही हो सकता, उसके लिए चाहिए भाव देह और सिद्ध देह। नाथ साधना, बौद्ध साधना, रसेश्वर साधना, ईसाई और सूफी साधना मे इस सिद्ध देह की चर्चा है, हाँ, प्रक्रिया और लक्ष्य मे भेद है। अस्तु, देह दो प्रकार का है—साधक देह और सिद्ध देह। साधक देह से साधन होता है और सिद्ध देह से रस का सवेदन और लीला का आस्वादन। साधक देह भी मातृगर्भ से उत्पन्न प्राकृत देह नही है। कुछ लोग भाव देह और सिद्ध देह मे भेद मानते है और कुछ लोग अभेद। सामान्यत पहले साधक देह को प्राप्त करना चाहिए, फिर सिद्ध देह को या पहले भावदेह, तब सिद्ध देह। व्यक्तिगत अनुभूति के आधार पर युक्ति का प्रयोग भिन्न-भिन्न महात्माओ ने भिन्न-भिन्न ढङ्ग से किया है, पर भेद-अश हटाकर देखने पर यह पता चलेगा कि कोई भेद नही है।

साधक-देह और सिद्ध-देह अथवा भाव-देह और सिद्ध-देह

सबसे पहले हे प्राकृत देह। इसके तीन भेद—स्थूल, सूक्ष्म और कारण। किसी-किसी मत मे इस कारण देह को महाकारण देह मे परिवर्तन करना ही साधना का लक्ष्य है। कुछ लोगो की मान्यता है कि कारण देह शुद्ध है इसे ही भाव देह बना देना चाहिए। साख्य कारण देह नही मानता। कारण देह आनन्दात्मक है, पर है अज्ञानात्मक। कारण की निवृत्ति होने पर ही महा कारण का आविर्भाव होता है। उपासना, योगाभ्यास या नाम साधन के द्वारा 'स्वभाव' की प्राप्ति के लिए चेष्टा होनी चाहिए। गुरुकृपा का आश्रय लेकर किसी भी साधना का अवलम्बन कर के अविद्या माया से निवृत्त हो जाना चाहिए। मन्त्र-साधना, जपादि वैध कर्म से 'स्वभाव' की प्राप्ति होती है।

प्राकृतदेह और उसके भेद स्थूलदेह, सूक्ष्मदेह, कारण देह महाकारणदेह

---

१ सेवा साधक रूपेण सिद्धरूपेण चात्रहि।
तद्भावलिप्सुना कार्या व्रजलोकानुसारत.॥ —सकल्प कल्पद्रुम

'स्वभाव' का अर्थ स्पष्ट रूप मे जानना यहाँ प्रसङ्गत आवश्यक है। स्वभाव का अर्थ है प्रत्येक जीव का वैशिष्ट्य। प्रत्येक जीव अपना वैशिष्ट्य लेकर आता है। यह वैशिष्ट्य ही है उसका 'स्व-भाव' अथवा भाव। स्वभाव की प्राप्ति मे अपने स्वरूप मे परिवर्तन हो जाता है। ज्ञानमार्ग से जो सम्बन्ध भगवान् से है उसका परिणाम 'एकता' की प्राप्ति है, पर भक्तिमार्ग मे साधन करनेवाले को 'भेद' की प्राप्ति होती है—वैशिष्ट्य या स्वभाव के कारण। उपनिषद् कहते है—'परज्योति रुपसम्पद्य ब्रह्मणा सह एकीभूत्वा स्वभावो प्राप्ति' अर्थात् पर ज्योति का सम्पादन कर साधक ब्रह्म के साथ 'एकता' प्राप्त कर लेता है और तब उसे स्वभाव की प्राप्ति होती है। ब्रह्मज्ञान के द्वारा निज स्वभाव खुल जाता है। प्रकाश सब वस्तु को अपना स्वरूप प्रदान कर देता है यही उसका धर्म है। अन्धकार मे सब एकाकार हो जाता है। आवृत स्वभाव को ज्ञान अनावृत कर देता है। भगवान् के साथ जो सम्बन्ध होता है वह स्वभाव को लेकर ही। स्वरूप जाने बिना भगवान् से सम्बन्ध क्या?

'स्वभाव'

भाव देह का अर्थ है स्वभाव-देह स्वरूप देह, जिससे जीव चिन्स्वरूप मे भगवान् से खेलता है। भावदेह ही भक्तिदेह है, चन्द्रमा की भाँति शीतल ज्ञान-देह प्राप्त होने पर पतन हो सकता है यद्यपि ज्ञान तब भी रहता है पर रहता है अज्ञान से आवृत। परन्तु भाव-देह से भगवत्प्रीति का ही सम्पादन होता है और वह नष्ट नही होता। भाव देह की प्राप्ति के पूर्व परभाव की निवृत्ति हो जाना चाहिए। अविद्या के हट जाने पर ही स्वभाव खुल जाता है। स्वभाव साकार है, पर उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव अलग है। गुरु का प्रयोजन यही है कि वे बाहरी आवरण हटाकर शिष्य के 'स्वभाव' का खोज देते है। विधि-निषेध तक ही गुरु का प्रयोजन है। अविद्या-माया का आवरण हटते ही गुरु का प्रयोजन शेष नहीं रह जाता। भावमार्ग गुरुगम्य नही है। भाव-देह प्राप्त हो जाने पर स्वभाव ही 'गुरु' स्वभाव ही शास्त्र तथा स्वभाव का निर्देश ही विधि-निषेध होता है। बाहर से कोई नियन्त्रण करनेवाला नही रहता। गभीर आन्तर राज्य की नीरवता म बाह्य जगत की किसी भी वस्तु का कोई स्थान नही होता। तथापि वहाँ की कोई शक्ति अन्तर्यामी रूप से भीतर रहकर भक्त को परिचालित करती है, इसी का स्वभाव कहते है।

भाव-देह, स्वभाव-देह, स्वरूप-देह

शिशु को जिस प्रकार शिक्षा नही दी जाती कि वह किस प्रकार मा को पुकारे अथवा मा के साथ व्यवहार करे—वह अपने स्वभाव के द्वारा ही नियमित होता है, ठीक उसी प्रकार जो भक्त भाव देह मे शिशु है उसे मातृ-भक्ति सिखानी नही पडती, वह स्वभाव की सन्तान है, स्वभाव ही उसे परिचालित करता है। वह अपने-आप जो करेगा वही उसका भजन है। रागात्मिका

'स्वभाव'

---

१ छान्दोग्य

भक्ति मे वाह्य शास्त्र या वाह्य नियमावली की आवश्यकता नही होती। स्वभाव प्राप्ति के बाद इच्छा का प्रतिभात नही होता। स्वभाव प्राप्ति के बाद आत्म द्विधाकरण (सेल्फ डुप्लिकेशन) की शक्ति प्राप्त हो जाती है।

भाव और प्रेम

भाव का विकास ही प्रेम है। भाव-साधना करते-करते स्वभावत ही प्रेम का आविर्भाव हो जाता है। जबतक प्रेम उदय नही होता, तबतक भगवान् का अपरोक्ष दर्शन नही हो सकता। भाव के उदय के साथ आश्रय तत्त्व की अभिव्यक्ति होती है, परन्तु जबतक प्रेम का उदय नही होता, तब तक विषयतत्त्व का आविर्भाव नही हो सकता। अस्तु, प्रेम की अवस्था ही पूर्णता की अवस्था है।

रस और ज्योति

कमल के विकास के लिए जिस प्रकार एक ओर जलपूर्ण सरोवर और उसके साथ पृथिवी की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार दूसरी ओर ज्योतियुक्त तेजोमण्डल तथा उसके साथ आकाश भी आवश्यक होता है। नीचे रस और ऊपर रवि-किरण, इन दोनो का एक साथ सयोग होने पर कमल स्फुटित होता है अन्यथा स्फुटित नही हो सकता। भाव के विकास के लिए भी उसी प्रकार एक ओर लक्ष्यान्मेष रूप और दूसरी ओर रसोद्गम का मूल कारण स्थायी भाव आवश्यक होता है।

भाव देह, प्रेम देह, सिद्ध देह

खेचरी भाव या अमृत भाव से लक्ष्योन्मेष के साथ-साथ अमृत-क्षरण प्रारम्भ हो जाता है। भाव-सरोवर मे पहले भाव-कलिका के रूप मे प्रकट होता है पश्चात् सूर्य की किरणे उसे प्रेम-कमल के रूप मे विकसित कर देती है। भाव देह, फिर प्रेम देह, फिर सिद्ध देह। भाव देह विरह का देह है प्रेम देह मिलन का और सिद्ध देह मे न विरह है, न मिलन वहा है नित्य अखण्ड लीला-स्वादन।[1]

भगवान् निरन्तर स्वय अपने साथ क्रीडा कर रहे है। वे नित्य है, इसलिए उनकी लीला भी नित्य है। अज्ञान की क्रिया के रहने पर इस नित्य लीला की कल्पना नही की जा सकती। पहले अद्वैत बोध मे स्थित प्राप्त करना आवश्यक है, तब दिखाई देता है कि एक ही नाना रूपो मे सजकर अपने साथ आप ही सर्वदा–क्रीडा कर रहे है। उपनिषद् के शब्दो मे यही है उनकी आत्म रति, आत्म-क्रीडा, आत्म-मिथुन, आत्मरमण।[2] अनन्त प्रकारो मे वह एक ही द्वितीय बनते है

---

१ विशेष विवरण के लिए देखिए––म० म० प० गोपीनाथ कविराज का 'भक्ति रहस्य' शीर्षक लेख 'कल्याण' हिन्दू सस्कृति अक पृ० ४३६-४४४

२ प्राणो ह्येष य सर्वभूतैर्विभाति विजानन्विद्वान्भवते नातिवादी।
आत्मक्रीड आत्मरति क्रियावानेष ब्रह्मविदा वरिष्ठ ॥
––मुण्डकोपनिषद् ३-४

एव अनुरूप रस का आस्वादन करते है। भोक्ता वे है, भोग्य वे है और भोग भी वे ही है—द्वितीय के लिए स्थान नही है, फिर भी अनन्त प्रकारो से द्वितीय का स्वाँग उन्होने रच रखा है। यह कृत्रिम द्वितीय वस्तुत 'एकमेवाद्वितीयम्' है। अद्वैत की एक दिशा है, वह लीलातीत, निरञ्जन, निष्क्रिय है। पृथक् रूप से शक्ति की वहाँ सत्ता ही नही है। सब शक्तियाँ वहाँ तिरोहित है। उस समय वे अपने भाव मे आप ही मगन है, सुषुप्त है। उसकी दूसरी एक दिशा है। वह निरन्तर लीलामय और सक्रिय है। दोनो ही नित्य और दोनो ही सत्य है। भगवान् अनन्त शक्ति-सम्पन्न है, इसी कारण उनकी अनन्त लीलाएँ है। उनकी सभी लीलाएँ स्वरूपत चिन्मय, आनन्दमय और अप्राकृत है। वे एक होकर भी अनन्त है। इसीलिए उनकी क्रीडाओ की इयत्ता नही है। रसरूप से एक होने पर भी वे अनन्त है। इसीलिए उनके रसास्वादन के वैचित्र्य का भी अन्त नही है। स्मरण रखना होगा कि भगवान् की इस नित्य लीला मे सकोच नही है विभाग नही है, द्वन्द्व नही है, अज्ञान नही है। जिसका प्रतीत होना है वह भी लीला का ही अङ्ग है। इस कारण वह भी चिन्मय, अप्राकृत और आनन्दमय है। लीला केवल अभिनय मात्र है। रसास्वादन के बहाने से रङ्गमञ्च मे उसका आयोजन होता है। वे स्वय अपने साथ आप क्रीडा कर रहे है। यह नित्य लीला है। यह सब चिन्मय राज्य का व्यापार है। वहाँ का आभास, विभाग भी चिन्मय है क्योकि अप्राकृत है। निमित्त भी वे ही है उपादान भी वे ही है। कर्ता वे है, कर्म वे है करण वे है, केवल यही नही क्रिया भी वे है, एक चैतन्य रूपी वे विविध स्वाग बनाकर नाना प्रकारो से क्रीडा करते है, अपने साथ आप ही। और सब क्रीडाओ के मध्य मे भी वे लीलातीत रूप से अपनी क्रीडा को स्वय ही देखते है। लीला करते भी वे है, देखते भी वे है अपनी क्रीडा के अतीत भी वे है।[1] वे विश्वमीन है विश्वनय है परमानन्दमय घनीभत प्रकाश स्वरूप है, सब कुछ उनमे अभिन्न रूप से स्फुरित हो रहा है उनसे पृथक कोई ज्ञाता नही है ज्ञान नही है—सब ज्ञान वे है, सम्पूर्ण ज्ञेय भी वे है। एक मात्र वे ही अनन्त विचित्रताओ के साथ सदा और सर्वत्र खेलते और खेलाते प्रतिभासमान हो रहे है। यही उनकी नित्य लीला है।[2]

---

१ तस्य पुनर्विश्वोत्तीर्ण विश्वात्मक परमानन्दमय प्रकाशैकघनस्य एवविध मेवाखिल अभेदेनैव स्फुरित न तु वस्तुत अन्य किंचित् ग्राह्य ग्राहक वा, अपितु स एव यूत्थ। नानावैचित्र्यसहस्रं स्फुरति।

—शक्ति सूत्र

२ देखिये आनन्दवार्ता।

पाँचवाँ अध्याय

अवतारतत्त्व तथा रामोपासना

हमारे देश के अति प्राचीन काल से किसी-न-किसी प्रकार मे अवतारवाद प्रचलित है। ईसाईयो धर्म समाज मे भी (डिसेण्ट ऑव गाड ऐज मैन) अर्थात् नर के रूप मे भगवत्सत्ता का अवतरण होता है—यह सिद्धान्त प्रचलित है। इस्लाम धर्म मे भी प्रकारान्तर से अवतारवाद नही है सो बात नही है। बौद्धो मे, विशेषत त्रिकायवादी महायानी बौद्धो मे निर्माणकाय के रूप मे अवतारवाद ने स्थान ग्रहण किया है। इससे सिद्ध होता है कि एक प्रकार से प्रत्येक धर्म मे अवतारवाद-तत्त्व स्वीकृत हुआ है।

सभी धर्मसाधनाओ में अवतार-तत्त्व

वैष्णव पुराणो तथा शास्त्रों के आधार पर भगवत्स्वरूप के तीन प्रकार माने गये है और वे निम्नलिखित है—

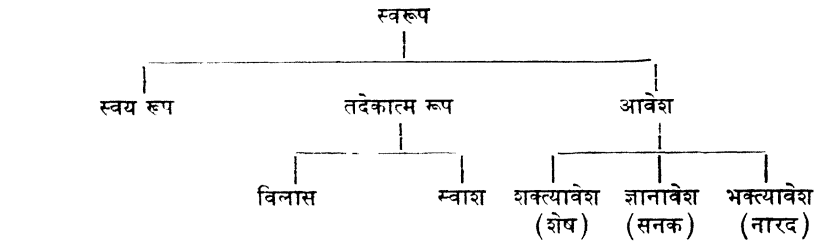

—तुलनीय

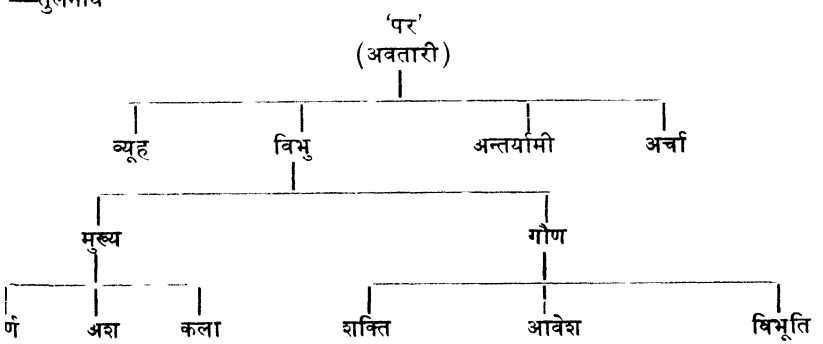

यदि किसी जीव मे विशेष ज्ञान-शक्ति अथवा क्रिया-शक्ति अथवा युगपत् दोनो का सञ्चार देखा जाय तो उसे आवेशावतार कहते है । उदाहरणार्थ--भक्तिशक्ति के अवतार श्री वेदव्यास जी, क्रियाशक्ति के अवतार पृथु जी एव ज्ञानशक्ति के अवतार सनकादिक हुए ।

अवतार के और भी भेद है--पुरुषावतार, गुणावतार, लीलावतार । पुरुषावतार के तीन भेद है--प्रथम पुरुष, द्वितीय पुरुष और तृतीय पुरुष । इन तीनो मे जो महत्तत्त्व का स्रष्टा कारणार्णवशायी, प्रकृति का अन्तर्यामी प्रथम पुरुष है, वह पर-व्योमस्थ सकर्षण का अश है । जो समष्टि विराट् का अन्तर्यामी गर्भोदशायी एव ब्रह्मा का भी रचयिता द्वितीय पुरुष है, वह पर-व्यामस्थ प्रद्युम्नजी का अशावतार है और व्यष्टि विराट् का अन्तर्यामी क्षीरादशायी जो तृतीय पुरुष है वह परव्यामस्थ अनिरुद्ध का अश है ।

अवतार के भेद

पुरुषावतर

सत्त्वगुण के द्वारा उत्पन्न पालन करनेवाले क्षीरोदनाथ विष्णु ही है । रजागुण के द्वारा गर्भादशायी की नाभि से उत्पन्न सृष्टिकर्ता ब्रह्मा है । तमोगुण से सृष्टि के सहारकर्ता शिव का अवतार होता है । किन्तु जो सदाशिव है वे निगुण एव स्वयम्भू विग्रह विशेष है, अत वे गुणावतार शिव के अशी है ।

गुणावतार

सनक-सनन्दन-सनातन-सनत्कुमार, नारद वराह मत्स्य, यज्ञ नर-नारायण, कपिल देव, दत्तात्रेय हयग्रीव, हस पद्मिणगभ, ऋषभदेव, पृथु, नृसिह कम धन्वन्तरि, मोहिनी वामन, परशुराम, रघुनाथ व्यास, बलदेव, कृष्ण, बुद्ध कल्कि प्रभृति लीलावतार कहे जाते है । प्रत्यक कल्प मे यह सब-के-सब अवतीर्ण होते है अत इनको कल्पावतार भी कहा जाता है ।

लीलावतार

चौदह मन्वन्तर अवतारो के नाम है--यज्ञ विभु सत्यसेन, हरि, वैकुण्ठ, अजित, वामन सार्वभौम, ऋषभ, विश्वक्सेन, धर्मसेतु, सुदामा, योगेश्वर, बृहद्भान ।

मन्वन्तरावतार

सतयुग त्रेता आदि चारो युगो मे क्रम से शुक्ल, रक्त श्याम और कृष्ण ये चार युगावतार होते है ।

युगावतार

पूर्वोक्त इन सब प्रकार के अवतारो मे कोई आवेश, कोई प्राभव, कोई वैभव, कोई परावस्थ नाम से अभिहित होते है । सनकादि, नारद और पृथु आदि 'आवेशावतार' है । मोहिनी, धन्वन्तरि, हस, ऋषभ, व्यास, दत्तात्रेय, शुक्ल प्रभृति प्राभव है । प्राभव की अपेक्षा जो अधिक शक्ति के प्रकाशक है, उनको 'वैभवावतार' कहते है--वे है मत्स्य, कूर्म, नर-नारायण, वराह, हयग्रीव, पृत्निगर्भ, बलभद्र, यज्ञ आदि । वैभवो की अपेक्षा भी जो अधिक शक्ति के प्रकाशक है उन्हे 'परावस्थ' कहते है । वे है--नृसिह, श्रीराम, श्रीकृष्ण ।

स्वयरूप मुख्य रूप है। यह अन्य रूपो की अपेक्षा नही करता, स्वत सिद्ध है। निखिलानन्द सन्दोह स्वय रूप भगवान् वही है जिन्हे योगी, ज्ञानी, सिद्ध खोजते रहते है। भगवान् का यह देह चिन्मय है आनन्दमय है। भक्त भगवान् के जिस रूपरस का पान करता है, वह केवल सौन्दर्य, माधुर्य, लावण्य, सौकुमार्य आदि का सार ही नही है, अपितु षड् ऐश्वर्य यश श्री आदि का भी एक मात्र आश्रय है।

स्वय रूप

तदेकात्म रूप भी मूलत और स्वभावत सर्वथा स्वय रूप के समान है, परन्तु आकृति, वैभव, चरितादिक के कारण भिन्न दीखता है। इसकी अभिव्यक्ति (क) विलास के द्वारा हो सकती है जो शक्ति मे प्राय स्वय रूप के समान है—'प्रायेणात्मसम शक्त्या' जैसे नारायण जो पर वासुदेव के विलास है या (ख) स्वाश रूप मे जो शक्ति मे अपेक्षाकृत न्यून है, जैसे मत्स्य, वराह, सकर्षण आदि। स्वय भगवान् मे ६४ कला, भगवान् मे ६०, परमात्मा मे ५६ और जीव कोटि मे ५० कलाएँ होती है।

तदेकात्म रूप

किसी महापुरुष मे जब शक्ति, ज्ञान या भक्ति के द्वारा भगवान् का आवेश होता है तब उसे आवेशावतार कहते है। शक्तावेश के उदाहरण है शेष, ज्ञानावेश के सनकसनन्दन और भक्त्यावेश के नारद। ये रूप मायिक नही है, ये नित्य रूप है। द्विभुज का चतुर्भुज हो जाना उसी का प्रकाशमात्र है।

आवेश

अवतार का हेतु विश्वकार्य ही है। 'विश्वकार्य' का अभिप्राय है 'महत्' के उत्पादन के कारण जब प्रकृति मे क्षोभ होता है, उसका उपशमन अथवा दुष्टो के विमर्दन के द्वारा देवादिको का सुख-विवर्द्धन। गीता मे भगवान् कहते है कि जब-जब धर्म की ग्लानि होती है और अधर्म का अभ्युत्थान होता है, तब-तब मै अपने आप को मनुष्य रूप मे सृष्ट करता हूँ।[1]

अवतार के सामान्य और विशेष हेतु

---

१ **अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।**
प्रकृति स्वामधिष्ठाय सभवाम्यात्ममायया ॥
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसस्थापनार्थाय सभवामि युगे युगे ॥
जन्म कर्म च मे दिव्यम् .. ..

—गीता,अ० ४, श्लो० ६, ७, ८

गोस्वामीजी ने भी इसे अपने 'राम-चरितमानस' मे ज्यो-का-त्यो ले लिया है और कहते हैं कि जब जब धर्म की हानि होती है और अधर्म अभिमानी राक्षसो की अभिवृद्धि होती है तब-तब भगवान् मनुज रूप धारण करते है।[१]

परन्तु यह तो अवतार का सामान्य हेतु है। विशेष हेतु है—भक्तो मे प्रेमानन्द का विस्तार करना और विशुद्ध भक्ति का प्रचार करना तथा अपने भक्तो को लीला-रसास्वादन का सुख प्रदान करना।[२]

अवतारो के भेद प्रभेद

अवतार भिन्न-भिन्न रूपो मे प्रकट होते है परन्तु उनके तीन मुख्य भेद है—(१) पुरुषावतार—प्रथम अवतार है जो निर्गुण होते हुए भी सगुण साकार हो जाता है। पुरुषावातार के तीन स्तर है—

क—यज्ञतत्व के सृष्टिकर्ता अर्थात् सकर्षण कारणोदकशायी। इन्हे प्रथम पुरुष कहते है।

ख—अण्डमस्थित अर्थात् प्रद्युम्न, गुणोदकशायी। ये निखिल ब्रह्माण्ड अर्थात् समस्त सृष्टि के अन्तर्यामी है। इन्हे द्वितीय पुरुष कहते है।

ग—सर्वभूतस्थित अर्थात् अनिरुद्ध, क्षीरोदकशायी अर्थात् व्यष्टि के अन्तर्यामी। इन्हे तृतीय पुरुष कहते है।

---

१ **हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थ कहि जाइ न सोई॥**
राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहि सयानी॥
जब जब होइ धरम के हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहि बरनी। सीदहिं बिप्रधेनु सुरधरनी॥
तब तब प्रभुधरि विविध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

असुर मारि थापहि सुरन्ह राखहि निज श्रुति सेतु।
जग विस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु॥

सोई जस गाइ भगत भव तरही। कृपासिधु जनहित तनु धरहीं॥

—श्रीरामचरितमानस बा० का० दो० १२१

अपने जन के लिए ही भगवान् अवतार लेते हं, यह गोस्वामी जी स्वत स्वीकार करते हं। अपने जन के लिए का सीधा अर्थ है—अपने जन की रक्षा करने के लिए, उसको प्यार देने के लिए, उसका प्यार पाने के लिए।

२ **समुत्कण्ठिताना साधकाना प्रेमानन्दविस्तारण विशुद्ध भक्ति प्रचारणच—लघु भागवतामृत।**
स्वलीलाकीर्त्तिविस्तारात् भक्तेष्वनुजिघृक्षया। अस्य जन्मादि लीलाना प्राकट्यहेतुरुत्तम॥

—ब्रह्माण्डपुराण

इसका अर्थ यह है कि प्रकृति और पुरुष के सयोग से ही सृष्टि होती है। सयोग के बाद पुरुष की यह बुद्धि होती है कि मै एक हू बहुत हो जाऊँ। इसी बुद्धि को महत्तत्त्व कहते है। जो पुरुष इस बुद्धि के कर्ता है, वे ही प्रथम पुरुष है। फिर समष्टि रूपा सृष्टि के जो अन्तर्यामी है वे है द्वितीय पुरुष। जब सृष्टि विन्यास हो चुका होता है और एक बहुत हो चुका होता है और अब उसमे पृथक्त्व या अहकार भाव का उदय हो चुका होता है। इसी पृथक्त्व के अन्तर्यामी भगवान् को तृतीय पुरुष कहते है।[1] इस प्रकार—

प्रथम पुरुष, द्वितीय पुरुष, तृतीय पुरुष

सकर्षण अहकार के अधिष्ठातृ देवता
वासुदेव चित्त के अधिष्ठातृ देवता
प्रद्युम्न बुद्धि के अधिष्ठातृ देवता
अनिरुद्ध मानस के अधिष्ठातृ देवता

(२) गुणावतार—गुणावतार गुणानुसार अवतार है जैसे सत्त्वगुण से युक्त अवतार विष्णु, रजोगुण से युक्त अवतार ब्रह्मा और तमोगुण से युक्त अवतार शिव है।

(३) लीलावतार—श्रीमद्भागवत मे इनकी सख्या २४ है—(१) चतु सन (सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार) इनका ज्ञान और भक्ति के प्रचार के लिए अवतार हुआ है। (२) नारद (सात्वत तन्त्र के रचयिता), (३) वराह (चतुष्पाद, कुछ के मतानुसार द्विपाद भी), (४) मत्स्य, (५) यज्ञ, (६) नरनारायण, (७) कपिल, (८) दत्तात्रेय, (९) हयशीर्ष, (१०) हस, (११) ध्रुवप्रिय अथवा पृत्निगर्भ, (१२) ऋषभ, (१३) पृथु, (१४) नृसिंह, (१५) कूर्म, (१६) धन्वन्तरि, (१७) मोहिनी, (१८) वामन, (१९) परशुराम, (२०) राघवेन्द्र, (२१) व्यास, (२२) बलराम और कृष्ण, (२३) बुद्ध और (२४) कल्कि। इनके अतिरिक्त कल्पावतार भी है जो प्रति कल्प मे आते है।

प्रत्येक १४ मन्वन्तरो पर एक अवतार होता है जो इन्द्र के शत्रुओ का सहार करके देवताओ का मित्र हो जाता है। वे है क्रमश —(१) यज्ञ, (२) विभु, (३) सत्यसेन, (४) हरि, (५) वैकुण्ठ, (६) अजित, (७) वामन, (८) सार्वभौम, (९) ऋषभ, (१०) विष्वक्सेन, (११) धर्मसेतु, (१२) सुधामन्, (१३) योगेश्वर, (१४) बृहद्भानु। इनमे हरि, वैकुण्ठ, अजित और वामन प्रवर अर्थात् श्रेष्ठ और मुख्य अवतार है।

मनवन्तर अवतार

---

१ दे० महामहोपाध्याय श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती विरचिता 'भागवतामृतकणिका'।

चारो युगो मे एक-एक युगावतार होते है। सत्ययुग मे शुक्लवर्ण के, त्रेता मे रक्तवर्ण के, द्वापर मे श्याम वर्ण के और कलिकाल मे कृष्णवर्ण के। आवेश, प्राभव, वैभव और परत्व भेद से प्रत्येक कल्प मे ये अवतार चार प्रकार के हो जाते है। अशा-

युगावतार

वतार के उदाहरण ऊपर दिय जा चुके है। सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार, नारद पृथु आदि औपचारिक अशावतार है। भगवान् इनमे प्रवेश कर अवतार कोटि तक पहुँचा देते है। यह उत्क्रमण (Ascent) का मार्ग हुआ। प्राभव और वैभवावतार मे मोहिनी, हम, शुक्ल आदि है जो अपना कार्य समाप्त कर अन्तर्हित हो गय। इनके दूसरे प्रकार मे धन्वन्तरि, ऋषभ, व्यास, कपिल आदि शास्त्रकार है। वैभव अवतार मे कूम, मत्स्य, नर-नारायण वराह, हयशीष, पृष्णिगभ, बलराम आदि १४ मन्वन्तर अवतार है। इन अवतारो के अपने-अपने विशिष्ट लोक भी है, जैसे कूम का महातल, मत्स्य का रसातल, नर-नारायण का बदरी द्विपाद वराह का महलोक, चतुष्पाद वराह का पाताल, हयशीष का तलातल, पष्णिगभ का ब्रह्मा के जनलोक के ऊपर, बलराम का श्रीकृष्ण के साथ उन्ही के लोक मे—वैकुण्ठ का स्वर्गलोक, अजित का ध्रुव लोक त्रिविक्रम का तपोलोक और वामन का भुव लोक। परन्तु ये सभी अवतार परव्योम या महा वैकुण्ठ के नीचे वाले लोको मे ही रहते हैं।

परवस्था का अथ है सम्पूर्णावस्था। इस अवस्था मे अवतार षडैश्वय सम्पन्न एव पूर्णतम होते है। ये है नृसिह, राम और कृष्ण। राम अयोध्या और महावैकुण्ठ मे रहते है। पद्म-

पूर्णावतार

पुराण के अनुसार राम = नारायण लक्ष्मण = शेष भरत = चक्रसुदर्शन, शत्रुघ्न = पाचजन्य। पुराणो के अनुसार कृष्ण चार स्थानो मे रहते है। व्रज मथुरा, द्वारिका और गोलोक। भगवान् की सोलह कलाए उनकी सोलह शक्तिया है। उनके नाम है—श्री, भू कीर्ति, इला, लीला, कान्ति विद्या विमला उत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशाना और अनुग्रहा।

अवतार तत्त्व का मूल सिद्धान्त

अवतार तत्त्व के मूल मे यह सिद्धान्त है कि एक रूप मे अपने नित्यधाम मे नित्य विहार होता है तथा दूसरे रूप मे जगत्प्रवृत्ति होती है। ऊपर जो कुछ लिखा गया है, उसका सारांश यह है कि (१) परमात्मा एक होते हुए भी अपने को अनेक रूपो मे प्रकट कर सकते है। उनके सभी रूप पूर्ण, सत्य, सनातन और केवलैक-बुद्धिगम्य है।

---

१ दे० विष्णुधर्मोत्तर, भागवतपुराण पद्मपुराण।

२ द्रष्टव्य —

अह वहामीह गति तदीया
रूपद्वय नित्यमतोऽस्य विष्णो।

(२) अवतार नित्यरूप है, मायिक नही।

(३) सभी अवतार सच्चिदानन्द-विग्रह है—उसमे परात्पर ज्ञान, परात्पर सत्ता और परात्पर आनन्द का समवाय है और मोक्ष देनेवाले है।

(४) कुछ अवतार मनुष्य रूप मे होते है और कुछ मे मानुषी चेष्टा होती है।

(५) अवतारो का 'मानुषी तनु' भी दिव्य है [illegible] भी नही होना।

(६) 'मानुषी तनुमाश्रित' होने पर भी अवतार मे दिव्य शक्तियाँ और दिव्य पूर्णत्व है और इसलिए अतिमर्त्य लीला मे पूर्णत समर्थ है।

(७) कुछ अवतार भूतकाल मे हुए, परन्तु नित्य होने के कारण वे आज भी पूज्य ही है। प्रत्येक अवतार की विशिष्ट देह-लीला होती है और उनका अपना विशिष्ट लोक भी होता है।

(८) अवतार भगवान् के अश है—इस अर्थ मे कि इस धरातल पर आने के साथ ही वे अपने दिव्य अथ च पूण रूप मे अपने निज धाम मे विराजमान रहते है।

(९) अवतार का मुख्य हेतु है—विश्व का कल्याण तथा प्रेम का आस्वादन और भक्ति का प्रचार।

वैसे तो अवतारो की सख्या अनेक है परन्तु इनमे दस अवतार ही मुख्य है और इनमे भी राम और कृष्ण की प्रधानता है। ये दोनो ही विष्णु के अवतार है और इनका महत्त्व परम प्राचीन एव अत्यन्त व्यापक है। इसमे मुख्य हेतु इनकी 'मानवीयता' ही है। मानवीय रस की प्रचुरता के कारण ही राम और कृष्ण की उपासना बहुत ही पुरानी और अपेक्षाकृत अधिक व्यापक है। रामावतार का महत्त्व भी बहुत अधिक रहा है। भगवान् रामचन्द्र सदा दुष्टदमनकारी और मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप मे चित्रित हुए है। १५वी शताब्दी के परवर्ती साहित्य मे राम के लीला-गान की प्रथा चली, परन्तु इस लीला मे भी भगवान् श्री रामचन्द्र का दुष्ट दमनकारी और सन्त-हितकारी रूप ही मुख्यत लक्ष्य रहा, उनका मर्यादा पुरुषोत्तम रूप कथमपि म्लान नही हुआ, परन्तु शनै -शनै १६वी शताब्दी के बाद के साहित्य मे भगवान् राम का चरित्र भी भक्तो के लीला-विहार का साधन बनता और माधुर्य-भावना से ओत-प्रोत होता गया। यहा तक कि १८वी शताब्दी के बाद के राम-साहित्य मे प्रणय-विलास और रासलीला का अत्यन्त विशद एव व्यापक विन्यास हुआ और प्रेमी भक्तो की एक धारा-सी छूट पडी जो भगवान् राम की परम प्रेमास्पद, परम प्रिय-तम के रूप मे उपासना करने लगे और इस प्रकार रामावत सम्प्रदाय मे भी, कृष्ण भक्ति शाखा

मानवीय रस

एकेन नित्य नियतो विहार-
स्तथा द्वितीयेन जगत्प्रवृत्ति। ——हसविलासे, ४७ उल्लासे।

शृणुतेऽह प्रवक्ष्यामि विष्णो रूप द्विधामतम्।
नित्य विहार एकेन चान्येन सृष्टि रेव हि॥
——आदि पुराण १०।१६

की भाँति, मधुर भाव की उपासना का रूप खुल कर उन्मुक्त एव उद्दाम रूप मे, सामने आया। मानवी तनु का आश्रय लेने के कारण भगवान् की मानवी लीला का रसास्वादन सहज रूप मे किया जा सकता है और मनुष्य की भाँति ही मिलन-विरह, सुख-दु ख, हर्ष-विषाद, आविर्भाव और अन्तर्धान के कारण मानव-मन को इन लीलाओ ने विशेष रूप से मोहित किया और रस-सिक्त किया है और फलस्वरूप हमारा ९९ प्रतिशत काव्य साहित्य इन्ही दो अवतारो को लेकर रचा गया है।

भगवान् राम की लीला मे माधुर्यभाव का प्रवेश क्यो और कैसे हुआ? इसका विचार हम आगे करेगे परन्तु इस सम्बन्ध मे ध्यान रहे कि यहाँ माधुर्य मे भी पूरी मर्यादा है। अस्तु

अवतारवाद में वैज्ञानिक विकासवाद

बहुत-से लोग अवतारवाद मे वैज्ञानिक विकासवाद का ही समर्थन करते है। पहले जल-जन्तु (मत्स्यादि) फिर जल-थल मे रहनेवाले (कच्छपादि) फिर केवल स्थलवासी (वराहादि) फिर अर्ध पशु अर्ध मनुष्य (नृसिंह) फिर मनुष्य का लघु रूप (वामन) फिर दर्पमय क्षत्रियत्व (परशुराम) और बाद मे मनुष्यत्व का पूर्ण विकास और हमे राम-कृष्ण तथा बुद्ध के मानव अवतारो के दर्शन होते है। इसके अतिरिक्त शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक अर्थों मे भी दशावतारो का वर्णन है। अवतारो मे श्रीकृष्ण की पूजा सबसे प्राचीन मानी गई है। जैकोबी का कथन है कि पहले इनकी पूजा एक जातीय वीर पुरुष (नेशनल हीरो) के रूप मे होती थी। उसके बाद वैदिक काल के अन्त मे कृष्ण आभीरो के एक जातीय देवता के रूप मे पूजे जाने लगे। गोपाल कृष्ण और वासुदेव कृष्ण जो पहले अलग-अलग थे, अब एक ही व्यक्तित्व मे केन्द्रित हो कर पाञ्चरात्र धर्म के प्रधान आराध्य देव बन गय। महर्षि पतञ्जलि के महाभाष्य मे कृष्ण और अर्जन का उल्लेख मिलता है। पतञ्जलि ने कृष्ण का उल्लेख केवल एक वीर क्षत्रिय के रूप मे ही नही, वरन् दैवी शक्ति सम्पन्न महापुरुष के रूप मे किया है[५]।

बूलर के मतानुसार जैन धर्म के बहुत पहले ही (ई० पू० आठवी शताब्दी) मे इस धर्म का उदय हो चुका था। तैत्तरीय अरण्यक एव छान्दोग्य उपनिषद् मे (छठी सदी ईसा पूर्व) कृष्ण का उल्लेख आ चुका है। चौथी शताब्दी मे मेगास्थनीज ने इन्ही का हरि कृष्ण (Heracles)

---

१ द्रष्टव्य—पुरान्स इन दि लाइट आव माडर्न साईन्स। पृ० २०९-२१३

२ The Early History of the Vaisnava Sect D Hemchandra Ray Choudhury Chapters on Vaisnavism and Vasudeva The Life of Krishna Vasudeva Pages 10-118

३ महाभाष्य—५, ३, ९५।

४ महाभाष्य—४, ३, ९८।

५ तद्वैतद्घोर आगिरस कृष्णाय देवकीपुत्रायोक्त्वोवाचापिपास एव स बभूव, छा० ३, १७, ६।

के नाम से अभिहित किया है, और ये दोनों ही मथुरा में पूजित थे जहाँ कि मथुरा नगरी (Methora) बसी है और जहाँ से यमुना नदी (Gaborias) बहती है। भाण्डारकर ने स्पष्टत श्रीकृष्ण से सात्वत जाति का सम्बन्ध होने से इस धर्म का नाम 'सात्वत धर्म' माना है।[1] यह सात्वत धर्म ही 'भागवत् धर्म' कहलाया। 'भागवत' का अर्थ है भगवान् का भक्त। ई० पू० १४० में तक्षशिला में ग्रीक सम्राट् अन्तियल्किदास (Antialkidas) का प्रतिनिधि हिलियोगस और भागभद्र तथा विदिशा के राजा अपने नाम के साथ 'भागवत' उपाधि का व्यवहार करते थे। इनके द्वारा भगवान् वासुदेव के मन्दिर तथा गरुडध्वज स्थापित करने का उल्लेख उस समय के बैसनगर के लेखों में मिलता है। तीसरी से पाँचवी शताब्दी तक गुप्त सम्राट् भागवत धर्म के उपासक थे। इन्हीं के समय श्रीमद्भागवत पुराण तथा श्रीविष्णु पुराण आदि की रचना मानी जाती है। अपनी मुद्राओं एवं ताम्रपत्रों में वे अपने नाम के सामने 'परम भागवत्' उपाधि बड़े गर्व के साथ लिखते थे। मालव, मगध, कन्नौज, गौड, तथा गुजरात में इस धर्म का विशेष प्रचार हुआ। भगवद्गीता के समय श्रीकृष्ण वासुदेव की 'परम पुरुष' के रूप में उपासना हो रही थी। घोसुण्डी में मिले हुए शिलालेखों में वासुदेव और संकर्षण के लिए 'पूजा शिला' और 'नारायण वाटिका' निर्माण करने का उल्लेख है। इससे प्रकट होता है कि उस समय पाँचरात्र पद्धति स्थापित हो चली थी जिसमें वासुदेव के चतुर्व्यूहों की पूजा प्रचलित थी। अब भागवत धर्म ही 'पाँचरात्र' के नाम से पुकारा जाने लगा था। पाँचरात्र का सामान्यत अर्थ है 'पुरुष' द्वारा पाँच रात्रियों तक यज्ञ आचार। तदनन्तर 'पुरुष' और 'विष्णु' एक हो गये और तब श्रीकृष्ण वासुदेव और नारायण में एक रूप होकर भागवत धर्म या पाचरात्र के प्रधान आराध्य देव बन गये। मैकनिकल ने 'इण्डियन ऐंटिक्विटी' नामक अपने ग्रन्थ के पृष्ठ ६५ पर लिखा है कि श्रीकृष्ण पूजा का प्रभाव बौद्धधर्म एवं जैनधर्म पर अत्यन्त स्पष्ट है।

राम कथा की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में बहुत लोगों का सन्देह है। अवश्य ही राम भक्ति कृष्ण भक्ति की अपेक्षा आधुनिक है।[2] ऋग्वेद में राजा 'इक्ष्वाकु' का नाम आया है। इसी प्रकार अथर्ववेद में भी 'इक्ष्वाकु' शब्द एक बार आया है। वैदिक साहित्य में 'दशरथ' का बस एक बार उल्लेख मात्र मिलता है। ऋग्वेद की एक दानस्तुति में अन्य राजाओं के साथ-

---

१ भाण्डारकर—इण्डियन एण्टीक्वेरी।

२ देव देवस वासुदेवस गरुडध्वजो कारितो हिलिउडोरेन भागवतेन दिवसपुत्रेण तखसीलकेन।
—इपिग्राफिया इण्डिका वोल्युम० १०

३ जर्नल आव दि रायल एशियाटिक सोसायटी १८७७ पार्ट १ पृ० ७८।

४ यस्यं इक्ष्वाकुरूप व्रते रेवानमारय्येधते (जिनकी सेवा में प्रतापवान् और धनवान् इक्ष्वाकु की वृद्धि होती है।)

५ त्वा वेद पूर्व इक्ष्वाको य १९ ३९ ९

साथ दशरथ की भी प्रशसा की गई है।[1] परन्तु 'राम' शब्द का व्यवहार ऋग्वेद मे एक प्रतापी राजा के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।[2] इसी प्रकार वैदिक साहित्य मे सीता का नाम दो स्थलो पर उपयुक्त हुआ है। समस्त वैदिक साहित्य मे सीता ऋषि की अधिष्ठात्री देवी है। तैत्तरीय ब्राह्मण मे 'सीता सावित्री' सूर्य की पुत्री है। सीता का उल्लेख ऋग्वेद की एक ऋचा मे हुआ है—

इन्द्र सीता निगृहणातु ता पूषा न यच्छतु।
सा न पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरा समाम्॥

ऋ० अ० ३, अनु० ८ ४ ८

यहाँ सीता के साथ इन्द्र शब्द आया है। कुछ लोगो का अनुमान है कि इन्द्र का ही नाम राम था। गृह्य सूत्रो मे राम और सीता का जहाँ - जहाँ उल्लेख है वहाँ सीता हल से बनी हुई पक्तियो का नाम है और राम पानी बरसानेवाले इन्द्र देवता का नाम है। सीता इन्द्र की भार्या है।[4] अभिप्राय यह कि ऋग्वेद से लेकर अथर्ववेद के कुछ मन्त्र ऐसे है, जिनमे सीता की देवी रूप मे प्रार्थना की है। यथा—

सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव।
यथा न सुमना असो यथा न सुफला भुव॥
घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भि।
सा न सीते पयसाभ्याववृत्स्वोर्जस्वती घृतवत्पिन्वमाना॥

हे सीते! हम तेरी वन्दना करते है। सौभाग्यवती! अपनी कृपा दृष्टि से हमारी ओर अभिमुख हो जिससे तू हमारे लिए हितकारिणी होवे और जिससे तू हमारे लिए सुन्दर फल देने वाली होवे। घी और मधु से सानी हुई सीता विश्व मे देवताओ और मरुतो मे अनुमोदित होवे।

---

१ चत्वारिशद्दशरथश्च क्षोणी सहस्रस्याग्रे श्रेणि नयन्ति। —ऋग्वेद १ १२६ ४

२ प्र वहुशीमे वृषवाने वने प्रण्ये वोचमसुरे ये युक्तवाय पचशतास्मयु यथा मघवत्सु विश्राव्येषाम्।
—ऋग्वेद १० ९३ १४

३ तैत्तिरीय ५ २ ५ ५।

४ यस्या भावे वैदिकलौकिकाना भूतिर्भवतिकर्मणाम्।
इन्द्रपत्नीमुपह्वये सीता सा मे त्वनपायिनी भूयात्कर्मणि कर्मणि स्वाहा।
—पारस्कर्य गृह्यसूत्र ११, १७, ३

इन्द्र पत्नी सीता का मैं आह्वान करता हूँ जिसके तत्त्व में वैदिक और लौकिक दोनो प्रकार के कार्यों की विभूति निहित है। वह सीता सब कार्यों में मेरी सहायता किया करे।

५ अथर्ववेद १७, ८, ६।

हे सीते ! ओजस्विनी और घी से सींची हुई, तू दूध के साथ हमारे पास विद्यमान रह। महाभारत में राम-कथा विद्यमान है। द्रोणपर्व में सीता का उल्लेख कृषि की अधिष्ठात्री देवी एवं सब बीजों को उत्पन्न करनेवाली के रूप में हुआ है।[1] हरिवंश में दुर्गा की एक स्तुति है जिसमें कहा गया है, 'तू कृषकों के लिए सीता है यथा प्राणियों के लिए धरणी। श्रीमद्भागवत् पुराण तथा श्री विष्णु पुराण में राम कथा है, परन्तु उसका सम्यक् मूल्यवर्धित रूप श्रीमद्वाल्मीकि रामायण में ही मिलता है, फिर भी, यहां, सीता अयोनिजा हैं और उनका पृथ्वी में ही तिरोधान हो जाता है जो वैदिक सीता के व्यक्तित्व से प्रभावित है।[2]

रामोपासना का क्रम-विकास

अब हम यहाँ यह देखना चाहते हैं कि रामोपासना का क्रमविकास किस प्रकार हुआ तथा किस-किस काल में किस-किस भाव की मुख्यता रही है।[3] भगवान के साथ दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं मधुर भावों में किसी भी भाव से युक्त या सम्बन्धित होने पर उस भाव की रसात्मक अनुभूति का नाम 'भक्ति' है। दूसरे शब्दों में यह भगवान के प्रति 'परमप्रेम' एवं 'परानुरक्ति' है। भक्ति भक्त और भगवान् के बीच मधुर लीला-विलास है। भक्त के हृदय में भगवान् के लिए और भगवान् के हृदय में भक्त के लिए जो वासना, रति या वेदना है उसी का नाम है भक्ति। यह वेदना अथवा मिलन की वासना भगवान में भी है और भक्त में भी। अस्तु, जब एकान्त में भक्त और भगवान् परस्पर लाड लड़ाते हैं और हृदय से हृदय लगाकर प्राण से प्राण मिलाकर दो 'एक' हो जाते हैं और फिर आनन्द-विलास के लिए दो हो जाते हैं उसी को सामान्य भाषा में भक्ति कहते हैं। यह कहना कठिन है कि भक्त और भगवान में कौन है प्रेमी और कौन है प्रेमास्पद। दोनों ही परस्पर प्रेमी और प्रेमास्पद हैं, दोनों ही के हृदय में विरह की व्यथा है मिलन की तीव्र अभिलाषा है और विरह का यह एक निमिष सहस्र कल्पों की तरह दीर्घ लगता है।

परमात्मा में ही यह सृष्टि विस्तार है। मूलतः वही एक है उसकी इच्छा हुई अनेक हो जाऊं। उसकी इसी वासना से यह सारा प्रपंच विस्तार हो गया। अस्तु, एक से दो हुआ और

---

१ **मद्राजस्य शल्यस्यध्वनाग्रे भिशिखामिव।**
सौवर्णीं प्रतिपश्याम सीताभप्रतिमा शुभाम्॥
सा सीता भ्राजते तस्य रथमास्थाय मारिष।
सर्ववीजविरूढेव यथा सीता श्रिया वृता॥ ——महाभारत, द्रोण पर्व, ७ १०५ १८-१९

२ **कर्षकाणां च सीतेति**
भूतानां धरणीति च। हरिवंश २ ३ १४

३ **स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते। स द्वितीयमैच्छत् स हैतावानास यथा स्त्रीयुवासौ सपरिष्वक्तौ स इममेवात्मानं द्वेधातापयत्तत पतिश्च पत्नी चापपता तस्मादिदमर्धवृगलमिव स्व इति।** ——वृहदारण्यक ४, ३

दो से अनेक। परन्तु अनेक के मन-प्राण मे पुन अपने उद्गम उसी 'एक' मे मिलन और मिलकर सर्वथा मिल जाने, उसी मे समा जान की लालसा अत्यन्त उत्कट और अदम्य है और यही है जीव-जीवन की एकमात्र साध। 'हस' की 'परम हस' से मिल कर कुरेल करने की अदम्य लालसा ही जीव को यहाँ, इस मिट्टी की काया मे, बेचैन किये रहती है। अस्तु।

आर्य जाति ने आरम्भ स सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड मे 'ईशावास्यमिद सव' 'सव खल्विद ब्रह्म', 'नेहनानास्ति किचन' 'वासुदेव सवमिति 'तत्वमसि' की दिव्य भावना का ग्रहण किया और मत्रकाल मे भी इन्द्र, वरुण, यम, अग्नि, वायु आदिदेवो मे एक ही ब्रह्म का साक्षात्कार किया।[1] यह निर्विवाद है कि 'सुख' के लिए ही उपासना का आरम्भ हुआ। वह सुख प्रारभ मे ता लौकिक 'अभ्युदय' का दृष्टि मे रखता था, तदनन्तर उसमे पारलौकिक 'नि श्रेयस्' भी आ गया। दु ख की आत्यन्तिक निवृत्ति और परमानन्द की अभिप्राप्ति ही उपासना की प्रेरक भावना रही है। धीरे-धीरे उसमे लोकोपकार अथवा लोकहित की भावना भी सम्मिलित हो गई और यज्ञयाग का प्रवतन हुआ। अस्तु सुख का 'लाभ', दु ख का भय' और स्वामी के उपकार के प्रति 'कृतज्ञता' का भाव ही पूजा का कारण हुआ। इसीलिए आरम्भ मे हृदय पक्ष का पूज्य के साथ पूरा योग नही था। लोभ भय और कृतज्ञता के साथ साथ विशिष्ट मानव हृदय मे मनन और भावुकता की भी प्रवृत्ति विद्यमान थी और इसी का परिणाम है ऋग्वेद का पुरुषसूक्त। भगवान् का 'सहस्र शीर्षा पुरुष सहस्राक्ष सहस्रपाद्' के भव्य एव दिव्य रूप मे पाकर मानव हृदय के आनन्दोल्लास का कुछ वार-पार न था।

उपासना तत्त्व का आदि हेतु

ऋग्वेद का यह विराट 'पुरुष ही 'सगुण' परमेश्वर नारायण (नरसमष्टि का आश्रय) रूप मे गृहीत हुआ। अन्न प्राण मन विज्ञान एव आनन्द आदि रूपो मे जिस अव्यक्त ब्रह्म की उपासना होती थी उसी के सहज सान्निध्य का लाभ या उत्कण्ठा उसके मनोहारी हृदयाकर्षक रूप नारायण के नराकार रूप मे हुई। बाहर और भीतर समानरूप से भगवान् की व्यापक सत्ता का अनुभव भक्ति मार्ग की प्रधान विशेषता है।

---

१ इद्र मित्र वरुणमग्निमाहरथो
दिवस्स सुपर्णो गरुत्मान्।
एक सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्नि यम मातरिश्वानमाहु ॥ ——ऋग्वेद १-२, १६४-६६

२ दे० आचार्य शुक्ल जी——'सूरदास' पृ० ९।

३ तुलनीय- जगृहे पौरुष रूप भगवान्महदादिभि।
सम्भृत षोडशकलामादौ लोकसिसृक्षया॥——भागवत १, ३, १

४ अन्न ब्रह्मेति व्यजानात्। प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्। मनोब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्।
——तैतिरीय उपनिषद्, भृगुवल्ली

ऊपर कहा गया कि उपनिषदों में बौद्धिवृत्ति और रागात्मिका वृत्ति दोनों ही सम्मिलित हैं अर्थात् ज्ञान और उपासना, बुद्धितत्त्व और हृदयतत्त्व दोनों का मेल है।[1] जहाँ से हृदयतत्त्व को विशेष प्रधानता मिलने लगी, वहीं से भक्ति मार्ग का आरम्भ मानना चाहिए। महाभारत के शान्ति पर्व में नारायणीयोपाख्यान में वासुदेव की उपासना इस लोक में कैसे चली और भागवत-धर्म का उदय कैसे हुआ, स्पष्ट वर्णन मिलता है। महाभारतकार ने भीष्म से कहलाया है कि भागवत धर्म के आदि प्रवर्त्तक मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ तथा स्वायंभुव मनु थे। फिर यह विद्या बृहस्पति को प्राप्त हुई और बृहस्पति से राजा वसु को मिली। राजा वसु ने आहिंसक अश्वमेध यज्ञ किया, जिसमें स्वयं यज्ञपुरुष भगवान् श्री हरि ने आकर अपना भाग लिया। परन्तु भगवान् के दर्शन केवल वसु उपरिचर को हुए। बृहस्पति इस पर अप्रसन्न हुए तो प्रजापति के पुत्रों ने समझाया कि बिना भक्ति के भगवान् का दर्शन नहीं हो सकता।

इस नारायणीयोपाख्यान में कई बातें स्पष्ट सामने आती हैं। मुख्यतः यह कि भागवत धर्म का मार्ग लोककल्याण पक्ष को लेकर चला हुआ प्रवृत्ति मार्ग था। दूसरा यह कि ब्रह्म का सगुण रूप इस मार्ग में उपासना के लिए गृहीत हुआ, जिसकी अभिव्यक्ति लोक रक्षा, पालन और रंजन करनेवाले के रूप में हुई होती है और उसी में निर्गुण-सगुण, व्यक्त-अव्यक्त, मूर्त-अमूर्त सब अन्तर्भूत हैं। वही नारायण वासुदेव हरि हैं। ईश्वर के स्वरूप पर मन का आकर्षित होना या लुभाना ही भगवत्प्रेम या भक्ति है। यह प्रेम या भक्ति निर्हेतुक होती है। अस्तु।

भागवत धर्म

इस नारायणी-उपाख्यान से यह भी स्पष्ट है कि महाभारत के समय में नारायण या नराकृति भगवान् की शुद्ध भक्ति एक विशेष सम्प्रदाय में परम्परा द्वारा प्रचलित थी। वही नारायण वासुदेव कृष्ण के रूप में इस काव्य में प्रकट हुआ और चूँकि नारायणी धर्म के इस पक्ष का प्रवर्तन सात्वतों-यादवों के बीच विशेष रूप में हुआ इसी से इसे 'सात्वत धर्म' भी कहते हैं। अभिप्राय यह कि प्राचीन नारायणीय धर्म के अनेक पक्ष थे जो 'नारायण' रूप में उपासना करते थे अथवा नरसिंह, वामन, दाशरथि राम की एकान्त उपासना ले कर चले। भगवान् राम की उपासना का आरम्भ कब से और कहाँ से हुआ है, इस सम्बन्ध में निश्चित रूप में कुछ भी कहना कठिन है, पर यह निर्विवाद है कि रामोपासना के आदि प्रवर्तक शिव हैं। स्वयं वाल्मीकि को भी नारद ने भगवान् विष्णु के अवतार के रूप में रामोपासना की विधि बतलाई। इसका प्रचार पहले से भी दक्षिण भारत में विशेष रूप में थे था। पुरातत्त्व के विद्वानों के मत से रामायण का निर्माणकाल ईसवी

---

१ दे० आचार्य शुक्ल जी—'सूरदास' पृ० २०
दे० इन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एड एथीक्स —'भक्ति' 'भक्तिमार्ग' अध्याय

२ अहेतुव्यवहिता या भक्ति पुरुषोत्तमे। —भागवत

३ पुत्रत्व तु गते विष्णौ राजंस्तस्य महात्मनः।
—बा० का० वाल्मीकिय रामायण

सन् के पूर्व छठी शती से चौथी शती के मानते हैं। इस समय रामोपासना का प्रचार विशेष रूप से था। इसका कोई प्रबल प्रमाण नहीं मिलता। ईसवी सन् के दूसरी शती में मौर्यवंश के अनन्तर इस देश में शुंग वंश का आधिपत्य हुआ और इसमें वैदिक धर्म की पुनर्जागृति हुई, रामायण महाभारत का प्रचार विशेष रूप से हुआ और राम-कृष्ण अवतार रूप में विशेषत पूजित हुए। 'राम-पूर्वतापनी' से भी यह सिद्ध होता है कि इसी समय से रामोपासना का विशेष प्रचार रहा।

'युद्धकाण्ड' के पैंतालीसवें अध्याय में रावण के वध हो जाने पर सीता की अग्नि परीक्षा देखकर देवता कहते हैं—

कर्ता सर्वस्य लोकस्य श्रेष्ठो ज्ञानविदां विभु ।
उपेक्षसे कथं सीतां पत्नीं हव्यवाहने
कथं दशरथश्रेष्ठमात्मानं नावबुध्यसे ।।

अगस्त्य सुतीक्ष्ण संवाद में भी रामोपासना का वर्णन है। वायुपुराण में रामावतार का वर्णन है। रघुवंश के दसवें सर्ग में कालिदास ने साफ दाशरथि होने के कारण राम के परमेश्वरत्व को स्वीकार किया है। ई० सन् १०१८ में इसका विशेष विस्तार हुआ। भवभूति ने भी राम को परमोपास्य देवता के रूप में माना है।

रामोपासना वैदिकी या तान्त्रिकी?

रामोपासना वैदिकी है या तान्त्रिकी यह प्रश्न भी कम गंभीर नहीं है। 'मंत्र रामायण' में नीलकण्ठ ने वैदिक मंत्रों के उद्धरण देकर रामचरित का प्रतिपादन किया है। 'राम तापनी' उपनिषद् के उपक्रम में राम को महाविष्णु का अवतार माना है।[1] अस्तु यह वैदिकी है यह कहा जा सकता है। श्रुतियों में अनेक स्थानों पर राम को पूर्ण ब्रह्म के रूप में कल्पना है। नारद पांचरात्र' में तथा 'शारदा तिलक' में रामोपासना का वर्णन है, अतएव यह तान्त्रिक उपासना भी है। अतएव रामोपासना न केवल वैदिकी है और न केवल तान्त्रिकी, वरन् वैदिकी तान्त्रिकी दोनों ही है। सन् ईसवी की सातवीं शताब्दी में दक्षिण भारत में वैष्णव भक्ति ने बड़ा जोर पकड़ा। यही आलवार वैष्णवों का समय है। भाण्डारकर का कथन है कि यद्यपि ईसवी सन् के प्रारंभ से ही राम विष्णु के अवतार माने गये थे तथापि। उनकी विशेष रूप से प्रतिष्ठा ग्यारहवीं शताब्दी के लगभग ही प्रारंभ हुई। डा० भाण्डारकर के मत से रामभक्ति की विशेष प्रतिष्ठा भले ही ग्यारहवीं शताब्दी में हुई हो, परन्तु वास्तव में यह आलवार भक्तों के स्तोत्रों में पाई जाती है। अतः इसका उत्पत्तिकाल कम-से कम सातवीं शताब्दी माना जाना चाहिए। आलवारों की संख्या १२ है। इनमें कुलशेखर आलवार की रचनाओं में प्रौढ़ रामभक्ति का प्राचीनतम निरूपण सुरक्षित है। इन्हीं आलवार वैष्णवों की परम्परा में भविष्यत् वैष्णवाचार्य श्री रामानुजाचार्य का प्रादुर्भाव

---

१ चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ जाते दाशरथे हरौ।

२ दे० डा० भाण्डारकर वैष्णविज्म-शैविज्म।

हुआ। यह निर्विवाद है कि आलवार भक्तो ने भगवान् कृष्ण की ही प्रेमभक्ति के गीत गाये और इनमे 'अन्दाल' नाम की एक महिला भक्त मुख्य है, जो एक स्थान पर कहती है—'अब मै पूर्ण यौवन को प्राप्त हूँ और स्वामी कृष्ण के अतिरिक्त और किसीको अपना पति नही बना सकती।'[1] परन्तु कतिपय आलवार भक्तो मे राम के प्रति भी बडे ही कोमल और मर्मस्पर्शी भक्ति अंकित है। इनमे कुलशेखर आलवार मुख्य है। श्री शठकोपाचार्य की 'सहस्र गीति' मे भगवान राम के प्रति एक बडी ही मधुर भावमयी प्रार्थना है, जिसका भावार्थ यह है, हे प्रभो, आप का वियोग-कष्ट मन मे इतना बढ गया है कि शरीर को लाह की तरह गलाकर पतला कर दिया है। हाय! आप इतने निर्दयी बन बैठे कि इसकी खबर भी नही लेते। आपने राक्षसो की पुरी लका का समूल नाश करके शरणागतरक्षक की प्रसिद्धि पाई है परन्तु आपकी इस निर्दयता का आज क्या करू? फिर भी यह स्वीकार करना पडता है कि कृष्णावतार की उपासना रामावतार की अपेक्षा पुरानी और व्यापक है। आरम्भ मे तो भगवान श्री कृष्ण का दुष्टदलनकारी रूप ही मुख्य था परन्तु आगे चलकर उनका मधुर रूप ही भक्तो के हृदय मे विशेष रमा। भागवत मे भगवान माधुर्य-विभूति की प्रधानता दी गई ऐश्वर्य शक्ति शील इत्यादि लोकरक्षा द्वारा होनेवाली विभूतियो को गौण स्थान प्राप्त हुआ। महाभारत मे प्रतिष्ठित श्री कृष्ण के शील और सौन्दर्य पर मुग्ध भक्त उनके ज्वलन्त तेज और ऐश्वर्य से स्तम्भित और महत्त्व से प्रभावित होकर थोडा दूर हटा हुआ भक्ति की दिव्य अनुभूति मे लीन होता था। भागवत ने कृष्ण की वह मधुर मूर्ति सामने रखी, जो प्यार करने योग्य हुई। उस ढग का प्यार जिस ढग के प्यार की प्रेरणा से माता-पिता अपने बच्चे को दुलारते-पुचकारते हैं उस ढग का प्यार जिस ढग के प्यार की उमग मे प्रेमिका अपने प्रियतम को लपककर आलिंगन करती है। भागवत ने भगवान् का प्यार करने के लिए भक्तो के बीच खडा कर दिया। इस सम्बन्ध मे प्रसगत कृष्णोपनिषद् की वे पक्तिया ध्यान मे रखने योग्य है।[4]

---

१ क्लेशादिव मनसि हन्त! विभाति चाग्नौ
लाक्षादिवद् द्रुततनुर्वत! निर्दयोऽसि।
लकान्तु राक्षसपुरी नितरा प्रणश्य
प्रख्यातमान किल भवान् किमु तेऽद्य कुर्याम्॥ —सहस्र गीति २, १, ४, ३

२ अजातपक्षा इव मातर खगा स्तन्य यथा वत्सतरा क्षुधार्ता
प्रिय प्रियेव व्युषित विषण्णा मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्। —भागवत ६, ११, २६

३ आचार्य शुक्ल जी—'सूरदास' पृ० २७-२८।

४ श्री महाविष्णु सच्चिदानन्दलक्षण रामचन्द्र दृष्ट्वा सर्वांगसुन्दर मुनयो वनवासिनो विस्मिता बभूवु। त होचुर्नोऽवधमवतारान्वै गण्यन्ते यूय गोपिका भूत्वा मामालिगथ अन्ये येऽवता-रास्तेहि गोपा न स्त्री च नो कुरु। अन्योन्यविग्रह धार्य तवागरपर्शनादिह। शश्वत्स्पर्शीयता स्माक गृह्णीमोऽवतारान्वयम्। —कृष्णोपनिषद् १

भगवान् राम का सौम्य मनोहर रूप देखकर दण्डकारण्य के तपस्वी मुनियो ने आलिगन करना चाहा, इसी पर भगवान् राम ने कहा कि कृष्णावतार मे प्रकट होकर आप लोग गोपी रूप मे प्रकट होगे तब आपको मेरा अग-सग मिलेगा। रामावतार मे तो भक्तो ने भगवान् का चरणामृत ही पाया था, कृष्णावतार मे भक्तो को भगवान् का अधरामृत पीने का सौभाग्य मिला। अस्तु,

रामभक्ति धारा में मर्यादा की मुख्यता शरणागति एकमात्र साधन

रामभक्ति की धारा मे 'मर्यादा' की ही मुख्यता है तथा प्रपत्ति अथवा शरणागति ही मुख्य साधना है। यह शरणागति छ प्रकार की होती है —

(१) आनुकूल्यस्य सकल्प—भगवान के सदा अनुकूल बने रहने का सकल्प, भगवान् का अकिचन दास तथा सेवक बने रहने का दृढ निश्चय।

(२) प्रातिकल्यस्यवर्जनम्—भगवान् के प्रतिकूल भाव भावना तथा चर्चा मे सदा परागमुख रहना। भगवान् मे उलटी मति करनेवाली जो कुछ भी वस्तु हो उसका दृढतापूर्वक परित्याग।

(३) रक्षिष्यतीतिविश्वास—भगवान् सदा सदैव एव सर्वथैव अवश्यमेव हमारी रक्षा करेगे ही —इसमे सुदृढ विश्वास।

(४) गोप्तृत्ववरणम्—भगवान का ही एकमात्र भगवान् का ही अनन्य भाव से अपने गोप्ता या रक्षक रूप मे वरण करना।

(५) आत्मनिक्षेप आत्मसमर्पण—अपने-आपको तथा अपना सब कुछ समस्त कर्म, धर्म, आचरण आदि भगवान के चरणो मे अर्पित कर देना।

(६) कार्पण्यम् —स्वामी की अपार अहैतुकी कृपा एव अपनी अपात्रता का स्मरण कर दैन्य भाव की स्फूर्ति—

राम सो बडो है कौन मोसो कौन छोटो।
राम सो खरो है कौन मोसो कौन खोटो॥

अथवा

राम सुस्वामि कुसेवक मोसो।
निज दिसि देखि दयानिधि पोसो॥

तुलनीय—पद्मपुराण, उत्तरकाड, ६४-६५।

पुरा महर्षय सर्वे दण्डकारण्यवासिन।
दृष्ट्वा राम हरि तत्र भोक्तुमिच्छन् सुविग्रहम्॥
ते सर्वे स्त्रीत्वमापन्ना समुदभूताश्च गोकुले।
हरि सप्राप्य कामेन ततो मुक्ता भवार्णवात्॥

शरणागत भक्त के लिए भगवत्सेवा के अतिरिक्त और कुछ कार्य रह नही जाता। भगवान् की पूजा अर्चा मे ही उसका सारा जीवन लगता है। इसके लिए वैष्णव शास्त्रो मे समय के पाँच विभाग किये गये है जिन्हे 'पचकाल' कहते है। वे है—(१) अभिगमन—मनसा-वाचा-कर्मणा जप ध्यान अर्चन के द्वारा भगवान् के प्रति अभिमुख होना। (२) उपादान—पूजा के लिए पुष्प, अर्घ्य, नैवेद्य आदि सामग्री का सग्रह करना। (३) इज्या—आगम शास्त्रो के नियमो के अनुसार भगवान् की विधिवत् अर्चना। (४) अध्याय—वैष्णव ग्रन्थो का परिशीलन। (५) योग—भगवान के साथ किसी भाव मे युक्त होकर उसी स्थिति मे निरन्तर निवास। इस प्रकार वैष्णव उपासना के अनकानेक भेद-प्रभेद है और इसी के आधार पर वैष्णवो के प्रधान पाँच भेद माने जाते है—यती, एकाती, वैखानस, कर्म सात्वत और शिखी[1]।

वैष्णवो का पचकाल

परन्तु यह प्रकरण प्रसग से बाहर जा रहा है। अभीष्ट इतना ही है कि रामभक्ति की साधना आरम्भ से ही 'मर्यादा' का केन्द्र मे रखकर चली और दास्य भाव ही मुख्य भाव रहा और शरणागति ही एकमात्र साधन। राम-भक्ति की उत्पत्ति की चर्चा करते हुए हम ऊपर कह आये है कि पहले-पहल आलवार भक्तो मे ही इसका बीजरूप मे दर्शन होता है। वस्तुत शतपथ ब्राह्मण के नारायण ही राम रूप मे अवतरित हुए और लक्ष्मी ही सीता रूप मे। यद्यपि गोस्वामी जी ने सीता जी का वर्णन करते हुए कहा है कि अगणित उमा, रमा, ब्रह्माणी इनसे ही निकली है और ये ही आदि शक्ति है, पर वस्तुत सीता जी महालक्ष्मी की अवतार है और श्री सम्प्रदाय मे इसी प्रकार महाविष्णु और महालक्ष्मी की उपासना प्रचलित है। आलवारो ने नारायण, विष्णु, हरि, वासुदेव, राम आदि सम्बोधना स अपने इष्ट का स्मरण किया है। कुलशेखर आलवार ने प्रार्थना करते हुए कहा है, यदि पति अपनी पतिव्रता स्त्री का सबके सामने तिरस्कार करे, तो भी वह उसका परित्याग नही कर सकती। इस प्रकार तुम चाहे कितना भी दुतकारो, मै तुम्हारे उभय चरणो को छोडकर अन्यत्र कही जाने की बात भी नही सोच सकता। तुम चाहे मेरी ओर आँख उठाकर भी न देखो परन्तु हे राम! मुझे तो केवल तुम्हारा ही और तुम्हारी कृपा का ही आलम्बन

---

१ जराख्य सहिता, पटल २२ श्लोक ६५-७५।

२ रा शक्तिरिति विख्याता म शिव परिकीर्तित।
शिवशक्त्यात्मक ब्रह्म राम रामेति गीयते॥
रा शब्दो विश्व वचनो मश्चापीश्वर-वाचक।
विश्वेषामीश्वरो यो हि तेन राम प्रकीर्तित।
रमते रमया सार्द्ध तेन राम विदुर्बुधा।
रमाया रमणस्थान राम रामविदो विदु॥
रा चेति लक्ष्मी वचनो मश्चापीश्वरवाचक।
लक्ष्मीपति गति राम प्रवदन्ति मनीषिण॥

है। मेरी अभिलाषा के एक मात्र विषय तुम्ही हो। जो तुम्हे चाहता है उसे त्रिभुवन की सम्पति से कोई मतलब नही।

हे भगवान्[1] मै धर्म, धन, कामोपभोग आदि की आशा नही रखता, पूर्वकर्मानुसार जो कुछ होता हो सो हो जाय, पर मेरी यही बार-बार प्रार्थना है कि जन्म-जन्मान्तरो मे भी आपके चरणारविन्द युगल मे मेरी निश्चल भक्ति बनी रहे[1]।

ऊपर के उद्धरणो से दो बाते स्पष्ट है कि (१) भगवान् राम की उपासना सातवी शताब्दी के आस-पास इस देश मे आरम्भ हो गई थी तथा (२) आरम्भ से ही इसमे दास्य भाव के साथ-साथ दाम्पत्य भाव या मधुर भाव का सन्निवेश हो गया था।

दास्य और मधुर का सन्निवेश

और सच तो यह है कि किसी भी उपासना-पद्धति मे किसी एक विभावशेष की प्रधानता रहती है, परन्तु अन्य भाव भी उसमे स्वत स्फूर्त होते रहते है। जहाँ दास्य है वहाँ वात्सल्य माधुर्य भी है, जहाँ माधुर्य है वहाँ भी दास्य, सख्य वात्सल्य है ही। ये भाव ऐसे घुले-मिले होते है कि इन्हे अलग अलग करना कठिन क्या असम्भव है, हा अलबत्ता किसी भी उपासना मे किसी एक ही भाव की प्रधानता रहती है और शेष भाव उसी एक भाव मे अन्तर्भुक्त अथवा अनुस्यूत होते है।

आगे चलकर रामभक्ति पर भागवत पुराण का बहुत गहरा और व्यापक प्रभाव पडा। वैष्णव पुराणो मे पाद्म, वैष्णव, भागवत और ब्रह्मवैवत मुख्य है। विष्णु पुराण मे अनेक उद्धरण स्वामी रामानुजाचार्य ने दिया है और एक प्रकार से विष्णु पुराण श्री सम्प्रदाय मे आधार ग्रन्थ के रूप मे मान्य है। परन्तु इन सभी पुराणो मे श्रीमद्भागवत का प्रभाव बहुत ही व्यापक और हृदय-ग्राह्य हुआ। इसने रामावत और और कृष्णावत दोनो ही सम्प्रदायो पर अपनी अमिट छाप डाली। इसका मुख्य हेतु है—इसकी प्रेमाभक्ति का प्रतिपादन, वह भी अत्यन्त

भागवत पुराण का प्रभाव

---

१ प्रसिद्ध आलवार सत श्री शठकोप मुनि अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'सहस्र-गीति' में आरम्भ में ही, लिखते हैं—

दीनात्विय भ्रमवशाहि दिवानिश चा-
प्यश्रुप्रवाह - भरितास्त्यसितायताक्षी।
लका प्रणश्य किल कण्टक - दुष्टभुत्व
प्राध्वसयो ऽ द्य परिपाहि कटाक्षमस्या ॥२ ४ १०

यह बडी दीन है। यह भोलेपन में आकर दिन-रात अपने कजरीले नेत्रो से आँसू की धाराए बहा कर उनको नष्ट कर रही है। आपने लका को नष्ट कर के उसके दुष्ट राजा रावण को सपरिवार नष्ट कर दिया था। दयालो! इस विचारी के नेत्रो की तो कृपा कर रक्षा कीजिए।

ऐसे भगवान् राम के प्रति विरह-निवेदन के कुछ और पद 'सहस्रगीति' में है।

ललित रसमयी शैली मे। वल्लभ सम्प्रदाय, गौडीय सम्प्रदाय तथा निम्बार्क सम्प्रदाय तो स्पष्टत ही भागवत से प्रभावित एव अनुप्राणित है और यहाँ तक कि उपनिषद् ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्भगवद्-गीता की तरह प्रस्थानत्रयी के साथ ही साथ श्रीमद्भागवत भी इन सप्रदायो मे उपजीव्य ग्रन्थ के रूप मे समादृत है। किसी ने यह अफवाह उडा दी कि भागवत बोपदेव की रचना है और यह बात अफवाह की तरह फैल भी गई, परन्तु बाद मे स्वस्थ शान्त अनाविल चित्त से अनुसधान करने पर पता चला कि यह स्वय भगवान् व्यास की रचना है और 'समाधि भाषा' मे लिखी गई है[1]। इसमे नारायण धर्म को ही गायत्री अथवा ब्रह्मविद्या माना गया है। इसी कारण इसे विविध पुराणो ने गायत्री का भाष्य माना है।[2] भारतीय जीवन एव साधनाओ पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव बहुत ही व्यापक, गभीर एव चिरस्थायी है। यहाँ तक कि रामावत सप्रदाय भी उससे प्रभावित हुए बिना न रहा और यहाँ भी मर्यादा के साथ-साथ लीला-विलास का प्रवेश हुआ और तदनुसार अनेक ऐसे सहिता ग्रन्थो का निर्माण हुआ जिनमे भगवान् राम की सहस्त्र-सहस्त्र सखियो के साथ नाना प्रकार के क्रीडा-विहार के बडे ही भव्य एव मनोहारी वर्णन अत्यन्त काव्यमयी भाषा मे मिलते है।

(१) 'शिवसहिता'—एक विहगम दृष्टि

ऐश्वर्य के श्रवण के बाद ही माधुर्य का स्फुरण होता है। भक्त के लिए पहले भगवद् ऐश्वर्य श्रवण करना चाहिए और जब ईश्वर भाव का अनुभव हो जाय तब माधुर्य मे प्रवेश सभव है। ऐश्वर्य ज्ञान मे भक्ति होगी, पर पूरी भक्ति नही होगी जब तक माधुय भाव न हो। माधुर्य ज्ञान के बिना पूरी भक्ति हो नही सकती। अगस्त्य ज्ञान-भक्ति के अधिकारी है, परन्तु हनुमान केवल भक्ति के अधिकारी है और इनका माधुय चरित के ऊपर ही अवलब है। अगस्त्य मे ऐश्वर्य माधुर्य दोनो है, पर हनुमान मे केवल माधुर्य।

ऐश्वर्य और माधुर्य

रामायण कथा सुनते-सुनते चित्त निर्मल हो जाने पर ही गुप्त लीला मे अधिकार होता है। पूर्ण रामायण के वक्ता केवल चतुर्भुज ब्रह्मा है, शेष उच्छिष्ट है। सब नाम राम-नाम मे निहित है।

माधुर्य अधिकार

सब देश, सब काल मे जितने जीवात्मा है, वे सब भगवान् के ही अनुजीवी है। पुरुष एक मात्र प्रभु रामचन्द्र है, शेष सब स्त्री है। इसी कारण एक ही काल मे एक प्रभु ही सबमे रमण कर सकते है। भगवान मे रमण करने की जितनी शक्ति, सामर्थ्य है उतना जगत्रय मे धारण करने की शक्ति ही नही है। एक भगवान् ही सभी स्त्रियो के पति है, भर्ता है। जार-बुद्धि से सेवन करने

भाव प्रकाशन

---

१ वेदा श्रीकृष्ण वाक्यानि व्याससूत्राणि चैवहि।
समाधि भाषा व्यासस्य प्रमाण तत् चतुष्टयम्॥ —श्री वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत मार्तण्ड

२ अर्थोऽय ब्रह्मसूत्राणा भारतार्थविनिर्णय।
गायत्रीभाष्य रूपोऽसौ वेदार्थपरिबृहित॥ —गरुड़ पुराण

पर भी प्रभु की प्रीति प्राप्त होती है। भागवान् का सौन्दर्य माधुर्य, यौवनारम्भ, सौगन्ध, सुकुमारता, लावण्य, परम कान्ति, सौशील्य, बल, सौहार्द, सौलभ्य, परम वात्सल्य, स्वभावत सदा प्रसन्न रहना ये सब गुण ही भक्तो के चित्त को हरनेवाले है। विमुग्ध बालाओ के लिए तो उनका नित्य किशोर, सर्वरसभोक्ता, रसिकेन्द्र युवराज नित्य ही पन्द्रह वर्ष की अवस्था वाला रूप स्फुरित रहता है। भगवान् के चरणो की सेवा के अतिरिक्त शेष सब विपत्ति है। एक मात्र भगवान् श्री राम ही भोक्ता है, शेष सब उनका भोग्य है। यद्यपि श्री भगवान् राम आनन्द स्वरूप है, स्वय ईश्वर है और सदा अपने ही आनन्द मे मग्न रहते है फिर भी उनके जा परम अनुरागी है, वे अनुराग युक्त हो कर उनकी आराधना करते और भोग अर्पण करते है, उसे प्रभु श्री राम परम आह्लाद स ग्रहण करते है।

भगवान् राम और भगवती सीता दानो रस के एक मूर्तिमान् विग्रह है—लीला के लिए ही एक से दो हुए है।

क्रिया-शक्ति ज्ञान-शक्ति तथा उपासना-शक्ति वद की ये तीन प्रमात्मिका शक्तिया है। इनमे कैकया क्रिया-शक्ति, सुमित्रा उपासना-शक्ति है और कौसल्या ज्ञान-शक्ति है। इन तीना शक्तिया से युक्त वेद स्वरूप चक्रवर्ती महाराज दशरथ जी है।

स्वरूप प्रकाशन

क्रिया मे स्वभावत कुछ कलह उपासना मे प्रीति और ज्ञान मे नित्य निहतुक निमल आत्मसुख मिलता है। कैकेयी रूपी क्रिया से धर्म का जन्म होता है भरत जी धर्मस्वरूप है। भक्त मे रत होन के कारण तथा विश्व का भरण-पोषण करने के कारण इनका नाम भरत हुआ। सुमित्रा रूपी उपासना शक्ति से लक्ष्मण जी सख्य भाव के आचार्य हुए। भगवान श्री राम कौसल्या रूपी ज्ञान से कल्याण स्वरूप तथा विश्व को आनन्द देनेवाले हुए। शत्रुघ्न जी शत्रुओ को विनाश करनेवाले तथा अथ के अध्यक्ष है। शस्त्र और शास्त्र के पूर्ण ज्ञाता है।

शत्रुघ्न जी का गौर शरीर तडित सुवर्ण वर्ण का है और उन्हे कुसुम रग का वस्त्र विशेष प्रिय है। अरुण कमल दल के समान उनके नेत्र है और उनके शब्द दुदुभी की तरह है। लक्ष्मण जी कर्पूर के पुट के समान गौरांग, अरुण कमल समान नेत्र और नीलाम्बर को धारण करते है। श्री भरत लालजी नीलरत्न के समान श्याम पीताम्बर धारण करने वाले सबके मन को हरन वाले है। वे श्री भगवान राम के गृह आराम, वाद्यादिका के राजा और भगवान् की सब क्रीडाओ मे महाप्रवीण है।

कोटिकदपलावण्य सीतापति भगवान् श्रीरामचन्द्र जी सर्वलोक मे रमण करनेवाले एव रमाने वाले, मोक्ष के भर्ता है। आप ही शृगार रस के देवता है और सब कामिनियो में अतिशय कामोन्माद बढानेवाले आप ही है।

जगत के प्राणभूत श्रीराम जी की भी प्राणेश्वरी श्री जनकनन्दिनी जी है। आप पतिव्रता शिरोमणि है।

श्रीराम जी की सेवा करनेवालो के दो भेद है—पुरुषवर्ग, नारीवर्ग। सभी दिव्य है

एक रस एक आकारवाले है। अपने गुणो मे श्री सीताराम जी का आराधना करना ही इन सबो का साधन है। बाहर के कार्य मे पुरुषवर्ग सदा स्थित रहते है और भीतर आनन्दवर्धक विहारादि कार्यों मे देवीगण सदा सलग्न है। भगवान राम रस स्वरूप है––रसो वै स ।

राम सीता के बिना और सीता राम के बिना क्षणमात्र भी नही रह सकते ––'रामो न सीतया शून्य सीता राम बिना न हि'।

शृगार रस किसी फल का साधन स्वरूप नही है। यह नित्य सिद्ध स्वरूप है। दम्पति मिल गय और मैथुनोद्भूत आनन्द को प्राप्त हुए, यही शृगार है, ऐसा मानना महा भ्रान्ति है।

शृगार साधना का स्वरूप प्रकाश

जिस शृगार रस को बडे-बडे सिद्ध शिव, सनकादिक उपासना कर आनन्द समुद्र, मे निमग्न रहते है, वह शृगार दिव्य और नित्य सिद्ध है। प्रिया प्रियतम श्री सीताराम जी नित्य इच्छा रूप है नित्य नाना प्रकार के केलिभेदो से शृगार रस के सुखानन्द प्रवाह के तरग बढाया करते है। यह सच्चिदानन्द आत्मास्वरूप शृगार रस का अवतार शृगार रस के हर्ष और उत्कर्ष के बढाने मे स्त्री ही प्रधान है और यह आनन्द-भाग्य भी हम सबको स्त्री ही रूप मे है।

सवज्ञ और सवशक्तिमान होते हुए भी भगवान् राम प्रेमपिपासा से व्याकुल रहते है और नाना प्रकार की क्रीडाओ से अपन भक्तो मे प्रीति का सम्पादन करते रहत है। राम के परम भक्त वाह्य काय मे पुरुष है पर आभ्यन्तर कार्य मे सभी दवी है। वास्तव मे एक रस ही खडित होकर सखा सखी रूप मे प्रस्फुटित हो गया है। अभ्यन्तर काय मे प्रेरणा करनेवाली प्रेरिणी ह जानकी। स्वामिनी जानकी है इसलिए सभी उनकी इच्छा का अनुसरण करते है, स्वय रामचन्द्र भी इनकी इच्छा के वशवर्ती है। राम जानकी मे सामरस्य है। स्वरूप एक ही हो तो रस न हो। इनका स्वरूप ही शृगार है। वहा भोक्ता भाग्य नही––एक ही लीला मे दो हो जाता है–– लीला मे और लीला के रसास्वादन के लिए। यह अद्वैत मे द्वैत है–– एक मे ही दो का या एक ही का दो मे खेल है। एक आत्मा दो शरीर।

' रमन्ते रसिका यस्मिन् दिव्यानेकगुणाश्रये स्वय यद्रमते तेषु रामस्तेन प्रयुज्यते ।।

रसिक भक्त दिव्य अनेक गुणाश्रय रूप श्री राम जी मे रमण करते है और उन भक्तो मे श्रीराम जी भी स्वय रमते है। इसी हेतु 'राम कहे जाते है। जैसे समुद्र जलमय और मधु मिष्ठ-मय है, बाहर-भीतर रसमय है––वैसे ही भगवान् राम रसमय

राम शब्द का अर्थ

रसस्वरूप है। स्वय रस ही रस है स्त्रियो को कौन कहे, अपने रूपौदार्य के कारण पुरुषो को भी यह अभिलाषा होती है कि हम स्त्री होकर इनके साथ आलिगनादि सुख को प्राप्त करे।[1]

---

१ 'पुसामपि राम पश्यता स्त्रीभूत्वाऽहमनुभवे
राममित्यभिलाषो भवति।

'राम' शब्द ही रस राजत्व का बोधक है। शृंगाररस विहार का पर्यवसान श्री राम में ही है।

श्री राम सीता का नित्य का रासस्थल अयोध्या है। यही भुक्ति क्षेत्र भी है, और मुक्ति क्षेत्र भी है। द्वारका, मथुरा आदि अयोध्या के ही अशभूत है। अशोक बाटिका मे श्री सीताराम जी नित्य राम लीला करते है। यह अशोक वन ही रस रूप है।

पारमार्थिक तत्त्व

अयोध्या नन्दिनी, सत्या, साकेत, कोसला, राजधानी, ब्रह्मपुर, अपराजिता इत्यादि नाम अयोध्या जी के है। पहले दिव्य धाम का ध्यान फिर शृंगार रस की सर्वस्व मूर्ति तथा एकमात्र भोक्ता भगवान् राम का ध्यान करे और पुन रासरचना करे।

(२) लोमश—सहिता की दृष्टि में

इस शृंगार राज्य मे प्रवेश पाने के लिए श्री विदेहराज कुमारी जी की अतरग सखियो की कृपापूर्ण दृष्टि अनिवार्य है। यहाँ किसी साधना या अनुष्ठान स प्रवेश ही नही हो सकता।

शृंगार राज्य में प्रवेश

अस्तु इन अतरग सखियो मे मुख्य है—चन्द्रकला, विमला, सुभगा, मदनकला, चारुशीला हेमा क्षेमा, पद्मगधा, लक्ष्मणा, श्यामला, हसी, सुगमा वशध्वजा चित्रलेखा, तेजोरूपा और इन्दिरावली। ये सोलह मुख्य यूथेश्वरी है।

इन सोलहो मे चन्द्रकला, चारुशीला, मदनकला और सुभगा मुख्य है और इनमे चन्द्रकला जी सर्वश्रेष्ठ है। वाह्य कार्यों मे जैसे श्री भरतलाल जी का स्वतत्र सर्वाधिकार है, अतरग लीलाओ मे उसी प्रकार चन्द्रकला जी प्रधानता मे सर्वश्रेष्ठ है। जिस प्रकार ललिता जी राधा-कृष्ण का मिलन सघटन करती है, उसी प्रकार चन्द्रकला सीता-राम का मिलन सघटन करती है और इनका यहा ठीक वही स्थान है जो ललिता का वहा है।

चार मुख्य सखियां

लोमश सहिता मे चन्द्रकला जी का ही प्रसग मुख्य है और फिर श्री अयोध्या जी के प्रमोद वन मे रासलीला का भव्य वर्णन है। श्री चन्द्रकला जी रासरस की आचार्या है और उन्ही की कृपा से साधक अपने सिद्ध देह स इस लीला मे प्रवेश पाता है। इस सहिता के अ० २० श्लोक

क्रीडा सम्पद्यते यैस्तु गुणं नैत्रगुणं शुभं
ज्ञेयोऽस्मिन्सतत 'राम' इत्याहुर्मुनयोमला ।
यत्रास रामो रसरगमूर्त्तो रास सनाम्नोप्पय केलिभेद
रामाभिरामो रमणीश रामो रा शब्द रामो रसराजराम

'राम' शब्द ही रसराजत्व का बोधक है। शृंगार रस विहार का पर्यवसान श्री राम में ही है।

१८६वें से १८९ तक रासनृत्य पर सचालित सगीत का बडा ही मनोहारी विन्यास हुआ है। यहा राम का प्रकरण ज्यो-का-त्यो श्रीमद्भागवत के रास पचाध्यायी के आधार पर है और स्पष्टत उसी से प्रभावित है। यहाँ भी इस महाराम के समय गौ-मृग-पशु-पक्षी-मनुष्य गधर्व, देवादिक सभी के सभी अपनी सुधबुध खोकर अपने-आप मे न रहे, अचेत हो गये और इनके हृदय को महारास ने अपनी ओर खीच लिया। प्रिया-प्रियतम के दिव्य मिलन का एक दृश्य बडा ही मनोहारी है।[1]

(३) श्री हनुमत्सहिता—एक विहगम दृष्टि

श्री हनमन्सहिता मे 'प्रेमामृत महोत्सव' का बडा ही भव्य वणन है। अगस्त्य और हनुमान का सवाद है। जानकी-प्रेम-लपट रामचन्द्र अपनी प्राणप्रिया तथा असख्य रूपयौवन-शालिनी सखियो के साथ सरयूतट पधारते है और प्रेमामृतरसावेश मे हास्य, लास्य, कटाक्ष तथा मनोहर चाटुकारो मे परस्पर प्रसन्न करते हुए कदब वन मे माध्वीक रस का पान करते है और फिर माधवी कुज मे पधारते है, तत्पश्चात् हरिचन्दन वन मे और तब अशोकवन मे। यह अशोकवन पुरुषो का नही दिखाई पड सकता, केवल स्त्री भावापन्न साधको को ही उपलब्ध होता है। इस प्रकार कोटिकदर्पलावण्य भगवान रामचन्द्र हास्य, लास्य कटाक्ष स जानकी का मोदन और मादन करते हुए एक वन मे से दूसरे वन मे विचरण कर रहे है। ऐसी कमनीय किशोर मूर्त्ति को देखकर उन सखियो के मन मे रमण की अभिलाषा जगती है और भगवान् उन्हे नाना प्रकार से तृप्त करते है। जैसे नक्षत्रो से घिरा चन्द्रमा शोभा पाता है, वैसे ही सखियो से घिरे रामचन्द्र। नाना प्रकार के लास्य नृत्यादि से सखियो के चित्त को आह्लादादि प्रदान करते हुए भगवान् उनके अधरामृत का पान

---

१ इत्युक्त्वा त तदा देवी सीता प्रोत्फुल्ललोचना।
प्रियमालिग्य बाहुभ्या चुचुम्बाधरमाधुरीम्॥
हृदय हृदयेन मुखेन मुख करमब्जकरेण सरोजनिभम्।
उरसा प्रिया वक्षसि सगमतो सुखमापमहोत्सवजन्यमता॥

—अ० २२, श्लोक १३६

२ पुसामगोचर स्थान केवल प्रेमदायकम्।
नारीभावसमायुक्तास्तेषा दृश्य भवेद् ध्रुव॥

—ह० स० २-४३

३ आलोलपाणिचरणा स्मित दृग्विभगी।
विभ्रच्चलद्वलयककणनूपुरादीन्॥
आश्लिष्टकठकुचको जनकात्मजाया
रामो रराज भवनाटक नाटयवेश॥ ह० स० ४-१७
सरसनिकषे प्रेमजले परिपूर्ण स्वर्णग्या।
विकसिताननकमल पिबति यत्र मधुव्रतो राम॥ ४-५१

करते हैं। इसके पश्चात् जल-क्रीडा होती है। इसके अनन्तर भगवान राम सीता के साथ एक परम दिव्य परम मनोहर कुज मण्डप मे विराजते है। चारो ओर षोडस कमल दल की भाँति वेदी है जिसपर सोलह मुख्य सखियाँ है—उनके नाम है—काचनी, चित्रा, चित्ररेखा, सुधामुखी, कमला, चन्द्रकला, चन्द्रानना, वरा, माधुर्यशालिनी विशदाक्षी, सुदशका, उज्जला, हसिनी, कर्पूरागी, वरारोहा, प्रशसी। (५-१७) ये तो मुख्य सखियाँ है, परन्तु उस पद्म के उपदलो पर शोभना, शुभदा, शाता, सतोषा, सुखदा, चारुस्मिता, चारुरूपा, चारुलोचना, हैमा, क्षेमा, प्रेमदात्री, माधवी, कामदा, मोहिनी, लीला आदि सखिया विराजमान है और बीच मे कर्णिकार पर भगवान् राम और भगवती सीता। सभी सखियो के हाथ मे एक-एक वाद्य यत्र है। किसी के हाथ मे वीणा है तो किसी के हाथ मे वेणु, किसी के हाथ मे मदग तो किसी के हाथ मे मजीर। भगवान् का यह नित्य दिव्य विहार देखकर सभी मुग्ध है, आनन्दमग्न है। इस प्रकार साकेत मे परम राम सम्पन्न हुआ। यह चिर गोपनीय रहस्य है।[1] रहस्य लक्ष्य करने की बात यह है कि यहाँ सीता अपने ही शरीर मे १०८ सखियो की सृष्टि करती है और इनके साथ भगवान् राम कृष्ण की भाति उतने ही उतने रूप धारण कर लेते है।

अगस्त्य जी ने पुन हनुमान जी से पूछा कि इस भाव मे प्रवेश कैसे हो। इसपर हनुमान जी कहते है कि श्री राम से प्रीति सम्बन्ध होने पर ही इस भाव की प्राप्ति होती है और यह सम्बन्ध कोई गुरु ही करा सकता है। उसके अनन्तर शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भाव के भेदाभेद तथा इनके विभावादि का सविशेष विवरण है। श्री हनमान जी ने कहा है कि यह सम्बन्ध ही सहजानन्द प्रदान करनेवाला है और इसे प्राप्त कर ही जीव की भगवान् मे अचला अव्यभिचारिणी भक्ति होती है। शान्त, दास्य सख्य, वात्सल्य, माधुर्य की वही व्याख्या है जो परम्परा-मुक्त है।[2] इस ससार मे देखा जाता है कि सम्बन्ध मे कितनी प्रगल्भता आ जाती है तो भगवान्

अथ-पचक

---

१ **गोपनीय गोपनीय गोपनीय च सर्वदा। ७-५**

२ **श्रीमद्रघुपति साक्षात् ब्रह्म सर्वपरात्पर।**
ज्ञात्वा भजति यो नित्य सर्व शान्तरसाश्रय ॥
श्री राम करुणासिंधु भक्तसरक्षण परे।
बुद्ध्वा भजति यो नित्य स वै दास्य रसाश्रय ॥
श्री रघुनन्दन मित्र प्रेमपात्र विबुध्य च -
स्नेहेन रमते नित्य स हि सख्य रसाश्रय ॥
बाल सौन्दर्यसहित कोमलाग प्रमोदव।
सर्वदा जीवन मत्वा स वै वात्सल्यसज्ञक ॥
मधुर मनोहर राम पति सबन्धपूर्वकम्।
ज्ञात्वा सर्वव भजते सा शृगाररसाश्रया ॥ —६ २३-२७

श्रृंशेरधातिचकाचिद्वरूर्द्धिकाचिदाकिंसहर्षमुपगम्यनरहातिपापं तांवृत्तचर्वितकमंत्रालिनाचकाचित्सु
स्नातिनत्रियतरङ्गपथेनिरुध्य काचिन्नरद्विकमलाविरहज्वरार्तासतापिनिस्तनयुगेनिदधातिनन्दी अ
न्याचकाचरागनिधयविवर्मिताभ्यांदृग्भ्यांप्रियस्यवदनांबुरुहंपिबंती नेवाघतृप्तिमवतासुखमिंधमग्राचि
त्रार्पितंवविदपात्रपिणीवधूव काचिन्ममीलणापथनहरिंप्रविश्यनयेनमीत्यपुलकोद्गविसंस्थुलांगी रो
म्पांहरंसमवगम्यनिवद्धमौना योगीवचित्सुखमरोदधिनिर्वृतास्ते काचिन्मनोनयनयुग्मकृदिङ्मयेनसं
योज्यतीक्ष्णविशिखेनकुरिंगनाक्षान हृत्वारुषेवरणनेदृशनछदंस्वमेक्षियकांतमनुत्रणाद्रु
तीव अन्येसुवर्णलतिकेनरुचास्फुरन्त्यौतप्तापुरुषनावलयेनिराचमाने तत्रप्रमारन्चरिष्यतमालकांति
मत्वद्रुताप्रपुपुषतुःप्रभयानुरूपे काचिन्नरीयमकलांसुकुरायमानस्वरूपकपोलतलमुत्तमणाचुचुंब अन्या
नरक्षिपुगतंरदनच्छदाभ्यांतांवूलिकारुनरसेरनुरज्यमानं एकावलीयमधरंमधुरंसुधायाः सस्थानमंदि
रमिवापिवदाननेन अन्यामरेनपरिरभ्यनिरन्तरंतुस्वानंदसिंधुरसवीचिषुनिर्मग्न इत्थंमरापत्नाः
सर्वाःप्रियदर्शननिर्वृताः सतापंविजहुर्यदूद्वहाप्यनेरमयत्मनाः भूयस्तरंगसंगित्यसचिदानंदशक्तये पश्यन्
स्तरभेदेनानपवृत्तमंगीदृशः रमास्यसहजानंदशक्तिर्नीलाविलासिनी नामारमासवावासाप्रमोदविपि

से जिनका सबध हो गया उनका फिर कहना क्या ? स्थूल, कारण, सूक्ष्म इन तीनो देहो के विनाश हो जाने पर गुरुमुख से सबध की योग्यता प्राप्त होती है। सबसे पहले अपनी (दिव्य) वास्तविक जननी और जनक का पता लगता है, आचार्य का पता लगता है, तब 'सेवा' मिलती है। तब इन पाच रसो मे जिस रस का अधिकार होता है उसके अनुरूप दिव्य नाम तथा दिव्यस्वरूप मिलता है यही 'अर्थ पचक' है।

गुरु मे ईश्वर बुद्धि रखते हुए 'अमायया' तथा 'अनुवृत्या' उसका सेवन करे। भगवान् की कृपा का अवलम्बन लेकर अपना सर्वस्व उन्ही के चरणो मे समर्पित कर प्रारब्धभोग समाप्त कर साधक सूर्यमण्डल को भेद कर 'विरजा' मे स्नान करता है। यहा वह वासना सहित अपने दोनो देहो का परित्याग कर 'विरज' हो जाता है। अत्यन्त प्रबल वेग से वह 'विरजा' पार साकेत मे प्रवेश करता है और राजमार्ग से सप्तावरणसयुत, नानारत्नमय दिव्य श्री रामभवन मे प्रवेश करता है। अपनी भावना के अनुसार वह प्रभु श्री राम को प्राप्त कर समस्त आनन्द को प्राप्त होता है, स्वय परानन्दमय हो जाता है। इस सहिता के अन्तिम अध्याय मे रस का प्रकरण है और उसका सागोपाग विन्यास है। इसमे उज्जवल भक्ति रस का विवेचन करते हुए लिखा है कि माधुर्यसिधु कमनीय किशोरमूर्ति श्री रामचन्द्र ही विषयालम्बन है, प्रेयसीगण आश्रयालम्बन है, सौशील्य, माधुर्य, कमनीय किशोरत्व, प्रियवचनत्व, भूषणालकार, वसन्त, कोकिलाकूजन, उपवन आदि उद्दीपन विभाव है, कटाक्ष स्मित, भ्रूविक्षेप, आदि अनुभाव है, रोमाच, वैवर्ण्य, प्रस्वेद आदि अष्ट सात्विक भाव है और आलस्य निर्वेद आदि व्यभिचारी भाव है और प्रियता रति स्थायी भाव है।

उज्ज्वल भक्ति रस

ऊपर हमने 'शिव सहिता' 'लोमश सहिता' एव 'हनुमत्सहिता' का सक्षिप्त उल्लेख इस लिए किया है कि हम यह अनुभव करे कि रामभक्ति मे शृगारोपासना हाल की नयी उदभावना-नही है। अपितु इसका आरम्भ बहुत पहले हो चुका था। इन सहिताओ के निर्माण का काल-निर्णय वस्तुत बहुत ही जटिल समस्या है। परन्तु ये उतनी 'आधुनिक' नही है जितनी समझी जाती है। और तो और, स्वय वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाड मे अशोकवन मे राम सीता के विहार का वर्णन मिलता है।[1] वस्तुत ईसवी सन् की आठवी शताब्दी से ही राम और सीता के पूर्वानुराग का चित्रण होने लगा[2] और महावीर चरित, जानकी हरण, प्रसन्न राघव तथा हनुमन्नाटक मे राम सीता के विलास का बहुत ही व्यापक एव सागोपाग वर्णन मिलता है, यहाँ तक कि कुछ लोगो की दृष्टि मे अश्लीलता की सीमा तक पहुच गया है।

इन सहिताओ तथा चरितो के अतिरिक्त प्राचीन ग्रन्थो मे 'सत्योपाख्यान' एव 'वृहद् कौशल खण्ड' आदि कुछ ऐसे प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थ है, जिनमे भगवान् राम और भगवती सीता के नाना

---

१ दे० वाल्मीकि रामायण, सर्ग ४२।

२ दे० रामकथा पृ० ४८३, अनु० ६१९।

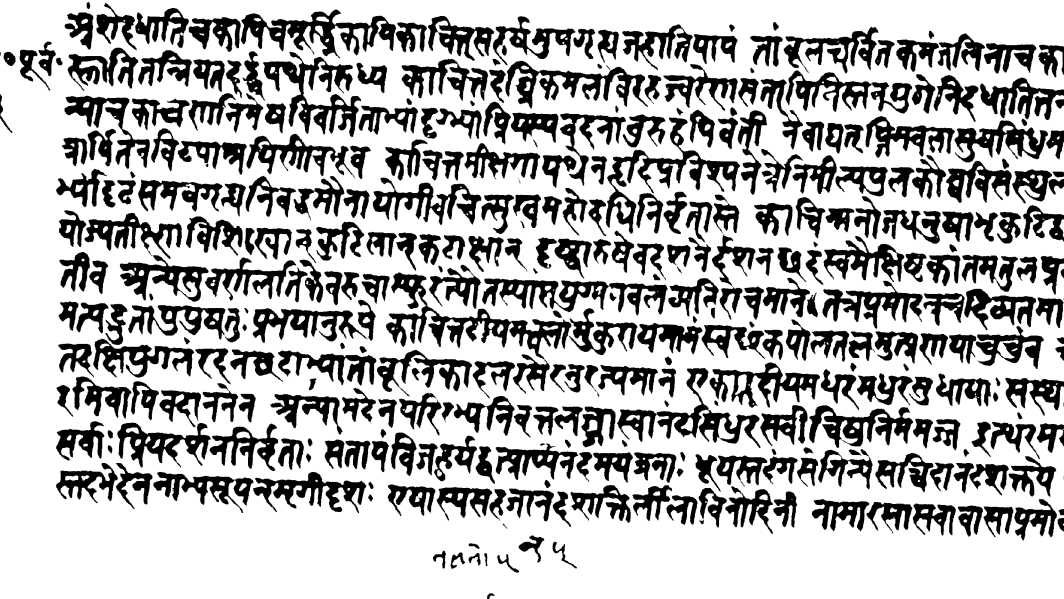

भुशुण्डी-रामायणका एक पृष्ठ

से जिनका सबध हो गया उनका फिर कहना क्या ? स्थूल, कारण, सूक्ष्म इन तीनो देहो के विनाश हो जाने पर गुरुमुख से सबध की योग्यता प्राप्त होती है। सबसे पहले अपनी (दिव्य) वास्तविक जननी और जनक का पता लगता है, आचार्य का पता लगता है, तब 'सेवा' मिलती है। तब इन पाच रसो मे जिस रस का अधिकार होता है उसके अनुरूप दिव्य नाम तथा दिव्यस्वरूप मिलता है यही 'अर्थ पचक' है।

गुरु मे ईश्वर बुद्धि रखते हुए 'अमायया' तथा 'अनुवृत्या' उसका सेवन करे। भगवान् की कृपा का अवलम्बन लेकर अपना सवस्व उन्ही के चरणो मे समर्पित कर प्रारब्धभोग समाप्त कर

उज्ज्वल भक्ति रस

साधक सूर्यमण्डल को भेद कर 'विरजा' मे स्नान करता है। यहा वह वासना सहित अपने दोनो देहो का परित्याग कर 'विरज' हो जाता है। अत्यन्त प्रबल वेग से वह 'विरजा' पार साकेत मे प्रवेश करता है और राजमार्ग से रत्नावरणगत नानारत्नमय दिव्य श्री रामभवन मे प्रवेश करता है। अपनी भावना के अनुसार वह प्रभु श्री राम को प्राप्त कर समस्त आनन्द को प्राप्त होता है, स्वय परानन्दमय हो जाता है। इस सहिता के अन्तिम अध्याय मे रस का प्रकरण है और उसका सागोपाग विन्यास है। इसमे उज्जवल भक्ति रस का विवेचन करते हुए लिखा है कि माधुर्यसिधु कमनीय किशोरमूर्ति श्री रामचन्द्र ही विषयालम्बन है, प्रेयसीगण आश्रयालम्बन है, सौशील्य, माधुर्य, कमनीय किशोरत्व, प्रियवचनत्व, भूषणालकार, वसन्त, कोकिलाकूजन, उपवन आदि उद्दीपन विभाव है, कटाक्ष, स्मित, भ्रविक्षेप, आदि अनुभाव है, रोमाच, वैवर्ण्य, प्रस्वेद आदि अष्ट सात्विक भाव है और आलस्य, निर्वेद आदि व्यभिचारी भाव है और प्रियता रति स्थायी भाव है।

ऊपर हमने 'शिव सहिता' 'लोमश सहिता' एव 'हनुमत्सहिता' का सक्षिप्त उल्लेख इस लिए किया है कि हम यह अनुभव करे कि रामभक्ति मे शृगारोपासना हाल की नयी उद्भावना-नही है। अपितु इसका आरम्भ बहुत पहले हो चुका था। इन सहिताओ के निर्माण का काल-निर्णय वस्तुत बहुत ही जटिल समस्या है। परन्तु ये उतनी 'आधुनिक' नही है जितनी समझी जाती है। और तो और, स्वय वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाड मे अशोकवन मे राम सीता के विहार का वर्णन मिलता है।[1] वस्तुत ईसवी सन् की आठवी शताब्दी से ही राम और सीता के पूर्वानुराग का चित्रण होने लगा[2] और महावीर चरित, जानकी हरण, प्रसन्न राघव तथा हनुमन्नाटक मे राम सीता के विलास का बहुत ही व्यापक एव सागोपाग वर्णन मिलता है, यहाँ तक कि कुछ लोगो की दृष्टि मे अश्लीलता की सीमा तक पहुच गया है।

इन सहिताओ तथा चरितो के अतिरिक्त प्राचीन ग्रन्थो मे 'सत्योपाख्यान' एव 'वृहद् कौशल खण्ड' आदि कुछ ऐसे प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थ है, जिनमे भगवान् राम और भगवती सीता के नाना

---

१ दे० वाल्मीकि रामायण, सर्ग ४२।

२ दे० रामकथा पृ० ४८३, अनु० ६१९।

विध लीला विलास का बडा ही भव्य वर्णन है। सत्योपाख्यान में[1] भगवान् का सीता के साथ वन विहार तथा जलक्रीडा का बडा ही रसीला वर्णन है तथा होलिका मे राम और सीता का प्रणय विहार एव पुन सीता की मानलीला (क्रोध) का चित्रण है। 'आनन्द रामायण' के विलास काण्ड मे राम-सीता की जलक्रीडा एव वन-विहार का वर्णन है।[2] इसी खण्ड मे राम द्वारा सोलह हजार कामपीडिता देवियो को गोपी रूप मे अग-सग का आश्वासन मिलता है,[3] तथा एक दासी को पीकदान के अभाव मे अपना हाथ बढाने पर तथा ताबूल रस पीने पर अगले जन्म मे राधा बनकर अधरामृत पान का आश्वासन मिलता है।[4] इसी प्रकार 'महारामायण' मे राम की रासक्रीडाओ का बडा ही मधुर मनोहारी वर्णन है।[5] कामिल बुल्के ने 'चित्रकूट माहात्म्य' शीर्षक एक हस्त-लिखित पुस्तक की चर्चा की है, जिसमे ऐसा वर्णन मिलता है कि चित्रकूट के मातानक वन मे एक सरोवर है, जिसके मध्य मे एक रम्य मण्डप बना हुआ है, जहाँ एक वेदिका पर रामसीता और उनकी सखियो के साथ नित्य रासक्रीडा करते है।

शृगारी रामभक्ति का आधार ग्रथ वृहत् कौशल खण्ड

शृगारी रामभक्ति का आधार ग्रन्थ 'वृहत्कौशल खण्ड अभी-अभी दो खडो मे प्रकाशित हुआ है परन्तु है 'प्राइवेट सर्क्युलेशन के लिए। श्री हनुमत् निवास अयोध्या के महात्मा रामकिशोर शरण जी महाराज की कृपा से मुझे इसकी जो प्रति प्राप्ति हुई है, उसके अध्ययन से रामभक्ति मे मधुरोपासना के अनेक परम गोपनीय रहस्यो का उद्घाटन होता है। इसमे राम लीला पूर्णत कृष्णलीला प्रतीत होती है। अपने विवाह के पूर्व राम अपने सखाओ के साथ, पुन गोपकन्याओ के साथ, फिर देव कन्याओ के साथ, फिर राज-कन्याओ के साथ रासलीला करते है। इसके अनन्तर देव कन्याओ के साथ परिहास एव उपालभ का विषय है। इसके पश्चात् श्री मैथिली जी के पूवराग एव विप्रलभ का प्रकरण है और इसी के पश्चात् है विवाह रहस्य-प्रकरण। विवाहोत्तर देवकन्या, गधवकन्या, राजकन्या, साध्यसुता, गुह्यकदेव कन्या, यक्षकन्या, नागकन्या के साथ राम का वर्णन है। यह समस्त ग्रन्थ जो ३०७२ श्लोको मे समाप्त होता है पूरा-का-पूरा राम का ही प्रसग है और रासविलास के नाना प्रकरणो का इतना मनोमुग्धकारी वणन है कि काव्य और रहस्य का इतना सुन्दर सम्मिश्रण एव मणिकाचन योग अन्यत्र दुर्लभ है। अवश्य ही रामावत भक्ति-धारा की शृगारी शाखा पर श्री हनुमत्सहिता तथा वृहद्कौशलखण्ड का ही विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है और

---

१ दे० **सत्योपाख्यान उत्तरार्ध, अध्याय २०, २७।**

२ दे० **सर्ग २, ६।**

३ तु० **कृष्णोपनिषद्, पद्मपुराण।**

४ दे० **आनन्द रामायण ७, १९, २९।**

५ दे० **महारामायण अ० ५२।**

६ दे० **रामकथा पृष्ठ १७१।**

इस सम्प्रदाय मे इन ग्रन्थो का वेदवत् आदर होता है तथा अष्टयाम मे इनका विधिवत् पाठ होता है।

अभिप्राय यह है कि ग्यारहवी शताब्दी से लेकर सोलहवी शताब्दी तक साधना और साहित्य के क्षेत्र मे माधुर्य भक्ति का ज्वार उमड रहा था और परम गोपनीय होते हुए भी इसमे कृष्ण भक्ति शाखा की तरह माधुर्य साधना का पूरा-पूरा सन्निवेश हो गया था।

गोस्वामी जी मे माधुर्य भाव की झलक

गीता मे हम जिसे 'राम शस्त्रभृतामह' का दर्शन कर आये थे वे 'जानकया सह सप्रीत क्रीडारसविलम्पट' तथा 'महारासरसोल्लासी विलासी सर्वदेहिनाम्' हो चुके थे और प्रेमी भक्तो के बीच उनका यह रूप ही विशेष प्रिय हुआ। हम अगले अध्याय मे विस्तार से देखेगे कि साहित्य और साधना के क्षेत्र मे इस मर्यादा-प्रधान साधना का रूप माधुर्य प्रधान कैसे चुपचाप हो गया। यहाँ लक्ष्य करने की एक और बात है कि गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस का प्रणयन करते समय अपने चारो ओर फैले हुए इस [illegible] साहित्य को अवश्य देखा होगा और कुछ साहित्यकारो की यह भी मान्यता हे कि स्वय गोस्वामी तुलसीदास की उपासना भी ऊपर-ऊपर दास्य भाव की, पर अन्दर-अन्दर मधुर भाव की ही थी।[1]

श्री ब्रजनिधि[2] का कथन है—

रग की बरखा करी बहु जीव सन्मुख करि लिए,
जनकनन्दिनी राम छबि मे भिजै दोनो जन-हिए।
बस निरन्तर रहत जिनके नाथ रघुवर-जानकी,
ते दास तुलसी करहु मोपर दया दपति दान की॥
सुन्दर सिया राम की जोरी, वारो तिहि पर काम करोरी।
दोउ मिलि रग महल मे मोहै, सब सखियन के मन को मोहै॥
सकल सखियन मे सिरोमनि दास तुलसी तुम रहौ।
ह्वै मेवन रुचिर रुचि सो सुजस की बानी कहौ।
दास यह तब अनन्य तापर रीझि चरनन तर परी।
अहो तुलसीदास तुम्हरी कृपा करि अपनी करी॥

'ब्रजनिधि' ने 'तुलसीदास' नामका 'रहस्य' खोलते हुए कहा हे—

जैजै श्री तुलसी तरु जगम राजई।
आनद बन के माँहि प्रगट छबि छाजई॥
कविता मजरि सुन्दर साजै।
राम भ्रमर रमि रह्यो तिहि काजै।

---

१ दे० चन्द्रवली पाण्डेय—तुलसी की गुह्य साधना, 'नया समाज' सितबर १९५३।

२ ब्रजनिधि ग्रन्थावली ना० प्र० सभा, काशी पृ० २७५-२७६ पद—८९, ९०, ९१, ८६, ८७।

रमि रहे रघुनाथ अलि है सरस सोधो पाइ कै।
अलि ही अमित महिमा तिहारी कहौ कैसे गाइ कै।।
तुलसी सु बृन्दा सखी कौ निज नाम ते वृन्दा सखी।
दास तुलसी नाम की यह रहसि मैं मन मे लखी।।

'रामचरित मानस' मे तो सीता-राम की जोडी को छवि और शृगार की एकता कहकर गोस्वामी जी चुप हो गये है, परन्तु 'गीतावली' मे उनका आन्तरिक रूप कुछ-कुछ अनावृत हुआ, जब वे सीताराम तथा उर्मिला लक्ष्मण के 'केलिगृह' का वर्णन करते है—

जैसे ललित लषन लाल लोने।
तैसिये ललित उरमिला, परस्पर लखन सुलोचन कोने।
सुखमासागर सिगार सार करि कनक रचे है तिहि सोने।
रूप प्रेम-परिमिति न परत कहि, बिथकि रही मति मौने।
सोभा सील सनेह सोहावनै समउ केलिगृह गौन।
देखि तियनि के नयन सफल भए तुलसीदास हू के होन।[1]

'केलिगृह' का दर्शन किसी 'सखी' को ही मिल सकता है। तुलसी के इस गुह्य रूप का, जो उनकी अत्यन्त अतरग साधना का वास्तविक रूप था, दर्शन गीतावली' के निम्न लिखित पद मे होता है—

माई! मन के मोहन जोहन-जोग जोही।
थोरी ही बयस, गोरे सावरे सलोने लोने,
लोयन ललित बिधुवदन बटोही।।१।।
सिरनि जटा मुकुट मजुल सुमन जुत,
जैसिये लसति नव पल्लव खोही।
किये मुनि वेष वीर, धरे धनु तून तीर,
मोहै मग, को है लखि परै न माही।।२।।
सोभा को साचो सवारि रूप जानरूप।
ढारि नारि बिरची बिरचि मग मोही।
राजत रुचिर तनु, सुन्दर स्रम के कन,
चाहै चकचौंधी लागे, कहौ का तोही?।।३।।
सनेह सिथिल मुनि बचन सकल सिय,
चितइ अधिक हित सहित आही।
तुलसी मनहु प्रभु कृपा की मूरति फरि,
हेरिके हरषि किये लियो है मोही।।४।।

---

१ गीतावली, बालकांड, १०५।
२ गीतावली, अयोध्याकांड, पद २०।

इसके ठीक पहले वाले पद मे गोस्वामी जी ने अपना 'रूप' स्वय प्रकट कर दिया है—

सखिहि सुसिख दई प्रेममगन भई,
सुरति बिसरि गई आपनो ओही।
तुलसी रही है ठाढी पाहन गढी सी काढी,
न जाने कहा ते आई है कौन की कोही ।।१।।[1]

यह 'ओही' स्वय तुलसी ही है और वही है मानस के 'तापस' भी। 'गीतावली' मे शृगार के कई ऐसे पद है जो सिद्ध करते है कि गोस्वामी जी का वाह्य (साधक) रूप मर्यादावादी दास्य भाव का था, परन्तु आन्तरिक गुह्य (सिद्ध) रूप लीला विलासी सखी भाव का था।

फटिक सिला मृदु विसाल, सकुल सुर तरु तमाल,
ललित लताजाल हरति छबि वितान की।
मदाकिन तारनि तीर मजुल मृग विहग भीर
धीर मुनिगिरा गभीर सामगान की।।
मधुकर पिक बरहि मुखर सुदर गिरि निरझर झर
जलकन घन छाँह छन प्रभा न भान की।
सब ऋतु ऋतुपति प्रभाउ, सतत वहै त्रिविध बाउ
जनु बिहार वाटिका नृप पचवान की।।
विरचित तहँ परन साल, अति विचित्र लषनलाल
निवसत जह नित कृपालु राम जानकी।
निजकर राजीव नयन पल्लवतल रचित स्त्रमन
प्यास परस्पर पियप प्रेमपान की।
सिय अग लिखै धातुराग सुमननि भूषन विभाग,
तिलक करनि का कहौ कलानिधान की।
माधुरी विलास हास गावत जस तुलसीदास
वसत हृदय जोरी प्रिय परम त्रान की।। अ० का० पद ४४।

था

मोर जानकी जीवन जागे।
सूत मागध प्रवीन, बेनुबीन-धुनि डारे गायक सरस राग रागे।
स्यामल सलोने गात आलस बस जँभात पिया प्रेमरस पागे।।
उनीदे लोचन चारु मुख सुखमासिग।र हेरि हारे मार भूरि भागे
सहज सुहाई छबि, उपमान लहै कबि मुदित विलोकन लागे।
तुलसी दास निसिबासर अनूप रूप रहत प्रेम-अनुरागे।।

---

१ वही पद १९।

इस प्रकार रामोपासना का प्रादुर्भाव 'दास्य'—सेवक-सेव्य भाव मे हुआ तथा 'मर्यादा' ही इसकी मुख्य प्रेरणा एव आधारशिला रही। परन्तु क्रमश दास्य सख्य मे, सख्य वात्सल्य मे और वात्सल्य माधुर्य मे परिणत होता गया और आज लगभग चार सौ वर्षों मे रामभक्ति की माधुर्य धारा उत्तर भारत मे प्रवाहित हो रही है, आरम्भ मे तो गुप्त गोदावरी की भाँति अप्रकट रूप मे परन्तु शनै शनै व्यक्त एव प्रकट रूप मे हो, अलबत्ता यह स्वीकार करना होगा कि कृष्णभक्ति-शाखा की तरह इसमे 'सखी भाव' अत्यत उन्मुक्त रूप मे व्यक्त नही हो पाया है। यहा सखी भाव मे भी मर्यादा की मुख्यता रही है। लक्ष्य करने की बात यह है कि आज अयोध्या मे अधिकाश मन्दिर 'कुज' और 'वन' नाम से अभिहित है और श्री कनक भवन के अतिरिक्त भी जितने मुख्य स्थान है, वहाँ भी युगलमूर्ति की 'मधुर उपासना' चल रही है। यहा के अधिकाश साधु सत एव साधक या तो कोई 'लता' है, या 'प्रिया', या 'अली या 'सखी'। सभव है यह आरम्भ की कठोर 'मर्यादाओं' एव नियमो' की प्रतिक्रिया ही हो—जैसा अभिनव मनोविज्ञान के पडित कहेंगे परन्तु इसका अनुशीलन हम आगे किसी अध्याय मे प्रस्तुत करेंगे और उसमे हम दिखलाने की चेष्टा करेंगे कि किन-किन प्रभावो के कारण रामभक्ति मे माधुर्य का सन्निवेश हुआ है और आज उसका वास्तविक रूप क्या है, उसकी बहिरग एव अतरग साधना मे क्या सम्बन्ध है तथा उसके सिद्धान्त पक्ष एव साधना ने साहित्य को जिस सीमा तक प्रभावित किया है और करता जा रहा है।

यहा अवश्य ही लक्ष्य करने की बात यह है रामावत सम्प्रदाय के साहित्य मे मधुर भाव का सन्निवेश या विकास केवल कृष्णभक्ति के अनुकरण पर नही हुआ है जैसा अधिकाश सुधी समालोचको एव मान्य विद्वानो का मत है। वहा स्वय दास्य प्रस्फुटित होकर माधुर्य मे पर्यवसित हुआ है और सभव है, उस पर उस समय की अन्य साधना पद्धतियों—कृष्णायत सखी सम्प्रदाय, वैष्णव सहजिया एव बौद्ध सहजिया, तथा काश्मीर शैव और 'रसेश्वर' दर्शन का प्रकारातर से कुछ-न-कुछ प्रभाव अवश्य पडा होगा। सच तो यह है कि मध्यकालीन समस्त साधनाओ मे क्या वैष्णव, क्या शाक्त, क्या शैव, क्या बौद्ध मधुर भाव की उपासना का ही स्वर मुख्य है और शेष समस्त भाव गौण है। प्रभाव जो कुछ और जैसा कुछ भी हो, रामावत मधुर उपासना अपने-आपमे से प्रस्फुटित, विकसित, पल्लवित—पुष्पित स्वतत्र साधनाशैली के रूप मे ही इस उत्तरा खण्ड मे छा गई थी और फिर भी 'मर्यादा' की मुख्यता के कारण इस खुलकर खेलने का अवकाश नही मिल सका। इसीलिए यह दबी हुई गुप्त परम गुह्य रूप मे ही बनी रही और आज भी वह परम गुह्य ही है।

छठा अध्याय

रामोपासना की रसिक परम्परा

भगवान् राम की मधुर भाव से उपासना करनेवाले भक्तों को 'रसिक' कहते हैं। यहां इस साधना में 'रसिक' शब्द इसी भाव में रूढ़ हो गया है।[1] और इसीलिए यह सम्प्रदाय 'रसिक सम्प्रदाय' कहलाता है। रसिक सम्प्रदाय की परम्परा परम प्राचीन है। इसके आकर ग्रन्थों से पता चलता है कि इसके आदि प्रवर्त्तक श्री हनुमान जी हैं, जिनका आत्म सम्बन्धी नाम श्री चारुशीला जी है। इस सम्प्रदाय में व्यास, शुकदेव, वशिष्ठ, पाराशर—आदि ऋषि-मुनि भी आते हैं। अभी-अभी स्वामी श्री सियालाल शरण जी महाराज 'श्री प्रेमलता जी' का जीवन चरित्र प्रकाशित हुआ है, जिसमें इस सम्प्रदाय की परम्परा दी हुई है, वह इस प्रकार है—

नाम	रसिक साधना का नाम
श्री हनुमान जी	श्री चारुशीला जी
श्री ब्रह्मा जी	श्री विश्वमोहनी जी
श्री वशिष्ठ जी	श्री ब्रह्मचारिणी जी
श्री पराशर जी	श्री पापमोचना जी
श्री व्यास जी	श्री व्यासेश्वरी जी
श्री शकदेव जी	श्री सुनीता जी
श्री पुरुषोत्तमाचार्य जी	श्री पुनीता जी
श्री गंगाधराचार्य जी	श्री गार्ग्यी जी
श्री सदाचार्य जी	श्री सुदर्शना जी
श्री रामेश्वराचार्य जी	श्री रामअली जी
श्री द्वारानन्द जी	श्री द्वारावती जी
श्री देवानन्द जी	श्री देवा अली जी

---

१ —श्री रामस्य माधुर्यरीत्यापि बहुस्त्री वल्लभत्वसिद्धे सर्वस्त्री स्वामिन्या श्री जानक्या तद्विरोधाश्रवणाच्च। ऐश्वर्यरीत्यातु श्री रामस्य सर्व चिदचिच्छेशित्वेन सर्वजीवभोक्तृत्वोपपत्या सर्वजीवभर्तृत्वनिष्पते ये भर्तृभार्याभावेन श्री राम भजते त्वेषामेव रसिकत्वमुपपद्यते।

—श्री हरिदासकृत भाष्य पृ० १६३

—श्री रामस्तवराज

श्री श्यामानन्द जी	श्री श्यामा अली जी
श्री श्रुतानन्द जी	श्री श्रुता अली जी
श्री चिदानन्द जी	श्री चिदा अली जी
श्री पूर्णानन्द जी	श्री पूर्णा अली जी
श्री श्रियानन्द जी	श्री श्रियाअली जी
श्री हरियानन्द जी	श्री हरिसहचरी जी
श्री राघवानन्द जी	श्री राघवा अली जी
श्री रामानन्द जी	श्री रामानन्ददायिनी जी
श्री सुरसुरानन्द जी	श्री सुरेश्वरी जी
श्री माधवानन्द जी	श्री माधवी अली जी
श्री गरीबानन्द जी	श्री गर्वहारिणी जी
श्री लक्ष्मीदास जी	श्री सुलक्षणा जी
श्री गोपालदास जी	श्री गोपाअली जी
श्री नरहरिदास जी	श्री नारायणी जी
श्री तुलसीदास जी	श्री तुलसी सहचरी जी
श्री केवल कृपा राम जी	श्री कृपा अली जी
श्री चिन्तामणिदास जी	श्री चिन्तामणि जी
श्री दामोदरदास जी	श्री माददायका जी
श्री हृदयराम जी	श्री उल्लासिनी जी
श्री मौजीराम जी	श्री स्वच्छन्दा जी
श्री हरिभजन दास जी	श्री हरिलता जी
श्री कृपाराम जी	श्री करुणाअली जी
श्री रतनदास जी	श्री रत्नावली जी
श्री नृपतिदास जी	श्री नीतिलता जी
श्री शंकरदास जी	श्री सुशीला जी
श्री जीवाराम जी	श्री युगलप्रिया जी
श्री युगलानन्यशरण जी	श्री हमलता जी
श्री जानकीवरशरण जी	श्री प्रीतिलता जी
श्री रामवल्लभाशरण जी	श्री युगलविहारिणी जी
श्री सियालाल शरण जी	श्री प्रेमलता जी

पुरातत्त्वानसधायिनी समिति अयोध्या ने सवत १९७७ मे मत्रराज की परम्परा पर खूब अच्छी तरह जम कर विचार किया था तथा उस समय तक की प्रचलित भिन्न-भिन्न परम्पराओ की आठ सूचियाँ दी है।

आजकल के महानुभावो ने जो शुद्धता पूर्वक 'निजगुरु' नामक पुस्तक मे परम्परा छपवाई है उसका क्रम इस प्रकार से है—

(१)

१ श्री मन्नारायण
२ श्री लक्ष्मी जी
३ श्री विष्वक्सेन जी
४ श्री शठकोप जी
५ श्री नाथमुनि जी
६ श्री पुण्डरीकाक्ष जी
७ श्री राममिश्र जी
८ श्री यामुनाचार्य जी
९ श्री महापूर्णाचार्य्य जी
१० श्री रामानुज स्वामी जी
११ श्री गोविन्दाचार्य जी
१२ श्री पराशर भट्ट जी
१३ श्री वेदान्ती जी
१४ श्री कलिवैरी जी
१५ श्री कृष्णपाद जी
१६ श्री लोकाचार्य जी
१७ श्री शैलेश जी
१८ श्री वरवर मुनि जी
१९ श्री पुरुषोत्तमाचार्य जी
२० श्री गगाधराचार्य जी
२१ श्री सदाचार्य जी
२२ श्री रामेश्वराचार्य जी
२३ श्री द्वारानन्द जी
२४ श्री देवानन्द जी
२५ श्री श्यामानन्द जी
२६ श्री श्रुतानन्द जी
२७ श्री चिदानन्द जी
२८ श्री पूर्णानन्द जी
२९ श्री श्रियानन्द जी
३० श्री हर्षानन्द जी
३१ श्री राघवानन्द जी
३२ श्री रामानन्द जी
३३ श्री अनन्तानन्द जी
३४ श्री कृष्णदास पयहारी जी
३५ श्री अग्रदास जी इत्यादि।

डाक्टर ग्रियर्सन की एक सूची का अनुवाद इण्डियन प्रेस इलाहाबाद मे छपे हुए रामायण मे छपा है, वह इस प्रकार है—

(२)

१ श्री मन्नारायण
२ श्री लक्ष्मी
३ श्री श्रीधर मुनि
४ श्री सेनापति मुनि
५ श्री कर्मसूनु मुनि
६ श्री सैन्यनाथ मुनि
७ श्री श्रीनाथ मुनि
८ श्री पुण्डरीक
९ श्री राम मिश्र
१० श्री पराकुश
११ श्री यामुनाचार्य
१२ श्री रामानुज स्वामी
१३ श्री शठकोपाचार्य
१४ श्री कूरेशाचार्य
१५ श्री लोकाचार्य
१६ श्री पराशराचार्य

१७ श्री वाकाचार्य
१८ श्री लोकाचार्य
१९ श्री देवाधिपाचार्य
२० श्री शैलेशाचार्य (लोकाचार्य) ?
२१ श्री पुरुषोत्तमाचाय
२२ श्री गगाधरानन्द
२३ श्री रामेश्वरानन्द
२४ श्री द्वारानन्द
२५ श्री देवानन्द
२६ श्री श्यामानन्द
२७ श्री श्रुतानन्द
२८ श्री नित्यानन्द
२९ श्री पूर्णानन्द
३० श्री हर्यानन्द
३१ श्री श्रियानन्द
३२ श्री हरिवर्यानन्द
३३ श्री राघवानन्द
३४ श्री रामानन्द
३५ श्री सुरसुरानन्द
३६ श्री माधवानन्द
३७ श्री गरीबानन्द
३८ श्री लक्ष्मीदास

(३)

उक्त डाक्टर साहेब को एक और सूची पटना से मिली है वह प्राय इसके समान ही है अन्तर केवल इतना ही है कि रामानुज स्वामी तक परम्परा नही दी है और कही-कही नामो म कुछ अन्तर है तथा कोई-कोई नाम नही है जैसे न० १३, १५ का नाम ही नही है। न० १७ श्र वाकाचार्य के स्थान पर श्री मद्यतीन्द्राचार्य है। न० २३ श्री रामेश्वरानन्द के स्थान प श्री राममिश्र, न० २७ श्री गरीबानन्द के स्थान पर श्री गरीब दास है। न० ३१ का नाम नही है

एक सूची श्री तपसी जी की छावनी अयोध्या मे प्राचीन हस्तलिखित मिली है। वह इस प्रकार है—

(४)

अथ[1] प्रनावलि लिख्यते। प्रथम ब्रह्म, ब्रह्म के मूल, मूल के प्रकृति, प्रकृति के बीज ओकार, बीज आकार के महातत्व महातत्व के आदिमूल नारायण आदिमूल नारायण के महालक्ष्मी महालक्ष्मी के ईक्षारूप ईक्षास्वरूप के विश्वकण, विश्वकरण के उज्जाममुनि उज्जाममुनि के जोतिमुनि, जोतिमुनि के लोकमुनि, लोकमुनि के प्रगटमुनि, प्रगटमुनि के गभीर मुनि, गभीर मुनि के दीर्घमुनि, दीर्घमुनि के अचलमुनि, अचलमुनि के प्रकाशमुनि, प्रकाशमुनि के नारदमुनि के कोष्ठमुनि, कोष्ठमुनि के कृपालमुनि, कृपालमुनि के गोपालमुनि, गोपालमुनि के वैराग्यमुनि, वैराग्यमुनि के त्यागमुनि, त्याग मुनि के श्रोत्रानन्द, श्रोत्रानन्द के अच्युतानन्द, अच्युतानन्द के पूर्णानन्द, पूर्णानन्द के दयानन्द दयानन्द के श्रियानन्द, श्रियानन्द के हरियानन्द, हरियानन्द के राघवानन्द, राघवानन्द के श्री स्वामी रामानन्द स्वामी रामानन्द के अनन्तानन्द, अनन्तानन्द के कृष्णदास जी कृष्णदास पयहारी जी के स्वामी अग्रदास जी इत्यादि।

---

१ शुद्धाशुद्ध जैसा लिखा था वैसी ही नकल कर दी गई है।

(५)

जन्मस्थान के श्रीयुत रघुवरशरण जी ने 'रहस्यत्र' मे जो परम्परा लिखी है, वह इस प्रकार है—

१ श्री मन्नारायण	२ श्री लक्ष्मी जी
३ श्री विष्वक्सेन जी	४ श्री वोपदेव जी
५ श्री शठकोप जी	६ श्री नाथमुनि
७ श्री पुण्डरीकाक्ष	८ श्री राममिश्र जी
९ श्री यामुन मुनि	१० श्री पराकश जी के ५ शिष्य
११ श्रुतदेव, श्रुतप्राज्ञ, श्रुतधामा, श्रुतोदधि पचम श्री रामानुज स्वामी	१२ श्री कूरेश जी
१३ श्री पराशर भट्ट जी	१४ श्री लोकाचाय
१५ श्री देवाधिपाचार्य	१६ श्री शैलेश जी
१७ श्री वरवर मुनि	१८ श्री पुरुषोत्तम जी
१९ श्री गगाधर जी	२० श्री सदाचार्य्य जी
२१ श्री रामेश्वर जी	२२ श्री द्वारानन्द जी
२३ श्री देवानन्द जी	२४ श्री श्यामानन्द जी
२५ श्री श्रुतानन्द जी	२६ श्री चिदानन्द जी
२७ श्री पूर्णानन्द जी	२८ श्री श्रियानन्द जी
२९ श्री हर्षानन्द जी	३० श्री राघवानन्द जी
३१ श्री रामानन्द जी	

उपरोक्त परम्परा श्लोकबद्ध है। इसको कितने ही विद्वान् मानते है। परन्तु इसकी व्यवस्था इस तरह की है कि श्रीनारायण से लेकर वरवर मुनि तक जो परम्परा गद्दीस्थ आचारी लोगो के पास है, उसमे श्री वोपदेव जी का नामोनिशान नही है। नही मालूम इसमे वोपदेव जी कैसे लिखे गये। और महापूर्णाचार्य के शिष्य श्री रामानुज स्वामी प्रख्यात है तो इसमे पराकुश दास जी के शिष्य दूसरे चार श्रुतदेव, श्रुतप्रज्ञ इत्यादि पचम शिष्य श्री रामानुज स्वामी कैसे लिखे गये। और श्री रामानन्द स्वामी जी के पीछे ७१ वर्ष के बाद श्री वरवर मुनि का जन्म है। सो वरवर मुनि श्री रामानन्द स्वामी के पूर्व १४ वी पीढी के गुरु कैसे लिखे गये है। इस पर विद्वानो को विचारना चाहिए।

वोपदेव जी को छोडकर इस तरह की परम्परा 'वैष्णव धर्म रत्नाकर' मे भी लिखी है।

(६)

भाटो के पास जो परम्परा है उसकी नकल इस प्रकार प्राप्त हुई है—

१ श्री आदिसून
२ श्री महासुन
३ श्री निर्गुण
४ श्री निराकार
५ श्री बीजओकार
६ श्री आदि मूलनारायण
७ श्री महालक्ष्मी
८ श्री विष्वक्सेन
९ श्री ईक्षास्वरूप
१० श्री उजाममुनि
११ श्री जोतमुनि
१२ श्री लोकमुनि
१३ श्री प्रगट मुनि
१४ श्री गम्भीरमुनि
१५ श्री धीरजमुनि
१६ श्री प्रलोकममुनि
१७ श्री पुहुपदेव मुनि
१८ श्री रामेमुनि
१९ श्री महापुरना मुनि
२० श्री विद्याधर मुनि
२१ श्री सरवन मुनि
२२ श्री जज्ञासमुनि
२३ श्री रामानुज मुनि
२४ श्री सूर्य्यप्रकाश मुनि
२५ श्री सूतधाम मुनि
२६ श्री सूतपीपा मुनि
२७ श्री मगल मुनि
२८ श्री श्रेष्ठगोप मुनि
३० श्री पद्मविलोचन

इति मुनि पदवी समाप्त।

३१ श्री पद्माचार्य्य १
३२ श्री कदमाचार्य्य २
३३ श्री देवाचार्य्य ३
३४ श्री दीपाचार्य्य ४
३५ श्री ऋषियाचार्य्य ५
३६ श्री वशीधराचार्य्य ५
३७ श्री कृपालचार्य्य ७
३८ श्री मुखाचार्य्य ८
३९ श्री विषनाचार्य्य ९
४० श्री पुरुषोत्तमाचार्य्य १०
४१ श्री नरोत्तमाचार्य्य ११
४२ श्री श्यामाचार्य्य १२
४३ श्री पूर्णाचार्य्य १३
४४ श्री गगाधराचार्य्य १४
४५ श्री धराचार्य्य १५

इति आचार्य्य पदवी समाप्त।

४६ श्री दोयानन्द १
४७ श्री देवानन्द २
४८ श्री सेवानन्द ३
४९ श्री सुसेतानन्द ४
५० श्री अचेतानन्द ५
५१ श्री श्यामानन्द ६
५२ श्री पूर्णानन्द ७

५३ श्री दरियानन्द	८	५४ श्री सीयानन्द	९
५५ श्री हरियानन्द	१०	५६ श्री राघवानन्द	११
५७ श्री रामानन्द	१२	५८ श्री अनन्तानन्द	१३

इति नन्द पदवी समाप्त।

५९ श्री पैहारी कृष्णदास जी	१	६० श्री अग्रदास जी	२

(७)

मौजे सतमलपुर, पो० समस्तीपुर जिला दरभगा के रहनेवाले श्री रसिकबिहारी शरण जी ने अपने 'मन्त्रराज परम्परा' नामक ग्रन्थ मे लिखकर परम्परा का निर्देश किया है। पुस्तक छपी है जो देखना चाहे मगाकर देख ले। वह उपर्युक्त पाचो प्रकार की परम्परा से विलक्षण है। क्योकि उसमे लिखा है कि श्री रामजी ने मन्त्रराज को श्री जानकी जी को दिया। उन्होने महाशम्भु जी को दिया। महाशम्भ् जी ने विष्णु जी को दिया इत्यादि।

इस प्रकार से हमारे सम्मुख ७ प्रकार की परम्परा-सूचियाँ उपस्थित है। इनमे जितनी भिन्नता या भेद है, उसे देखा जा सकता है।

इस परम्परा से यह बात मालूम होती है कि श्रीरामानन्द स्वामी जी महाराज श्री रामानुज स्वामी के परिवार मे से नही है।

यह परम्परा श्रीमन्नारायण स शुरू नही होती है, किन्तु श्रीराम जी से इसका आरम्भ होता है। जैसे कि—

(८)

१ सर्वेश्वर श्री रामचन्द्र जी महाराज	२ श्री जानकी जी
३ श्री हनुमान जी	४ श्री ब्रह्मा जी
५ श्री वशिष्ठ जी	६ श्री पराशर जी
७ श्री व्यास जी	८ श्री शुकदेव जी
९ श्री पुरुषोत्तमाचार्य्य जी	१० श्री गगाधराचार्य जी
११ श्री सदाचार्य जी	१२ श्री रामेश्वराचार्य जी
१३ श्री द्वारानद जी	१४ श्री देवानद जी
१५ श्री श्यामानन्द जी	१६ श्री श्रुतानन्द जी
१७ श्री चिदानन्द जी	१८ श्री पूर्णानन्द जी
१९ श्री श्रियानन्द जी	२० श्री हर्य्यानन्द जी
२१ श्री राघवानन्द जी	२२ श्री स्वामी रामानन्द जी महाराज

श्री राम जी से श्री रामानन्द जी के मन्त्रराज आता है। इस अग्रस्वामी जी की परम्परा का मेल सदाशिव सहिता के इस श्लोक से भली भाँति मिल जाता है—

राजमार्गमिम विद्धि रामोक्त जानकीकृतम्।

अर्थात् श्री राम जी द्वारा कथित इस राममन्त्र को श्री जानकी जी ने प्रख्यात किया। इसको तुम राजमार्ग जानो। इसके अतिरिक्त एक बात और है। 'ऋषयो मन्त्रद्रष्टार' इस निरुक्त वचन के अनुसार ऋषि वह होता है जो मन्त्र के अर्थ पर विचार और प्रचार करता है। राममन्त्र का ऋषि जानकी लिखा हुआ है। 'हारीत स्मृति' मे भी लिखा है कि "ऊँ अस्य श्रीरामषडक्षर मन्त्रराजस्य श्री जानकी ऋषि।" ऐसे ही समस्त पटलो मे भी छपा हुआ है। इससे भी विदित होता है कि श्री की भी श्री परात्परा शक्ति श्री जानकी जी को ही श्रीरामजी से इन मन्त्रराज क उपदेश प्राप्त हुआ है।

इस परम्परा मे आगे चलकर लिखा है कि श्रीजानकी जी ने श्री हनुमान जी को उपदेश दिया

और 'श्रीरामविजय सुधाकर' मे हमारे पूर्वाचार्य्य श्री मधुराचार्य्य जी लिख गये है—'सीता शिष्य गुरोर्गुरुम्।' इससे स्पष्ट हो गया कि श्रीहनुमान् जी श्रीजानकी जी के शिष्य है।

पुन श्री हनुमान् जी ने श्रीराममत्र का उपदेश ब्रह्मा जी को दिया। प्रमाण 'सदाशिव सहिता—'

योऽप मन्त्रिनिधियो हनुमान् रामतत्पर।
सऽप्रादाद् ब्रह्मणे तत्र मत्रराज षडक्षरम्॥

पुन अथर्वण—'श्री रामतापनी' का प्रमाण—

त्वत्तो वा ब्रह्मणोवापि ये लभन्ते षडक्षरम्।
जीवन्तो मत्रसिद्धा स्युर्मुक्ता मा प्राप्नुवन्ति ते॥

अर्थात् श्रीराम जी शिव जी से कहते है कि हे शकर! हमारी नित्य विभूति मे पहले तुमको तथा ब्रह्मा को हमारा मत्र प्राप्त हुआ। अतएव तुम्हारी तथा ब्रह्मा की दो राममत्र की परम्पर पृथ्वीतल मे प्रचारित हुई है। जो कोई इन दोनो परम्पराओ मे से किसी मे भी दीक्षित होकर राममत्र का अभ्यास करेगा वह जीते जी सिद्धि को प्राप्त होकर ससार समुद्र से तर जायगा।

अनन्तर ब्रह्मा, वशिष्ठ, पराशर, व्यास, शुकदेव द्वारा क्रमश इस भूलोक मे मत्रराज का प्रचार हुआ। प्रमाण, 'अगस्त्य सहिता'—

ब्रह्मा ददौ वशिष्ठाय स्वसुताय मनु तत।
वशिष्ठोपि स्वपौत्राय दत्तवान्मत्रमुत्तमम्॥
पराशराव रामस्य भक्तिमुद्दिश्यप्रोक्तवम्।
स वेदव्यास मुनये ददावित्थ गुरुक्रम॥
वेदव्याम मुखेनात्र मत्रौ भूमौ प्रकाशित।
वेदव्यासो महातेजा शिष्येभ्य समुपादिशत॥

परमहस शुकदेव जी ने सबसे पहिले परमहस पुरुषोत्तमाचार्य को राममत्र का उपदेश दिया, यह बात सम्प्रदायाचार्य्य श्री अग्रस्वामी जी ने लिख दी है, यथा—

शुकदेवकृपापात्रो ब्रह्मचर्य्यव्रतेस्थित ।
नरोत्तमस्तु तच्छिष्यो निर्वाणपदवी गत ।।

अस्तु, परमहस पुरुषोत्तमाचार्य्य, गगाधराचार्य्य आदि महापुरुषो द्वारा क्रमश श्री राममत्र श्री रामानन्द स्वामी जी को प्राप्त हुआ।

ये तो हुए शास्त्रीय प्रमाण, अब एक ऐतिहासिक प्रमाण भी। श्री स्वामी रामानन्द जी महाराज के समकालीन काशीपुरी मे मौलाना रशीद नामक एक मुसलमान सन्त हो गये है। उन्होने 'तजकी रतुलफ्क्रा' नाम से एक पुस्तक फारसी भाषा मे लिखी है जिसमे विशेषत मुसलमान फकीरो की चर्चा है और प्रसिद्ध-प्रसिद्ध हिन्दु सन्तो की भी कुछ महिमा गाई गई है। उसी पुस्तक मे उक्त मौलाना ने स्वामी जी की लोकोत्तर आध्यात्मिक शक्ति का परिचय देते हुए स्पष्ट शब्दो मे लिखा है कि स्वामी जी आदि श्री सम्प्रदाय के आचार्य्य है, इस मार्ग की मूल प्रवर्त्तिका श्री सीता जी है, उन्होने सबसे पहले इस सिद्धान्त का उपदेश देवस्वभावी हनुमान जी को दिया और भगवान् आजानेय के द्वारा इस मत्र का प्रचार हुआ। इसीलिए इसका नाम श्री सम्प्रदाय है और उपदेश मत्र को रामतारक कहते है।[1]

श्री सम्प्रदाय की दो शाखाएँ—एक श्री शब्द वाच्या श्री जानकी जी के द्वारा श्री राममत्रराज की परम्परा प्रकट हुई और दूसरी (श्री शब्द वाच्या) श्री लक्ष्मी जी द्वारा प्रकट हुई। जानकी जी श्री शब्द वाच्या है, इसका समाधान यह है कि श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण युद्ध काण्ड सर्ग ११३ श्लोक २२ मे लिखा है 'वसुधा याहि वसुधा श्रिया श्रीर्भतृवत्सलाम् ।' पुन अयोध्याकाण्ड सर्ग ४४ मे लिखा है—'श्रिय श्रीश्चभवेद्गया कीर्त्या कीर्ति क्षमा शमा । अर्थात् श्री जानकी जी श्रियो की भी आद्याशक्ति सर्वेश्वरी है। 'पुन श्री अग्रस्वामी जी ने भी अष्टाक्षर मन्त्र की व्याख्या मे लिखा है कि 'श्री शब्देन भगवती सीतोच्यते ।'

अस्तु। उपर्युक्त दोनो शाखाओ का नाम 'श्री सम्प्रदाय' ही है क्योकि दोनो की प्रवर्त्तिका श्री जी ही है और दोनो का सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत ही है।

इनके अतिरिक्त श्री 'महारामायण' मे दी गई परम्परा इस प्रकार है—

१ श्री राम जी	२ श्री सीता जी
३ श्री हनुमान जी	४ श्री ब्रह्मा जी
५ श्री वसिष्ठ जी	६ श्री परासर जी
७ श्री व्यास जी	८ श्री शुकदेव जी
९ श्री पुरुषोत्तमाचार्य जी	१० श्री गगाधराचार्य

---

१ देखिये पुरातत्त्वानुसधायिनी समिति अयोध्या स० १९७७ की रिपोर्ट पृ० १३।

११ श्री सदाचार्य
१२ श्री सोमेश्वराचार्य
१३ श्री द्वारानन्दाचार्य
१४ श्री देवानन्दाचार्य
१५ श्री श्यामानन्दाचार्य
१६ श्री श्रुतानन्दाचार्य
१७ श्री चिदानन्दाचार्य
१८ श्री पूर्णानन्दाचार्य
१९ श्री श्रियानन्दाचार्य
२० श्री हर्यानन्दाचार्य
२१ श्री राघवानन्दाचार्य
२२ श्री जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य
२३ श्री योगानन्द जी
२४ श्री मयानन्द जी
२५ श्री तुलसीदास भागवती जी
२६ श्री नयनूराम जी
२७ श्रीखाम चौगानी जी
२८ श्री उधोमयदानी जी
२९ श्री खेमदास जी
३० श्री रामदास जी
३१ श्री लक्ष्मणदास जी
३२ श्री देवादास जी
३३ श्री भगवानदास जी
३४ श्री बालकृष्णदास जी
३५ श्री वेणीदास जी
३६ श्री श्रवणदास जी
३७ श्री रामवचनदास जी
३८ श्री रामवल्लभाशरण जी।

श्री 'विश्वभरोपनिषद्' की टीका (प० श्री मय्यदास जी कृत) मे गुरु-परम्परा प्रकार है--

१ श्री रामजी महाराज
२ श्री जानकी जी
३ श्री हनुमान् जी
४ श्री ब्रह्मा जी
५ श्री वशिष्ट जी
६ श्री पराशर जी
७ श्री व्यास जी
८ श्री शुकदेव जी
९ श्री पुरुषोत्तमाचार्य जी
१० श्री गगाधराचार्य जी
११ श्री सदाचाय जी
१२ श्री रामेश्वराचार्य जी
१३ श्री द्वारानन्द जी
१४ श्री देवानन्द जी
१५ श्री श्यामानन्द जी
१६ श्री श्रुतानन्द जी
१७ श्री चिदानन्द जी
१८ श्री पूर्णानन्द जी
१९ श्री श्रियानन्द जी
२० श्री हरियानन्द जी
२१ श्री राघवानन्द जी
२२ श्री रामानन्द जी
२३ श्री अनन्तानन्द जी
२४ श्री गैसदास जी
२५ श्री खेमदास जी
२६ श्री पूर्णवैराठी (बैरागी) जी
२७ श्री गुजारदास जी
२८ श्री कृष्णदास जी
२९ श्री गोपालदास जी
३० श्री दामोदरदास जी
३१ श्री लक्ष्मीदास जी
३२ श्री आनन्दराम जी

३३ श्री तुलसीदास जी
३४ श्री विष्णुदास जी
३५ श्री हरिभजनदास जी
३६ श्री महादास जी निर्वाणी
३७ श्री अयोध्यादास जी
३८ श्री जानकीदास जी
३९ श्री मणिरामदास जी
४० श्री सरयूदास जी

श्री 'सीतोपनिषद्' मे स्वामी श्रीरामानन्द जी तक की गुरु-परपरा इस प्रकार है—

१ सर्वेश्वर श्रीसीता रामचन्द्र जी महाराज
२ श्री हनुमान जी
३ श्री ब्रह्मा जी
४ श्री वशिष्ट जी
५ श्री पराशर जी
६ श्री व्यास जी
७ श्री शुकदेव जी
८ श्री पुरुषोत्तमाचार्य जी
९ श्री गगाधराचार्य जी
१० श्री सदाचार्य जी
११ श्री रामेश्वराचार्य जी
१२ श्री द्वारकानन्द जी
१३ श्री देवानन्द जी
१४ श्री श्यामानन्द जी
१५ श्री श्रुतानन्द जी
१६ श्री चिदानन्द जी
१७ श्री पूर्णानन्द जी
१८ श्री श्रियानन्द जी
१९ श्री हर्यानन्द जी
२० श्री राघवानन्द जी
२१ श्री श्री रामानन्द स्वामी जी महाराज

श्री स्वामी रामचरणदास जी 'करुणासिधु' के 'श्री रामनवरत्न सार सग्रह' मे गुरु-परम्परा का प्रकरण इस प्रकार है—

१ श्री राम जी
२ श्री सीताजी
३ श्री हनुमान जी
४ श्री ब्रह्मदेव जी
५ श्री वसिष्ठ जी
६ श्री पराशर जी
७ श्री व्यास जी
८ श्री शुकदेव जी
९ श्री पुरुषोत्तमाचार्य
१० श्री गगाधराचार्य
११ श्री सदाचार्य
१२ श्री रामेश्वराचार्य
१३ श्री द्वारानदाचार्य
१४ श्री देवानन्दाचार्य
१५ श्री श्यामानन्दाचार्य
१६ श्री श्रुतानन्दाचार्य
१७ श्री चिदानदाचार्य
१८ श्री पूर्णानन्दाचार्य
१९ श्रियानन्दाचार्य
२० श्री हर्यानन्दाचार्य
२१ श्री राघवानन्दाचार्य
२२ श्रीजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्य
२३ श्री अनतानदाचार्य
२४ श्री कृष्णाचार्य
२५ श्री अग्रस्वामी जी
२६ श्री रामभगवान जी
२७ श्री लक्ष्मणदास जी
२८ श्री मस्तराम जी

२९ श्री लक्ष्मीराम
३० श्री नन्दलाल जी
३१ श्री चरणदास जी
३२ श्री हरिदास जी
३३ श्री रामप्रसाद जी दीनबन्धु
३५ श्री रघुनाथ प्रसाद जी
३५ श्री रामचरणजी करुणा सिन्धु
३६ श्री सीताराम सेवक जी
३७ श्री जानकीवरशरण जी
३८ श्री लक्ष्मणशरण जी

श्री मथुरादास जी महाराज ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'कल्याण कल्पद्रुम' मे गुरुपरम्प श्लोक-बद्ध दी है, जो इस प्रकार है—

परधाम्नि स्थितोराम पुण्डरीकायतेक्षण ।
मेवया परया जुष्टो जानक्यै तारक ददौ ॥१॥
श्रिय श्रीरपिलोकाना दु खोद्धरणहेतवे ।
हनूमते ददौ मन्त्र सदा रामाघ्रिसेविने ॥२॥
ततस्तु ब्रह्मणा प्राप्तो हनुमानेन मायया ।
कल्पान्तरे तु रामो वै ब्रह्मणे दत्तवानिमम् ॥४॥
मन्त्रराज जप कृत्वा धाता निर्मातृतागत ।
त्रयोमारमिम धातुर्वशिष्ठो लब्धावान्परम् ॥५॥
पराशरो वशिष्ठाश्च मुद्रा सस्कार सयुतम् ।
मन्त्रराज पर लब्ध्वा कृतकृत्यो बभूव ह ॥६॥
पराशरस्य सत्पुत्रो व्याम सत्यवती सुत ।
पितु षडक्षर लब्ध्वा चक्रे वेदोपबृहणम् ॥७॥
व्यासोऽपि बहु शिष्येषु मन्वानो शुभ योग्यताम् ।
परमह सवर्याय शुकदेवाय दत्तवान् ॥८॥
शुकदेवकृपापात्रो ब्रह्मचर्य्यव्रते स्थित ।
नरोत्तमस्तु[1] तच्छिष्यो निर्वाणपदवी गत ॥९॥
म चापि परमाचार्य्यो गगाधराय सूरये ।
मन्त्राणा परम तत्व राममत्र प्रदत्तवान् ॥१०॥
गगाधरात्सदाचार्य्यस्ततो रामेश्वरो यति ।
द्वारानन्दस्ततो लब्ध्वा परब्रह्मरतो ऽ भवत् ॥११॥
देवानन्दस्तु तच्छिष्य श्यामानन्दस्ततो ग्रहीत् ।
तत्सेवया श्रुतानन्दश्चिदानन्दस्ततो ऽ भवत् ॥१२॥

---

१ इनका दूसरा नाम है श्रीस्वामी १०८ श्री पुरुषोत्तमाचार्य्यजी।

पूर्णानन्दस्ततो लब्ध्वा श्रियानन्दाय दत्तवान्।
हर्य्यानन्दो महायोगी श्रियानन्दाघ्रिसेवक ॥१३॥
हर्य्यानन्दस्य शिष्यो हि राघवानन्द इत्यसौ।
यस्य वै शिष्यता प्राप्तो रामानन्द स्वय हरि ॥१४॥
रामानन्दस्य सर्वज्ञ शिरोरत्नस्य धीमत।
अनन्तानन्द इत्याख्य सच्छिष्य सद्गुणाश्रय ॥१५॥
अनन्तानन्दमाचार्य्य गयादास उपेत्य च।
मन्त्ररत्न समादाय लक्ष्मीदासाय दत्तवान् ॥१६॥
श्रीमन्माधवदासस्तु तस्माल्लेभे षड्क्षरम्।
द्वार प्रवर्तक खोजी ततो मन्त्र गृहीतवान् ॥१७॥
दत्तवान् क्षेमदासाय श्री खोजीजी महामुनि।
श्रीनारायणदासश्च तत प्राप्त षडक्षरम् ॥१८॥
भक्तराजो महाधीमान् श्रीमन्त्र करुणालय।
ददौ नृसिंहदासाय रामदासाय सोपि च ॥१९॥
हरिदासस्ततो लब्ध्वा कृपारामाय धीमते।
मन्त्ररत्न पर प्रेम्णा दत्तवान् करुणानिधि ॥२०॥
स च श्रीकृष्णदासाय महामन्त्र प्रदत्तवान्।
श्रीमत्सन्तोषदासस्तु ततो लेभे हि त मनुम् ॥२१॥
ततो रघुनाथदास पूर्णदासस्ततस्तुतम्।
प्रगृह्य ब्रह्मदासाय प्रददौ काष्ठधारिणे ॥२२॥
स च भगवान्दासाय दत्तवान् मन्त्रमुत्तमम्।
रामगलोलादासाय स ददौ करुणानिधि ॥२३॥
स श्रीनृसिंहदासाय कमलदासाय सो पि च।
दत्तवान्मत्ररत्न तत्सर्वजीव हिऽतावहम् ॥२४॥
श्री मान्वज्रागदासस्तु तदीय परिचर्य्यया।
राममन्त्रमुपादाय कार्तार्थ्य समुपेयिवान् ॥२५॥
य पठेच्छद्धयानित्य पूर्वाचार्य्यपरम्पराम्।
मन्त्रराज रति प्राप्य सद्यो रामपद ब्रजेत ॥२६॥

श्री कान्तशरण ने 'प्रपत्तिरहस्य' में श्री अग्रस्वामी की दी हुई परपरा का उल्लेख करते हुए उसे अद्यतन रूप दिया है जो इस प्रकार है—

रामानन्दमह बन्दे वेद-वेदान्त-पारगम्।
राम-मत्रप्रदातार सर्वलोकोपकारकम् ॥१॥

शुभासने समासीनमनन्तानन्दमच्युतम् ।
कृष्णदासो नमस्कृत्य पप्रच्छ गुरुसन्ततिम् ॥२॥

कृष्णदास उवाच—

भगवन् यमिना श्रेष्ठ प्रपन्नोऽस्मि दया कुरु ।
ज्ञातुमिच्छाम्यह सर्वा पूर्वेषा सत्परम्पराम् ॥३॥
मन्त्रराजश्च केनादौ प्रोक्त कस्मै पुरा विभो ।
कथ च भुवि विख्यातो मन्त्रो य मोक्षदायक ॥४॥
कृष्णदासवच श्रुत्वा ऽनन्तानन्दो दयानिधि ।
उवाच श्रूयता सौम्य वक्ष्यामि तद्यथाक्रमम् ॥५॥
परधाम्निस्थितो राम पुण्डरीकायतेक्षण ।
सेवया परया जुष्टो जानक्यै तारक ददौ ॥६॥
श्रिय श्रीरपि लोकाना सुखोद्धरणहेतवे ।
हनूमते ददौ मन्त्र सदा रामाघ्रिसेविने ॥७॥
ततस्तु ब्रह्मणा प्राप्तो मुह्यमानेन मायया ।
कल्पान्तरे तु रामो वै ब्रह्मणे दत्तवानिमम् ॥८॥
मन्त्रराजजप कृत्वा धाता निर्मातृता गत ।
त्रयीसारमिम धातुवसिष्ठो लब्धवान्परम् ॥९॥
पराशरो वसिष्ठाश्च मुद्रामस्कार-मयुतम् ।
मन्त्रराज पर लब्ध्वा कृतकृत्यो बभूव ह ॥१०॥
पराशरस्य सत्पुत्रो व्यास सत्यवतीसुत ।
पितु षडक्षर लब्ध्वा चक्रे वेदोपबृहणम् ॥११॥
व्यासोपि बहुशिष्येषु मन्त्रान शुभयोग्यताम् ।
परमहमवर्याय शुकदेवाय दत्तवान् ॥१२॥
शुकदेव-कृपापात्रो ब्रह्मचर्यव्रतेस्थित ।
नरोत्तमस्तु तच्छिष्यो निर्वाणपदवी गत ॥१३॥
स चापि परमाचार्यो गगाधराय सूरये ।
मन्त्राणा परम तत्त्व राममन्त्रप्रशास्तवान् ॥१४॥
गगाधरात्सदाचार्यस्ततो रामेश्वरो यति ।
द्वरानन्दस्ततो लब्ध्वा परब्रह्मरतो ऽभवत् ॥१५॥
देवानन्दस्तु तच्छिष्य श्यामानन्दस्ततो ग्रहीत् ।
तत्सेवया श्रुतानन्दश्चिदानन्दस्ततो ऽभवत् ॥१६॥
पूर्णानन्दस्ततो लब्ध्वा श्रियानन्दाय दत्तवान् ।
हर्यानन्दो महायोगी श्रियानन्दाघ्रिसेवक ॥१७॥

हर्यानन्दस्य शिष्यो हि राघवानन्द इत्यसौ।
यस्य वै शिष्यता प्राप्तो रामानन्द स्वय हरि ॥१८॥

यहा तक की परम्परा श्री अग्रस्वामि कृत श्लोकबद्ध है। इसके आगे कई शाखाएँ हुई है उनमे मै अपनी परम्परा आगे लिखते है—

तस्मात्सुरसुराख्यस्तु ततो माधवमज्ञक।
गरीबाख्यस्तत प्राप्तो लक्ष्मीदासस्तत परम्॥१९॥
तस्माद्गोपालदासस्तु नरहरिदासस्तत।
श्री मान्केवलरामश्च तत प्राप्त षडक्षर ॥२०॥[1]
श्री दामोदरदासाख्य शिष्यस्तस्य महामते।
माधुमेवी दयायुक्त सदाचारेषु निष्ठित ॥२१॥
तस्माद् हृदयरामस्तु विरक्तश्च गुणालय।
कृपारामोपि वै तस्माद्रत्नदासस्ततो ऽभवत्॥२२॥
तस्मान्नृपतिदासस्तु रामभक्तो नसूयक।
तस्माच्छकरदासो हि राम-नाम-प्रकाशक ॥२३॥
तस्माज्जातो महाराजो जीवारामेतिसज्ञक।
शुभस्थाने चिराणाख्ये राजत रसिकाग्रणी ॥२४॥
तस्य सम्बन्ध सम्भत महाराज प्रतापवान्।
साकेताख्य पुरे रम्ये विरराज महाप्रभु ॥२५॥
सीतारामौ प्रददतु तस्य नाम विलक्षणम्।
युगलानन्यशरणाख्य विदित पृथिवीतले॥२६॥
तस्यानन्तकल्याणगुणाख्यातो विलक्षण।
स्वभाव तस्य सौशील्य कारुण्य कटुवर्जितम्॥२७॥
सौन्दर्य तस्य लावण्य माधुर्य रसवर्द्धनम्।
तस्मिन्नेव प्रकाशन्ते यथा सीतापते गुणा ॥२८॥

---

१ श्री केवल राम (कूवा) जी का जन्म स० १५४५ में हुआ है। उन्होने १८० वर्ष तक की आयु प्राप्त कर जीवो का उद्धार किया है। स० १७२५ में उनकी परधाम यात्रा हुई है। उनकी शुभ जीवनी उनके समकालीन गुरुभाई श्री रघुनाथदास जी ने उत्तम रीतिसे सस्कृत में लिखी है। उसके बीच बीच में दोहे भी है। उसमें श्री नरहरिदासजी के प्रथम शिष्य श्री केवल राम (कूवा) जी है और द्वितीय शिष्य श्री गोस्वामी तुलसीदासजी लिखे गए है, तथा—'द्वितीये नरहरिदास के, भये जो तुलसीदास। रामायण शुचि ग्रथ रचि, जग में कियो प्रकास।' उक्त जीवनी 'फीथडा' गादी में वर्तमान है, जिन्हें विशेष जानना हो, वें उसे देखें।

प्रवक्तु नाप्यल कोऽपि तस्य महात्म्यमुत्तमम्।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नम २९॥
तस्य शिष्यो महाप्राज्ञो रसिक सर्वधर्मवित्।
जानकीवरशरण प्रख्यातो जगतीतले॥३०॥
सदा गुरुपदेशेषु नैष्टिको बहुसाधुषु।
वक्ता बृहस्पति साक्षात्सहिष्णुत्वे मही सम॥३१॥
सीतारामरसाना च वर्द्धको भेददायक।
छेदक सशयाना च रसराजप्रवर्द्धक॥३२॥
दयित सर्वभूताना राममन्त्रप्रदायक।
गुरुवाक्यस्य तत्वज्ञ वास श्रीसरयूतटे॥३३॥
लक्ष्मरणाख्यप्रकोटे तु सीतारामस्य मन्निधौ।
गुरुसन्निकटे तत्र क्षेत्रवासे च सुष्टुधी॥३४॥
तस्य शिष्यो गुरुनिष्ठ कवि काव्यविशारद।
नाम श्री रामवल्लभाशरणो रामसेवक॥३५॥
सद्गुरुसदने रम्ये शोभिते सरयूतटे।
तस्मिन्वसनि वै धीरो गान-विद्या-विचक्षण॥३६॥
तस्य शिष्य समीपस्थ श्रीकान्तशरणो लघु।
श्री सद्गुरुकुटीरस्थो रामनाम-परायण॥३७॥
सीतानाथसमारम्भा रामानन्दार्यमध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्ता वन्दे गुरुपरम्पराम्॥३८॥

अर्थात् प्रथम श्रीरामजी ने श्री जानकी जी को षडक्षर मन्त्रराज प्रदान किया है, फिर श्री जानकी जी ने श्री हनुमान जी को दिया है—ऐसा ही क्रम जानना चाहिए—

१ अनन्त श्री राम जी	२ अनन्त श्री जानकी जी
३ ,, श्री हनूमान जी	४ ,, श्री ब्रह्मा जी
५ ,, श्री वसिष्ठ जी	६ ,, श्री पराशर जी
७ ,, श्री व्यास जी	८ ,, श्री शुकदेव जी
९ ,, श्री पुरुषोत्तमाचार्य	१० ,, श्री गगाधराचार्य जी
११ ,, श्री सदाचार्य जी	१२ ,, श्री रामेश्वराचार्य जी
१३ ,, श्री द्वारानन्द जी	१४ ,, श्री देवानन्द जी
१५ ,, श्री श्यामानन्द जी	१६ ,, श्री श्रुतानन्द जी
१७ ,, श्री चिदानन्द जी	१८ ,, श्री पूर्णानन्द जी
१९ ,, श्री श्रियानन्द जी	२० ,, श्री हर्यानद जी

२१ ,, श्री राघवानन्द ची	२२ ,, श्री स्वामी रामानन्द जी
२३ ,, श्री सुरसुरानन्द जी	२४ ,, श्री माधवानन्द जी
२५ ,, श्री गरीबानन्द जी	२६ ,, श्री लक्ष्मीदास जी
२७ ,, श्री गोपालदास जी	२८ ,, श्री नरहरिदास जी
२९ ,, श्री केवलराम कूवा जी	३० ,, श्री दामोदरदास जी
३१ ,, श्री हृदयराम जी	३२ ,, श्री कृपाराम जी
३३ ,, श्री रत्नदास जी	३४ ,, श्री नृपति दास जी
३५ ,, श्री शकरदास जी	३६ ,, श्री जीवाराम जी (युगलप्रिय शरण जी)
३७ ,, श्री युगलानन्यशरण जी	३८ ,, श्री जानकीवर शरण जी
३९ ,, श्री रामवल्लभाशरण जी	४० ,, श्री कान्तशरण जी

श्री रूपकला जी (श्री सीतारामशरण भगवान् प्रसाद) ने श्री भक्तमाल के 'भक्ति सुधा स्वाद तिलक' मे अपनी परम्परा इस प्रकार दी है—

१ श्री सीताराम जी	२ श्री हनुमत जी
३ श्री राघवानन्दाचार्य स्वामीजी	४ श्री भगवान् रामानन्द जी
५ श्री भगवान् रामानन्द जी	६ श्री सुरसुरानन्द जी
७ श्री बलियानन्द जी	८ श्री सेउरिया स्वामी जी
९ श्री बिहारीदास जी	१० श्री रामदास जी
११ श्री बिनोदानन्द जी	१२ श्री धरनीदास जी
१३ श्री करुणानिधान जी	१४ श्री केवल राम जी
१५ श्री रामप्रसादीदास जी	१६ श्री रामसेवकदास जी परमा
१७ स्वामी श्री रामचरणदास जी 'करुणासिंधु'	१८ श्री सीताराम शरण भगवान् प्रसाद जी

इस परम्परा मे चौथा और पाचवा दोनो ही नाम भगवान् रामानन्द जी का है। यह कहना कठिन है कि यह दो व्यक्तियो के सम्बन्ध मे है या भूल से एक ही व्यक्ति के दो बार नाम आ गया है। जो हो श्री रूपकला जी की गुरु-परम्परा से तथा श्री प्रेमलता जी की गुरु-परम्परा से रसिक सम्प्रदाय के प्राय सभी रामोपासको का परिचय मिल जाता है।

परन्तु इस रस साधना की एक प्रमुख धारा छूटी ही जा रही है जिसकी परम्परा का ज्ञान परमावश्यक है और वह है जयपुर मे गालवाश्रम (गलता गद्दी) की परम्परा। रामोपासक रसिक सम्प्रदाय की यह मान्यता है कि स्वामी रामानन्द तो इस भाव के उपासक थे ही, उनके पूर्ववर्ती गुरुओ को भी मधुरभाव की साधना प्रिय थी और इस प्रकार वे श्री हनुमान जी से जिनका मधुर भाव का नाम श्री चारुशीला जी है, अपनी परम्परा का आरम्भ मानते है। एक बात यहा लक्ष्य

करने की यह है कि गलता (गालवाश्रम) पहले नाथी सिद्धो के हाथ मे था उस पर रामानन्दी वैष्णवो के अधिकार होने के बाद मधुर भाव की उपासना अधिक व्यापक हुई है। इस श्रेणी के भक्तो का विश्वास है कि श्री सिद्ध नाभादास जी और उनके गुरु अग्रदास तथा अग्रदास के गुरुभाई श्री कील्ह स्वामी जी मधुर रस के रसिक थे। मधुर रस का रसिक अपने मे श्री रामचन्द्र की प्रिया, सखी, श्री जानकी जी की सखी या दासी का अभिमान करता है और या तो श्री जानकी जी के सुख मे सुख मानता है या श्री रामचन्द्र जी की प्रीति का पात्र बन कर जीवन धन्य करता है। शृगार रसाश्रया मधुरभक्ति मे भक्त 'कदर्प कोटि कमनीय किशोर मूर्ति' मधुर मनोहर भगवान् रामचन्द्र को पतिरूप मे भजता है।[1]

इस भाव के रसिक भक्तो का विश्वास है कि श्री अग्रदास जी इसी भाव के साधक थे। उनका साधना का नाम 'अग्रअली' था। श्री रूपकला जी ने अपने 'भक्तमाल' के 'भक्ति सुधास्वाद तिलक' मे बताया है कि श्री अग्रदास जी शृगार रस के आचार्य श्री 'अग्रअली' के नाम से प्रसिद्ध है। आपका 'अष्टयाम', 'ध्यान मजरी', कुडलिया, पदावली आपके मधुर भाव को व्यक्त करती है।

श्री रूपकला जी के उपर्युक्त तिलक मे श्री अग्रस्वामी की गुरु-परम्परा यो है—

भगवान् रामानन्द जी
|
श्री अनन्तानन्द जी
|
श्री कृष्णदास जी पयहारी
|
श्री अग्रदेव जी
|
स्वामी श्री नाभादास जी

किम्बदन्ती है कि श्री जानकी जी महारानी ने कृपा कर के श्री अग्रस्वामी को दर्शन दिया और आप अपनी इच्छा से शरीर त्याग कर श्री साकेत को पधारे। अस्तु। श्री अनन्तानन्द जी की पूरी शिष्य-परम्परा मधुरोपासक है। स्वामी श्री हरियानन्द आचार्य भी मधुरोपासक सत थे। श्री युगलप्रिया जी ने अपने 'रसिक भक्तमाल' मे आपका परिचय यो दिया है—

चरण कमल बन्दौ कृपालु हरियानन्द स्वामी।
सर्वसु सीताराम रहसि दशधा अनुगामी॥
बालमीक वर शुद्ध सत्व माधुर्य रसालय।
दरसी रहसि 'अनादि' पूर्व रसिकन की चालय॥

---

१ मधुर मनोहर रामं पतिसबध पूर्वकम्।
ज्ञात्वा सर्वव भजते सा शृगाररसाश्रया॥ —श्री हनुमत्संहिता

२ देखिये भक्तमाल का भक्तिसुधा स्वाद तिलक पृ० ३१२-३१४।

नित सदाचार में रसिकता
अति अद्भुत गति जानिये।
जानकिवल्लभ कृपा सहि
शिष प्रतिशिष्य बखानिये॥

ऊपर के पद मे 'दशधा अनगामी' का अर्थ है मधुरोपासक। अभिप्राय यह है कि स्वामी श्री अनन्तानन्द जी की पूरी परम्परा मधुरोपासक है। इसी परम्परा मे श्री 'बालअली' हुए, जिनका 'नेह प्रकाश', 'ध्यान मजरी' आदि ग्रन्थ इस परम्परा के प्रमुख आकर ग्रन्थ के रूप मे समादृत है। जो हो, मधुर भाव के रामोपासक रसिक भक्तो का दावा है कि स्वामी अग्रदास जी स्वामी कीलदास जी अपने गरु श्री कृष्णदास पयहारी के समान मधुरोपासक थे। अस्तु।

इस परम्परा के परम प्रभावशाली आचार्य एव साधक श्री मधुराचार्य जी हुए। कील स्वामी के शिष्य छोटे कृष्णदास जी, कृष्णदास जी के विष्णुदास जी, विष्णुदास जी के नारायण मुनि, नारायण मुनि के हृदय देव और हृदयदेव के शिष्य स्वामी रामप्रपन्न जी या मधुराचार्य जी हुए। रामानन्दीय मधुरामोपासक भक्तो मे मधुराचार्य जी का बडा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है, लगभग वही जो गौडीय वैष्णवो मे श्री जीव गोस्वामी पाद का है। जिस प्रकार जीव गोस्वामी ने भक्ति, प्रीति आदि षट् सदर्भात्मक विशाल भक्ति-ग्रन्थ का निर्माण कर गौडीय साधना का दर्शन पक्ष परिपुष्ट किया उसी प्रकार श्री मधुराचार्य जी ने छ सदर्भों का विशाल ग्रन्थ लिखा था जिनमे केवल दो ही सदभ—(१)श्री सुन्दर मणि सदभ तथा(२)श्री वैदिक मणि सदर्भ प्रकाशित हुए है। श्री मधुराचाय जी का लिखा एक और ग्रन्थ 'श्री रामतत्त्व प्रकाश' अभी हाल ही मे प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थ मे राम रसिकोपासना को बडे ही उत्तम ढग मे शास्त्रादि के पुष्ट प्रमाणो के आधार पर सिद्ध किया गया है। इसमे श्री राम का परत्व, श्री शुकदेव आदि ऋषियो का श्री रामोपासकत्व तथा श्री सीताराम की नित्य दिव्य लीलाओ का बडा ही भव्य एव मनोहारी वर्णन है। इनके अतिरिक्त आपके लिखे मुख्य ग्रन्थो मे 'श्री भगवद्गुण-दर्पण' तथा 'माधुर्य केलि कादम्बिनी' का इस सम्प्रदाय मे विशेष सम्मान है। श्री मधुराचार्य जी के ग्रन्थो का रसिकोपासना मे बडा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे आकर ग्रन्थ की भाँति पूजे जाते है तथा प्रमाण मे प्रस्तुत किये जाते हैं।

जिस प्रकार श्री जीवगोस्वामी ने अपने पक्ष के स्थापन के लिए श्रीमद्भागवत का आधार लिया है, उसी प्रकार श्री मधुराचार्य अपने पक्ष के स्थापन के लिए वाल्मीकीय रामायण का आधार लिया है। भले ही, अनेक स्थलो पर इनकी व्याख्या से आज का सुधी-समाज सहमत न हो, परन्तु श्री मधुराचार्य ने अपने पाडित्य एव तर्क के बल पर अपने मत का जो स्थापन किया है, वह साहित्य और दशन के विद्यार्थी के लिए अनुशीलन की वस्तु है, क्योकि इन ग्रन्थो ने परवर्ती 'रसिक' भक्तो को बहुत प्रेरणा दी है। 'श्री सुदर मणि सदर्भ' की भूमिका मे श्री पुरुषोत्तम शरण जी ने श्री मधुराचार्य जी की जो परम्परा दी है, वह इस प्रकार है—

माधुर्य रसमूर्ति श्री राम जी
आदि शक्ति श्री जानकी जी
अनन्य सेवी श्री हनुमान जी
श्री ब्रह्मा जी
श्री वसिष्ठ जी
श्री पराशर जी
श्री व्यास जी
श्री शुकदेव जी
श्री पुरुषोत्तमाचाय
श्री गगाधराचाय
यती श्री रामेश्वराचार्य
श्री द्वारानन्द जी
श्री देवानन्द जी
श्री श्यामानन्द जी
श्री श्रुतानन्द जी
श्री चिदानन्द जी
श्री पूर्णानन्द जी
श्री प्रियानन्द जी
श्री हर्यानन्द जी
स्वामी श्री रामानन्द जी
श्री अनन्तानन्द जी
पयहारी श्रीकृष्णदास जी महाराज

(१) श्री कील्स्वामी
छोटे श्री कृष्णदास
श्री विष्णुदास
रसिकेन्द्र श्री नारायण श्रमुनीन्द्र
श्री हृदय देव स्वामी
मधुर रस विजयशिरोमणि श्री मधुराचार्य जी महाराज

(२) श्री अग्रस्वामी
श्री नाभा स्वामी
श्री प्रियादास

श्री मधुराचार्य जी के सम्बन्ध में चिरान के महन्त श्री जीवाराम जी (श्री युगल प्रिया) ने 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' मे लिखा है—

मधुराचारज मधुर मरस शृगार उपासी।
रगमहल रसकेलि कुज मानसी खवासी॥
निमिकुल जन्य उदार सुखद सबध प्रतापी।
पहारी रसिकेन्द्र कृपमाधुय अयापी॥
द्वादस वार्षिक राम रस लीला करि वट्ट सुख दिये।
विपुल ग्रन्थ रच रसिकना राम राम पद्धति किये॥

कहते है, आपने श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण की एक लाख श्लोको मे मधुरसाश्रयी टीका लिखी थी जो अब अप्राप्य ही है। आपने बारह वप तक श्री रामरासोत्सव का सकल्प किया और स्वय उसमे दिव्य अली रूप मे भली भाँति श्री ललीलाल ज का लाड लडाया। श्री अग्र-स्वामी की शृगार रस पर एक कुडलिया है जो इस रस के उपासको के गले का हार है और जिसमे इस रस की महिमा और मर्यादा का वणन है, जो इस प्रकार है—

रस शृगार अनप है तुलवे को कोउ नाहि।
तुलवे को कोउ नाहि सोइ अधिकारी जग मे॥
कचन कामिनि देखि हलाहल जानत तन मे।
जावत जग के भोग रोग सम त्यागेउ द्वन्दा।
पिय प्यारी रससिधु मगन नित रहत अनदा॥
नहि अग्र सम सत के सरलायक जग माहि।
रस शृगार अनूप है तुलवे को कोउ नाहि॥

इस तरह ऐतिहासिक कालक्रम से देखने पर पता चलता है कि सोलहवी सदी से रामो-पासना मे मधुर भाव की विवृत्ति स्पष्ट रूप मे मिलने लगती ह। इसके पूव का साहित्य अभी उपलब्ध नही है। इस सम्प्रदाय को विद्वानो की घोर उपेक्षा अथवा तिरस्कार का शिकार होना पडा है और यही कारण है कि इसका बहुत-कुछ विकृत रूप ही हमारे सामने आया है। परन्तु इसका यह अभिप्राय कदापि नही कि इस साधना का स्वस्थ सबल एव सुग्राह्य रूप है ही नही। इसका साहित्य अपने-आप-मे सर्वथा सम्पन्न एव अनुभव तथा प्रतिभा के प्रकाश से पूर्ण है। इस रसिक सप्रदाय की साधना और पच सस्कार का प्रसग हम यथास्थान प्रस्तुत करेगे। यहाँ प्रसगत इतना सकेत मे लिखना आवश्यक है कि—

१—इस सम्प्रदाय का नाम 'श्री सम्प्रदाय' है।
२—श्री लक्ष्मी जी आचार्य है
३—श्री हनुमान जी देवता है

४—श्री विश्वामित्र जी ऋषि है
५—श्री रामेश्वर जी धाम है
६—श्री अयोध्या जी धर्मशाला है
७—श्री चित्रकूट सुख विलास है
८—श्री रामानन्दी वैष्णव है
९—श्री दिगम्बर अखाडा है
१०—श्री कूवा जी का द्वारा है
११—श्री सीता जी इष्ट है
१२—मुख्य रस शृगार है
१३—अनन्त शाखा है
१४—उर्ध्वपुण्ड्र तिलक है
१५—श्री धनुष क्षेत्र है
१६—श्री गुरुद्वारा अयोध्या जी है।'

अब हम अगले दो अध्यायो मे रामावत मधुर उपासना के साहित्य का स्वरूप निर्देश प्रस्तुत करेगे—पहले सस्कृत ग्रन्थो के फिर हिन्दी के।

---

१ देखिये—श्री 'प्रेमलता' जी का जीवनचरित्र पृ० १०॥

सातवाँ अध्याय

रसिक परंपरा का साहित्य

(१)

सस्कृत मे

रामोपासना की रसिक परम्परा साहित्य, साधना एव दशन की दृष्टि से सर्वथा परिपुष्ट एव इतस्तत है। अवश्य ही इसका एक सुव्यवस्थित रूप नही मिला है और इसका अधिकाश साहित्य बिखरा हुआ, समृद्ध और उपेक्षित रहा है। इसका मुख्य कारण, जैसा पहले कहा जा चुका है, यह रहा है कि इस सम्प्रदाय का समूचा साहित्य एक बहुत छोटी परिधि की सीमा मे सिमट कर रह गया है तथा दूसरा कारण यह है कि इसके प्रति विद्वानो का आदर भाव नही रहा है। वे इस सम्प्रदाय तथा इसकी साधना को अत्यन्त हेय दृष्टि से देखते रहे है। एक और कारण भी है। विज्ञान के नये-नये अनुसधानो, बौद्धिक जागृति तथा देश मे राजनीतिक आन्दोलनो एव उथल-पुथल के कारण भी लोगो की दृष्टि इस ओर नही गई। बहुधा इसका अत्यन्त विकृत रूप ही देखने को मिला जिसके प्रति हेय भावना घृणा का होना स्वाभाविक ही था। परन्तु इसी कारण हम इसके स्वस्थ रूप से भी अपरिचित रह जाय, यह हमारा अभाग्य होगा।

किसी भी वस्तु के दो पक्ष होते है। शुक्ल और कृष्ण—यो देखा जाय तो क्या ईसाई धर्मसाधना, क्या सूफी साधना, क्या बौद्ध साधना और क्या कृष्ण-भक्ति की मधुर साधना मे कम विकार आये ? और तो और अभी हम अपनी आँखो गाधीवादी साधना का भयकर पतन देख रहे है। सर्वोदयी इस पर यदि हम यह निर्णय कर बैठे कि ये सब-की-सब साधनाए क्षयग्रस्त जीवन की प्रतीक है या मानव-मन की अस्वस्थता के लक्षण है तो हमारा निर्णय सही माना जायेगा ? यही बात रामावत सम्प्रदाय की मधुर उपासना के सम्बन्ध मे भी कही जा सकती है। उसका एक स्वस्थ सबल पक्ष है और अस्वस्थ दुर्बल पक्ष भी। हम तो यहाँ साहित्य, साधना और सिद्धान्त की दृष्टि से उसके सबल स्वस्थ पक्ष का ही अनुशीलन करेगे। उसके विकारो को देख कर उससे भाग खडा होना और उसके सही रूप से अपरिचित रह जाना साहित्य के अध्येता को शोभा नही देता। अस्तु ।

रामोपासना की मधुर साधना का साहित्य सस्कृत मे परम समृद्ध और विपुल है। उसमे कतिपय प्रमुख ग्रन्थो की ही चर्चा की जा सकेगी। सब से पहले हम उसके उपनिषद् भाग को लेते है—

उपनिषद्

१ **श्री रामतापनीयोपनिषद्**—यह अथर्व वेद से लिया गया है। इसमे कुल ७५ मत्र है। आरम्भ मे भगवान् राम का परत्व सिद्ध किया गया है[1] और यह दिखलाया गया है कि यह समस्त जगत राममय है, अत सत्य है। फिर जीवात्मा परमात्मा का क्या-क्या सम्बन्ध हो सकता है, उसका निर्देश है। सेव्य-सेवक, आधार-आधेय नियाम्य-नियामक, शेष-शेषी, व्याप्य-व्यापक, शरीर-शरीरी पिता-पुत्र, भतृ-भार्या—इन सब सम्बन्धो मे परमात्मा-जीवात्मा सम्बन्धित है। जसे समस्त वृक्ष अपने बीज मे स्थित ह वैसे ही ब्रह्मादि स्थावरपर्यन्त चर-अचर सम्पूण जगत् राम बीज मे स्थित है।[2] वह श्री राम अपनी आह्लादिनी शक्ति सीता से सदा आश्लिष्ट सयुक्त है।[3] इसके अनन्तर तात्रिक साधना के आश्रय पर आसनासीन रामपचायतन का आसन इस प्रकार स्थिर किया गया है—

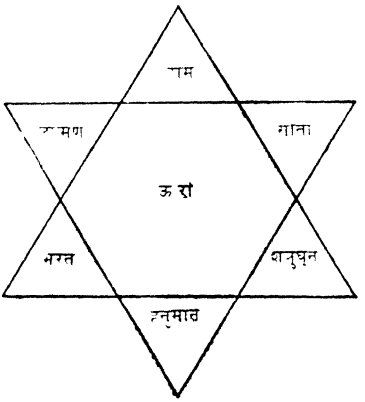

दो त्रिकोणो की यह पद्धति अवश्यमेव तात्रिक साधना का प्रभाव सूचित करती है क्योंकि वहाँ त्रिकोण यानि मुद्रा का प्रतीक माना जाता ह। इस दो त्रिकाण के परस्पर सयोजन को देखते हुए यह स्वीकार करणा पडता ह कि रामावत मधुर उपासना मे तत्र का भी

---

१ राम सत्य पर ब्रह्म रामात्किचिन्न विद्यते।
तस्माद्रामस्य रूपोऽय सत्य सत्यमिद जगत्॥ स० स०

२ यथैव बटवीजस्थ प्राकृतश्च महाप्रभु।
तथैव राम-बीजस्थ जगद्देतच्चराचरम्॥

३ हेमामया द्विभुजया सर्वालकृतया चिता।
श्लिष्ट कमलधारिण्या पुष्ट कोसलजात्मज॥

यत्किंचित प्रभाव है। षडक्षर मत्र की महिमा बतलाते हुए ऋषि कहते है कि चूंकि यह गर्भ, जन्म, जरा, मरण आदि ससार के समस्त महान् भयो से मनुष्य को तार देता है, इसलिए इसे 'तारक मत्र' कहते है।[1]

इस प्रकार इस उपनिषद् की प्रथम कडिका मे बृहस्पति जी के प्रश्नोत्तर मे याज्ञवल्क्य ने तारक ब्रह्म का निर्देश किया, द्वितीय कडिका मे तारक ब्रह्म का स्वरूप तथा प्रणव एव तारक की एकता तथा तृतीय कडिका मे तारक ब्रह्म का अर्थ, वाच्च-वाचक की एकता और उपासना का स्वरूप वर्णन किया। अन्त मे भगवान् राम ने शिव को प्रसन्न होकर षडक्षर मत्रराज प्रदान किया जिसके कारण भगवान् शिव काशी मे मुक्ति का सदाव्रत चलाते है।

२ **श्री विश्वभरोनिषद्**—यह रामोपासना की मधुर उपासना के आकर ग्रन्थो मे सर्वसम्मान्य है। यह भी अथर्व वेद का अग माना गया है। 'श्री रामतत्त्व प्रकाशिका' टीका सहित यह अयोध्या मे प्रकाशित हुआ है। इसमे भक्ति के प्रधान आचार्य शाण्डिल्य मुनि ने महाशभु से प्रश्न किया है—

(१) सब देवो मे श्रेष्ठ, सगुण-निर्गुण से परे वाणी मन-बुद्धि से अगोचर, ब्रह्मा, विष्णु और शिव के सर्वेश्वर कौन है?

(२) वह मत्र कौन है जिसके द्वारा जीव ससार से मुक्त होकर भगवान् के साथ सायुज्य लाभ करता है?

इसके उत्तर मे महाशभु ने भगवान् राम को ही निर्गुण-सगुण ब्रह्म से परे बतलाया है और कहा है कि वे अयोध्या मे केवल रासलीला ही करते है।[2] उनके अनेक मत्र है, पर उनमे भी तीन मत्र अत्यन्त श्रेष्ठ है—(१) रा रामाय नम (२) श्रीमद्रारामचन्द्रचरणौ शरण प्रपद्ये श्रीमते रामचन्द्रायनम और (३) ऊ नम सीतारामाभ्याम्। श्री राम जी ही सबके कारण है। उनके दो स्वरूप है—१—परिच्छिन्न और २—अपरिच्छिन्न। परिच्छिन्न स्वरूप मे श्री राम जी साकेत लोक मे स्त्रियो के समूह मे रहकर केवल रासलीला करते है और अपरिच्छिन्न स्वरूप ससार की उत्पत्ति का कारण है। उनके दाहिने अग से श्री रामद्वारणी अष्टभुजी भूमा पुरुष हुए है, बाये अग से रमा वैकुण्ठवासी हुए है, हृदय से परनारायण हुए है और चरणो से बद्रीवन निवासी नरनारायण हुए है। उनके शृगार से नन्दनन्दन श्रीकृष्ण हुए है। सभी अवतार भगवान्

---

१ **गर्भ-जन्म-जरामरण-ससार महद्भयात् सतार्यतीति तस्मादुच्यते तारकमिति।**

—रा० ता० उ० २-३

२ **सर्वावतर लीला च करोति सगुणो य अयोध्याया स्वय रासमेव करोति स सगुण-निर्गुणाभ्यां परस्वयपरमपुरुषस्य दाशरथेर्मन्त्रस्य नाद-विन्दु वाङमनसोरगोचरौ तस्य मत्राश्चानन्तास्तेषु षट्शत वरियासस्तेषु च त्रयो मन्त्रा अतिश्रेष्ठान।**

—विश्वभरोपनिषद् ५

रामचन्द्र की चरण-रेखाओ से उत्पन्न होते है।[1] परात्पर श्री राम नाम से ही नारायण आदि सब नाम उत्पन्न होते है।[2] अन्त मे श्री अयोध्या जी मे रतन-मण्डप मे श्री जानकी जी सहित भगवान् श्रीराम का मगलमय ध्यान है जहाँ सभी देवता और देवियाँ सामने हाथ जोडे खडे है।

३ **श्री सीतोपनिषद्**—अनन्त श्री श्री सीतारामपदकजमकरन्दमधुमधुप श्री स्वामी सीतारामीय परमहस परिव्राजकाचार्य युगलविनोद विहारी शरण कृत तत्त्वबोधिनी टीका सहित ओकार प्रेस प्रयाग मे सवत् १९२४ मे मुद्रित तथा सियावल्लभशरण श्री जानकी कुण्ड युगल विनोद कुज चित्रकूट से प्रकाशित यह छोटा सा उपनिषद् ग्रन्थ रत्न भगवती सीता का परत्व सिद्ध करता है और उन्हे ही आदि शक्ति महा महेश्वरी के रूप मे प्रतिष्ठित करता है जिनके अशमात्र

---

१ **सर्वे अवतारा श्री रामचन्द्रचरणेरेखाभ्य समुद्भवन्ति तथा अन्त कोटि विष्णवश्चचतुर्व्यूहश्च समुद्भवन्ति एवमयपराजितेश्वरमपरिमिता परनारायणादय अष्टभुजा नारायणादयश्चानन्तकोटि सख्यका ब्रह्माजलिपुरा सर्वकाल समुपासक्ता।**

—वि० उ० ८

२ तुलनीय —

विष्णुर्नारायण कृष्णो वासुदेवो हरि स्मृत।
ब्रह्म विश्वभरोऽनन्तो विश्वरूपकुलानिधि॥
कल्मषघ्नो दयामूर्ति सर्वग सर्तसेवित।
परमेश्वरनामा सतिउनि नेकानि पार्वति॥
एकादश महास्वच्छ उच्चारान्मोक्षदायकम्।
नाम्नामेव च सर्वेषा राम नाम प्रकाशक॥

—महारामायण सर्ग ५१

तथा च

भानुकोटि प्रतीकाश चन्द्रकोटि प्रमोदकम्।
इन्द्रकोटि सदा मोद वसुकोटि वसप्रदम्॥
विष्णु कोटि प्रतीपाल ब्रह्मकोटि निसर्जनम्।
रुद्र कोटि प्रमद वै मातु कोटि विनाशनम्॥
भैरव कोटि सहार मृत्युकोटि विभक्षणम्।
यम कोटि राघर्ष कालकोटि प्रधावकम्॥
गधर्व कोटि सगीत गण कोटि गणेश्वरम्॥
काम कोटिकला नाथ दुर्गाकोटि विमोहनम्॥
सर्वसौभाग्यनिलय सर्वानन्देकदायकम्।
कौशल्यानन्दन राम केवल भवखण्डनम्॥

—सदाशिव—सहिता ५-७-१२

से अगणित महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती, उमा, राधा, तारा, दुर्गा आदि निकली है।[1] सृष्टि, स्थिति और लय की नियामिका श्री जानकी जी है और भगवान राम भी आप के ही सकेत पर चलते हैं। भगवती सीता ही इच्छा शक्ति, कृपाशक्ति एव साक्षात् शक्ति रूपो में है। इच्छा शक्ति के तीनभेद है —(१) श्री (भद्र रुक्मिणी), (२) भूमि (प्रभाव रूपिणी), (३) नीला (चन्द्र-सूर्य-अग्नि-स्वरूपा) इन्ही तीन शक्तियो के प्रतीक स्वरूप श्री से रुक्मिणी, भूमि से सत्य-भामा, नीला से राधा।[2] चन्द्र-स्वरूप होकर ओषधियो को उत्पन्न करती है, अमृत स्वरूपिणी होकर देवताओ को अत्युत्तम फल से सतृप्त करती हुई मनुष्यो को अन्न, पशुओ को तृण तथा समस्त जीवो को उनके योग्य आहार द्वारा सबका पोषण करती है। श्री सीता ही दिन मे सूर्य और रात्रि मे चन्द्रमा के रूप मे चर-अचर को प्रकाशित करती है और इस प्रकार वे ही कालचक्र की मूल प्रवर्तिका है। अग्नि रूप मे वे ही जठराग्नि, दावाग्नि, वाडवाग्नि, काष्ठ में विद्यमान अग्नि, देवताओ के मुख मे विद्यमान अग्नि आदि है।

श्री रूप मे वे ही लक्ष्मी है, भूमि रूप मे भू भुव स्व आदि चौदहो लोको की आधार-आधेय प्रणव-स्वरूपिणी है और नीलारूप मे विद्युत् समूहो से परिपूर्ण सभी ओषधियो, वनस्पतियो एव प्राणिमात्र के प्राणो को पोसती है। क्रिया-शक्ति के स्वरूप परमात्मा के मुख से नाद हुआ, नाद से विन्दु और विन्दु से ओकार। ओकार से परे श्रीराम। श्रीराम से चारो वेद, उनकी शाखा-प्रशाखा, उपनिषद्, कल्प, व्याकरण, शिक्षा, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द आदि। यह क्रिया शक्ति साक्षात् ब्रह्म-स्वरूप है।

अब साक्षात् शक्ति के सम्बन्ध मे कहते है। यह साक्षात् शक्ति श्री भगवान् के स्मरणमात्र से रूप के आविर्भाव, तिरोभाव, अनुग्रह, निग्रह, शान्ति, तेज, सदा भगवान की सहचरी, निमेष-उन्मेष से सृष्टि स्थिति सहार करनेवाली सर्वसमर्था है।

इच्छा शक्ति प्रलय की अवस्था मे भगवान् के दक्षिण वक्षस्थल मे श्रीवत्स स्वरूप होकर विश्राम करती है। इसी प्रकार क्रिया और साक्षात् शक्तियाँ भी भगवान् के हृदय मे जाकर सो जाती है।

---

१ हर्षिता राधिका तत्र जानक्यशसमुद्भवा।
रामस्यांशसमुद्भूत कृष्णो भवति द्वापरे॥
—भुशुडि रामायण में नारद के प्रति ब्रह्मा का वचन।
सीतोपनिषद् की उक्त टीका के पृ० ६ से उद्धृत।

२ सीतायाश्च त्रिविधाशा. श्री भूनीलादिभेदत।
श्री भवेद् रुक्मिणी भूः स्यात् सत्यभामा वृढव्रता॥
नीलास्याद् राधिका देवी सर्वलोकैक पूजिता।
—ब्रह्माण्ड पुराण से उपर्युक्त सीतोपनिषद् की टीका पृ० ६ पर उद्धृत।

४ **श्री मैथिली महोपनिषद्**—श्री वाल्मीकि सहिता के पाँचवे अध्याय मे १८ वे श्लोक के अनन्तर एक छोटा-सा 'श्री मैथिली महोपनिषद्' है जिसमे आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक इन तीन तापो से मुक्ति के लिए 'ऊ राम' यह तीन अक्षरो का मत्र आया है और इसमे परम प्राप्तव्य, परम ज्ञेय भगवान् राम ही बताये गये है।[1] इसके अन्त मे मत्र-परम्परा है जो यथापूर्व है।

५ **श्री रामरहस्योपनिषद्**—वैष्णव धम-प्रलेखक प० सरयूदास जी ने अपनी 'साकेत सुषमा'[2] मे श्री राम रहस्योपनिषद् का एक उद्धरण दिया है जिसका अभिप्राय है कि अनन्त वैकुण्ठो का परम कारण श्री साकेतपुरी है।[3]

सहिता ग्रन्थ

रामोपासना मे मधुर उपासना को लेकर अनेक सहिताओ का निर्माण हुआ है। इन सहिताओ का कालनिर्णय इस प्रकार विवाद-ग्रस्त है कि क्या अन्त साक्ष्य और क्या बहि साक्ष्य से किसी निर्णय पर पहुँचना बहुत कठिन है। ओटो श्रेडर ने सहिताओ की प्रामाणिकता के पक्ष मे जो उदाहरण दिये है, उनमे इन सहिताओ से दो-एक के ही नाम मिलते है। परन्तु इसी आधार पर इन्हे श्रेडर का परवर्ती मानना भी भूल है। कारण यह है कि इन सहिताओ का प्रचार-प्रसार अत्यन्त सीमित क्षेत्र मे रहा है और इनमे से कुछ तो अबतक भी अत्यन्त गोपनीय रूप मे रसिक सम्प्रदाय के अन्दर-ही-अन्दर चलती है और बाहर की हवा उन्हे लगने नही दी जाती।[4] परन्तु मेरे देखने मे इस सम्प्रदाय की लगभग बीस सहिताए आई है जिनमे रसिक परम्परा की साधना का बडा ही भव्य विन्यास हुआ है। अस्तु, साहित्य, साधना एव सिद्धान्त-सस्थापन की दृष्टि से इन सहिताओ का विशेष महत्त्व स्वीकार करना पडता है और इनके भीतर से साधना का जो स्रोत अखण्ड रूप से प्रवाहित होता आ रहा है, वह अनेकानेक मधुर रस के उपासको के लिए परम आश्रय एव आनन्द का कारण रहा है। इस सम्प्रदाय मे मान्य सहिता ग्रन्थो की सूची इतनी विशाल एव

---

१ परात्परतरो निखिल गुणकरो जगतादिकारणभमिततेजोराशिर्ब्रह्मादि देवैरप्युपास्य. श्री भगवान् दाशरथिरेव प्राद्योदाशरथिरेव प्राद्य। सकलजगत् कारणबीज भक्तवत्सल स एव भगवान् ज्ञेय स एव भगवान् ज्ञेय।

२ सत्यनाम प्रेस, मैदागिन काशी से स० १९८२ में मुद्रित।

३ याऽयोध्यापू सा सर्ववैकुण्ठानामेव मूलधारा मूलप्रकृते परातत्सद् ब्रह्ममया विरजोत्तरा दिव्यरत्नकोषा तस्या नित्यमेव सीतारामयो विहारस्थलमरत्तीति।

—अथर्वणे उत्तरार्धे श्री रामरहस्योपनिषद् उत्तरखण्डे।

४ उदाहरणार्थ—श्री हनुमत्सहिता, श्री शिवसहिता, श्री लोमश सहिता।

व्यापक है कि यह सभव नही कि उनका विस्तार मे विवेचन हो सके, फिर भी यह ध्यान तो रहेगा ही कि कोई विशेष महत्त्व की उपयोगी वस्तु छूट न जाय। अस्तु ।

१ **श्री हनुमत्सहिता**—श्री हनुमत्सहिता की चर्चा पहले भी आ चुकी है । श्री लक्ष्मी-नारायण प्रेस, मुरादाबाद में सन् १९०१ मे पत्राकार छपी प्रति प्राप्त है। इसमे हनुमान अगस्त्य का सवाद है और भगवान् राम की रासलीला तथा जल-विहार का बडे ही विस्तार से एव परम मनोहर शैली मे वर्णन हुआ है। सीता सभी सखियो की कायव्यूह हैं, क्योकि सीता के शरीर से ही १८१०८ सखियो की सृष्टि होती है जिनके साथ भगवान् राम उतने ही शरीर धारण कर रास करते हैं। इसमे कुल ६० श्लोक है। ग्रन्थ के अन्तिम भाग से रस-प्रकरण है जिसमे दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य रस के आश्रय विषय, उद्दीपन, अनुभाव आदि का सक्षेप मे विवरण है—जो रस-शास्त्र की दृष्टि से पूर्णत परिपक्व है।

२ **श्रीशिवसहिता**—श्री शिवसहिता बीस अध्यायो का एक विशाल ग्रन्थ है जिसे महात्मा रामकिशोरशरण जी की प्रेरणा मे शिवहर स्टेट की श्री सिया किशोरी सहचरी जी ने प्रकाशित कराया है। इसमे आरम्भ मे शिव-पार्वती-सवाद मे पुन अगस्त्य हनुमान के सवाद मे साधु समागम की महिमा, श्रीराम के अनेक गुणो और विभूतियो का वर्णन, ध्यान, वन-दर्शन और पुन वन-केलि का वर्णन आया है। रास-विलास के प्रसग मे ठीक वैसा ही भव्य मनोहारी, वर्णन है जैसा श्रीमद्भागवत के रासपचाध्यायी मे मिलता है। नदी-नद सब स्तब्ध हो जहाँ के तहाँ रुक गये। पशु-पक्षी-कीट-पतग सब ब्रह्मानन्द मे मग्न हो आत्म-विभोर हो गये। आकाश मे देवताओ के विमान इस दृश्य को देखने के लिए छा गये। यहाँ तक कि इस दृश्य को देखकर शिव का हृदय भी विमोहित हो गया और वे अपना ताडव नृत्य भूल गये।[1] रासविलास के अनन्तर

---

१ तु०—**कास्त्यग ते कलपदामृत वेणुनाद।**
सम्मोहितार्य चरितान्न चलेत् त्रिलोक्याम्॥
त्रैलोक्य सौभगमिद च निरीक्ष्य रूप।
यदगोमृगद्विजगण पुलकान्य विभ्रन्॥

तुम्हारे मधुर स्वन् वेणुनिनाद को सुनकर और त्रैलोक्यमोहन रूप को देखकर कौन स्त्री कुलधर्म नही छोड देगी, जिनसे गायें, मृग और पक्षी भी पुलक-कटकित हो जाते है।

नद्यो निष्पदवे गाश्च पशवश्च सरीसृपा'।
निश्चेष्टा अभवन्सर्वे मुक्ता इव निरामया॥
नो चेलु किचिदाकाशे विमानानि दिवौकसाम्।
मोक्षो योगसमाधीना शिवताण्डवविद्रुतः॥ —शि० स० ११, १०।

'मान' का प्रकरण है और फिर 'मनुहार' का प्रसग। इसके बाद है कदली वन में सीता-राम का प्रेम-प्रसग। सस्वरूप प्रकाशन के प्रसग मे यह स्पष्ट आया है कि रसिक भक्त दिव्य गुणो से सम्पन्न श्रीराम जी में रमण करते है और उन भक्तो मे स्वय श्रीराम जी रमण करते है।[1] सूक्ष्म अन्त-दृष्टि खुलने पर सारा ब्रह्माण्ड ही अयोध्या-सा प्रतीत होने लगता है और वहाँ अशोकवन मे रम्य रसस्थान मे नित्यलीला विहार मे मग्न श्री सीताराम के दर्शन होते हैं।[2]

३ **श्री लोमश सहिता**—श्री लोमश सहिता की पूरी प्रति उपलब्ध नही है। एक खडित प्रति मिली है जिसमे केवल १५ वे अध्याय मे लेकर २२ वे अध्याय तक कुल आठ अध्याय प्राप्त है। इसमे परमश्रेष्ठ मुनि पिप्पलाद तथा लोमश जी का सवाद है। कोटि कन्दर्पलावण्य रस-मूर्ति भगवान् श्रीराम का सीता जी के साथ और सीता जी की अनेक सखियो के साथ नानाविध रास-विलास का वर्णन है। यूथेश्वरियो मे चन्द्रकला, विमला, सुभगा, मदनकला, चारुशीला, हेमा, क्षेमा, पद्मगन्धा, लक्ष्मणा, श्यामला, हसी, सुगमा, वशध्वजा, चित्ररेखा, तेजोरूपा, और इन्दिरावली जी ये सोलह मुख्य यूथेश्वरी सखियां है। इनमे चन्द्रकला की प्रमुखता है। वाह्य कार्यों मे जैसे श्री भरतलाल जी का स्वतन्त्र सर्वाधिकार है, अन्तरग लीलाओ मे उसी प्रकार चन्द्रकला जी प्रधानता मे श्रेष्ठ है। चन्दकलाजी श्री सीता-राम की सयोगलीला सघटित करती है। रास के समय का बडा ही भव्य सगीतमय वणन पढने ही बनता है—छन्द के माधुर्य एव ताल पर ध्यान बरबस खिच जाता है—

अखण्डराममण्डले सखीसमहकल्पिते
रराज राजनन्दनी विमोहयन् जगत्त्रयम्।
प्रकामकामकामुको मनोजमत्रभाविता
रणन्सुवल्लकी भृश सुधासुधारया तदा॥
क्वचित्क्वचिद्वनान्तरे क्वचित्क्वचिल्लतान्तरे
क्वचिन्क्वचिन्कुचान्तरे प्रविश्य राजनन्दन।
प्रदीपयन्मनोभव प्रदशयन्स्वलाघव
कलाकुतूहल मुहु प्रकामकामशास्त्रजम्॥

लो० स० २० १८७-१८९

---

१ **रमन्ते रसिका यस्मिन् विख्यानेकगुणाश्रये।**
स्वय यद्रमते तेषु रामस्तेन प्रयुज्यते॥ —शि० स० १८, ५

२ **सर्वमेतत्तदयोध्यैव सूक्ष्मदृष्टिसमर्पणे।**
तत्राशोकवन रम्य रसस्थान हि केवलम्॥
तन्मध्ये जानकी-रामौ नित्य लीला रतौ स्थितौ।
सहितो वनिता यूथैः शतैरपि मनोहरैं॥ —शिव० सं० २०. १३-१४

और अन्त मे युगल मिलन महोत्सव का एक दृश्य है—

हृदय हृदयेन मुखेन मुख करमव्यकरेण सरोजनिभम् ।
उरसा प्रिय वक्षसि सगमनो सुखमाद्य महोत्सवजन्यमहो ।

लो० स० २२ १३६ ।

इस सहिता के अन्तिम भाग मे ऋषि ने बारबार मना किया है कि जो लोग रहस्यज्ञानी है, शुष्क हृदय है, महामूढता-वश कुतक करनेवाले और रस खण्डन करनेवाले है, निन्दक है, रस की कथा मे लौकिक विषय वासना की दुर्गन्ध लाते है, ऐसे पुण्यहीनो को राम-रहस्य की यह कथा और चरित्र कभी नही सुनाना चाहिए ।

४ **श्री बृहद् ब्रह्म सहिता**—इस दस अध्यायो मे समाप्त बृहत् सहिता वैष्णवो की मधुर साधना का प्रधान उपजीव्य ग्रन्थ है। इसमे राधा-कृष्ण और सीता-राम दोनो की युगल उपासना का विधान है। आरम्भ के पाँच अध्याया मे वैष्णव-साधना का सामान्य विधान प्रस्तुत किया गया है। छठे अध्याय मे राधाकृष्ण की उपासना का कामबीज एव कामकीलक और फिर तान्त्रिक शैली पर युगलोपासना की प्रक्रिया है। ठीक इसी के पश्चात्, सातवे अध्याय मे श्री रामावतार का हतु तथा पुन षडक्षरात्मक, श्रीराम मत्र की महिमा का वर्णन है। 'श्री राम शरण मम' पर इस अध्याय मे अनेक श्लोक है। यहाँ भगवान् राम का एक बडा ही भव्य ध्यान है।' आगे के शेष अध्यायो मे वैष्णवाचार एकादशी, ऊध्व पुण्ड्र-धारण आदि का व्याख्यान है।

५ **श्री अगस्त्य-सहिता**—श्री अगस्त्य सहिता, जैन प्रेस, लखनऊ से सन् १८९८ मे पत्राकार तैतीस अध्यायो और १३१ पृष्ठो मे छपी मिलती है। यह श्री वैष्णवो की परम प्रामाणिक सहिताओ मे परमादरणीय है। अगस्त्य और सुतीक्ष्ण का सवाद है। आरम्भ मे वर्णाश्रमधर्म की प्रतिष्ठा है, फिर भिन्न-भिन्न फलो की प्राप्ति के लिए भिन्न-भिन्न राममत्र का न्यास, विनियोग, कीलक, बीज आदि के साथ उल्लेख है। इसके अनन्तर इक्कीसवे अध्याय तक ब्रह्मविद्या का निरूपण है।[२]

---

१ **श्यामं वारिजपत्रनेत्रमनिस प्रज्ञानमूर्ति हरिम् ।**
विद्युद्दीप्तपिशग रम्यवसन भास्वत्किरीटोज्ज्वलम् ।।
कर्णालम्बित हेमकुण्डललसद् भ्रूवल्लिमत्यद्भुत ।
श्रीमन्तं भगवन्तमिन्दुसहित श्री जानकीश स्मरेत् ।।

—बृहद् ब्रह्म सहिता, अ० ७ श्लोक ५९

२ **पश्य सर्वात्मना सर्वं सर्वत्रापि तपोनिधे ।**
प्रकाशते स्वय साक्षात्सच्चिदानन्दलक्षण ।।
राम एव पर ज्योति सच्चिदानन्द लक्षणम् ।
इद सत्यमिद सत्य सत्य नैवाति वर्तयेत् ।।
राम सत्य पर ब्रह्म रामात्किचिन्नविद्यते ।। —अ० स० २४, १, २

इसके बाद के अध्याय मे हृदय-कमल मे सीताराम की आश्लिष्ट युगल मूर्ति का मगलमय ध्यान है—

मेघजीमूतसकाश विद्युवर्णांवरावृतम्।
सतप्तकाञ्चनप्रख्या सीतामागता पुन ॥
अन्योन्याश्लिष्टहृद्वाहुनेत्र पश्यन्तमादरात्।
दक्षिणेन कराग्रेण कुचाग्रे च चलालकम् ॥
स्पृशत च तनोत्सगै परिहासैमनर्मद्र।
विनोदयन्त ताम्बलचर्वणैकपरायणम्।
सर्वं रूपोज्वलद्वन्द्व योगिनुरयोगिन।
श्री रामसीतयो सर्वं सपत्करविधायकम् ॥

इसके अनन्तर षडक्षरमत्र की महिमा एव यन्त्रकवचादि का विस्तार मे वर्णन है और तत्पश्चात् षोडशोपचार पूजन का विधान है। इसमे लक्ष्य करने की एक बात है। भगवान् राम का जहाँ-जहाँ ध्यान आया है, वहाँ सीता मे आश्लिष्ट आलिगित मूर्ति का ही वर्णन है।

६ **श्री बाल्मीकि सहिता**—श्री बाल्मीकि सहिता पत्राकार आदर्श प्रिटिग प्रेस अहमदाबाद (गुजरात) स० १९७८ वि० मे छपी प्राप्त है। श्री रामानन्दीय वैष्णवो मे इस सहिता को परम श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है। इसमे कुल पाँच अध्याय है और देखने से प्रतीत होता है कि अपेक्षाकृत नवीन है। जो हो आरम्भ मे बृहस्पति सभी मुनियो के सम्मुख श्रवण-कीर्तनादि नवधा भक्ति का व्याख्यान करते है, फिर राममत्र की महिमा कहते है और उसकी गुरु परम्परा बताते है जो अन्यत्र दी हुई परम्परा के अनुरूप ही है[1]। इसके अनन्तर विरक्त वैष्णवो के लक्षण एव कुलकृत्य का वणन है, दीक्षा सस्कार कण्ठी धारण आदि वैष्णवाचारो का वर्णन है। इस सहिता मे लक्ष्य करने योग्य बात एक है और वह यह कि ऊर्ध्व पुण्ड्र के भेद-प्रभेद मे भगवान् राम का श्री हनुमान के प्रति वचन है कि मेरे अनुरागी भक्त श्री नही धारण करते और सीता जी

---

१ **इमा सृष्टि समुत्पाद्य जीवाना हितकाम्यया।**
आद्या शक्ति महादेवीं श्री सीता जनकात्मजाम् ॥
तारक मत्रराज तु श्रावयामास ईश्वर।
जानकी तु जगन्माता हनुमन्त गुणाकरम् ॥
श्रावयामास नून स ब्रह्माण सुधियां वरम्।
तस्माल्लेभे वसिष्ठर्षि ऋभादस्मादवातरत ॥
भूमौ हि राममत्रो य योगिनां सुखद शिव।
एव त्रय समादाय मत्रराजपरपरा।
भूमौ प्रचलिता नित्या सर्वलोकसुखप्रदा ॥ —बा० स० ६, ३२

के भक्त बीच मे बिन्दु श्री लगाते है[1]। इसके अन्त मे भी 'श्री राम शरण मम' मत्र की महिमा का वर्णन है।

अब हम उन सहिताओ का सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करना चाहेंगे जिनकी चर्चा रामावत सम्प्रदाय के मधुरोपासक सन्तो ने साम्प्रदायिक आकार ग्रन्थो के भाष्य मे मतस्थापन के लिए उद्धृत किया है।

७ **श्री शुक सहिता**—'उपासना त्रय सिद्धान्त' के पृष्ठ १२२ से १४३ पर उद्धत। आरम्भ मे गोलोक विहार भगवान् कृष्ण एव राधारानी के रास-विलास का वर्णन है, फिर 'लीला' रहस्य का वर्णन है जिसमे राधा और कृष्ण दोनो ही परम देवाधिदेव भगवान् राम के शरीर मे प्रवेश कर गये। ये राम पुरुषोत्तम मात्र नही है, वे सनातन परब्रह्म है।[2]

एकबार चित्रकूट पवत मे क्रीडा करते हुए भगवान् राम का मृगया मे रत एव श्रान्त देखकर श्री जानकी जी ने कहा—आप पसीना-पसीना हो रहे है तथा सूर्य भी तप रहा है, थोडा विश्राम कीजिए। इस प्रस्ताव पर प्रिया-प्रियतम श्री सीताराम जी दिव्य माधुरी कुज मे प्रवेश कर गये जो कामद गिरि के कदरान्तर शोभित है। उस माधुरी कुज की शोभा और सुगन्ध का क्या कहना? वहाँ सुन्दर पुष्पो की शोभा पर दर्शन, स्पर्शन, आलाप, प्रियासग के बाद सीताजी ने प्रस्ताव किया कि हम लोगो ने इस माधुरी कुज मे बहुत सुख पाया, परन्तु राधा-कृष्ण रूप मे भी हमारा लीला-विलास चलता रहे तो क्या?[3]

इसपर भगवान् श्रीराम ने बडे प्रेम से कहा—प्रिये! तुम्हारा ही अश वृ दावनेश्वरी राधा है और मेरे ही अश गोपेन्द्र नन्दनन्दन श्रीकृष्ण है।[4] ऐसा कहकर भगवान राम ने वही पर दिव्य वृन्दावन दिखलाया, जिसमे नित्य यमुना, नित्य गोवर्धन, भिन्न-भिन्न वन, उपवन एव विहार-स्थली, श्री राधिका जी के सहित श्री कृष्णचन्द्र जी रासरस मे उन्मत्त है। इस प्रकार युगल सरकार के नृत्य को दिखाकर श्रीराम जी ने सीता जी से कहा, प्रिये! तुम्हारा और मेरा स्वरूप यह दोनो प्रिया-प्रियतम श्री राधाकृष्ण लीलामय है। और सम्पूण विश्व के प्यारे है। इतना कहते ही राधा-कृष्णात्मक दोनो स्वरूप श्रीसीतारामस्वरूप मे नमस्कार पूर्वक लीन हो गये—

---

१ मदनुरागिणो भक्ता धारयन्ती च न श्रियम्।
सीताभक्ता प्रकुर्वन्ति मध्ये बिन्दु श्रियशुभाम्॥ —वा० स० ४, २३

२ न वै स पुरुष कश्चिन्न वै स पुरुषोत्तम।
श्री राम सज्ञित धाम पर ब्रह्म सनातनम्॥

३ आवा प्रिय निकुजेऽत्र सर्वर्तुसुखशोभितम्।
कश्चिन्न विहरिष्यावो राधाकृष्णाविवव्रजे॥

४ त्वदशा एव राधा सा प्रिये वृन्दावनेश्वरी।
मदश एव नियत. कृष्णो गोपेन्द्रनन्दन.॥

राधा जी सीता जी मे समा गई, कृष्ण जी राम जी मे। तब भगवान् राम और सीता का दिव्य रास विहार हुआ।[1] यह नित्य रास-विलास आज के दिव्य चित्रकूट मे सदा होता रहता है। कृष्ण-भक्तो के लिए जैसे वृन्दावन है रामभक्तो के लिए वैसा ही चित्रकूट है। भगवान् कृष्ण भगवान् राम मे प्रविष्ट होकर तल्लीन हो जाते है। श्रीराम जी के रास मे कोटि-कोटि ब्रह्मा कोटि-कोटि ब्रह्माणी, कोटि-कोटि विष्णु और कोटि-कोटि लक्ष्मी कोटि-कोटि शिव और कोटि-कोटि पार्वती प्रादु-र्भूत हुए तथा सब-के-सब गोपिका-भाव को प्राप्त हो गये और अपनी स्वामिनी (श्री सीता जी) के साथ रासमण्डल मे नृत्य करने लगे। उसी समय ६० हजार दण्डकारण्यवासी ऋषि भी गोपिका भाव को प्राप्त होकर श्री जू के साथ रासमण्डल मे प्रकाश करने लगे। काल और श्रुतिया भी गोपीभाव मे रासमण्डल मे सम्मिलित हुईं और छ महीने की वह पूर्णिमा की रात्रि हो गई और

---

१ प्रिये तव ममासौ च द्वाविमौ सह दपती।
माधुर्यलीलाकलिका ललितौ विश्ववल्लभौ॥
ततस्तद्युगल श्रीमद्राधाकृष्णात्मक महत्।
सीतारामात्मक युग्म प्राविशन्नतिपूर्वकम्॥
तत प्रवृत्ति रासश्च सीतारामप्रधानक।
गोपीजनकरोद्भूतमृदगानककाकल॥
मिथ सहचरीवृन्दकरतालविराजित।
झझंरशखभेर्यादिवादित्रविततध्वनि॥
युगलानुनया नदी युगलो वयदीपित।
मिथो युगलनाट्यैक्य तुष्टाऽखिलसखीजना॥
श्रीराममुरलीनाद वर्द्धितानि स कौतुक।
सीताऽकल्पस्वरालापमुद्धत्सहचरीगणा॥
कामोत्साहप्रदात्वाप चुबनात्पिगनादिभि।
नर्मस्पर्शै नर्म हासै भावैश्च बहुरूपकै।
अनेकैर्मधुरालापैर्भूषितश्च महोत्सव॥

—शुक सहिता प्रथम अध्याय

२ एव नन्दात्मज कृष्णस्वविताररसमापनम्।
राम प्रविशति श्याम सच्चिदानन्दविग्रहम्॥
सोऽद्यापि क्रीडति गिरौ चित्रकूटे मनोहरे।
नित्य वृन्दावने एव माधुरीकुजमध्यगे॥
एव कृष्णो विशद्रामे पूर्णस्वानन्दविग्रहे।
दृष्टो राम पर तत्त्व यत्र चापि न गोचर॥

—शुक संहिता, प्रथम अध्याय, तृतीय पाद

चित्रकूट मे रासलीला होती रही। इस दिव्य चित्रकूट का निर्माण श्रीराम जी ने श्री सीता जी की अभिलाषा पूर्ण करने के लिए किए था।[1] फिर यहाँ प्रश्न यह उठाया गया है कि श्री सीता जी की अभिलाषा पूरी करने के लिए श्रीराम जी ने गोलोक का निर्माण क्यो और कैसे किया? इसपर श्री शुकदेव जी का समाधान है—'कल्प के आरम्भ मे भगवान् श्री रामचन्द्र जी ने अपनी इच्छा की प्रेरणामात्र से तीनो लोक अपने शरीर से उत्पन्न किये तहाँ प्रथम अमोघ वैष्णवी वीर्य तेजयुक्त इच्छा से जल प्रकट कर उसमे छोड दिया। वह वैष्णवी वीर्य कोटि-कोटि सूर्यो के प्रकाश के समान प्रकाशित सुवर्ण कान्तिवाला एक गोलाकार अड हो गया, उस अण्ड मे से सर्वलोको को रचनेवाले हिरण्यगभ भगवान् ब्रह्मा रूप मे प्रकट हुए। उसी से चराचर प्रकट हुआ, उसी मे चैतन्य स्थापन कर कोटि-कोटि ब्रह्माड रचना किया।[2]

---

१ तत्र रासे प्रादुरासीद् ब्रह्माणी ब्रह्मकोटय।
वैष्णवी विष्णु कोटयश्च रुद्राणि रुद्रकोटय॥
सर्वाश्च देवतास्तत्र गोपिका भावभाविता।
रासमण्डलमध्यस्था ननतु स्वामिना सह॥
तथा षष्टिसहस्त्राणि दण्डकारण्ययोगिनाम्।
गोपीभाव समासाद्य रेजु श्रीसहमण्डले॥
श्रुतयश्चैव कालश्च रासमण्डलमध्यगा।
गोपीरूपधरा रेजुर्महि सौभाग्यभूषिता॥
सीता च सुदरी यत्र सर्वलीलाधिदेवता।
चित्रकूटाद्रिके रम्ये यद्वृन्दावनमद्भुतम्॥
गोलोको य सस्वात्र दृश्यते प्रणतस्तव।
सीताभिलाषसभूत्यै श्री रामेण विनिर्मिति॥

२ कल्पादौ भगवान्राम स्वेच्छामात्रेण चेदित।
त्रैलोक्य कृतवान् चागादाविर्भाव प्रदर्शयन्॥
अमोघयुक्तवान् बीजमशु सप्ताणऽविषु स।
हिरण्यगर्भसकाश सूर्यकोटिसम प्रभ॥
ततश्चराचरस्यादौ तत्त्वसृष्टि विनिर्ममे।
तेषु चैतन्यमाधाय ब्रह्माण्ड सजघटा स॥
उच्चवाचानि भूतानि रचयामास विश्वकृत।
मही रचितवान् देव सप्तसागरसवृताम्॥
पर्वतान्विविधानुरम्यान्देवगन्धर्वभोगवान्।
सरांसि रम्यरूपाणि राजहसाश्रमयाणि च॥

इस महान रचना पर भी सीता जी को हार्दिक आह्लाद नही हुआ और उन्होने रासोल्लास के लिए एक नवीन रचना का आग्रह किया। इसी पर श्रीराम जी ने सब लोको के ऊपर अपने लोक साकेत के अश से गोलोक का निर्माण किया जहाँ सबकुछ अयोध्या का प्रतिविम्ब है।[1] वह प्रतिविम्बरूप मे कैसा हुआ, इसका वर्णन करते है। श्री सरयू जी यमुना बन गईं, गोवर्धन मणि पर्वत बन गया, कल्पवृक्ष वशीवट बना, दशरथ नन्द हुए, कौसल्या यशोदा हुई, लीला के सब परिकर गोप हुए, जानकी जी राधा हुई, अशोकवन की देवी वृन्दा देवी हुई, उनके साथ श्रीराम जी राधाकृष्ण हो वशीनाद मे निपुण, परम कौतुकी नित्य राम विलासादि की, सुन्दर लीला करने लगे। इस नूतन स्थान को देखकर जानकीजी का चित्त रम गया और वे श्री राम जी के साथ इस सच्चिदानन्द रूप मे बहुत दिन तक काम-केलि विहार करती रही।[2]

उत्फुल्लकमलामोद वारीणिरुचिराणि च।
मेरु रचितवांस्तत्र स्थानानि त्रिदिवौकसाम्॥
एव कृत्वा जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम्॥
देवानामपुराणा च मनुष्याणां च सौख्यदम्।
वास प्रकटयामास गृहारामादिशोभितम्॥

१ एवमभ्युदितो राम प्रियया साभिलाषया।
सर्वेषा चैव लोकानामुपरिस्थानमद्भुतम्॥
गोलोक कल्पयामास प्रादुर्भाव्यस्वलोकत।
अयोध्याया प्रतिकृतिर्यत्रसर्वापि दृश्यते॥

२ यमुनाया परिणता सरयू सरसा सरित्।
अभूद्गोवर्धनत्वेन दिवि रत्नमयोगिरि॥
प्रमोदवन अत्रासीद्दिव्य वृन्दावन वनम्।
पारिजाततरुजीतो वशीवटतरर्हि स॥
ते च रासविलासाद्या प्रादुरासु समतत।
आभीरो सुरिवनो नाम रामधात्री पति पुरा॥
स एव समभून्नदो मागल्या च यशोदिका।
त एव गोपीगोपाद्या लीलापरिकराश्च ते॥
सैव श्री जानकी देवी वृषभानुसुताऽभवत्।
अशोकवनगा तत्र ह्यथ वृन्दावनेश्वरी॥
तया सह बभौ रामो वशीवादन कौतुकी।
नित्यरासविलासादि कुर्वाण सुमनोहरम्॥
गोलोकमखिल वीक्ष्य लीलापरिकरान्वितम्।
सद्य प्रसन्नहृदया प्रोवाच निजवल्लभम्।

८ **श्री वसिष्ठ सहिता**—इस सहिता का नामोल्लेख एव विषय विवरण 'उपासना-त्रय सिद्धान्त' मे आया है । इसमे दिव्य अयाध्या का वणन है। इसके ३६ वे अध्याय मे लिखा है कि सर्वोपरि वैकुठ है, वैकुण्ठ से भी परे गोलोक है, गोलोक के मध्य मे साकेत लोक है, साकेत लोक के पूर्व मिथिला है, दक्षिण मे चित्रकूट है, पश्चिम मे वृन्दावन है, उत्तर मे महावैकुण्ठ है, जहाँ सब पार्षदो के सहित श्रीमन्नारायण रहते है। यही नारायण सृष्टिकर्ता २४ अवतारो के कारण है और ये ही श्री रामचरित के मुख्याचाय है।

साकेत लोक सप्तावरणो के भीतर है। इन आवरणो का सविशेष वर्णन ही इस सहिता का मुख्य विषय है।[1] दिव्य अयाध्या तथा उसके सप्तावरणो का विवरण यथास्थान 'धामतत्त्व' मे आयेगा। इसके भीतर बारह वन है—शृगारवन, विहारवन, तमालवन, रसालवन, चम्पकवन, चन्दनवन, पारिजातवन, अशोकवन, विचित्रवन, कदबवन, कामवन, नागकेसरवन। उस प्रमोदवन के चारो ओर पर्वत है, शृगार पर्वत, मणिपर्वत, लीलापर्वत, मुक्ता पर्वत। इन चारो पर्वत पर चार शक्तियाँ निवास करती है।

दृष्ट्वैतदद्भुत स्थान सपूर्णा मे मनोरथा।
अयोध्याया प्रतिकृति क्वचित्तावत्ततोधिकाम्॥
आवा अत्रैव रस्याव सुचिर कामकेलिभि।
अतीव सुन्दरे स्थाने सच्चिदानन्द मन्दिरे॥
एवमुक्तस्तया सार्द्ध रेमे वृन्दावने प्रभु।
यथा गायन्ति मुनयो महाभावविभाषित॥

—शुक सहिता, प्रथम अध्याय चतुर्थ पाद

१ सर्वेभ्यश्चापि लोकेभ्यश्चोध्व प्रकृतिमण्डलात्।
विरजाया परे पारे कुण्ड यत्पर परम्॥
तस्मादुपरि गोलोक सच्चिदद्रियगोचरम्।
तन्मध्ये रामधामस्ति साकेत यत्परात्परम्॥
पराश्चारायणाश्चैवकृष्णात्परतरादपि॥
यो वै परतम श्रीमान् रामो दाशरथि स्वराट्॥
यस्यानतावताराश्च कला अशविभूतय।
आवेशा विष्णु ब्रह्मांशा पर ब्रह्मस्वरूपमा॥
सीतया सह रामस्य लीलारसविवर्द्धन।
चिद्रूपा काचनी भूमि समारत्नै विचित्रिता॥
वाङ्मनोगोचरातीत प्रमोदारण्यसज्ञकम्।
रामस्याति प्रिय धाम नित्यलीलारसास्पदम्॥

परात्पर ब्रह्म राम ही सबके आदि कारण है। ब्रह्माविष्णु महेश आदि जिनके अश के आवेश है। वे राम श्रीसीता जी के साथ दिव्य प्रमोदवन मे नित्य विहार करते है।[1]

९ **सदाशिव सहिता**—स्वामी रामचरण दास 'करुणानिधु' ने श्री रामनवरत्न सार सग्रह–ग्रन्थ तैयार किया था, जो प० रामवल्लभा शरण जी की लिखी रत्नप्रभा टीका सहित स० १९८५ मे गोकुल प्रेस अयोध्या मे मुद्रित हुआ। इसमे कई स्थानो पर नाम-महिमा के सम्बन्ध मे सदाशिव सहिता का उल्लेख है।[2] इसके अनन्तर दिव्य अयोध्या एव उसके सप्त आवरणो का विशेष विस्तार से वणन कर साकेत विहारी भगवान राम और भगवती सीता का बडा ही भव्य ध्यान है।[3]

१० **श्री महाशभु सहिता**—श्री रामनवरत्न के पृष्ठ ११ पर महाशभु सहिता के दो श्लोक उद्धृत है जो जानकी जी ने श्री रामचन्द्र के प्रति कहे है। यहाँ 'राम नाम की महिमा का विषय है। श्री जानकी जी कहती है कि कोई प्रणव का श्रेष्ठ कहत है, कोई और मत्र को, परन्तु प्रणव या अन्य बीज मत्र भी रकार मकार से ही सिद्ध होते है। राम मत्र का प्रभाव पूरा-का-पूरा समझ लेना कठिन है। वेद अनादिकाल से 'राम के नाम की थाह नही पा रहे है तो औरो की क्या कथा ?[4]

---

१ तुलनीय —

यस्याशेनैव ब्रह्माविष्णुमहेश्वरापि जाता महाविष्णुर्यस्य दिव्यगुणाश्च। स एव कार्यकारणयो पर परमपुरुषो रामो दाशरथिर्बभूव। स श्री राम सविता सर्वेषामीश्वर यमेवैष वृणुते स पुमानस्तु यमेवदस्माद्भूर्भुव स्व त्रिगुणमयो बभूव इतीम नरहरि स्तौतीम महाविष्णु, स्तौतीम विष्णु स्तौतीम महाशभु, स्तौतीम द्वैत मण्डल तपति यत्पुरुष दक्षिणाक्ष मण्डलो वै मण्डलाचार्य मण्डलस्थमिति सामवेदे तैत्तिरीयशाखायाम्।

––श्री रामोपासना, पृ० १६३ पर उद्धृत

२ **सर्वसौभाग्यनिलय सर्वानन्दैकनायकम्।**
कौसल्यानन्दन राम वदेऽह भवखण्डनम्॥

श्री रामनवरत्न, पृ० १९, लक्ष्मण का वेदो के प्रति कथन

३ **स्निग्धमिन्दीवरश्याम कोटीन्दुललितद्युतिम्।**
चिद्रूप परमोदार जानकीप्रेमविह्वलम्॥
दोर्दण्डचण्डलोच्छण्ड शरच्चन्द्र महाभुजम्।
सीतालिंगितवामांक कामरूप रसोत्तमम्॥
तरुणारुणसकाश विकचाबुजपादकम्॥

४ **प्रणव केचिदाहुर्वै बीज श्रेष्ठ तथापरे।**
तत्तु ते नाम वर्णाभ्या सिद्धिमाप्नोति मे मतम्॥

११ **हिरण्यगर्भ सहिता**—श्री रामनवरत्न के उक्त सस्करण के पृष्ठ ४१ पर हिरण्यगर्भ सहिता का उल्लेख है और अगस्त्य जी ने सुतीक्ष्ण जी से कहा है कि अद्वैत आनन्द शुद्ध चैतन्य सत्त्वैकलक्षण श्री रामचन्द्र जी सब के भीतर-बाहर इस ब्रह्माण्ड मे प्रकाशित हो रहे है।[1]

१२ **महा सदाशिव सहिता**—श्री रामनवरत्न के उक्त सस्करण के पृष्ठ ५७-५९ तक महा सदाशिव सहिता का उल्लेख ह जिसमे यह कहा गया है कि नाना प्रकार के मत्रो, नामो, चिह्नो मे भरमना और भटकना व्यर्थ ह। सबसे श्रेष्ठ श्री रामनाम है जिसके परमाचार्य श्री हनुमान जी है, शेष सभी नाम श्री रामनाम के अश-मात्र है, परम धाम श्री रामधाम है, रामभक्ति ही राजमार्ग है। श्री मैथिली जी के सहित श्रीराम जी का मत्र, श्री हनुमान जी का महान् गुरु तथा श्री सीताराम जी के प्रति सखी भाव यही सदा मुक्ति देनेवाला हैं।[2]

१३—**ब्रह्म सहिता**—श्री रामनवरत्न मे पृष्ठ २६ पर ब्रह्मसहिता का एक ही श्लोक उद्धृत है—

पूर्ण पूर्णावतारश्च श्यामा रामो रघूद्वह ।
अशानृसिंहकृष्णाद्या राघवो भगवान् स्वयम् ।।

भगवान् राम जी पूर्णावतार पूर्ण ब्रह्म हैं, कृष्ण, नृसिंहादि अवतार अश है, श्री राघव स्वय भगवान् है ।

१४, १५, १६, १७ पुराण सहिता, आलमदार सहिता, बृहत्सदाशिव सहिता, तथा सनत्कुमार सहिता श्रीरामाकृष्ण की लीलाओ के सबध मे होते हुए भी श्री सीताराम की मधुर उपासना का हृदयगम करने के लिए परम उपयोगी है।

रामेति नाममात्रस्य प्रभावमतिदुर्गमम् ।
मृगयन्ति तु यद्वेदा कुतो मत्रस्य ते प्रभो ।।

१ अद्वैतानन्दचैतन्य शुद्धसत्त्वैकलक्षणम् ।
बहिरत सुतीक्ष्णोऽत्र रामचन्द्र प्रकाशते ।।

२ श्री राममत्रस्याशानि मत्राण्यन्यानि विद्धि च ।
हनुमताचार्येणाहो रामधाम सता पदम् ।।
श्री जानक्या पति सर्वे भजस्व मगलायनम् ।
राममत्रेणायुधाभ्या युक्ता शशुभिरे भुवि ।।
आद्याचार्यहनुमत त्यक्त्वाहचन्यमुपासते ।
क्लिश्यति चैव ते मुग्धा मूलगा पल्लवाश्रिता ।।
श्री मैथिल्याश्च मत्र हि श्री गुरु मारुत महत् ।
सखीभाव वपतीष्ट भुक्तिमुक्तिप्रद सदा ।।

३ इन चारो सहिताओ का बहुत ही सुन्दर तथा शुद्ध सस्करण चौखभा-सस्कृत-सिरीज, विद्या विलास प्रेस से प्रकाशित हुआ है, जो परम सग्रहणीय है।

स्तवराज और गीति

१ **श्री रामस्तवराज**—इसकी एक प्रति सनत्कुमार संहिता से संकलित श्री हरिदास कृत भाष्य से समलंकृत श्री सीताराम मुद्रणालय अयोध्या से वि० संवत् १९८६ में मुद्रित उपलब्ध है। एक और प्रति रत्नरामायणमणि श्री सीतारामशरण जी के भाष्य से भूषित वि० सं० १९५८ में बम्बई से प्रकाशित प्राप्त है। पहली टीका बहुत ही विद्वत्तापूर्ण एवं वैष्णव साधना के आकर-ग्रन्थों के प्रमाणों से परिपुष्ट है। यह स्तवराज कुल ९९ श्लोकों का है और राम का परात्परत्व, श्री रामनाम की महिमा तथा श्री सीताराम का युगल ध्यान का विषय ही इसमें आया है। इस स्तवराज के सनत्कुमार ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द है, श्रीराम देवता है, श्रीसीता बीज है और श्री हनुमान जी शक्ति है। आरम्भ में ध्यान के दो श्लोक (११ १२) हैं।

अन्त में भी ध्यान के दो श्लोक हैं। भाष्यकार श्री हरिदास ने शास्त्रों के वचनों द्वारा अनेक स्थलों पर यह सिद्ध किया है कि राम का रूप ही ऐसा है कि जो भी देख ले, वह मुग्ध हो जाय और इसी पक्ष में दण्डकारण्य के मुनियों का प्रसंग प्रस्तुत किया है। कहते हैं कि राम का रूप देख-कर जब तपस्वी पुरुषों की यह स्थिति है तब स्त्रियों की क्या कही जाय। ऐसा रमणीय है राम का रूप। श्री हरिदास ने बड़े ढंग से एक स्थान पर, ५२ वें श्लोक का भाष्य करते हुए कहा है कि जैसे पिता द्वारा कन्यादान के अनन्तर वह कन्या अपने पति की भार्या हो जाती है और अपने पिता

---

१ अयोध्यानगरे रम्ये रत्नमण्डप मध्यगे।
स्मरेत्कल्पतरोर्मूले रत्नसिंहासन शुभम्॥
तन्मध्ये षड्दल पद्म नानारत्नैश्च वेष्टितम्।
स्मरेन्मध्ये दाशरथि सहस्रादित्यतेजसम्॥

२ वैदेहीसहित सुरद्रुमतले हैमे महामण्डपे
मध्ये पुष्पकमासने मणिमये वीरासने संस्थितम्।
अग्रे वाचयति प्रभंजनसुते तत्त्व च सान्द्र परम्।
व्याख्यात भरतादिभि परिवृत राम भजे श्यामलम्॥ —रा० स्त० श्लोक ९५

राम रत्नकिरीट कुण्डलयुत केयूरहारान्वितम्।
सीतालंकृतवामभागममल सिंहासनस्थ विभुम्॥
सुग्रीवादिहरीश्वरै सुरगणै संसेव्यमान सदा।
विश्वामित्रपराशरादिमुनिभि संसेव्यमान प्रभुम्॥ —रा० स्त० श्लोक ९६

३ पुंसामपि स्त्रीभावेन श्री रामभजनमुपपद्यते किमुत स्त्रीणाम्?
न रामरूपादीना केवल स्त्रीपुरुषाणामेव दृष्टिचित्तापहारक-
त्वमुपपद्यते, किन्तु स्थावरजंगमात्मकस्य सर्वं जगतोऽपि।
—श्री रामस्तवराज भाष्यम्, श्री हरिदासकृत, पृ० ६८

का गोत्र छोडकर पति के गोत्र मे सम्मिलित हो जाती है, उसी प्रकार सद्गुरु की कृपा से जीव भगवान् श्रीराम का प्रपन्न होकर अपने माता-पिता का गोत्र छोडकर अच्युत भगवान् राम के गोत्र मे चला जाता है।[1]

लक्ष्य करने की बात यह है कि रामस्तवराज के भाष्यकार श्री हरिदास सभवत गालवाश्रम के श्री मधुराचार्य के शिष्य श्री स्वामी हर्याचार्य ही है।

२ **श्री जानकी स्तवराज**—जैसे रामस्तवराज सनत्कुमार सहिता से लिया गया है, वैसे ही श्री जानकी स्तवराज अगस्त्य सहिता से सकलित है। इसमे कुल ६९ श्लोक है। यह सवत् १९८५ मे वेकटेश पुस्तकालय, अयोध्या से प्रकाशित हुआ है। आरम्भ के ४५ श्लोको मे भगवती सीता का नखशिख ध्यान बडी ही भव्य एव उदात्त कवित्वमयी शैली मे हुआ हे। श्री जानकी जी के अग-प्रत्यग का ऐसा मनोहारी वर्णन अन्यत्र दुलभ है। उनके तलवो की लाली क्या है कि भक्तो का अनुराग ही पुजीभूत होकर चरणो मे लिप्त है। मस्तक पर लाल बिन्दी भी भक्तो की प्रीति का प्रतीक है। जो श्री रामजी का प्रसन्न करना चाहते है, उनके लिए यह सर्वथैव अनिवाय है कि श्रीसीता जी चरणो का सेवन करे और उनमे रति हो।

श्री जानकी गीत

श्री जानकी गीत रसिक रामोपासको का परम प्रिय ग्रन्थ है। इसका प्रणयन श्री गालवाश्रम (गलता गदी) के पीठाधीश्वर, स्वामी श्री हर्याचार्य ने किया और अब सवत् २००९ मे श्री सीतारामशरण जी की 'रसबोधिनी' टीका सहित श्री हनुमत्प्रेस, अयोध्या से मुद्रित हुई है। यह ग्रन्थ राममधुररसोपासको मे उसी स्थान का अधिकारी है जो कृष्णमधुरोपासको मे 'गीत-गोविन्द' और 'राधा-विनोद' को प्राप्त हे। बडे हो रसभरे छदो मे पूरे छह सर्गों मे यह समाप्त है। श्री हर्याचाय श्री मधुराचार्य के पट्टशिष्य थे। इस ग्रन्थ मे उनका मधुररसप्लावित हृदय,

---

१ **किन्तु सकल्पयितृसमर्पिता कन्या यथा स्वपतेर्भार्या भवति स्वपितुर्गोत्र विहाय स्वपतिगोत्रीया च भवति, तथैव सकृद् गुरुसमर्पितो यो जीव श्री रामस्य प्रपन्नो भवति स्वपितुर्गोत्र विहायाच्युतगोत्रश्च भवतीति।**

—श्री हरिदासकृत श्री रामस्तवराजभाष्यम्, पृ० १९९

२ **यावन्न ते सरसिजद्युतिहारि न स्याद्रतिस्तरुनवाकुरखडिताशे।**
तावत्कथ तरुणिमौलिमणेर्जनाना ज्ञान वृढ भवति भामिनि रामरूपे॥

—श्री जानकीस्तवराज, श्लोक ४९

योगाधिरूढमुनयो हरिपादपद्मे ध्यायन्ति ये चरणपकजयुग्ममत'।
वांछति विघ्नशतशो ह्यनिवार्यमाणा भक्ति भवाब्धितरणाय कृपापयोधे॥

—श्री जानकीस्तवराज, श्लोक ५१

अगाध पाण्डित्य, लोकोत्तर कवित्वशक्ति, सगीत की अलौकिक प्रतिभा का एक साथ दर्शन होत है। मगलाचरण का ही श्लोक मधुरोपासना का दिव्य सकेत है—

नवरागभरा चिताप्तवृत्ते
पर्य्यङ्कजगृहेषु राघवस्य।
जनकात्मजया सम समन्ताद्
विजयन्ते रति केलयोऽनवद्या ॥

—भावार्थ यह कि नितनूतन प्रीतिराग मे परिपूर्ण श्री राघव जी श्री श्री जानकी जी के साथ श्री सरय कुजगृहो मे होने वाली सच्चिदानन्दमयी कलियाँ निरन्तर विजय को प्राप्त हो।' श्री चन्द्रकला जी द्वारा वसन्त की वन शोभा का वणन सुनकर श्री जानकी जी तुरन्त उस शोभा के देखना चाहती है परन्तु चन्द्रकला जी वन की शोभा के साथ-साथ वहाँ अन्य सखियो के साथ राम की क्रीडा का वणन करने लगती है। अब जानकी जी इस पर प्रणयक्रोध मे भर जाती है इस प्रकार मान-विधान मे प्रथम सग समाप्त होता है।

अब श्री जानकी जी के हृदय मे भगवान् 'राम से मिलन के लिए उत्कठा जगती है और श्री चन्द्रकला जी से वे अपना विरह निवेदन करती है। उन्हे यह आशका है कि किसी अन्य भाग्य शालिनी नायिका के साथ रामचन्द्र एकान्त विहार कर रहे है। प्रणय-कलह एव विरह-पीडा से खिन्न जानकी के म्लान हृदय का करुण चित्रण दूसरे सग मे ह।

---

१ तुलनीय

हेमामया द्विभुजया सर्वालकारयभूषितः
श्लिष्ट कमलधारिण्या पुष्ट कोशलजात्मज ॥ —रा० पू० ता० उ०

अर्थात् स्वर्ण की कान्ति के सदृश गौर वर्णवाली, सभी आभूषणो से भूषित चिद्रूपा, कमल धारण करनेवाली श्री जानकी जी से आलिगित श्री रामचन्द्र जी आलिगनजन्य आनन्द से पुष्ट है।

२ **क्रीडति रघुमणिरिह मधुसमये**
पश्य कृशोदरि भूपतितनये।
जानकि हे वर्द्धितयौवन मानमये॥
कापि विचुम्बति त कुलबाला,
गायति काचिदभ्र घृततालां
कामपि सोऽपि करोति सहासा।
कलयति काचन कामविकाशाम् ॥
हरिर्वणितमिवमनुरघुवीर
निवसतु चेतसि सरस गभीरम् ॥

तीसरे सर्ग मे श्री रामचन्द्र जी श्री जानकी जी की कोपशान्ति का उपाय सोच ही रहे हैं कि श्री चन्द्रकला जी आ जाती है। चौथे सर्ग मे श्री चन्द्रकला जी भगवान् रामचन्द्र जी से श्री जानकी जी की ओर से मनुहार करती है और ऐसा करते हुए श्री जानकी का विरह-विदग्ध एव विभ्रान्त चित्त का एक मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत करती है। इस पर श्री रामचन्द्र जी दोनो हाथ जोडकर निवेदन करते है कि यह वसन्त का समय है और इस समय सीता जी का मान करना उचित नही है। इतना ही नही, श्री जानकी जी का मान शमन करने के लिए श्री रामचन्द्र जी ने उनके चरणो मे प्रणाम करते हुए उन्हे नाना प्रकार से प्रसन्न किया।[1]

पाचवे सर्ग मे मानलीला का शमन हो चुका होता है और प्रिया-प्रियतम को धूलिधूसरित देखकर सखियाँ जलक्रीडा का प्रस्ताव उपस्थित करती है और सीताराम नाना प्रकार की जल-क्रीडाओ मे मग्न है। यह जलक्रीडा बडी देर तक चलती है और इसमे अन्य सखियाँ भी सम्मिलित है। इसके अनन्तर भोजन होता है और तब श्री किशोरी जी के साथ श्री कोशलराजकिशोर जी सुखपूर्वक सिहासन पर विराजमान है। उसके अनन्तर रास शुरू होती है दो-दो सखियो के बीच एक-एक राम। बीच मे सीताराम। नित्य निकुजविहारिणी दिव्य वस्त्रधारिणी श्री किशोरी जी ने रागरस की उमग म भरकर इधर हास्यमय रसभरे कटाक्ष से प्राणवल्लभ को देखा। श्री प्रिया जी तथा प्रियतम जी रासमण्डल मे निकल-निकल कर नृत्य करते है और पुन मण्डल मे यथास्थान आ जाते है। यही पाँचवाँ सग समाप्त होता है।

छठे सग मे रास-नृत्य के अनन्तर रासकेलि का प्रसग है। श्रीराम जी के अग की जैसी मेघ-कान्ति है उसी रग की साडी श्री जानकी जी ने धारण किया है और श्री जानकी जी के अग की जैसी विद्युत कान्ति है उसी रग की धोती श्री राम जी ने पहनी है। इसी सर्ग मे साम्प्रयोगिकी लीला का भी निरूपण है। इस प्रकार इस युगल मिलन मे श्री जानकी-गीत की परिणति है।

---

१ **प्रणम्य पादौ जनकात्मजाया**
प्रसादन कुर्वति रामचन्द्रे।
द्विपस्तथा प्राशु जगर्ज वक्ष-
स्तटी यथासौ सहसाऽस्य भेजे॥

—जानकीगीतम् ४, ३

२ **रामस्य जानुपरिसेवितसन्नितम्बा,**
वक्षस्युपाहितकुचास्यभुजोपधाना।
कण्ठे समर्पितभुजा वदने धृतास्या,
श्री जानकीकुसुमचापधृतापि शेते॥

—श्री जानकीगीतम् ६, १

श्री सहस्रगीति

श्री सहस्रगीति श्री-सम्प्रदाय के प्रथमाचार्य प्रपन्नजनकूटस्थ श्री शठकोप मुनि द्वा रचित मधुरोपासना का परम प्रामाणिक ग्रन्थ है। शठकोप मुनि दक्षिण के आलवार भक्तो प्रमुख थे। आलवारो की उपासना मुख्यत मधुर भाव की ही है, यद्यपि उसमे दास्य भाव भी मिल हुआ है। ये आलवार कुल बारह हुए, इनमे शठकोप, कुलशेखर और अन्दाल का नाम अधि विख्यात है। सहस्रगीति मे अधिकाश पद नारायण, कृष्ण, गोविन्द, हरि, माधव को सबोधि कर लिखे गये है, परन्तु मधुर-भाव से ओतप्रोत दो-एक पद श्री राम को सबोधित करके भी लि मिलते है।[1] जो हो, यह सम्पूण ग्रन्थ मधुरोपासक साधको के गले का हार है और वे बडे ही भा से इसका अनुशीलन करते है।

यह सातवी शती का ग्रन्थ माना जाता है। इसम १० शतक है और प्रत्येक शत मे १० दशक है, प्रत्येक दशक मे ११ गाथाएँ है। केवल द्वितीय शतक के सातवे दशक मे १३ औ पचम शतक के छठे दशक मे २२ गाथाए है। इस प्रकार दश शतक और सौ दशक तथा १११ गाथाओ मे यह ग्रन्थ पूरा हुआ ह। सक्षेपत इस ग्रन्थ का विषय-विवेचन इस प्रकार है—

प्रथम शतक मे—भगवत्कैङ्कर्य ही परम पुरुषाथ है।
द्वितीय शतक मे—ईश्वर ही परम भोग्य रूप ह।
तृतीय शतक मे—अर्चावतार की स्तुति एव सेवा ही कल्याण का हेतु ह।
चतुर्थ शतक मे—भगवच्चरण-युगल ही प्राणियो के सर्वविध रक्षक है।
पचम शतक मे—नारायण ही जीवो के लिए मोक्षदाता है।
षष्ठ शतक मे—लक्ष्मी जी की शरण लेकर भगवत्शरण होना चाहिए।
सप्तम शतक मे—सासारिक सुख ईश्वर-प्राप्ति के विरोधी है।
अष्टम शतक मे—ससार के विषय, अह, मम के त्याग का उपाय।

---

१ क्लेशादिय मनसि ह वा। विभाति चाग्नौ
लाक्षादिवद् द्रुततनुर्वत। निर्दयोऽसि।
लकान्तु राक्षसपुरीं नितरा प्रणाश्य
प्रख्यातिमान् किल भवान् किमु ते प्रकुर्याम्॥

—सहस्रगीति, शतक २, श्लोक

तथा च—

दीनास्मि भ्रमवशा हि दिवानिश चा-
प्यश्रुप्रवाहभरिता स्तिमितायताक्षी।
लकां प्रणाश्य किल कष्टकदुष्टप्रभुत्व
प्रध्वसयाद्य परिपाहि कटाक्षमस्या.॥

—सहस्रगीति, २-१०

नवम शतक मे—भगवद्गुणो के सम्यक् अनुभव के उपाय।

दशम शतक मे—नित्यानन्द का भोग।

श्री स्वामी पराकुशाचार्य शास्त्री महोदय ने गलता कुज, प्रयाग घाट, मथुरा से इसे वि० स० १९९५ में प्रकाशित कराया।

रामायण

१ **श्री वाल्मीकीय रामायण**—गलता गद्दी के स्वामी मधुराचार्य के 'श्री सुन्दरमणि सदर्भ' ग्रन्थ के अनन्तर वाल्मीकीय रामायण भी अवध की मधुरोपासना का एक प्रधान उपजीव्य ग्रन्थ हो गया है। सम्पूर्ण वाल्मीकीय रामायण की शृगारपरक व्याख्या करते हुए श्री मधुराचार्य जी ने अनेक वचनो को उद्धृत करके बताया है कि पुरुष किस प्रकार भगवान् के कमनीय मुख का देख कर उसी प्रकार रमणेच्छुक हो जाते है जिस प्रकार सती स्त्री अपने कान्त को देख कर हो जाती है। श्री मधुराचाय जी ने 'जार' और 'उपपति' का भी अपना विलक्षण अर्थ किया है, क्योकि उनका मानना है कि भगवान् के साथ जार-भाव नही चल सकता। वहा तो सती नारी और पति का ही सम्बन्ध चल सकता है। श्री मधुराचाय जी मानते है कि ससार बीज को जीर्ण करे अर्थात् नाश करे उसका 'जार' कहते है और इसी प्रकार अन्तर्यामी रूप से वा प्रत्यक्ष रूप से स्थित होकर अपने प्रेमी उपासको का पालन रक्षण करे उसका नाम 'उपपति' है।[1] 'जार' और 'उपपति' का यह अर्थ अपनी विलक्षणता मे सर्वथा मौलिक है। इसी प्रकार वाल्मीकीय रामायण के अनेक उद्धरणो से श्री मधुराचाय ने यह सिद्ध किया है कि भगवान् श्रीकृष्ण तो वशीवादन से स्त्रियादिको को मोहित करते थे, परन्तु श्री राम जी तो अपने स्वाभाविक सौन्दर्य से स्त्रीपुरुष साधारण जन्तुओ को मोहित करने वाले है।

वाल्मीकीय रामायण मे शृगार के कई स्थलो का निर्देश करते हुए श्री मधुराचार्य जी ने इसे रसिक-सम्प्रदाय का आधार ग्रन्थ सिद्ध किया है और जैसे कृष्णायत मधुर उपासना का प्रधान आधार ग्रन्थ श्रीमद्भागवत है वैसे ही श्री रामोपासना की रसिक शाखा का प्रधान उपजीव्य ग्रन्थ श्री वाल्मीकीय रामायण माना जाता है। श्री वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड मे राम के अशोक-वन का वणन मिलता है, जहां राम-सीता के विहार का भी उल्लेख मिलता है।[2]

---

१ परोपभुक्ताया सर्वागुभोक्तृ भगवदनहत्वात् जारयति ससारबीज नाशयतीति जार।
उप समीपे ऽन्तर्यामिरूपेण ऽव्यक्तरूपेण वा स्थित्वा पाति रक्षति पुष्णातीति उपपति॰॥
—सुन्दरमणि सदर्भ, पृ० ४४

२ श्री कृष्णस्तु वेणुरणनै स्त्रियाविमोहन। अय तु स्वसौन्दर्येण स्त्रीपु साधारण सर्वजन्तुमोहकः
—सुन्दरमणि सदर्भ, पृ० १० ६

३ दे० वा० रा० सर्ग ४२।
सीता मधुरंक . .पाययामास

२ **आनन्द रामायण**—आनन्द रामायण रामभक्ति के रसिकोपासको का एक प्रधान ग्रन्थ ह। अनुमानत इसकी रचना १५ वी शताब्दी मे हुई होगी। अध्यात्म रामायण के कई उद्धरण इसमे मिलते है। इसमे कुल १२२५२ श्लोक और ९ काण्ड है। पहला काण्ड **सारकाण्ड** है, जिसमे १३ सर्ग है। इसमे राम-जन्म से लेकर सीताहरण तक का प्रसग है। दूसरा **यात्रा-कांड** है, जिसमे ९ सर्ग है। इसमे राम की तीर्थयात्रा का प्रसग है। तीसरा काण्ड **यागकाण्ड** है, जिसमे ९ सग है। इसमे रामाश्वमेध का वर्णन है। चौथा काण्ड **विलास-काण्ड** है, जिसमे ९ सग है। इसमे सीता का नखशिख वर्णन, सीता के नानाविध शृगारा एव अलकारो का वर्णन, राम-सीता की जलक्रीडा,[1] नाना विहार-विलास तथा उनकी दिनचर्या का बडे विस्तार से वर्णन है। इसी काण्ड के सर्ग ७ से १९ तक मे राम के एकपत्नीव्रत रखने के कारण अगले अवतार मे बहुत ही पत्नियो को प्राप्त करने का आश्वासन मिलना है। तथा कामपीडिता देव-पत्नियो को कृष्णावतार मे गोपिकाएँ बनने का आश्वासन मिलता है। आठवें सग मे गुणवती तथा पिगला को क्रमश सत्यभामा तथा कुब्जा बनने का आश्वासन राम देते है। नवें सग मे राम सीता-सहित कुरक्षेत्र की यात्रा करते है।

पाँचवाँ काण्ड **जन्म-काण्ड** है जिसमे ९ सग है। इसमे राम द्वारा सीता-त्याग की कथा आती है, फिर लव-कुश का जन्म। फिर कुश-लव का राम की सेना से युद्ध, उर्मिला, श्रुतिकीर्त्ति तथा माडवी के दो-दो पुत्र उत्पन्न हुए।

छठा काण्ड **विवाह-काण्ड** है, जिसमे ९ सर्ग है। इसमे राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के आठ पुत्रो के विवाह का प्रसग है।

सातवाँ काण्ड **राज्य-काण्ड** है, जिसमे २४ सग है। इसमे राम की अनेक विजय-यात्राओ का वर्णन है। राम के रूप को देख कर स्त्रियाँ प्राय कामातुर हो जाती है और राम अपने अगले (कृष्ण) अवतार मे उनकी लालसा पूरी करने का आश्वासन देते है। इसमे लगभग १६१०८

---

१ **मुष्टिभ्या जानकी राम ताडयामास कौतुकात्।**
सोऽपि ता ताडयामास मुष्ट्या पुष्पसमानया॥
चुचुम्ब तस्या बिबोष्ठ चूर्णयामास तत्कुचौ।
मुक्त्या तत्कचुकीबधमालिग्य हृदयेन ताम्॥
मुमोच कच्छ श्रीराम सीताया स्वकरेण स।
उड्डीय वस्त्र हस्तेन तद्रम्भोरू ददर्श स॥
तत करेण तन्नीवीं रामश्चाकर्षयन्मुदा।
सीता चाकर्षयद्वेगाद्रामनीवीं स्मिताननाः॥
एव परस्पर क्रीडां चक्रतुर्दम्पती मुदा।
क. समर्थस्तयोः क्रीडा सविस्तारा निवेदितुम्॥

—आनन्द रामायण, सर्ग ६, श्लोक ५२-५६

स्त्रियो को राम अपने कृष्णावतार मे अगसग का वचन देते है। इक्कीसवे सर्ग में राम का ताम्बूल-रस उनकी एक दासी पी जाती है, जिसके पुरस्कारस्वरूप उसे अगले जन्म मे राधा बन जाने का वरदान मिलता है। इस काण्ड के अनेक स्थलो मे यह सिद्ध किया गया है कि कृष्णावतार की अपेक्षा रामावतार श्रेष्ठ है।

आठवाँ काण्ड **मनोहर-काण्ड** है, जिसमे १८ सर्ग है। इस काण्ड मे रामोपासना विधि, राम-नाम-माहात्म्य, चैत्र-माहात्म्य, रामकवच आदि है।

नवाँ काण्ड **पूर्ण-काण्ड** है, जिसमे ९ सर्ग है। इसमे कुश के अभिषेक तथा रामादि के वैकुण्ठारोहण की कथा है।

३ **महारामायण**—महारामायण श्री जानकीजीवन दास-कृत भाषातिलक के साथ अयोध्या से वि० स० १९८५ मे छपा है। यह एक खण्डित प्रति कुल पाँच सर्गो की है। कहते हैं, इसकी पूरी प्रति काश्मीर राजकीय पुस्तकालय मे सुरक्षित है। जो हो, जो प्रति प्राप्त है उसमे कुल पाँच सग है। प्रथम सग मे ८० श्लोक है और इसमे भगवान् राम के चरणचिह्नो का सविशेष वर्णन है। दूसरे सग मे २७ श्लोक है और इसमे राम-भक्ति-प्राप्ति के उपाय, रामभक्तो का लक्षण तथा धनुषबाण-धारण की विधि का प्रसग है। तीसरे सग मे २६ श्लोक है, इसमे भगवान राम क्षर अक्षर, निरक्षर आदि से परे परात्परतम ब्रह्म बताये गय है। एकमात्र सखी-भाव से उनकी उपासना हो सकती है। चौथे सग मे २० श्लोक है और इसमे श्री जानकी जी की आज्ञाकारिणी, आह्लादिनी आदि तैतीस शक्तियो का वर्णन है। और उनमे से एक-एक की सहस्रश उपशक्तियो का वर्णन है। पाँचवे सर्ग मे ११० श्लोक है, इसमे श्रीराम-नाम की महिमा का वर्णन है। इसी सग मे रम् धातु से रमणाथ मे 'राम' शब्द की व्युत्पत्ति सिद्ध करते हुए राम की रासक्रीडा का उल्लेख है। श्री रामदास गौड ने अपने 'हिन्दुत्व' नामक विशाल ग्रन्थ मे अनेक ऐसे रामायणो का नामोल्लेख किया है जिसके विषय मे निश्चित रूप से कुछ भी पता लगना कठिन है। 'हिन्दुत्व' मे 'महारामायण' मे ३,५०,००० श्लोक बताये जाते है और उसमे कनकभवन-विहारी भगवान् राम की सीता तथा अन्य सखियो के साथ ९९ रासलीलाओ का वर्णन है।

४ **आदि रामायण**—इसकी एक हस्तलिखित प्रति मणिपर्वत अयोध्या मे श्री रामकुमार दास के सरक्षण मे है। इसमे मजरी, मुग्धा, मध्या, प्रौढा आदि का प्रसग है। कामिल बुल्के ने अपने ग्रन्थ राम कथा मे 'चित्रकूट-माहात्म्य'[1] नामक एक हस्तलिखित ग्रन्थ की चर्चा की है जो उन्हे इण्डिया आफिस से मिला है। उसे वे आदि रामायण का ही एक अश बताते है। उनका कथन है कि इस हस्तलिखित प्रति मे चित्रकूट का सातानक वन मे एक सरोवर का वर्णन है, जिसके मध्य मे एक रम्य मण्डप बना हुआ है, जहाँ एक वेदिका मध्य पर भगवान् श्री राम जी सीता और उनकी सखियो के साथ नित्य रासक्रीडा करते रहते है।

---

१ देखिए रामकथा, पृष्ठ १७१, अनुच्छेद १९०

५ **रामायण मणिरत्न**—इसका भी उल्लेख श्री रामदास गौड के 'हिन्दुत्व' मे है। यह वसिष्ठ-अरुन्धती-सवाद है और इसमे कुल ३६,००० श्लोक है। इसमे मिथिला तथा अयोध्या में राम का वसन्तोत्सव मनाने का विवरण है।

६ **मैन्द रामायण**—मैन्द रामायण की चर्चा भी 'हिन्दुत्व' मे है। मैन्द-कौरव-सवाद में कुल ५२,००० श्लोको मे यह पूरा हुआ है। इसमे जनकपुर की वाटिका मे राम-सीता के लीला-विलास का प्रसग विशेष रूप मे वर्णित है।

७ **मजुल रामायण**—उपर्युक्त 'हिन्दुत्व मे उल्लेख। मुनीश्वर-कृत कहा जाता है। इसमे शवरी के प्रति राम ने नवधा भक्ति का वर्णन किया है और उसी प्रसग मे रागमयी प्रीति-पराभक्ति का सविशेष वर्णन है। इनके अतिरिक्त भी रामदास गौड ने अपने 'हिन्दुत्व 'मे सवृत रामायण लोमश रामायण, अगस्त्य रामायण, रामायण महामाला, सोहाद रामायण, सौर्य रामायण, चान्द्र रामायण, स्वायभुव रामायण, सुब्रह्म रामायण, सर्वचस् रामायण, देव रामायण, श्रवण रामायण, दुरत रामायण और रामायण चम्पू की चर्चा की है।

८ **भुशुडी रामायण**—भुशुडी रामायण भी इस रसिक-सम्प्रदाय का एक सम्मान्य ग्रन्थ माना जाता है। इस ग्रथ की हस्तलिखित प्रति श्रावणकुज अयोध्या मे देखने को मिली है। उसमे मनुष्य छन्द मे कुल छत्तीस हजार श्लोक हैं। गीता प्रेस गोरखपुर ने इस ग्रन्थ का फोटो स्किण्ड लिया है। इसका एक श्लोक यो है—

हर्षिता राधिका तत्र जानक्यशसमुद्भवा।
[illegible] भवति द्वापरे॥

नाटक, उपाख्यान, लीलाचरित-काव्य

१ **महानाटक अथवा हनुमन्नाटक**—महाकवि हनुमान द्वारा रचित यह नाटक रसिकोपासको का एक परम प्रिय ग्रन्थ है। इसके दो सस्करण उपलब्ध है। एक है गिरीश प्रिटिंग वर्क्स कलकत्ता का सन् १९३० का प्रकाशित, दूसरा है मुबई वैभव-मुद्रण-यन्त्रालय बबई से सवत १९८१ का प्रकाशित। इस नाटक मे पूरा रामचरित है। दूसरे अक मे रामजानकीविलास का बहुत ही रोमाटिक वर्णन है जो कतिपय विद्वानो की दृष्टि मे अश्लीलता की सीमा तक पहुँच गया है। जो हो, राम जानकी का विलास दूसरे अक मे देखने ही योग्य है।

---

१ अके कृत्वा जनकतनया द्वारकोटेस्तटान्तात्।
पर्यंकाके विपुलपुलका राघवो नम्रवक्त्राम्॥
बाणान् पच प्रवदति जन पचबाणो प्रमाणं
बाणं किं मा प्रहरति शतैर्व्याहरन्नानिनाय॥
अन्योन्य [illegible]
भूयो भूय प्रभूताभिमतफल भुजोर्नन्वतोर्जात एष।
ससारो गर्भसारो नव इव मधुरालापिनो कामिनो मा
गाढ चालिंग्य गाढ स्वपिहि नहिनहीति च्युतो बाहुबन्ध॥

परिपूर्ण काम भगवान् राम ने सीता के साथ वह लीला-विलास किया, जो त्रिभुवन मे न कोई कर सका है न कर सकेगा।[1]

वक्त्रे तत फणिलता दलवीटिका स्वे।
विन्यस्य चन्दनघनावृतपूगगर्भाम्॥
रामोऽब्रवीदयि गृहाण सुखेन बाले!
तृच्छद्मना तदधर मधुर प्रपातुम्॥
मद मद जनकतनया ता चतुर्धा विधाय।
स्वैर जह्वे तदधरमधुप्रेमतो मीलिताक्षी॥
मेने तस्यास्तदनुकवलात् धर्मकामार्थमोक्षान्।
राम काय मधुरमधर ब्रह्म जीत्वापि तस्या॥

सुप्ताया सीताया राम ––

भातिस्म चित्तस्थितरामचन्द्र सरुन्धती निर्गमशकयेव।
स्तनोपरि स्थापितपाणिपद्मा छद्माप्तनिद्राहरिणायताक्षी।

तत्र सीतावक्ष स्थलस्थभ्रमरमवलोक्य––

मदनदहनशुष्यत् क्लान्तकान्ता कुचान्त
र्हृदि मलयजपके गाढबद्धाखिलाकि।
उपरि विततपक्षो लक्ष्यते ऽलिनिमग्न
शर इव कुसुमेषोरेष पुङ्खा वशेष॥

अत्रावसरे

पृथुलजघनभार मन्दमान्दोलयन्ती।
मृदुचलदलकान्ता प्रस्फुरत्कर्णपूरा।
प्रकटितभुजमूला दर्शितस्तन्यलीला।
प्रमदयति पति द्राक् जानकी व्याजनिद्रा॥

जानकी प्रबुद्धा

स्पृहयति च बिभेति प्रेमतो बालभावा–
न्मिलति सुरतसगादगमाकुचयन्ती।
अहह! नहि नहीति व्याजमप्यालपन्ती
स्मितमधुरकटाक्षैर्भाविमाविष्करोति॥

––महानाटक, अक २, श्लोक ४५-५२

१ सीता मनोहरतरा गिरमुद्गिरन्ती-
मालिग्य तत्र बुभुजे परिपूर्णकाम।

२ **प्रसन्नराघवम्**—महामहोपाध्याय पक्षधर मिश्र उपनाम जयदेव कवि-विरचित यह नाटक सात अको मे पूरा हुआ है। अनुमानत इसकी रचना १२ वी या १३ वी शताब्दी मे हुई होगी। इसके दूसरे अक मे राम और सीता का चण्डिकायतन मे मिलन तथा पूर्वराग का चित्रण बहुत ही मनोहारी शैली मे हुआ है। श्री रामचन्द्र वाटिका मे श्री जानकी जी को अचानक देखकर विस्मय से अभिभूत हो जाते है और पूछते है—'नीलम पर खिची स्वर्ण रेखा के समान, कनक-कदली के अभ्यन्तर भाग की तरह स्वच्छ, हरिद्रा-जल की तरह कान्तिप्रवाहवाले अगो से सुन्दरी यह कौन कन्दर्प की क्रीडाभवन-दीपिका की ऐसी दीख रही है।'[1] श्री राम कहते है—'कन्दर्प ने तुम्हारे शरीर को अपना धनुष समझ कर तुम्हारे मध्यदेश को अपनी मुट्ठी मे पकडा, जिसके फल-स्वरूप त्रिवलि के छल से तीन अगुलि सधि-रेखाएँ त्रिभुवन-वशीकरण-मुद्रा के समान दीख रही है।'[2] सीता राम को कटाक्ष से लीलापूर्वक देखती है। राम उसका देखना देखकर कहते है—'नव यौवन का सर्वस्व, भोग का भवन, आँखो का सौभाग्य, मद का गौरव, जगत् का सार, जन्म लेने का फल, कन्दर्प का अभिप्राय, राम का हृदय, रति का तत्त्व शृगार का रहस्य, कुछ ऐसी ही उस कमलनयनी को देखना है।'[3] इस प्रकार पूरा-का-पूरा दूसरा अक राम-सीता के परस्पर आकर्षण, उत्कठा, प्रीति, एव सभोगेच्छा के भाव से परिपूर्ण है। इस प्रकार भवभूति के उत्तर रामचरित मे

रामस्तथा त्रिभुवनेऽपि तथा न कोऽपि
रामा भुनक्ति बुभुजे न च भोक्ष्यतोश ॥

—महानाटक, अक २, श्लोक ६०

१ केय श्यामोपलविरचितोल्लेखहेमंकरेखा
लग्नैरगै कनककदलीकन्दलीगर्भगौरै ।
हारिद्राम्बुद्रवसहचर कान्तिपूर वहद्भि
कायक्रीडाभवनवलभी दीपिकेवाविरस्ति

—प्रसन्नराघव, अक २, श्लोक ७

२ यत्वा चाप शशिमुखि निज मुष्टिना पुष्पधन्वा
तन्वीमेना तव तनुलतां मध्यदेशे बभार
यस्मादत्र त्रिभुवनवशीकारमुद्रानुकारा-
स्तिस्रा भान्ति त्रिवलिकपटादगुलीसधिरेखा ॥

—प्रसन्नराघव, अक २, श्लोक १७

३ सर्वस्व नवयौवनस्य भवन भोगस्य भाग्य दृशा
सौभाग्य मदविन्दुमस्य जगत सार फल जन्मन ।
साकूत कुसुमायुधस्य हृदय रामस्य तत्त्व रते
शृगारस्य रहस्यमुत्पलदृशस्तत् किचिदालोकितम् ॥

—वही, अक २, श्लोक २६

राम का सीता के विरह मे तडपना' तथा महावीर चरित मे सीता-राम का पूर्वानुराग इस सम्बन्ध मे लक्ष्य करने की वस्तु है। 'महावीर-चरित' के प्रथम अक मे विश्वामित्र सीता तथा उर्मिला को अपने आश्रम मे बुलाते है, जहाँ राम और लक्ष्मण उनको देख कर आकर्षित हो जाते है। इन नाटको के अनुशीलन से यह स्पष्ट है कि आठवी शताब्दी से लेकर राम-सीता के सम्बन्ध मे शृगार-भावना तथा उनके पूर्वानुराग का वर्णन विशेष रूप मे होने लगा था।

३ **मैथिली कल्याण**[2]—जैन कवि हस्तिवल्लभ का यह नाटक तेरहवी शताब्दी के अन्तिम दशक मे लिखा बताया जाता है।[3] आरम्भ के चार अको मे राम तथा सीता के पूर्वानुराग का वर्णन किया गया है। दोनो स्वयवर के पूर्व मिथिला के कामदेव-मन्दिर मे और माधवी-वन मे मिलते है। अनन्तर चन्द्रकान्तधर गृह मे अभिसारिका सीता का चित्रण किया गया है। अन्तिम अक मे राम-सीता का विवाह है।

४ **उदार राघव**—उदार राघव की रचना १४ वी शताब्दी के मध्य मे हुई बताई जाती है। लेखक है साकल्यमल्ल। इसके कुल १८ सर्गो मे केवल नौ सग सुरक्षित तथा प्रकाशित है। राम के वन जाते समय सीता का तर्क यह है कि मैंने बहुत-से रामायण सुने है, लेकिन उनमे राम कही भी सीता के बिना वन नही जाते है।[4] इसके तीसरे सर्ग मे मिथिला की स्त्रियो का वर्णन तथा नवे सर्ग मे वनवास मे राम-सीता का वन-विलास विशेष रूप मे द्रष्टव्य है।

५ **जानकी हरण**—कुमारदास कृत 'जानकी हरण' मे विवाह के पहले ही राम-सीता के पारस्परिक आकर्षण तथा सीता के विरह का वर्णन मिलता है।[5] विवाह के उपरान्त राम और सीता के सभोग का वर्णन है।[6] 'जानकी हरण' के तीसरे सग मे दशरथ की क्रीडा का वर्णन विशेष विस्तार से किया गया है।

६ **सत्योपाख्यान**—सत्योपाख्यान पत्राकार मे वेकटेश्वर प्रेस बम्बई से छपा उपलब्ध है। आरम्भ मे राम विष्णु के, लक्ष्मण शेष के, भरत सुदर्शन के और शत्रुघ्न शख के अवतार है—

---

१ **किमपि किमपि मद मन्दमासात्तयोगा-**
दविरलितकपोल जल्पतोरक्रमेण।
अशिथिलपरिरम्भ व्यापृतैकैकदोष्णो--
रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरसीत्॥ --उ० रा० च०

२ **माणिकचन्द दिगबर जैन ग्रन्थमाला स० ५।**

३ **रामकथा पृ० १९७, अनुच्छेद २४४।**

४ **रामायणानीह पुरातनानि पुरातनेभ्यो वडश श्रुतानि।**
न क्वापि वैदेहसुतां विहाय रामो वन यात इति श्रुत मे॥
—उदार राघव सर्ग ५ ४८

५ **देखिए जानकीहरण, सर्ग ७।**

६ **देखिए जानकीहरण, सर्ग ८।**

ऐसा वर्णित है। फिर दशरथ-कैकेयी का विवाह, मथरा के पूर्व जन्म की कथा और फिर राम की बाललीला का वर्णन है। उत्तरार्द्ध मे सीता जी का स्वयवर, राम सीता का विवाह, जल-विहार, वन-विहार[1] सीता की मानलीला, होलिकोत्सव आदि का रसमय विवरण है।

यहाँ लक्ष्य करने की बात यह है कि जिस प्रकार श्रीमद्भागवत मे 'रासपचाध्यायी' के अनुशीलन से हृद्रोग के नाश होने का फल है, उसी प्रकार सत्योपाख्यान मे राम-सीता के विहार का अनुशीलन भी सभी पापो को नष्ट कर विमल भक्ति को जन्म देता है। अतएव रसिको-रसभावुको को इसका बार-बार प्रीतिपूर्वक श्रवण-मनन-अनुशीलन करना उचित है।[2]

७ **वृहद् कौशल खण्ड**—वृहद् कौशल खण्ड अभी-अभी दो खडो मे प० रामवल्लभाशरण जी महाराज की 'रसवर्धिनी टीका' सहित लाहौर के सेठ रोशनलाल अग्रवाल तथा रामप्रियाशरण जी द्वारा प्रकाशित हुआ है। परन्तु है यह 'प्राइवेट सर्क्यूलेशन' के लिए ही। जनसाधारण मे इसका अन्यथा अर्थ भी लग सकता है इसीलिए यह सर्वसुलभ नही है। कहते है, इस ग्रथ को श्री वेदव्यास जी ने श्री सूत-शौनक-सवाद रूप मे निर्माण किया है। श्री शौनक जी ने श्री सूत जी से श्री रामजी के रहस्य-चरित्र की जिज्ञासा की। उत्तर मे श्री सूत जी ने सक्षेप मे श्री राम-जानकी (प्रिया प्रीतम) का लीला-रहस्य बतलाया। भगवान् श्री राम और भगवती सीता के युगल ध्यान के अनेक श्लोक है, तदनन्तर जलविहार, मृगयाविहार आदि की झाँकी का वर्णन कर के श्री सरयू-पुलिन मे सखाओ के साथ रसविहार का वर्णन है और यही प्रथम अध्याय समाप्त होता है। द्वितीय अध्याय से पचम अध्याय तक गोपकन्या, देवकन्या, नागकन्या, गधवकन्या, राजकन्या आदि के साथ भगवान के रासविहार का बडी मार्मिक भाषा मे वर्णन किया है। छठे अध्याय मे श्री जानकी जी के पूर्वराग का उल्लेख कर सातवे अध्याय मे विवाह का प्रसग है। इसके अनन्तर नवे अध्याय से पन्द्रहवे अध्याय तक विवाहोत्तर देवकन्याओ के साथ गधव-कन्याओ के साथ, किन्नर-सुताओ के साथ, विद्याधर-कन्याओ के साथ सिद्धकुमारियो के साथ, राजकन्याओ के साथ, साध्य सुताओ के साथ, गुह्यक देव कन्याओ के साथ, यक्ष कन्याओ के साथ नाग कन्याओ के साथ रास का प्रकरण सविस्तार विशेष रूप से बडी ही भावमयी प्रभावमयी भाषा मे प्रस्तुत

---

१ **कुचद्वयेन रामस्य हृदय स्पृशतीव सा।**
कण्ठे लग्ना तदा भाति मालेव स्वर्णवल्लरी॥ —स० २१ २३

तथा च

तस्यैवाके तथा सीता लज्जया सस्मिताननाम्।
रामचन्द्र घनश्याम सीता विद्युल्लतोपमाम्॥ —स० २६ १०

२ **श्रोतव्य रसिकै सर्वैर्भावुकै प्रीतिपूर्वकम्।**
श्रुत्वा पापानि नश्यन्ति रामे भक्ति प्रजायते॥

—सत्योपाख्यान, उत्तरार्द्ध २५-५०

किया गया है। यो यह समस्त ग्रन्थ ही श्री जानकीराघवरासविलास का अपूर्व ग्रन्थ है और रसिकोपासको मे इसे वेदवत् पूज्य एव परम गुह्य मानते है। श्री हनुमत् निवास के सतत प्रिया-प्रीतम की अष्टयामसेवा मे परायण, अनन्योपासक, मधुर रस के परम रसिक एव रसज्ञ मर्मज्ञ महात्मा रामकिशोर शरण जी महाराज की कृपा से ही यह दुर्लभ ग्रन्थ उपलब्ध हुआ है।

८ **माधुर्य केलि कादम्बिनी**—जैसा नाम से ही स्पष्ट है स्वामी श्री मधुराचाय द्वारा रचित मधुर रस का एक परम आदरणीय ग्रन्थ है। इसकी पूरी प्रति अभी उपलब्ध नही हुई है। 'शिव सहिता' की 'रसबोधिनी टीका' मे प० रामवल्लभाशरण जी महाराज ने इस ग्रन्थ के कुछ श्लोक उद्धृत किये है।[1]

भावार्थ यह कि जब जड पदार्थ तक राम के रूप पर मुग्ध हो जाते है तो उन प्रमदाओ का क्या कहना, जिनके हृदय मे मन्मथ का प्रवेश हो चुका है।

श्रीराघव परमहस यतीन्द्रमुख्या
नार्यो ऽभवन् सखि विमोहवशाश्च दृष्ट्वा।
ते राक्षसाश्च मुमुहु किल कामिनीना
पुसा कथैवननु का रसराजमूर्त्ति॥
कन्दर्पकोटि समकान्तिरल च राम
श्याम सुपश्यति तरु ह्यथ पक्षिणश्च।
वृक्षा खगा कुसुमवाणवशा भवन्ति
काम सदैव विनय क्रियते रसज्ञे॥
दृष्ट्वा सुरम्य निजरूपमद्भुत
शिलातले काचन ज्योति निर्मले।
मुमोह राम रघुवशभूषण
सीतेव स्वालिंगनभावमश्नुते॥
अहोति रूप परम मनोहर
ममापि यन्मोहकर सुखावहम।
मन्ये प्रिया भाग्यमतीव गौरव
या लिगनामन्दमवाप दुर्लभम्।
निजे सुरूपे लतिकादिमोहने
यदायुमोहाशु मनोज सुन्दर।
तदा कथा का प्रमदागणाना
चित्तेषु यासा प्रविशेच्च मन्मथ॥

---

१ देखिए 'शिवसहिता' की प० रामवल्लभाशरण जी कृत 'रसबोधिनी टीका' में पन्द्रहवें अध्याय के ५२ वें श्लोक का भाष्य (पृ० १६८)।

जबतक 'माधुर्य केलि कादम्बिनी' पूरी प्राप्त नही होती, तबतक इन पाँच श्लोको से ही सतोष करना पडेगा। अस्तु।

९ **रामलिंगामृत**—रामलिगामृत की रचना बनारसनिवासी 'अद्वैत' नामक कवि द्वारा १६०८ ईसवी मे हुई थी। इसकी हस्तलिपि लदन मे सुरक्षित है। (दे० इडिया आफिस कैटलॉग न० ३९२०)[1] आरम्भ प्रथम सर्ग मे देवताओ द्वारा विष्णु से अवतार लेने की प्रार्थना है, दूसरे सर्ग-राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न का जन्म जानकी-स्तन-पान, वन-क्रीडा, अध्ययन, यज्ञोपवीत-सस्कार, तथा विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण का जाना। तीसरे सग मे विश्वामित्र के साथ लक्ष्मण राम का सीता स्वयवर मे पहुँचना। राम के सौन्दर्य का सीता की सखियो द्वारा वर्णन, राम द्वारा धनुर्भग। चौथे सर्ग मे सीता स्वयवर है। राम को देखने की उत्सुकता मे स्त्रियो की दशा का अनुमान इस शार्दूल छद से लग सकता है—

[illegible] गेहात्सखी सवृता
व्यग्रा व्यस्तसमस्तभूषण गणान्शीघ्र दधारा ध्वज।।
सीताराम मुखारविन्दज रसोन्मत्ता गलन्मालती
केशे ककतिका चलत्कुचयुगा द्वारोर्ध्वभागे स्थिता।।

इसी सग मे लक्ष्मी सीता को रामावतार का रहस्य बताती है। पाँचवे सर्ग वा छठे सर्ग मे राम-वनगमन का वर्णन तथा पचवटी निवास और बदरो से मैत्री का वर्णन है। सातवे मे राम-विभीषण-मिलन, आठवे मे लकायुद्ध है। नवे सग मे ही रावण महीरावण का वध है और दसवे मे रामनाम की महिमा और रावण द्वारा सवत्र राम के रूप के दशन का उल्लेख है। ग्यारहवे सर्ग मे रावण-वध एव विभीषण का अभिषेक है, बारहवे मे राम का राज्याभिषेक और तेरहवे सर्ग मे प्रचुर विस्तार से राम और सीता के सभोग का वणन है, उनके प्रात शृगार भोजन, शयन, केलिक्रीडा आदि का उल्लेख है। चौदहवे सग मे वाल्मीकि आश्रम मे लवकुश का जन्म एव शिक्षा तथा तदनन्तर राम का सीता और लवकुश सहित अयोध्या लौटना वर्णित है। सोलहवे सर्ग मे राम द्वारा श्री रग जी का पूजन और सत्रहवे मे राम के अश्वमेध यज्ञ का वर्णन है, जिसमे देवता आकर राम तथा सीता की स्तुति करते है। यही राम-सीता समस्त अयोध्या-समाज सहित परलोक गमन करते है। अन्त मे अद्वैतमजरी मे जीव, ब्रह्म, ईश्वर, माया का निरूपण है। अठारहवे सग मे राम पूजा की विधि, राम शिव, तथा रामकृष्ण की अभिन्नता का प्रतिपादन है।

लक्ष्य करने की बात यह है कि अद्वैत कवि गोस्वामी तुलसीदास जी के समकालीन थे और रामलिगामृत तथा रामचरितमानस की कथा मे बहुत अधिक साम्य है।

---

१ 'राम कथा', पृष्ठ १६८, अनुच्छेद २३० से उद्धृत।

२ देखिए 'रामकथा', अनुच्छेद २५९, पृ० २०३-२०८।

प्रमाण अथवा सिद्धान्त-ग्रन्थ

रामावत मधुरोपासना के कतिपय विशिष्ट सिद्ध साधको ने अपने सम्प्रदाय को शास्त्रीय प्रमाणो से परिपुष्ट किया। ठीक जिस प्रकार जीव गोस्वामीपाद, सनातन गोस्वामी, बलदेव विद्याभूषण तथा कृष्णदास कविराज ने गौडीय वैष्णव-साधना को शास्त्र प्रदान किया, उसी प्रकार श्री मधुराचार्य जी, श्री परमहस रामचरण जी तथा श्री स्वामी युगलानन्द शरण जी ने अपने पाडित्य तथा अनुभव के आधार पर कतिपय विशिष्ट ग्रन्थो की रचना की जा इस रस-साधना मे प्रमाण रूप मे प्रस्तुत किये जाते है। अस्तु।

श्री सुदरमणि सदर्भ

श्री मधुराचायरचित श्री सुदरमणि सदर्भ की चर्चा पहले भी आ चुकी है। वस्तुत गौडीय वैष्णव-साधना मे जो स्थान श्री जीवगोस्वामी पाद का है, वही स्थान रामावत मधुर उपासना मे श्री मधुराचार्य जी का है। जिस प्रकार श्री जीवगास्वामी ने भक्ति, प्रीति, आदि षट् सदर्भ द्वारा गौडीय वैष्णव-साधना के रहस्य का उद्घाटन एव विश्लेषण किया, ठीक उसी प्रकार मधुराचाय जी ने भी छह सदर्भो का विशाल ग्रन्थ लिखा था जिसमे केवल एक ही सदर्भ 'सुन्दर-मणि सदर्भ' मिलता है। शेष पांच सदर्भो मे 'वैदिक मणि सदर्भ' का कुछ अश उपलब्ध है। इस ग्रन्थरत्न का 'रहस्य रत्न प्रभा' टीका के सहित स्वामी रामवल्लभाशरण जी महाराज की आज्ञा से श्री पुरुषोत्तमशरण जी ने सवत १९८४ मे प्रकाशित कराया। जिस प्रकार श्री गोस्वामीपाद ने अपने सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिए श्रीमद्भागवत का आधार लिया ह उसी प्रकार श्री मधुराचार्य जी ने वाल्मीकीय रामायण को लिया है। यह दूसरी बात है कि श्री मधुराचार्य की व्याख्या को ज्यो का त्यो स्वीकार करने मे आज के पडित समाज को कुण्ठा होगी, पर इससे घबराने या बिचकने की क्या बात है? प्रत्येक दार्शनिक मत ब्रह्मसूत्र, उपनिषद्, भगवद्गीता (बृहत्त्रयी) का अपने-अपने ढग से अथ करता है। इसलिए यदि मधुराचाय ने वाल्मीकीय रामायण की मधुराश्रयी व्याख्या करन मे कुछ खीचतान की भी हा, तो उसका अपना विशिष्ट महत्त्व है और उसे उसी दृष्टि से देखा जाना चाहिए।

मधुराचाय जी ने सुदरमणि सदभ के मगलाचरण मे ही अपने सिद्धान्त का सार रख दिया है—

प्रोद्यद्भानुसपत्नरत्ननिकरैदेदीप्यमाने महा,
मोदे दिव्यतराति मजुवनितावृन्दै सदा सेविताम्॥
रासोल्लासमुखैश्च व्याकृततम दिव्ये महामण्डपे-
ऽयोध्यामध्य प्रमोदशुभ्रविपिने राम ससीत भजे॥

अयोध्या के मध्य मे स्थित सूर्य के समान प्रभा विस्तार करने वाले रत्नसमूहो से आलोकित शुभ्र प्रमोदवन मे मजु वनितावृन्द से सवित रासोल्लास के आरम्भ मे दिव्य महामण्डप मे आसीन सीता सहित राम की वन्दना करता हूँ।

भगवान् राम मे 'परत्व' और 'सौलभ्य' दोनो ही गुण प्रचुर होने के कारण इष्टदेव है। परत्व इष्टदेव की महानता का और सौलभ्य उनकी उदारता का परिचायक है। श्री वाल्मीकीय रामायण को मधुराचार्य जी ने 'निरतिशय निर्दोष नित्य रसमय' माना है।[१] यह सपूर्ण ग्रन्थ पूर्णत श्री सीता जी का चरित्र है। हनुमान जी न सुन्दर काण्ड के १६वे सर्ग मे यह स्पष्ट स्वीकार किया है कि सीता के लिए ही रामचन्द्र ने सारे दुष्कर कार्य किये। इस प्रकार सम्पूर्ण ग्रन्थ सीताहेतुक है और नारीप्राधान्य के कारण शृगाररसात्मक है।[४] जिस प्रकार श्री रामचन्द्र अन्य सभी अवतारो के कारण है, उसी प्रकार श्री रामायण भी समस्त वाङ्मय काव्य पुराणादिको का कारण है। यह स्वत प्रमाण है।[५] अवतारो मे केवल श्री रामचन्द्र ही है जो शृगार रस की पूर्ण मूर्त्ति है कारण कि श्री कृष्ण तो श्रीराम के अशावतार है। वस्तुत सभी अन्य अवतार अवतारमात्र है श्रीराम ही 'अवतारी' है।

जैसा पहले कहा जा चुका है, श्री मधुराचार्य जी ने जार भाव या परकीया भाव को प्रेमोत्कर्ष का कारण नही माना है। गौडीय वैष्णवो ने परकीया भाव को इसलिए श्रेष्ठ माना,

---

१ कृत्स्नस्यापि श्रीमद्रामायणस्य निरतिशयनिर्दोष नित्यरसमयत्वम्।

—सुदरमणि सदर्भ, पृष्ठ १०

२ कृत्स्न रामायण काव्य सीतायाश्चरित महत्।

—वही, पृष्ठ ११

३ अस्या हेतो विशालाक्ष्या हतो बाली महाबल।
रावणप्रतिमो वीर्ये कवन्धश्च निपातित॥
अस्यानिमित्त सुग्रीव प्राप्तवान् लोकसत्कृतम्।
विराधश्च हत सख्ये राक्षसो भीमदर्शन।
अस्या हेतोर्महद्दु ख प्राप्त रामेण धीमता।
परा सम्भावनास्याभिरस्यान्दिशि निवेशिता॥
सागरश्च मदाक्रान्त श्रीमान् नदनदीपति।
अस्या हेतोर्विशलाक्ष्या विचितेय महामही।
अस्या कृते जगत्सर्वमणुमन्येत केवलम्॥

—वही, पृष्ठ १४-१५

४ रामायण नारीप्रधानमिति प्राधान्येन शृगाररस एवात्र प्रतिपाद्यते।

—वही, पृष्ठ २०

५ यथा श्री रामचन्द्र स्वेतर सर्वकारण तथा श्रीमद्रामायणमपि स्वान्य सर्ववाङ्मयकारणमिति वेदादिबोधस्य प्रामाण्यमवगन्तव्यम् तेन श्रीमद्रामायणस्य प्रमाणान्तरापेक्षा नास्त्येति। तद्विसवादि प्रामाण्यमुपेक्ष्यमिति निर्मत्सरतयागीकार्यं विद्वद्भिरिति।

—वही, पृष्ठ २३

क्योकि अनेक विघ्न-बाधाओ के भीतर से जो प्रच्छन्न कामुकत्व है, वही प्रेम को निरतिशय आनन्द-मय बना देता है। इस पर श्री मधुराचार्य का कथन है कि यह तो प्राकृत जन के लिए है। भगवत्पक्ष मे बिल्कुल बेमतलब की चीज है। वस्तुत स्वकीया प्रेम ही उत्तम प्रीति सुख का हेतु है। विघ्न-बाधाएँ इसमे भी क्या कम है ? गुरुजनो की सेवा और प्रियजनो की आँख बचाकर स्वकीया पत्नी जो प्रेम दे सकती है वह किसी अन्य विधि से नही प्राप्त हो सकती है।[1] इसी प्रकार 'जार' और 'उपपति' शब्द का भी अर्थ मधुराचार्य ने अपना स्वतत्र किया है। 'जार'का अर्थ है ससार-बीज को जीर्ण अर्थात् नाश करनेवाला और 'उपपति' का अथ है अन्तर्यामी रूप से प्रीतिदाता।[2] प्रेम शारीरिक होता ही नही मानसिक होता है तब शारीरिक अगसग का प्रश्न ही कहाँ उठता है ? वस्तुत परात्पर भगवान् को शृगार या मधुर रस का आलबन कहा जाता है तब यह राम प्राकृत जनो मे परिचित शरीर सुखमूलक शृगार रस नही है, प्रत्युत दिव्य आनन्द रस है। इस प्रकार श्री मधुराचाय ने शृगार रस का बहुत ऊँची आध्यात्मिक भमिका पर रखा है और मर्यादापालन पर बहुत अधिक जोर दिया है। शरीर-सुख को तो उन्होने घृणित कहा है। वस्तुत मधुराचार्य के मत मे चित्त का परम प्रीति रूप ब्रह्मावगाहन करनेवाला जो परिणाम है, जिसको श्रुतियो ने 'आनन्द' नाम दिया है, वही शृगार, रस है। इस ग्रन्थ मे [illegible] जी ने वाल्मीकीय रामायण से अनेक उद्धरण देकर यह सिद्ध किया है कि पुरुष भी किस प्रकार भगवान् के कमनीय मुख को देखकर उसी प्रकार रमणेच्छुक हो जाते है जिस प्रकार सती स्त्री अपने कान्त को देखकर हो उठती है। ऐसे स्थलो पर मधुराचाय जी प्राय मानसी प्रीति की चर्चा कर दिया करते है, ताकि 'लोकवेदाकिकर' भक्तजन भ्रान्ति मे न पडे। अपनी व्याख्या मे वे प्राय 'रहस्य' शब्द का आश्रय लेते है। रामायण के प्राय सभी पात्रो के वचनो की श्री मधुराचाय जी ने कुछ ऐसी व्याख्या की है कि रामायण के प्राय सभी मुख्य पात्र भगवान् को कान्त रूप मे पाने की लालसा करते है।

---

१ **कि च शृगारोत्कर्षं प्रच्छन्नकामुकत्व जारत्व च कारण नोपद्यते। नापि परकीयात्व बलीयस स्फुट परदाराभिमर्शनात्। दौर्लभ्यमिहापि मातृ पितृ गुरु शुश्रूषण, मित्र बन्धु जनसमागम राजानुरोध सेवा विप्रवास मान कलहोपवास यागरोगादिषु व्यक्त। धर्माधर्म साक्षिभूतेषु करणाधिपेषुच सर्वत्र सर्वदा सर्ववश्यत्सु प्रच्छन्न कामुकत्वमपि जारे नास्ति श्वशुरादि सनिधाने पत्युरपि कामुकत्वस्य सत्वात्।**

—वही, पृष्ठ ३९-४०

२ **परोपभुक्ताया सर्वागु भोक्तृ भगवदनहत्वात् जारयति ससारबीज नाशयतीति जार। उप समीप अतर्यामिरूपेण व्यक्तरूपेण वा स्थित्वा पाति रक्षति पुष्णातीति उपपतिः।**

—वही, पृष्ठ ४४

३ **नहि मिथुनमेव शृगार तस्य घृणित्वप्रसिद्धे अपितु आनन्दापरनामक परमप्रीतिरूप चित्तस्य ब्रह्मावगाही परिणाम प्रसिद्ध।**

—वही, पृष्ठ ५९

इतना ही नही, श्रीकृष्ण तो केवल स्त्रियो को आकृष्ट कर सके थे, परन्तु राम के रूप और माधुर्य का ही यह गुण था कि उन्होने पुरुषो को तत्रापि तपोनिरत ऋषियो को भी रमणेच्छु बना दिया। यह रामावतार की श्रेष्ठता है।[1] मधुराचार्य ने भगवान् राम के रासविहारी रूप को ही वाल्मीकि रामायण मे प्रतिष्ठापित किया है।[2] जो लोग भगवान् राम के एकपत्नीत्व व्रत एव मर्यादापुरुषोत्तमरूप की दुहाई दिया करते है, उन्हे श्री मधुराचार्य ने 'लोकवेदकिंकर' कहा है और कहा है कि वे लोग इस रस को नही समझ सकते, अपनी सीमा मे आप ही बँधे हुए है। यही श्री मधुराचार्य जी ने वाल्मीकि का एक वचन उद्धृत किया है— 'सुखैश्वर्यरसज्ञ मन् कामिनी-कामवर्धन'। श्रीरामचन्द्र सुख ऐश्वर्य के रसज्ञ है कामिनियो के कामवर्धक है।

मधुराचाय ने बताया है कि अयोध्या मे कामद केलि, कल्हार कला, कौशिक, कौमुद, कौभ, कौशेय, कालिक, तालिक, सिद्ध साध्य, सुसिद्ध, दीघ, शौक, सौरभ, शाभव, श्रीमदन, बार्हस्पत्य, वसिष्ठ, शाण्डिल्य, कात्यायन गणेश्वर आदि अनेक वन है जहाँ श्री सीता जी के साथ श्रीरामचन्द्र विहार करते है। सीता जी की सहस्रो सखियाँ है जिनके नाम चन्द्रा, चन्द्रकला, चाद्री, चन्द्रकान्ता आदि है। इनमे रूप, शील, वय मे जो सीता जी के समान है वे 'सखी' कहलाती है जो न्यन है 'दासी' कहलाती है। इनके सो मुख्य गण है। मुख्य सखियो के नाम से इन गणो का नाम है, उनमे से कुछ गणो के नाम यो है—शान्तागण, कृष्णगण धृतिगण, प्रकीर्त्तिगण, ज्ञानागण, कान्तिदागण, विशारदागण बुधागण, भाववेत्रीगण इत्यादि।

श्रीरामचन्द्र के एक पत्नीव्रत का प्रश्न भी अत्यन्त महत्त्व का है। मधुराचार्य जी ने कई स्थलो पर इस ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। यहाँ इस प्रश्न का समाधान भी बडे सुन्दर ढग से हुआ है। आदि शक्ति श्री जानकी जी ने अपने पिता श्री जनक जी को जो ध्यान बताया है वह अत्यन्त रहस्यमय है।[3] श्री जानकी जी ने कहा है कि पुरुषोत्तम श्रीराम जी मे रस रूप शक्ति

---

१ **पुरुषोऽपि श्रीराम दृष्ट्वा स्त्री भूत्वानेन मिथुनी भवेयमिति निवारवेगो मनोभवो भवति। श्री कृष्णस्तु वेणुरणनं स्त्र्यादिमोहन अय तु स्वसौन्दर्येण स्त्रीपुसाधारण सर्व जन्तुमोहक।**

—वही, पृष्ठ १०६

२ **रामस्तु सीतया सार्द्ध विजहार बहूनृतून्।**

३ **कामपूर्ण कामवर कामास्पदमनोहरम्।**
कन्दर्पकोटिलावण्य रमणीगणमनोहरम्॥
रसरूपा विजानीहि शक्ति मा पुरुषोत्तमे।
भोक्ता स तु महादेव श्री राम सदसत्पर॥
यमेक्षणकलाक्षेप विक्षिप्त राघवीतनु॥
ईक्षया राघवस्यापि मामकी तनुरुत्तमा।
तयोरैक्यात्समुत्पन्नो सब्रह्म तत परम्॥
सुखमात्यतिक तस्माद्येन विश्व सुखायते॥ **—सु० मणि सदर्भ, पृष्ठ ४३२-३३**

मै (श्री सीता जी) हूँ। श्रीराम महादेव है, वे सत् असत् से परे भोक्ता हैं। मेरी ईक्षण-कला के आक्षेप से श्रीरामचन्द्र शरीर धारण करते है और उनकी इच्छा से मेरा शरीर है, ऐसा समझिए। श्रीरामचन्द्र जी और मेरे शरीर के ऐक्य भाव से यह रसरूप परब्रह्म है। इसी मे विश्व सुखी होता है। इसी रस मे बहुत से रस—वीर, करुण, हास्य, भयानक आदि उद्भिन्न हुए है। सभी शक्तियाँ मुझसे निकली है, जो शुद्ध सत्त्वरूप और विकाररहित है। वागीशा, माधवी, नित्या, विक्षा, अविक्षा, हरिप्रिया, कूटरूप, मनोजीवन आदि मुक्ति-मुक्ति-प्रदात्री शक्तियाँ ऐसी ही है। वे सब श्री रामचन्द्र जी को भोग्यरूपा है, सदानन्दा और रसमोदविहारिका है। ये मेरे ही समान है, इन सब के भोक्ता रघुनन्दन ही है।

मधुराचार्य ने बडे जोरदार शब्दो मे अपने पक्ष का स्थापन करते हुए कहा है—'वस्तुत लीला-रस के लिए अद्भुत अप्राकृत मनुष्य रूपी भगवान् पर ब्रह्मस्वरूप श्री रामचन्द्र मे प्राकृत के समान आभास देखना उन्हे विधि-निषेध का किंकर मान लेने के समान है और उनकी अनीश्वरता बताना है। इस बात को तत्त्वज्ञ लोग ही समझ सकते है। लौकिक आचार मे ही लोक को प्रमाण मानना चाहिए, भगवद्रहस्यात्मक अलौकिक अर्थ मे नही।'[1]

इस प्रकार, बडे ही आकर्षक ढग से इस ग्रन्थ मे मधुर रस का प्रतिपादन हुआ है और इस ग्रन्थ से परिवर्त्ती मधुर रस की साधना को बहुत प्रेरणा और शक्ति मिली है।

श्री रामतत्त्वप्रकाश

श्रीरामतत्त्वप्रकाश श्री मधुराचार्य जी का दूसरा ग्रन्थ है, जिसे प्रमाण ग्रन्थ के रूप मे मानते है। यह ग्रन्थ स० २००३ वि० मे विद्यापति प्रेस, लहेरियासराय से मुद्रित तथा श्री अखिलेश्वर-दास कृत 'उद्योता' टीका सहित श्री हनुमत् निवास-निवासी श्री रामकिशोर शरण जी के कृपापात्र श्री रामप्रियाशरण द्वारा प्रकाशित हुआ है। इसमे कुल त्रयोदश उल्लास है। प्रथम उल्लास मे अवतारो के अंशांशित्व का निरूपण है, दूसरे मे अन्य अवतारो की अपेक्षा श्रीराम की उत्कृष्टता

तादृश बहुधा भिन्न रामश्चैव तथाविधा।
वीर करुणा शृगार हास्य वीभत्स भीतय।
रसभेदा बहुविधा शक्तयोर्मे विनि सृता॥
शुद्ध सत्त्वात्मिका सर्वा निर्विकारा रसोत्सवा॥
वागीशा माधवी नित्या विक्षाविक्षा हरिप्रिया।
कूटरूपा मनोजीवा भक्ति मुक्तिफलप्रदा॥
एता भोग्या सदानन्दा रसमोदविहारिका।
अहं यथा तथेयाश्च भोक्ता देवो रघूद्वहः॥

१ देखिए 'कल्पना', वर्ष, अक ५ में प्रकाशित आचार्य हजारीप्रसाद जी द्विवेदी का निबध—'मधुराचार्य और उनका मणिसदर्भ'।

सिद्ध की गई है। इसमे मधुराचार्य ने शास्त्रो के अनेक वचनो के उद्धरण लेकर यह प्रमाणित किया है कि राम अवतारी थे, शेष अन्य अवतार। अर्थात् 'एते चाशकला पुसा रामस्तु भगवान्स्वयम्।' 'स्वय भगवान्' की एक कला के विलास है भगवान्।[१] जैसे समस्त अवतारो मे अवतारी श्रीराम जी ही हैं उसी प्रकार श्रेष्ठ नदियो मे कारणरूप परमपवित्रा सौम्या श्री सरयू जी है। सर्वावतारी भगवान् राम ही द्विभुज से चतुर्भुज हो गये। विष्णु पुराण मे जाम्बवान् ने श्रीकृष्ण से कहा है कि हमारे स्वामी श्री राम के अश जैसे श्रीनारायण है, वैसे ही सकलजगत् के परायण श्रीनारायण के आप अश है। चतुर्थ उल्लास मे भगवान् राम के तथा श्री जानकी जी के चरण-चिह्नो का सविशेष वर्णन है तथा भगवान् राम के रूप का माहात्म्य है। पाँचवे उल्लास मे यह दिखलाया है कि रामायण भी भागवत की भाँति समाधि-भाषा मे लिखा, समाधि मे प्राप्त ज्योति से ज्योतिर्मान् आप्त ग्रथ है। छठे उल्लास मे यह सिद्ध किया गया है कि शुकदेव आदि के उपास्य श्रीराम ही है। सातवे उल्लास मे रामोपासना के परस्पर विरोधी वचनो का परिहार तथा समन्वय दिखलाया गया है। आठवे उल्लास मे राम-सीता का नित्य सयोग सिद्ध किया गया है और नवे मे रसिक शिरोमणि राम का अनेक नायिकाओ के साथ नृत्य तथा राम विलास प्रतिस्थापित किया गया है। मधुराचार्य ऐसे स्थलो पर अपने पाडित्य और प्रतिभा का प्रचण्ड प्रयोग करते है और लगता है अपने मन की बात रामायण के सभी पात्रो से कबुलवा लेते है। शब्दो के ऊपर श्री मधुराचार्य जी का विशेष प्रभाव दिखता है और वे अपने पाण्डित्य के बल पर उन्हे एक नई दिशा मे मोड लेने मे सर्वथा समर्थ है। 'म्नुषा' शब्द को लेकर ही उन्होने एक श्लोक वाल्मीकीय

---

१ यथा सर्वावताराणामवतारी रघूत्तम।
तथा स्रोतसा सौम्या पाविनी सरयू सरित्॥

——अगस्त्य सहिता, उतरार्द्ध

तथा च

सर्वावतारी भगवान् रामश्चतुर्भुजोऽभवत्।——कोश-खण्ड
अस्मत्स्वामिना रामस्येव नारायणस्य सकल जगत्परायणस्याशेन भवता भवितव्यम्।
श्री विष्णु पुराण में कृष्ण के प्रति जाम्बवान् का वचन ४ ३ ५३।

२ उपानृत्यन्त राजान नृत्यगीतविशारदा।
अप्सरोगणसघाश्च किन्नरी परिवारित॥
दक्षिणा रूपवत्यश्च स्त्रिय पानवशगता।
उपनृत्यन्त काकुत्स्थ नृत्यगीतविशारदा॥
मनोभिरामा रामास्ता रामो रमयतां वर।
रमयामास धर्मात्मा नित्य परमभूषिता॥

——वा० रा० उ० स० ४२, २०-२२ श्लोक

रामायण का उद्धृत कर यह सिद्ध किया है कि राम ने अनेक नायिकाओ के साथ रासरग किया।[1] इस प्रकार, अनेक नायिकाओ के एकमात्र नायक श्रीराम है, इसके लिए अनेकानेक प्रमाण मधुराचार्य ने इस उल्लास मे प्रस्तुत कर दिये हैं।

यदि राम और सीता का नित्य सभोग है तो विरह और वियोग के वचनो का क्या अर्थ है, इसी का समाधान दशम उल्लास का मुख्य विषय है। इस सम्बन्ध मे श्री मधुराचार्य ने 'जानकी विलास' के उद्धरण दिये है जिससे यह सिद्ध होता है कि राम सीता के बिना और सीता राम के बिना एक क्षण भी नही रह सकते।[2] एकादश उल्लास मे रामलीला की वर्ष-गणना है जिससे स्पष्ट है कि मधुराचार्य ज्योतिष के भी प्रकाण्ड विद्वान् थे। बारहवे उल्लास मे लवकुश सदेह का निवारण हुआ है। और तेरहवे मे लीला का नित्यत्त्व प्रमाणित हुआ है। और इसके लिए स्कन्द पुराण के अयोध्या माहात्म्य से कुछ श्लोक दिये है।[3] इस प्रकार श्री मधुराचार्य का 'रामतत्त्वप्रकाश, भी 'सुन्दरमणि सदर्भ' की भाँति एक परम मान्य ग्रन्थ है।

श्री रामनवरत्नसार-सग्रह

श्री रामनवरत्नसार सग्रह परमहस स्वामी रामचरणदास 'करुणासिधु' द्वारा सगृहीत तथा प० रामवल्लभाशरण जी कृत 'रत्नप्रभा' टीका सहित स० १९८५ मे गोकुल प्रेस अयोध्या द्वारा मुद्रित तथा श्री जानकीघाट के श्री अवधशरण जी द्वारा प्रकाशित है। इसमें नौ अध्याय है और भिन्न शास्त्रो से प्रमाण एकत्रित कर रसोपासना के विविध अगो को परिपुष्ट किया गया है। इस ग्रन्थ से पता चलता है कि श्री रामचरणदास 'करुणा सिन्धु' बडे ही सुलझे विचार के सत पुरुष थे और उन्हे किसी प्रकार का आग्रह नही था और न अर्थ करने मे विशेष खीचतान ही उन्होने की है। शब्दो की अपेक्षा भाव पर उनकी दृष्टि विशेष है और भावग्राहिणी प्रतिभा का बहुत ही सुन्दर सुसमजस परिचय आपके इस ग्रन्थ से मिलता है। इन नवरत्नो मे

---

१ दृष्ट्वा खलु भविष्यन्ति रामश्च परमा स्त्रिय।
अपदृष्टा भविष्यन्ति स्नुषास्ते भरतक्षये॥

—वा०, अयोध्या, स० ८, श्लोक १२

२ रामो हि न भवेज्जातु सीता यत्र न विद्यते।
सीता नैव भवेत्सा हि यत्र रामो निदीषति॥
सीता राम विना नैव नैव सीतां विना हरि।
जानकीरामयोरेष सबध शाश्वतो मत॥

—जानकी विलास से रामतत्त्व प्रकाश, पृष्ठ २०६ पर उद्धृत

३ चतुर्धा तु तनु कृत्वा देवदेवो हरि स्वयम्।
अत्रैव रमते नित्य भ्रातृभि सह राघव॥

—रामतत्त्वप्रकाश, पृष्ठ २९४ पर उद्धृत

सर्व प्रथम भगवन्नाम है। विविध शास्त्रो मे—जैसे हनुमन्नाटक, वाराहपुराण, पद्मपुराण, अध्यात्म रामायण, नृसिंह पुराण, ब्रह्मयामल, काशीखण्ड, सनत्कुमार सहिता, हिरण्यगर्भ सहिता, महाशम्भु सहिता, अध्यात्म रामायण, भरद्वाज सहिता, हनुमत् सहिता, अगस्त्य सहिता आदि-आदि ग्रन्थो से नाम-महिमा पर प्रमाण वाक्यो श्लोको का उद्धरण देकर श्री करुणा सिन्धु ने श्री रामनाम की अपार महिमा को प्रतिष्ठापित किया है। उन्होने इसमे सखियो के नाम भी पूरे विस्तार से दिया है।[1] अनेकानेक शास्त्रो के उद्धरण मे श्री करुणासिन्धु ने यही प्रमाणित किया है कि परात्पर ब्रह्म श्रीराम ही है और उनसे भिन्न कुछ भी नही है।[2] रूप के अनन्तर धाम की चर्चा है

---

१ तत्र वागीश्वरी देवी माधवी प्रियवल्लभा।
असिता च सिता चैव प्रकृतिर्गुणसभवा॥
उमादेवी महामाया श्रुतिजात विशारदा।
पद्महस्ता विशालाक्षी कमला हरिवल्लभा॥
सुमुखी प्रेमदा नित्या वृन्दा देवी मनोरमा।
चिदात्मक सदाभास नयनानन्ददायकम्॥
स्वकान्तहृदयाराम राम राजीवलोचनम्।
निर्विकार पृथुश्रोण्यो राघव पर्युपासते॥
उर्वशी मेनका रभा राधा चन्द्रावली तथा।
हेमा क्षेमा वरारोहा पद्मगधा सुलोचना॥
हसिनी पालिनी पद्मा हारिणी मृगलोचना।
रामस्य परिनृत्यति गीतावादित्रमोहिता॥
कर्पूरांगी विशालाक्षी शक्तिप्रियरसोत्सवा।
चारुनेत्रा चारुगात्रा चार्वंगी चारुलोचना॥
गोपकन्या सहस्रैस्तु गोपबालैश्च तादृशै।
गोकुलैरावृत सम्यक् पद्मशखादिभि सदा॥
अगादिपरिसकीर्ण आत्मादिशक्ति रजितम्।
वेष्टित वासुदेवाद्यै सेवित हनुमदादिभि॥ —श्री रामनवरत्न, पृष्ठ २०-२१

२ राम सत्य पर ब्रह्म रामात्किचिन्न विद्यते।
तस्माद्रामस्य रूपोय सत्य सत्यमिद जगत्॥ —सनत्कुमार सहिता, पृष्ठ २६ पर उद्धृत

तथा च—

शभु विरचि विष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अश ते नाना।
सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू। विधि हरिहर बदित पदरेनू॥
उपजहिं जासु अश गुनखानी। अगनित लक्षि उमा ब्रह्मानी।
भृकुटि विलास जासु जग होई। राम बामदिसि सीता सोई॥ —रामचरित मानस, बालकाण्ड

और बडे विस्तार से। शैली वही है, शास्त्र वचनो का प्रमाण। साकेत लोक मे भगवान् राम सीता के साथ तथा अन्य अनन्त सखियो के साथ रास विलास करते रहते है। ये सब सखियाँ श्री जानकी जी के अश से उत्पन्न है।[1] वह साकेत लोक अथवा दिव्य अयोध्यापुरी सब वैकुण्ठो की मूलाधारा है, मूल प्रकृति से परे है, तत्सद् ब्रह्ममयी है, विरजा से उत्तर है, दिव्य रसमय कोषो से युक्त है और वही है श्री सीताराम का नित्य विहार स्थल।[2] इसके अनन्तर सच्चे वैराग्य का लक्षण है। वैराग्य का अर्थ है भगवान् मे अतिशय [illegible] आसक्ति। ऐसा होने से स्वत ही जगत् से वैराग्य हो जाता है।[3] इसके बाद है साधु लक्षण तथा सत्सग का माहात्म्य कहते है कि गगा पाप का हरण करती है, चन्द्रमा ताप का हरण करता है, कल्पतरु दैन्य का हरण करता है परन्तु साधु समागम से पाप ताप तथा दैन्य एक साथ नष्ट हो जाते है।[4] साधु वे है जिनका हृदय भगवान् मे रमता है और क्षण भर के लिए भी जो भगवान् से पृथक् नही होते। ऐसे वैष्णव साधु से कुल पवित्र हो जाता है, माता कृताथ हो जाती है और पृथ्वी धन्य हो जाती है।[5] इतना ही नही, वैष्णवो

---

१ अनन्ताभि सखीभिश्च सार्द्ध राम स सीतया।
स्वेच्छया कुरुते रास ता कुजागात्र सभवा॥
——श्री रामनवरत्न, पृष्ठ ४० पर श्री महारामायण से उद्धृत

२ अयोध्यापुरी सा सर्व वैकुण्ठानामेव मूलाधारा प्रकृते परा तत्सद् ब्रह्ममय विरजोत्तर दिव्य रत्नकोषाढ्या तस्या नित्यमेव सीतारामयोर्विहारस्थलमस्तीति। अथर्वण उत्तरार्द्ध से
——श्री रामनवरत्न, पृष्ठ ४२ पर उद्धत

३ नाराधितो यदि हस्तिपसा तत किम्।
आराधितो यदि हरिस्तपसा तत किम्॥
अन्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा तत किम्।
नान्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा तत किम्॥
——श्री रामनवरत्न, पृष्ठ ८० पर उद्धृत

४ गगा पाप शशी ताप दैन्य कल्पतरुस्तथा।
पाप ताप तथा दैन्य हन्ति सःधुसमागम॥ आदि पुराण से
——श्री रामनवरत्न, पृष्ठ १-२ पर उद्धृत

५ साधवो हृदय मह्य साधूना हृदय त्वह।
मदन्यान् नहि जानन्ति नाह तेभ्यो मनागपि॥
——श्री मद्भागवत से रामनवरत्न, पृष्ठ १०६ पर उद्धृत

कुल पवित्र जननी कृतार्था वसुधरा भागवती च धन्या।
स्वर्गे स्थिता ते पितरश्च धन्या येषां कुले वैष्णवनामधेयम्॥
——पद्मपुराण से, पृष्ठ १०७ पर उद्धृत

के चरणोदक से बढकर कोई भी तीर्थ नही है, क्योकि वैष्णवो का चरणोदक नित्य गगा को भी पवित्र करता है।[1] अन्तिम भाग मे है भगवान् श्रीराम के रूप, गुण, प्रताप तथा शरणागति का रहस्य और भेद का वणन। यह इस ग्रन्थ का अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग है और वैष्णव रस-साधना पर विशेष प्रकाश डालता है। इससे यह स्पष्ट है कि स्वामी रामचरणदास जी गुह्य रसिक साधना के अनुभवी भी थे और मर्मज्ञ भी, दूसरे शब्दो मे श्रोत्रिय भी थे और ब्रह्मनिष्ठ भी। इस खण्ड के आरम्भ मे ही उनका अपना रचा हुआ एक दोहा है। बीच मे अनेक स्थलो पर श्री करुणासिधु जी ने स्वरचित पद दिये है जिससे उनकी अन्तर्धारा का अनुमान किया जा सकता है। वह दोहा इस प्रकार है—

नखसिख सीताराम छबि जब लगि हृदय न बास,
रामचरण सब साधना तब लगि लखब निरास।।

और अन्त मे श्री करुणासिन्धु जी ने इष्ट ध्यान के स्वरचित दो श्लोक दिये है जो अद्वितीय है—

राम मान्द्रघनस्वरूपममल सच्चिद्घनानन्दकम्।
[illegible] श्रीदामवक्ष स्थलम्।।
मजीरगद [illegible]
मुक्ताहार किरीट कुण्डल धनु सचित्र वाणोज्वलम्।।
काश्मीरी तिलकालकावृतमुख साचीक्षण सस्मितम्।
ताम्बूलाधर पल्लव रसमय नासाग्रमुक्ताफलम्।।
ध्यायेच्छत्र सुदिव्यचामरयुत साकेतरत्नासने।
जानक्यशभुज सखीगणवृत नित्य निकुजे स्थितम्।।

इस प्रकार रामनवरत्न मे स्वामी रामचरणदास करुणासिधु जी ने रामभक्ति की रसमयी साधना के सम्बन्ध मे अनेक आवश्यक ज्ञातव्य बातो को बडे ढग से सजाकर रख लिया है। शास्त्र के वचनो को ठीक-ठीक तात्पर्य मे सजा देना ही उनकी अलौकिक समन्वयी प्रतिभा तथा प्रकाण्ड पाण्डित्य एव प्रशस्त अध्ययन का सूचक है। अर्थ मे कही भी खीचतान अथवा दूरारूढ कल्पना से काम नही लिया है।

श्री सीताराम नाम प्रताप-प्रकाश

श्री सीताराम नाम प्रताप प्रकाश श्री स्वामी युगलानन्दशरण जी महाराज द्वारा श्रुति, स्मृति, पुराण, उपपुराण, सहिता, तत्र, नाटक, रहस्य और श्रीमद्रामायण आदि सद्ग्रन्थो के प्रमाणो द्वारा श्रीरामनाममाहात्म्य विषय पर सगृहीत तथा सन् १९२५ ई० मे लखनऊ स्टीम प्रेस

---

१ नात. परतर तीर्थं वैष्णवांघ्रिजलात् शुभात्।
तेषा पादोदक नित्य गगामपि पुनाति हि।। —पद्मपुराण से, पृष्ठ १०७ पर उद्धृत

से मुद्रित (पाँचवाँ सस्करण) भाषा-टीका सहित उपलब्ध है। इसमे कुल २१८ पृष्ठ है। श्री रामनाम की महिमा पर इतना भव्य प्रामाणिक ग्रन्थ और नही है और इसीलिए बात की बात मे इसके कितने सस्करण हुए। इसकी लोकप्रियता का स्वय यह एक प्रबल प्रमाण है। स्वामी युगलानन्दशरण जी रसिक उपासना के एक सर्वमान्य आचार्य है। यह ग्रन्थ इनके अनुभव और पाण्डित्य के प्रकाश से जगमग है। इस ग्रन्थ मे बीच-बीच मे, स्वामी श्री युगलानन्दशरण जी के रचे हुए दोहे, कवित्त, सवैये भी मिलते है जो काव्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इनका विवेचन यथास्थान मिलेगा। नाम-साधना मे युगलानन्दशरण जी ने प्रेम को ही विशेष महत्त्व दिया है और प्रीतिपूर्वक, इष्ट के ध्यान के रस मे लीन नाम-स्मरण को ही सर्वश्रेष्ठ ठहराया है, जैसा इनके इस दोहे मे स्पष्ट है—

बडभागी रागी रसिक, ज्ञान ध्यान रसलीन।
भजे जानकी जानि निज, नाम महा रसमीन॥

इस दोहे मे रसिकोपासना मे नामसाधना की सपूर्ण प्रक्रिया आ गई है। अस्तु श्री युगलानन्दशरण जी का 'श्री सीताराम नाम प्रताप प्रकाश-ग्रन्थ नाम' साधना का एक अनुपम कोष है जिसमे समस्त शास्त्रो का निचोड इस विषय पर एक स्थान पर सुन्दर ढग से सजाया हुआ मिलता है। यह ग्रन्थ इसी कारण रसिकोपासको मे नाम साधना मे रसलीन भक्तो के गले का हार है और सदा रहेगा।

श्री रामतत्त्व-भास्कर

श्री रामतत्त्व-भास्कर श्री हरिहरप्रसाद का रचा हुआ और शृगार भवन, अयोध्या के श्री प्रमोदवन विहारीशरण जी के तत्त्वावधान मे लक्ष्मीनारायण प्रेस, मुरादाबाद से स० १९७२ मे मुद्रित तथा प्रकाशित हुआ है। पूर्वार्द्ध मे अनेक मतो का खण्डन है और अपने मत का स्थापन। उत्तरार्द्ध मे श्रीराम का 'परत्व' तथा अन्य देवताओ से श्रेष्ठ सिद्ध किया गया है। प्रसगत षडक्षर-माहात्म्य भी आ गया है। नामतत्त्व के प्रकरण मे विष्णु, नारायण, हरि, गोविन्द, वासुदेव, जगन्नाथ, कृष्ण, राम आदि नामो का अलग-अलग माहात्म्य वर्णित है। फिर नामापराध की चर्चा है और पुन श्री रामनाम की महिमा का सविशेष वर्णन है। रामनाम सभी नामो से श्रेष्ठ है, मधुर है, आनन्ददाता है, यही ग्रन्थकार ने भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रमाणित किया है, प्रतिपादन की शैली प्रभावशाली है।

उपासनात्रय सिद्धान्त

उपासनात्रय सिद्धान्त भी प्रमाण ग्रन्थो मे एक आदरणीय स्थान का अधिकारी है। इस कनक-भवन, अयोध्या के महत परमहस सीताशरण जी के शिष्य श्री सरयूदास जी 'वैष्णवधर्म प्ररोचक' ने बडे परिश्रम से वेद, शास्त्र, पुराण, सहिता, तत्र, रहस्य, नाटक, रामायण तथा और भी अनेकानेक रहस्य-ग्रन्थो के प्रमाण देकर एस्० एन्० प्रेस, बनारस से छपवाया तथा सेठ छोटे-लाल लक्ष्मीचद अयोध्या से प्रकाशित कराया है। 'उपासनात्रय सिद्धान्त' मे श्री रामानुजीय

वैष्णवो के मतानुसार श्रीमन्नारायण की उपासना, श्री वृन्दावन-वासियो के मतानुसार श्री कृष्णोपासना तथा श्री अयोध्यानिवासियो के मतानुसार श्री रामोपासना का सिद्धान्त बडे ही प्रामाणिक ढग से शास्त्रो के प्रमाणो से परिपुष्ट वर्णित है। सग्रहकर्त्ता की उदारता एव समन्वय बुद्धि का पता पग-पग पर मिलता है। अपने इष्ट के प्रति विशेष अनुराग एव आस्था होते हुए भी अन्य उपास्य के प्रति आदर एव श्रद्धा का भाव कथमपि खण्डित या दूषित नही होने पाया है। यही ग्रन्थकार की विशेषता है। साम्प्रदायिक आग्रह तो इस ग्रन्थ मे लेशमात्र भी नही है।

इस ग्रन्थ मे एक स्थान पर (पृ० १२०) स्वामी रामानन्द को राम का अवतार माना है तथा उनके साथ ही ब्रह्मा का अवतार अनन्तानन्द, नारद के अवतार सुरसुरानन्द, शकर के अवतार सुखानन्द-सनत्कुमार के अवतार नरहर्यानन्द कपिल के अवतार योगानन्द, मनु के अवतार पीपा जी, प्रहलाद के अवतार कबीर, जनक के अवतार भावानद भीष्म के अवतार सेना जी, शुकदेव के अवतार गालवानन्द योगिराज, यमराज के अवतार रमादास अथवा रैदास, लक्ष्मी का अवतार पद्मावती हुई। इस कथन का क्या आधार है या क्या प्रमाण है इसका उल्लेख नही मिलता। जो हो, कुल मिला कर यह ग्रन्थ त्रिविध उपासना का तुलनात्मक रहस्य समझने के लिए तथा रामोपासना की रसिक धारा की विशेषता समझाने के लिए परम उपयोगी है।

एक बार श्री जानकी जी ने भगवान् राम से राम का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। इस पर भगवान् राम ने कहा कि तुम्हारा ही अश वृन्दावनेश्वरी श्री राधा जी है और मेरे ही अश श्री गोपेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण जी है। श्रीराम का ऐसा कहना था कि सपूर्ण गोलोक अपने पूर्ण राम मण्डल के साथ सामने प्रत्यक्ष हो गया तथा राधाकृष्ण श्री सीताराम मे लीन हो गये—राधा जी सीता जी मे और श्रीकृष्ण श्रीराम मे।[1] सग्रहकर्त्ता ने कई स्थलो पर विभिन्न शास्त्र-वचनो से यह प्रमाणित किया है कि भगवान् राम नारायण से भी, श्रीकृष्ण से भी श्रेष्ठ है और ब्रह्मा, विष्णु, महेश भगवान् राम के आवेशावतार है।[2] इससे साम्प्रदायिक आग्रह न समझकर साम्प्रदायिक निष्ठा ही मुख्य

श्री जानकी उवाच--

१ आवा प्रियो निकुजोऽत्र सर्वर्त्तुसुखशोभितम्।
कश्चिनौ विहरिष्यावो राधाकृष्णाविव व्रजे॥

श्री राम उवाच--

त्वदशा एव राधा सा प्रिये वृन्दावनेश्वरी।
महेश एव नियत कृष्णो गोपेन्द्रनन्दन॥
ततस्तद् युगल श्रीमद्राधाकृष्णात्मक महत्।
सीतारामात्मक युगम प्राविशन्नतिपूर्वकम्॥

२ परा नारायणाच्चैव कृष्णात्परतरादपि।
यो वै परतप श्रीमान् रामो दाशरथि स्वराट्॥

मानना चाहिए । आग्रह एक चीज है, निष्ठा और । कोई भी अपनी अनन्य निष्ठा मे अपने इष्टदेव को सर्वोपरि मान सकता है और ऐसा मानने मे किसी को कथमपि आपत्ति या विरोध नही होना चाहिए।

श्री रामपटल

श्री रामपटल हिन्दी-टीका के साथ स० १९७९ मे आनन्द प्रेस, बनारस से मुद्रित तथा छोटेलाल लक्ष्मीचद, अयोध्या द्वारा प्रकाशित उपलब्ध है । इसमे वैष्णवो के आचार-विचार, उनके पच सस्कार, दश लक्षण, मुद्रा, जपविधि, षोडशोपचार पूजापद्धति, नाम, सस्कार, तिलक-धारण आदि पर बडे विस्तार से विचार किया गया है। इसे चारो वैष्णव मतो के आचार-विचार का कोष ग्रन्थ या 'रेफरेस बुक' माना जा सकता है, क्योकि प्राय सभी उपयोगी साधना शैलियो तथा आवश्यक उपादानो का सविशेष सप्रमाण विवरण इस ग्रन्थ मे एक स्थान पर एकत्र मिलता है।

शृगारिक खण्ड काव्य

राम-सम्बन्धी शृगारिक खण्ड काव्य की सृष्टि विशेषकर 'मेघदूत' तथा 'गीतगोविन्द' के अनकरण पर हुई है। 'मेघदूत' के अनकरण पर निम्नलिखित ग्रन्थो का उल्लेख मिलता है—

१ हस-सदेश अथवा हस-दूत । इसमे हस-द्वारा सीता के पास लाये हुए राम-सदेश का वर्णन मिलता है। यह तेरहवी शताब्दी का ग्रन्थ माना जाता है और इसके रचयिता के कई नाम पाये जाते है—वेकटदेशिक, वेकटनाथ, वेदान्ताचाय, श्री वेदान्तदेशिक ।

२ भ्रमर दूत—नैयायिक रुद्र वाचस्पति की २८८ छदो की इस रचना मे सीता के पास भ्रमर को भेजने का वणन किया गया है।

३ भ्रमर सदेश—वासुदेव कृत।

४ कपिदूत—हनुमान जी द्वारा सदश वाहन।

५ कोकिल सदेश—वेकटाचाय कृत ६०० छन्दो की १७ वी शताब्दी की रचना।

६ चद्रदूत—कृष्णचन्द्र तर्कालकार कृत।

गीत-गोविन्द के अनुकरण पर भी बहुत से राम-सीता-सम्बन्धी काव्यो की रचना हुई है । उदाहरणार्थ—

१ रामगीत गोविन्द जो मूल से जयदेव कृत माना जाता है।

२ गीता राघव नाम से दो रचनाएँ प्रचलित है, एक हरिशकर कृत तथा अन्य प्रभाकर कृत।

यस्यानन्तावताराश्च कला अशविभूतय.।
आवेशा विष्णु ब्रह्मेशा पर ब्रह्म स्वरूपभा ॥
स एव सच्चिदानन्दो विभूतित्रयनायक ।

—श्री उपासनात्रय सिद्धान्त, पृष्ठ १४७

३ जानकी गीता—श्री हर्याचार्य कृत।

४ राम विलास-हरिनाथ कृत।

५ सगीत रघुनन्दन १८ वी शताब्दी—विश्वनाथ सिह जू की रचना मे गीतगोविन्द के अनुकरण पर साथ-साथ सीताराम की युग्म भक्ति का भी प्रतिपादन किया गया है।

६ राघवविलास—साहित्यदर्पण कार विश्वनाथ कृत।

७ रामशतक—सोमेश्वर कृत।

८ समार्याशतक—मुद्गलभट्ट कृत।

९ आर्यारामायण—कृष्णेनु कृत।

इनमे रामकथा की कोई विशेष सामग्री नही मिलती, परन्तु इनसे रामकथा की लोकप्रियता तथा समस्त काव्य-शैलियो मे व्यापकता का प्रमाण मिलता है।[1]

---

१ देखिए रामकथा—पृष्ठ २००-२०१ अनुच्छेद २५२-२५३-२५४।

आठवाँ अध्याय

रसिक परम्परा का साहित्य

हिन्दी में

अष्टयाम

'अष्टयाम' मे अष्टप्रहर की सेवा का वर्णन हैं। इसमे वाह्य सेवा और मानसी सेवा दोनो का ही वर्णन होता है। मधुरोपासना मे अष्टयाम सेवा मुख्यतम अग है। इस समय भी श्री अवध मे अष्टयाम उपासना चलती है। मगला आरती से लेकर शयन तक की विविध लीलाओ को अष्टयाम कहते हैं। भगवान का स्नान तथा शृगार, भिन्न-भिन्न समयो की लीला, भोजन और शयन ये ही पाँच काल होते हैं।

सबसे पहला अष्टयाम श्रीकृष्णदास जी पयहारी के शिष्य श्री अगुस्वामी का हैं। अभी-अभी चैत्र शुक्ल ६ वि० सवत् १९९५ मे प० श्री रामवल्लभाशरण जी महाराज श्री जानकी घाट अयोध्याजी की व्याख्या के सहित अमावा-टेकारी की राजराजेश्वरी श्रीमती रानी भुवनेश्वरी कुँवरि द्वारा प्रकाशित हुआ है।

श्री अदग्रस्वामी कृत

भगवान राम के सखा और सखी

१ सुलोचनमणि, २ सुभद्र मणि, ३ सुचन्द्रमणि, ४ जयसेन मणि, ५ बलिष्ठमणि, ६ शुभशीलमणि, ७ अनगमणि और ८ रसकेतुमणि ये आठो काम को लज्जित करनेवाले सुन्दर कुमार आठो मन्त्रियो के पुत्र है। श्रीरामजी के सखा है। सदा ही श्रीरामजी की सेवा मे तत्पर रहते है।

स्त्रिय पुमस्स्वरूपेण सख्यमात्रेण सेविता ॥ पा० टि० ॥

पुन १ श्री लक्ष्मणा जी, २ श्री श्यामल जी, ३ श्री हसी जी, ४ श्री सुगमा जी, ५ श्री वश-ध्वजा जी, ६ श्री चित्ररेखा जी, ७ श्री तेजोरूपा जी, ८ श्री इन्दिरावली जी ये आठ सखी हैं। समय-समय पर पुरुष रूप धारण कर श्री सीतारामजी की सेवा करती है।

पुन आठ दासियाँ है—१ निगमा जी, २ सुरसा जी, ३ वाग्मी जी, ४ शास्त्रज्ञा जी, ५ बहुमगला जी, ६ भोगज्ञा जी, ७ धर्मशीला जी, ८ विचित्रा जी। ये सब नित्य ही सेवा विधान करनेवाली है।

ध्यान

अशोक वन के मध्य एक कल्पवृक्ष है। यद्यपि सभी वृक्ष देव-तरुवरो को लज्जित करने

वाले हैं, तथापि यह विलक्षण है। उस कल्पवृक्ष के पास ही अधाभाग में मणिमय मनोरम मण्डप है, मन्दिर बना हुआ है, जिसके चारों दिशाओं में द्वार है। उसके बीच में रत्नमयी वेदी है, उस वेदी के मध्य सिंहासन है। सिंहासन के मध्य मणिमय अष्टदल कमल है। कमल के मध्य कर्णिका है। उस कर्णिका में प्रथम मकार चन्द्रबीज है, पुन अकार भानुबीज है, पुन ऊपर के भाग में रकार वह्नि अग्नि बीज है। उसी अग्निमण्डल में श्री सीताराम जी का निवास है।

उसी कर्णिका पर आठ सखियों से सेवित श्री सीताराम जी विराजमान हैं। दक्षिण में चमर, पश्चिम में छत्र, उत्तर में व्यजन लिए श्री भरतादि भ्राता तथा अन्य सेवक परिकर सब ताम्बूल, पुष्पमाला इत्यादि लिए सेवा कर रहे हैं।

ईशान कोण में श्री लक्ष्मणा जी हैं, पूर्व में श्री श्यामला जी हैं अग्निकोण में श्री हंसी जी हैं और दक्षिण में श्री सुषमा जी हैं। नैऋत्य कोण में श्री यशोध्वजाजी हैं, पश्चिम में श्री चित्ररेखा जी हैं, वायव्य कोण में तेजोरूपा जी हैं और उत्तर में श्री इन्दिरावली जी हैं। इस प्रकार, सेवा का वर्णन करके अब कुञ्जों के स्थानों का कथन करते हैं कि किस दिशा में किसका कुञ्ज है।

उत्तर में, सेवा के सब उपकरणों से युक्त परम रम्य श्री लक्ष्मणा जी का कुञ्ज है। इसी तरह ललित कुण्ड से पूर्व श्री श्यामला जी का कुञ्ज है, और ललित कुण्ड से दक्षिण श्री हंसी जी का कुञ्ज है। पश्चिम में नाना पुष्पों से मण्डित श्री सुषमा जी का कुञ्ज है, पश्चिम और उत्तर के बीच में अर्थात् वायव्यकोण में श्रीमती यशोध्वजाजी अपने कुञ्ज में विराजती हैं। इसी तरह ईशान कोण में श्री चित्ररेखा जी हैं और पूर्व-दक्षिण के मध्य अग्निकोण में श्री तेजोरूपा जी अपने कुञ्ज में प्रतिष्ठित हैं। नैऋत्यकोण में श्री इन्दिरावली जी हैं। इसी तरह, सखियों के नाम और उनके स्थान कुञ्ज कह गये हैं। जैसे – ललितकुण्ड के आठों तरफ आठ सखियों के कुञ्ज हैं वैसे ही माधवी कुण्ड के आठों तरफ आठ सखाओं के कुञ्ज हैं। माधवी-कुण्ड के उत्तर कुञ्ज में श्री सुलोचन जी हैं, ईशान-कोण में श्री सुभद्रा जी का कुञ्ज है और पूर्व में श्री सुचन्द्र जी का कुञ्ज है। अग्निकोण में श्री जयन्त जी का कुञ्ज है दक्षिण में श्री वरिष्ठ जी का कुञ्ज है, नैऋत्य में श्री जयशील जी का कुञ्ज है और पश्चिम में श्री अनर्गजित् जी अर्थात् जिनको श्री अनगमणि कहते हैं वे इस कुञ्ज में स्थित हैं। वायव्यकोण में श्री रसकेतु जी का कुञ्ज है। इस प्रकार, अपने-अपने कुञ्जों में आठों सखा रहते हैं।

प्रफुल्लकमलप्रख्य मरन्दामोदमेदुर।
तत्र प्रसूनशयने समासीनान्तु जानकीम् ॥पा० टि०

सौरभ, आमोद और मकरन्द से भरे खिले हुए कमल के समान ही (एवं) कमल दलों की शैया पर (जिनमें सरोवर के नवविकसित कमलों की पंखुरियों में तनिक भी अन्तर नहीं है, जो तनिक भी नहीं मुर्झाए हैं) श्री विदेहराजनन्दिनी जी विराजी हुई हैं। ऐसा चिन्तन करे।

नानालंकारसयुक्ता सर्वसौन्दर्यशालिनीम्।
आश्लिष्टांगीं च हरिणा सर्वाङ्गैः रामवल्लभाम् ॥पा० टि०

श्री राम जी मे आश्लिष्ट है। प्रात काल जागकर दोनो प्रिया-प्रियतम, स्नह भरे, परस्पर मिले हुए है – नायिका-शिरामणि आपका मुग्ध भाव ही, सब शोभा का तथा गुणोद्रेक के गौरव का सूचक है।

रतिलीलासमाकृष्टास्फुरदलकसयुताम् ।
ध्यात्वादवी वरारोहा साधकस्तत्परोभवेत् ।।

परस्पर की स्नहमयी रतिलीला मे समाकृष्ट होने के कारण अलके बिथुर रही है, उनसे सयुक्तवरारोहा दवी, दिव्यगुण लीला-सम्पन्ना श्री रामवल्लभा जू का ध्यान कर साधक अपनी सेवा मे तत्पर होवे।

लक्ष्मणा श्यामला हसी सुगमाश्च चतुर्विधा ।
स्त्रिय पुस स्वरूपेण सख्यमात्रण सेविता ।।पा० टि०

श्री लक्ष्मणा जी, श्री श्यामला जी, श्री हसी जी और श्री सुगमा जी, ये चार प्रकार की परम चतुर सखियाँ, समय-समय पर, पुरुष-स्वरूप को धारण कर, अर्थात् कभी स्त्री रूप से कभी पुरुष रूप से सेवा करती है।

'यादृशी रामवाछास्यात्तादृशाहिभवन्ति ते' ।
'जानक्यासहित राम नित्य सेवेत्तु मानसे' ।।पा० टि०

सखियो की सेवा का वर्णन––

लक्ष्मणा ताम्बूलसेवा श्यामला गन्धमोदकम् ।
हसी चन्दनलिप्तागा सुगमा चन्द्रवासकम् ।।पा० टि०

श्री लक्ष्मणा जी ताम्बूल से सेवा करती है श्री श्यामला जी अतर आदि सुगन्धित वस्तुओ से एव मादक आदि पक्वान्नो से सेवा करती है, श्री हसी जी कामल करकमलो से मृदु अगो मे चन्दन आदि लेपन करन की सेवा करती है।

निगमा चामरसेवा च सुरसा वस्त्रक तथा।
वाग्मी पादाब्ज सेवा च शास्त्रज्ञा वाद्यमगला ।।पा० टि०

श्री निगमा जी चामर की सेवा, श्री सुरसा जी वस्त्र की सेवा, श्री वाग्मी जी चरण कमलो की सेवा और शास्त्रज्ञा जी मगलमय अनेक प्रकार के सुरीले बाजो को बजाकर मगलमय गान के द्वारा सेवा करती है।

आलापे बहुमगला भोगज्ञा गायने रता ।
धर्म्मशीला पादसेवा नित्य सेवा शयाह्निकम् ।।पा० टि०

श्री बहुमगला जी अनेक तरह के रागो का आलाप करती है, श्री भोगज्ञा जी भी गान करने मे तत्पर रहती है और धर्मशीला जी चरण-सेवा करती है।

जब बाटिकादिक बिहार करके श्री रामजी लौटते है, उस समय सखियो को सग लेकर गोपुर के गवाक्ष नाम झरोखो मे बैठकर श्रीरामजी के मुख कमल को श्री रामवल्लभा जी अवलोकन करती है।

एव विचिंतयेद्दृष्ट प्रेमानन्देन साधक ।
सीतारामविहारच प्रेमामृतरसार्णवम् ।।पा० टि०

इस तरह से हर्षित होकर प्रेमानन्द से प्रेमावृत्त रस का समुद्र श्री सीताराम जी का विहार मन मे साधक को चिन्तन करना चाहिए।

सोलह शृगार

स्नान नामाग्र मुक्ता च नील कौशेयवस्त्रकम् ।
स्वर्ण सूत्रा दिव्य वेणीमगरागानुरजितम ।।पा० टि०

स्नान और नामाग्र मुक्ता का धारण करना और नील रग की रेशमी साडी धारण करना जिसमे सुवर्ण के सूत्रो की मनाहर चमकदार किनारी बनी है, दिव्य वेणी का सवारना और अगराग से अनुरजित करना।

काची गुणलमलन्नीवी मणिस्त्रगवतसिकाम् ।
कराग्रे धृतपद्मा च नागवल्ली दलान्विताम् ।।पा० टि०

सुवर्ण की मणिजटित काची अर्थात् छुद्र घण्टिका और उसके मनोहर गुण से नीबी का अग्र भाग शोभित होता है और मणियो की माला तथा कणफूल आदि सबसे शृगार होता है, पुन कर-कमल मे पद्म को धारण करती है और ताम्बूल को ग्रहण करती है।

सिन्दूर विन्दु तिलका कस्तूरी चिबुकाचिताम् ।
अजनेना रजिताक्षी [illegible] ।।पा० टि०

सिन्दूर का विन्दु तिलक स्थान पर धारण करती है। कस्तूरी का अति सूक्ष्म विन्दु चिबुक के ऊपर धारण करती है जिसमे अति शोभित होती है। पुन अजन आदि से नेत्र कमल रजित होते है और वलयादि अर्थात् चूडी आदि मणि-रचित दिव्य भूषणो से कर-कमल शोभित होते है।

यावकं रक्तपादा च सिजन्मजीरभूषणाम् ।
शृगार षोडशयुता सीता ध्यायेद्धृदम्बुजे ।।

फिर यावक अर्थात् महावर से आपके चरण-कमल अति शोभित किये जाते है और सुन्दर मनोहर नूपुरादि मजीर भूषणों से शोभित होती है। इस तरह षोडश-शृगार से युक्त सर्वेश्वर श्री रामजी की वल्लभा श्री जानकी जी को हृदय कमल मे ध्यान करे।

ध्यान मंजरी

श्री अग्रस्वामी या अग्रदासजी

नाभादास जी के गुरु अग्रदास जी की यह 'ध्यान मञ्जरी' रामरसिकोपासको की परम प्रिय पोथी है। एक बहुत प्राचीन प्रति कामेन्द्रमणि जी के शिष्य रसरगमणि जी की 'मकरन्द माधुरी' टीका के साथ प्राप्त है। टीका स्वय अपने आप मे रसिकोपासना का एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है। इसमे स्थान - स्थान पर शकाएँ की गई हैं और विस्तार से जमकर, उनका समाधान प्रस्तुत किया गया है। टीका की शैली पुरानी है और 'किंभूती' है, पर तत्त्व-निरूपण बडा ही प्रभावशाली है। सम्पूर्ण ग्रन्थ कुल ८० पदो का है। आरम्भ मे श्री अवधपुरी का ध्यान है, फिर वहाँ के निवासी धर्मशील नर-नारियो का वर्णन है। पुन अन्त पुर निवासिनी युवती सेविकाओ का उल्लेख है। सरयू जी के वर्णन मे अग्रदास जी ने कमाल कर दिया है। वहाँ, श्री सरयू तट पर, अशोक वन है जहाँ एक कल्पवृक्ष है। उसी कल्पवृक्ष की स्वर्ण वेदिका पर एक रत्न सिंहासन है जिसपर दिव्य पद्मो का एक शुभासन है। उसके बीच मे दिव्य कर्णिका है जो एक तेज से आवेष्ठित है। उस पर युगल सरकार श्री सीताराम सुशोभित है।

अब स्वय श्री अग्रदास जी के शब्दो मे ही इस दिव्य ध्यान का आनन्द लीजिए—

श्री राम का ध्यान—

कल्प वृक्ष के निकट तहाँ यह धाम मणिन युत।
कचन मय सब भूमि परम अति राजत अद्भुत॥

स्वण वेदिका मध्य तहाँ यह रतन सिंहासन।
सिहासन के मध्य परम अति पदुम शुभासन॥

ताके मध्य सुदेस कर्णिका सुन्दर राजै।
अति अद्भुत तहँ तेज वन्हि सम उपमा भ्राजै॥

तामधि शोभित राम नील इन्दीवर ओभा।
अखिल रूप अमोघि सजल घन तन की शोभा॥

शिर पर दिव्य किरीट जटित मजुल मणि मोती।
निरखि रुचिरता लजित निकर दिन कर की जोती॥

कुण्डल ललित कपोल जुगल अति परम सुदेशा।
तिनको निरखि प्रकाश लजित राकेस दिनेशा॥

मेचक कुटिल सुचारु सरोरुह नयन सुहाए।
मुख पकज के निकट मनहुँ अलि छौना आये॥

भृकुटी त्रय पद सगुन मनहुँ अलि अवलि विराजै।
नासा परम सुदेश बदन लखि पकज लाजै॥

चितवनि चारु कृपाल रसिक जन मन आकर्षत।
मन्द हास मृदु बयन जनन को आनन्द वर्षत॥

दीरघ दीप्त ललाट ज्ञान मुद्रा दृढ धारी।
सुन्दर तिलक उदार अधिक छवि शोभित भारी॥

परम ललित मणिमाल हार मुक्ता छवि राजै।
उर श्रीवत्स सुचिन्ह कण्ठ कौस्तुभ मणि भ्राजै॥

यज्ञोपवीत सुदेश मध्यधारा जु बिराजै।
उभै भुजा आजानु नगन जटि ककन राजै॥

चूनीरतन जराय मुद्रिका अधिक सवारी।
शोभित अद्भुत रूप अरुण की छबि अनुहारी॥

भूषण विविध सदेश पीत पट शोभित भारी।
लसत कोर चहु ओर छोर कल कचन धारी॥

रोमावलि बनि आइ नाभि अम लगति सुहाई।
त्रिवलि तामधि ललित रेख त्रय अति छबि छाई॥

कटि परदेश सुढार अधिक छबि किकिन राजै।
जानु पुष्ट बनि गूढ गुल्फ अति ललित बिराजै॥

नूपुर पुरट सुचारु रचित मणि माणिक सोहै।
रविकल मुरमगीत सुनत परिजन मन मोहै॥

युगल अरुण पद पद्म चिन्ह कुलिशादिक मडित।
पद्मा नित्यनिकेत शरण गत भव भय खडित॥

दक्षिण भुज शर सुभग सुहावन सुन्दर राजै।
दिव्यायुध सुविशाल बाम कर धनुष विराजै॥

षोडस बरस किशोर राम नित सुन्दर राजै।
राम रूप को निरखि बिभाकर कोटिक लाजै॥

अस राजत रघुबीर धीर आसन सुखकारी।
रूप सच्चिदानन्द बाम दिशि जनक कुमारी॥

श्री सीता जी का ध्यान

नगन जरे छबि भरे विविध भूषण अस सोहै।
सुन्दर अक उदार विदित चामीकर कोहै॥

अलक झलकता श्याम पीठ सोभित कल बेनी।
सुन्दरता की सीव किधौ राजति अलि श्रेनी॥

रचित सु विविध प्रकार माग जरतार सवारी।
मनहु, सरसरी धार बनी शोभा अस भारी॥

पाटन की लर और बडे बडे उज्ज्वल मोती।
मघन तिमिर के मध्य मनो उडगण की जोती॥

रतन रचित मणि जटित शीस पर विन्दा छाजै।
ललित कपोत सु युगल करन ताटक विराजै॥

उज्ज्वल भाल सुचारु अमित उपमा अस सोहै।
राजत परम सोहाग भाग को भवन किधौ है॥

गोरोचन को तिलक ललित रेखा बनि आई।
उन्नत नासा सुभग लसत वेसरि जु सुहाई॥

भृकुटी नयन विशाल सौम्य चितवनि जग पावन।
मानहु विकसित कमल बदन अस लगत सुहावन॥

अरुण अधर तर दसन पाति अस लगति सुहाई।
चारु चिबुक बिच तनक बिन्दु मेचक छबि छाई॥

कठ पोति मणि जोति सु छबि मुक्ता बरमाला।
पदिक रचित कलधौत बिराजत हृदय विशाला॥

हेम तन्तु कर रचित अरुणा सारी रग झीनी।
कचुकी चित्रित चतुर विविध शोभित रग भीनी॥

बर अगद छबि देति बाहु अस लगति सुहाई।
करन चुरी रगभरी ललित मदरी बनि आई॥

पद्मराग मणिनील जटित युग ककण राजै।
मनहु वनज के फूल दुरेफनि पक्ति बिराज॥

लहगा कटि परदेश भाति अति शोभित गहिरी।
अरुण असित सित पीत मध्य नाना रग लहरी॥

हरित नगन कर जरित युगल जेहरि अस राजै।
तिन पर घुघुरु और अग्र विछिया सुबिराजै।।
तिन पर नग जु अमोल ललित चूनी गण लाये।
चरण चारु तल अरुण सहज ही लगत सुहाये।।
अतुलित युगल स्वरूप कवन अस उपमा जिनकी।
जेतिक उपमा दीप्ति शक्ति करि भासित तिनकी।।
यहि विधि राजत राम अवधपुर अवध बिहारी।
दम्पति परम उदार सुयश सेवक सुखकारी।।

पार्षदो का ध्यान

दक्षिण भुज रिपुदलन गौर तन तेज उदारा।
उभय हेतु अनुसार धरे बृत खडित धारा।।
शेष लिये कर छत्र भरत लिये चवर दुरावै।
अनि सुवन करजोरि सु प्रभु की कीरति गावै।।
अपनी अपनी ठौर नित्य परिकर बनि भारी।
सुरति शक्ति विमलादि रहत नित आज्ञाकारी।।
जो जो जेहि अधिकार सचितव सेवा मन बासै।
बीनाधर सुरतान गान करि प्रभुहि उपासै।।
यही ध्यान उर धरै स्वय तन सुफल करेवा।
भव चतुरानन आदि चरन बन्दै सब देवा।।
यह दम्पनि बर ध्यान रसिक जन नितप्रति ध्यावै।
रसिक बिना यह ध्यान और सपनेहु नहि पावै।।
पौरि द्वार अतिचारु सुहावन चित्रित माहै।
चपतार मदार कल्पतरु देखत मोहै।।

रामाष्टयाम

श्री नाभादास जी

द्वादश वन वर्णन

प्रथमहि वन शृगार सुहावन। वन विहार तमाल अति पावन।।
वन रसाल चपक चन्दन वर। पारिजात अशोक मगल तर।।

वन विचित्र कवि कहत कदबा। वन अनग रस अलि अवलबा॥
नवल नाग केसरि वन नीको। ललित लालि तो रघुवर सीको॥
तृदिशि नगर सरयू सरि पावनि। मणिमय तीरथ अमित सुहावनि॥
विकसे जलज भृग रस भूले। गुजत जल समूह दोउ कूले॥
परिषा त्रिविध सुधा सम वारी। विकसे विविध कज मनहारी॥
विच विच महल पक्ति बनि आई। स्वर्ण रत्न मणि सुभग सुहाई॥

परिषा प्रति चहु दिशि लसत, कचन कोट प्रकास।
विविध रग नग जगमगत, प्रति गोपुर पुर पास॥
दिव्य फटिक मय कोट की, शोभा कहि न सिराय।
चहु दिशि अद्भुत ज्योति मय, जगमगात सुख पाय॥

महल की शोभा

भीतर कोट वोट अति पावन। चिंता मणि मय भूमि सुहावन॥
चहु दिशि योजन चार सुहावा। सो अवधेंद्र भवन श्रुति गावा॥
पच चौक राजत अति नीके। कौशलसुता राजमहिषी के॥
पूरव चौक सखी बहु राजै। वेत पाणि रक्षण हित काजै॥
दक्षिण राज किंकरी दासी। महल टहल नित निकट सुपासी॥
पश्चिम चौक सैन की शाला। राजति तहा सुमगल बाला॥
रघुवर धाय पुत्र सब पाले। पान पान सुख बहु विधि लाले॥
उत्तर चौक करत सब सेवा। राजत रग राज कुल देवा॥

कुल गुरु नृप पुत्रन सहित, वधुन सहित रनिवास।
ज्ञाति वर्ग मत्री मुदित, पूजत सहित हुलास॥

अन्तःपुर का वर्णन

पुनि तह ते षोडश सहचरी। गाइ उठी प्रीतम रग भरी॥
तिन ते अलि नव अष्ट सुहाई। निज निज थल गावत छबि छाई॥
अत पुर जह सिय पिय राजै। शोभा कहत शेष श्रुति लाजै॥
रतन जडित परयक सुहावा। स्वर्ण रत्न मणि खचित सुपावा॥
विविध विचित्र चित्र रग राजै। निरखत अलिवलि सहित समाजै॥
अति अद्भुत उपमा छबिछाये। श्रुति सहिता पुराणन गाये॥
तेहि ऊपर अति ललित बिछोना। क्षीर फेन सम कोमल लोना॥
तेहि ऊपर सुमनन की शोभा। कहत न बनै देखि मन लोभा॥

चित्र विचित्र अनी न रचि, सेज सुमन पच रग।
लाल लाडिली रस भरे, सोवत दोउ हित सग॥

छतुरी ललित ललाम, राजत वर परयक कर॥
चहुदिशि मुक्ता दाम, विशद काति झालरि ललित॥

कनक दड वर चारि सुहावन। रचित अरुण मणि अति मन भावन॥
अति सुदर सनेह सुख खानी। कहत सुकरि मद ग्रन्थ बखानी॥
अद्भुत रग काति सुखरासी। कुज महल छबि प्रभा प्रकासी॥
गज मुक्तन की झालरि झमकै। मणिमय दीप ज्योति मधि चमकै॥
झीने पट अति परदा परे। पवन प्रसग व्यजन शिर ढरे॥
तेहि चारिउ दिशि फरस बिछाये। कनक तारमणि जडित सुहाये॥
कहु अति कोमल बिछे गलीचा। सुमनन की रचना बिच बीचा॥
कहु कचन की चौकी धरी। झारी श्री सरयू जल भरी॥

शीतल मधुर सुगध सुख, स्वाद विशद रस रूप।
तृषा हरन मगल करन, आनद भरन अनूप॥

रत्न जडित बहु धरे कटोरा। बहु मेवन युत स्वाद न थोरा॥
पान दान वीरिन ते भरे। अगिणित भाति सुरभि कहु धरे॥
पुनि तेहि पीछे परदा डारे। तह नृत्यत उठि सखी सवारे॥
प्रथम वरन अरु अष्टम जोरी। पुनि जह ते षोडस सहचरी॥
तेहि पीछे ललना बहु राजै। निज निज सौ जलि ये सब भ्राजै॥
कोउ ताम्बूल लिये कोउ झारी। कोउ सुमनन शृगार सवारी॥
रग रग के गजरा लीन्हे। प्रीतम मग चितवति चित दीन्हे॥
अन्तहपुर की धुनि सुनि पाई। निज निज थलनि नचौ सब जाई॥

कुज कुज ते अलि अमित, विविध मौज के साज।
चन्दन अगर सुगध सुभ, सुमन सुमगल काज॥

युगल लाल प्रिय कुज सुख, नित नव विमल विहार।
पच भावरति युगल मति, वर्णत लहत न पार॥

यहि विधि लखि जागे रघुराई। पुनि परदा इक दीन उठाई॥
जागे प्रीतम निशि रग भीने। अरसपरस शृगार सब कीन्हे॥

लसत लडैती लाल दोउ, मिथिल सनेह सुअग।
दपति सपति परस्पर, समर समर रसरग॥

मगल थार अनेक विधि, लाल लाडिली पास।
आगे धरि मगल अमित, गावहि सहित हुलास॥
सुहृद सुजान सुशील सब, जे प्रभु रूप अपार।
कोउ न राम सम दूसरो, नेह निबाहन हार॥

राम कुवर छबि देखन लागी। अग अग श्याम रूप अनुरागी॥
त्रिदश वर्ष मुग्धा को श्यामा। मध्या काम केलि विश्रामा॥
कोउ वय सधि केलि प्रिय नारी। युगल रग रमु रूप विहारी॥
कोउ नित नवल लाल मुख चाहे। यहि विधि प्रीति रीति निरबाहे॥
गद गद कठ रोम सुरभगा। लहत अष्ट सात्विक कोउ अगा॥
सबकी प्रीति रीति जिय जानत। तन मन वचन लाल सन मानत॥

अन्तःपुर में सखियो की सेवा

अन्त पुर की गली सुहाई। तेहि मग बहु ललना चलि आई॥
चतुर शिरोमणि सिय सुख पाई। भगिनी सब समीप बैठाई॥
जरकस पट परदा अति झीनो। स्वण सूत्र मणि खचित नवीनो॥
तेहि भीतर बैठी सब राजहिं। रति शत कोटि देखि छवि लाजहि॥
सब समाज देखहि सुख पाई। श्रवण वचन सुख सुनत सुहाई॥
रस अगम्य मुख बरणि न जाई। युगल ललित वात्सल्य सुहाई॥
पिय मुख लखि सिय सग विराजी। निज निज परिकर युत सुख साजी॥
अग्र भाग सुभगा अति सोहैं। सहजा हास बिलासन मोहैं॥
श्री सरयू झारी लिय ठाढी। पान दान सुख तुलसी बाढी॥
कमला विमला चमर ढुरावैं। चन्द्र कला कछु तान सुनावैं॥
और सबै निज टहल सुधारैं। ठाढी दपति चमर सवारैं॥

जेहि जेहि अग की माधुरी मे मन लाग्यौ जास।
सोइ सोइ अग निरखत सकल, मन मे परम हुलास॥

कोउ दपति त्रितवनि को निरखैं। मद हसनि मनु आनद बरखैं॥

यहि विधि सबके नयन थकि, रहे माधुरी माहि॥
सो लखि दपति कोर दृग, अरस परस मुस्क्याहि॥
कुज कुज प्रति सहचरी, आवत नावत माथ।
सन्मानत मृदु वचन कहि, लखि छबि होत सनाथ॥

भोजन के समय

प्रथम मधुर रस पच ग्रास करि। भोजन करन लगे आनद भरि॥

सिय निज कर पिय मुख मे देही । मन्दस्मित करि लालन लेही ।।
पुनि पिय सिय मुख ग्रास देत हसि । क्रीडा युत लै होत प्रेम वसि ।।
जेहि व्यजन पर सिय कर देही । सो प्रीतम पहिले धरि लेही ।।
लैकर ग्रास सीय मुख माही । देत लत सुधि सुधा कि नाही ।।
प्रीति परस्पर अघटित दोऊ । सखि सुख निरखि लखत मुख कोऊ ।।
नन सयन करि आपुस माही । एक एक ते लखि मुसुकाही ।।
युगल रूप रति सरस सनेही । भोजन की सुधि रहत न केही ।।
कहु जल शोभा सिय कर लेही । लालन मुख पकज मह देही ।।
पुनि सोइ लै पिय सिय मुख लावै । हित सो प्रियहि पान करवावै ।।
जब पिय धरै सीय तेहि टारै । पिय सोइ लै निज वदन सवारै ।।
तब सिय औ रनवीन उठावै । लाल तौन लै सिय मुख प्यावै ।।
लाल चहै निज कर कछु पावै । तब सिय निज कर शीघ्र पवावै ।।
गूढ प्रेम लखि पिय मुसकाही । प्रेम क्षुधा कहि सकत न नाही ।।

नृत्य सगीत

छद गीत बहु रागन करही । निज निज गुण नृत्य न सचरही ।।
सगीतादि नृत्य बहु कीन्हे । कला अनेक राग रस भीने ।।
जिनहिं देखि रभादिक नारी । अचरज पाय करत मनुहारी ।।
दपति एक सिहासन राजै । चमर छत्र लिये अली बिराजै ।।
देखि देखि दपति मुसक्याही । रीझ देत बहु तिनहिं सराही ।।
पान दीन्ह तिन्ह शिर धरि लीन्हा । निज परिकर कह आयसु दीन्हा ।।
श्री सहजा उठि यत्र सुधारै । चद्रकला निज वाद्य सवारै ।।
रस मजरी शृगार करि आई । अमित कला गुण निपुण सुहाई ।।
करि प्रणाम तेहि राग अलापी । निज निज सदन रागिनी थापी ।।
परिकर युत सब रूप सुनाये । मानहु रागमहल भरि छाये ।।

शयन

जाय पलग बैठे रस भीने । शयन करन की दिशि रुप कीन्हे ।।
पौढे लाल प्रिया पद लालत । रस मजरी चमर शिर चालत ।।
रस मजरी चरण तव लागी । सिय आयसु शिर धरि अनुरागी ।।

श्री कृष्णदास अवतार, शिष्य अनतानद के ।
भये शिष्य सब पार, पयहारी परसाद त ।।
अम परस्पर भुज धरे, निशि दिन पूरण काम ।
प्रेम सखी हिय मे बसे, सियाराम छवि धाम ।।

अलंकार, छद, रस और पिगल के प्रेमियो के लिए भी यह ग्रथ बडे ही महत्त्व का है। रूपकातिशयोक्ति, उपमा, उत्प्रेक्षा, अनन्वय, अलकारो की जैसे हाट लग गई है। रस की दृष्टि से तो नाभादास जी का यह 'अष्टयाम' एक आकर ग्रथ है।

नेह-प्रकाश

महात्मा बाल अलीजी

'नेह-प्रकाश' मे कुल १४८ दोहे है, पर सब-के-सब अनमोल है। भाषा बडी साफ-सुथरी, और भाव बडे ही रसमय और प्रगाढ है। आरभ मे आह्लादिनी शक्ति का स्वरूप विचार है जो आध्यात्मिक दृष्टि से सर्वथा परिपुष्ट एव साधना की दृष्टि से सम्पन्न है। इसके अनन्तर सखियो की नामावली और उनकी विशिष्ट सेवाओ का प्रकरण है जो रसोपासना के सिद्धान्त के आधार पर प्रतिपादित है। यह पक्ष सब प्रकार से शास्त्र एव अनुभव के आधार पर अवलबित है। तदनन्तर श्री रामजी का सीताजी के प्रति प्रणय-निवेदन है। तब आता है—रस-विलास, प्रेम विलास, रूप विलास। तदन्तर है सखियो के वचन श्री जानकी जी के प्रति, फिर श्री राम के प्रति। अन्त मे सीता की छबि का बडा ही भव्य वर्णन है जो एक साथ उनके रूप और प्रभाव की महिमा से सम्पन्न है। यह छोटी सी पोथी रसिकोपासना मे विशिष्ट गौरव की सहज ही अधिकारिणी है।

(रहस्य प्रमोद भवन, श्री जानकी घाट अयोध्या मे हस्तलिखित प्रति प्राप्त है।)

'सिद्धान्त तत्त्वदीपिका' मे परम तत्व की व्याख्या कथानक के रूप मे समासोक्ति और रूपकोक्ति के सहारे वर्णित है। आरभ मे राजा विश्वकाय की पुत्री प्रभावती के रूप गुण यौवन शील सौन्दर्य का वर्णन है—

प्रभावती इति नाम अनूपा। वरनि न परै अलौकिक रूपा॥
शची उर्वशी मदन पियारी। सुर किन्नर पन्नग नर नारी॥
जाके रूप ओप सो पगी। जहँ तहँ रहत सबै जगमगी॥

प्रभावती के निसनवीन रूप और जगमनमोहनी कान्ति से शची, उर्वशी, रति आदि रूपवती एव कान्तिमती है। इस प्रकार प्रथम प्रकाश मे प्रभावती का स्वरूपनिरूपण है। अब स्वभावत विश्वकाय के मन म योग्य वर खोजने की चिन्ता होती है। वह परम भजनीय को खोजना चाहते है—उसे जिसे ब्रह्मा, विष्णु और शिव भजते है। दूसरे प्रकाश मे इसी वर-वरण का प्रसग है। इतने मे ही 'सुसभ्रमा' नाम की एक नटी का प्रवेश होता है जो प्रभावती को विश्व प्रपच की मोहिनी मे उलझा लेती है और प्रभावती पर उसका सम्मोहन बहुत व्यापक रूप मे पड जाता है। चौथे प्रकाश मे इसी का वर्णन है। परन्तु एक बार मन मे परम भजनीय का वरण कर लेने के कारण ही 'कृपावती' का समागम होता है और वह सहज भाव से प्रभावती को प्रेम मार्ग पर लाना चाहती है। पचम प्रकाश मे इसी का वर्णन है। 'कृपावती' राम के रूप, यौवन, माधुर्य, आनन्द सदोहता, सुखमूर्त्ति, वशीकरणता आदि का वर्णन करती है और रामभक्ति की महिमा का वर्णन करती है।

यही छठा प्रकाश है। सातवे प्रकाश मे ध्यान, जप, सेवा, साधन का वर्णन है। आठवे मे षडङ्ग मतो का वर्णन है। सब से पहले नवे प्रकाश मे अभेदवाद का कस कर खडन अब प्रभावती का ध्यान राम की प्रेमाभक्ति की ओर उन्मुख होता है और अब उ 'सुमुखी' हो जाता है। यहाँ अब कृपावती श्री तत्व का विश्लेषण सुमुखी को सुनाती है। यहाँ थोडी देर के लिए गायब हो जाती है और उससे मिलने के लिए सुमुखी के मन मे चटप है और वह बहुत ही व्याकुल हो जाती है। एक-एक क्षण कल्प की तरह बीत रहा है। के अनन्तर कृपावती का दर्शन होता है और कृपावती 'सम्बन्ध' का वर्णन करती की महिमा का बडा ही भव्य वर्णन है। यहाँ पच काल, पच सस्कार, अर्थ पञ्चक का व पञ्चरात्र तथा पद्मपुराण के आधार पर है। (कण्ठी, तिलक, मत्र, आश्रय और नाम) भगवान राम के रूप, लीला, प्रभाव आदि का भगवान श्रीकृष्ण की अपेक्षा श्रेष्ठ बतर है और पुन युगल दपति रस विहार की दिव्य शोभा का वणन है।

प्रिय का निज स्वामी पुनि जानै। सिय सहचरि आपन को मानै॥
निस दिन निरखै राम बिलास। ते सिगार भक्त नित पास॥

इस प्रकार परमा भक्ति का सविस्तर वणन सुन कर 'सुमुखी' कृतार्थ हो गई पच सस्कार ग्रहण कर दीक्षित हो गई। दशम प्रकाश मे पञ्च सस्कारो का ही वर्णन है तत्व निरूपण का प्रकरण शुरू होता है। अर्चा, विभु, विग्रह आदि के भद, सप्तावरण व नित्य सच्चिदानन्द स्वरूप, सर्वाश्चयमयी मिथिला पुरी का वणन। 'विरजा' इस पार एव मे गोकुल वृन्दावन, नन्द-यशोदा, राधा-माधव का लीला विलास वणन है। 'विर सप्तावरण भेद कर दिव्य साकेतधाम तथा वहाँ राम-जानकी के दिव्य लीला विहार क मे वर्णन सुन कर 'सुमुखी' क हृदय मे उस लीला म प्रवेश पाकर उस परम सुख की उप अभिलाषा जगती है। 'सुमुखी' का प्रवेश इस लीला मे होता है—

चले रमन रमिया रस ख्याल। निरखि सखी सब भइ निहाल॥
चली सग मिलि छवि सौ भरी अति अनूप रस केलि निदरी॥
सुन्दर केस मन्द मुसुकाही। बर नितम्बिनी उरु दृढ माही॥
पीन पयोधर भूषण भूरी। गान वाद्य कुशला छवि मूरी॥
जिनकी कला कला कौ अस। प्रगटी तिय रमादि अवतस॥
सिय परिचारी पिया पियारी। ऐसी सखी अनन्त निहारी॥

इस प्रकार 'स्वरूप-निरूपण' का प्रसग द्वादश प्रकाश में आया है। इसके अनन पाँच अध्यायो मे विभव, अर्चा, विग्रह आदि अवतारो का वर्णन, तथा 'अर्थ पञ्चक' क है। इसके पश्चात दास्य, सख्यादि पञ्च भाव का सविशेष वर्णन है। इसके पश्चात भाव' का वर्णन है। यहाँ भगवान् राम और भगवती जानकी के अगो का बडे ही आन पूर्वक वर्णन है—

पियवस प्रिया प्रियावस पीय, उरझे रहत रैन दिन हीय।
सिय हिय के जीवन है पीय, पीय के प्रान जीवन धन सीय॥

जब लगि लाल सियहिं ढिग निरखै, तब लगि चहुँ दिसि आनन्द बरखै।
यह लखी ढिग से प्रान पियारी पिय ते पल न होत कहुँ न्यारी।
इक टक पिय सिय रूप निहारै अपना सरबस तापर वारै।
ज्यो-ज्यो वह छवि पीवै त्यो वह तृषा अधिक उपजावै॥
निसि दिन रहत तहाँ सुख भीनौ सिय छवि जल करिके मन मीनौ।
'सुमुखी' कहे हरि पूरन काम सब सुखधाम आत्माराम।
नहिं कहुँ परते सुख की चाही क्यो तिय रमन सभवै ताही।
तेहि कह्यौ सिय हरि भिन्न न और, एक स्वरूप द्विधा तनु गोर।
एकाकी नहि रमन सुहाई पति पत्नी सु भयो प्रभु मोई॥

इस प्रकार सभ्रमा का जाल काट कर प्रभावती अपने परम इष्ट को प्राप्त कर लेती है। यहाँ इतना स्मरण रखने योग्य है कि प्रभावती सुमुखी ही साधन है, सभ्रमा माया है, कृपावती गुरु है और भगवत्प्राप्ति इष्ट मिलन है। इस प्रकार यह ग्रन्थ कुल ३६ प्रकाशो मे समाप्त हुआ है। इसके अतिरिक्त महात्मा बाल अली जी की बडी 'ध्यान मजरी' भी रसोपासना का एक मुख्य प्रामाणिक ग्रथ है।

अब यहाँ 'नेह-प्रकाश' से कुछ अश उद्धृत करते है—

गूढ वेद वेदान्त को निज सिद्धान्त स्वरूप।
जयति सिया आह्लादिनी शक्ति शक्ति गन भूप॥

सो वह परम उपासना वहै जु परम उपासि।
एकाकी नहि रमन ह्वै चहत सहायहि सोइ।
रमत एक ही ब्रह्म यह पति पत्नी तनु होइ॥

जग जिनके सुख सिन्धु के लय उपजीवत जीव।
पगे प्रेम रस स्वाद सौ रमत प्रीय तम पीव॥

सीचे विविध सुगन्ध नव मुक्ता बन्दन माल।
चहुँ दिशि अगणित नगन युत बने झरोखा जाल॥

सुन्दर गादी गेडुवा विविध खेल के साज।
युगल चरण सेवै तहाँ प्रमुदित सखी समाज॥

सखियन की नामावली और सेवा

श्री विमला रुचि शारदा विजया बामाबाम।
कमला कान्ति मती कला केलिकोविदा नाम॥

कामा केशि किशोरिका काचि कोशला कालि।
कञ्जा क्षीर कलावती कञ्जलोचना आलि॥

कुञ्जा कलिका कोकिला काशि कृपाला जानि।
कल्याणी गम कुकुमा कृपा पूरणा मानि॥

कृष्ण शारिका कामदा कृपावती सुखरूप।
चन्द्रा चन्द्रकला अली चन्द्राननी अनूप।

चम्पक बरणी चन्द्रिका चारु दरशना बाल।
चारुद तीरु चकोरिका पुनि गण चम्पक माल॥

देव वर्णिनी देविका देव रूपिणी नारि।
देवी दुर्गा दामिनी दैवज्ञा उरधारि॥

गनि ज्ञाना गुण सागरा ज्ञप्ति गुणज्ञातीय।
नन्दा नवला-सी नवल नागरि अति कमनीय॥

प्रेमा परमा पावनी प्रेमप्रदा तिहि ठौर।
प्रियबदा प्रज्ञा परा भनि प्रौढा अलि और॥

भाव विदा भावनि भवा भासि भावरा भीरु।
मुग्धा मुदा मनोरमा सखि मृग सावा छीरु॥

मोद दायिका माधवी मृग नाभी शिर नाइ।
मानिनि माधुरि मगला मान कोविदा गाइ॥

रहसज्ञा रस रूपिणी रम्या रामा लेखि।
और रमा रतिवर्द्धिनी रोहा उर्णि विशेखि॥

शान्ता सुखदा स्वच्छता सीमन्तिनि उर आनि।
श्यामा सती सु मध्यमा साधु मतीहि बखानि॥

शृगारा चतुरा सुरा सेसा हसिका केशि।
सुरा सुन्दरी शारदा मनि साभवी सुदेशि॥

सुरभि सरूपा सारगा सज्ञा नारु सुनामि।
शान्ति रूपिणी शकरी सुप्रिया सुच्छा भामि॥

सखी और दासी में भेद

तुल्य वेश गुण रूप सखि न्यून किकरी जानि।
गति बल धन सुख सबनि को एक मैथिली मानि॥

दया दृष्टि सर्वेश्वरी दइ सेवा जो जाहि।
भरी प्रेम आनन्द रस सखी करत सो ताहि॥

केश प्रसाधन करहि कोउ सुरभि सुतेल चटाइ।
पहिरावहि धूपति बसन कोऊ उबटि नहवाइ॥

कोउ अलि विविध सुगन्ध युत रचहि वेष शृगार।
उष्ण असन बहु रसन दै वारि सुरभि हिम सार॥

बीरी ललित सवारि अलि दुहू ललन कर देहि।
बड भागिन ताम्बूल कोउ झुकिय सारि कर लेहि॥

गहे सो चामर छत्र कोउ क्रीडन गन्ध रसाल।
बसन विभूषण आदि रस कोउ कुसुमन की माल॥

ठाढी अलि चहुँ ओर को रचहिं बिछौना बान।
धरहिं वाद्य पुनि करहि कोउ उघटि मृत्य सुर गान॥

रीझि अली दुहु ललन छवि निरखि बलैया लेहिं।
राई लोन उतारि पुनि वारि अपन पौ देहिं॥

अन गनती गनतीन मैं निपटहु कपट निहारि।
सिय कीनी चेरी चरन नारि नवावत नारि॥

तिन मधि बिहरत रग भरे नवल किशोर किशोरि।
नेक न न्यारे होत कहुँ बधे प्रेम की डोरि॥

मुख छवि मिलि इक मुकुर मै करूँ निरखत दृग कोर।
कबहुँक इक टक परसपर ह्वै रहे चन्द्र चकोर॥

असुवन अन्तर करत लखि पिय दरशन बिच आइ।
निन्दत दोउ आनन्द को ललन हिये अकुलाइ॥

कबहुँ नेह के भार भरि लपटि लटकि रहे दोउ।
छके प्रेम मादक पिये रहत न तन सुधि कोउ॥

कबहुँ कुवर दोउ परसपर जिनकर करत सिंगार।
बीरी खात खवात पुनि बहु विधि करत बिहार॥

कबहुँ केलि कन्दुक गहत कहुँ पासिन सतरज।
कबहुँक हित बतिया करत बटत मञ्जुरस पुञ्ज॥

श्री रामजी के वचन सीताजी के प्रति

किये सपथ कहुँ तोहि प्राणप्रिया निज हीय की।
अस न अपन पौ मोहि जैसे प्रिय तुम लगति हौ॥

मिलौ कोटि ब्रह्माड हूँ अस न मोहि आनन्द।
होतु जु तब मुख कमल को पान करत मकरन्द॥

श्रवण नैन मन तुम बसे और न कछू सुहात।
तेरी हित चितवनि उपर वारे सब सुख जात॥

मेरे हिय आनन्द को तुम ही प्रिये निदान।
हौ जिय की जीवन जरी प्रानन हू के प्रान॥

निरखत तुव मुख कज छवि पलक न परत सुहाइ।
धन्य अपन पौ गनत हौ हौ तुमसो धन पाय॥

तेरे किंकरि वर्ग को हौ हौ सदा अधीन।
देउ अपनपौ दीन ह्वै मैं न गनौ कछु दीन॥

प्रेम भरे प्रिय बचन सुनि प्रिया मधुर मुसुक्याय॥
वारि विभूषण बचन पर लिये लाल उर लाय॥

रस-विलास

रग रगीले लाल रग रगीली लाडिली।
बिहरत नैन बिशाल रग रगीली अलिन मैं॥

बहु सुगन्ध कुसुमन रची दुग्ध फेन सम सैन।
ऐन मैन मन अलिन यह रचै मैन को ऐन॥

सैन साल मोहित भरे तापर पौढत आइ।
रस मन बचन अगम्य सो कहौ कौन पै जाइ॥

नील पीत छवि सो भरे पहिरे बसन सुरग।
जनु दम्पति यह रूप ह्वै परसत प्यारे अग॥

नील पीत नव बसन छवि हिलि मिलि भय यक रग।
हरे हरे अलि कहत है यह धरि सिय पिय अग॥

रस बिलसत पीतम सुखहि चिर निशि चाह प्रवीन।
चन्द्रकला चन्द्रहि निरखि मधुर जन्त्र सुरकीन।

सुख निद्रा पौढै अरध नारी स्वर से होय।
प्रेम समाधि लगी मनौ सखि जानत सुख सोय॥

अलि कुर कुट धुनि सुनि डरो रविहि देत यह टेर।
अहि गुरुजन ऐहै इहाँ भलो नही यह वेर॥

अमल सेज पर कमल से दृगन सलोने गात।
निशि हुलसे बिलसे लसे अलसे उठे विभाति॥

जगे कुवर रस रग मगे पगे परसपर प्रेम।
उमगे गलबहियाँ लग पगे कि मरकत हेम॥

कहि पिय पिय प्यारी बिबस नहि तम बसन सम्हार।
घुर्मित दृग दोउ झुकि रहे रस मतवारे लाल॥

महा प्रेम आवे सते भय तन मय आकार।
हौ प्रीतम हौ ही प्रिया यह रहि गयो विचारि॥

प्रेम-विलास

उलटि बढी तब प्रीति नवल लडैती लाल हिय।
कै बहुरचौ वह रीति प्रेम स्वाद बहु विध लहे॥

नेह सरोवर कुवर दोउ रहे फूलि नव कज।
अनुरागी अलि अलिन के लपटे लोचन मञ्जु॥

दम्पति प्रेम पयोधि मैं जो दृग देत सुभाइ।
सुधि बुधि सब बिसरत तहाँ रहे सु विस्मै पाय॥

कबहुँक सुन्दर डोल महि राजत युगल किशोर।
अद्भुत छवि बाढी तहाँ ठाढी अलि चहुँ ओर॥

हिलि मिलि झूलत डोल दोउ अलि हिय हरने लाल।
लसी युगल गल एक ही सुसम कुसुम मय माल॥

सुन्दर गलबहियाँ दिये लालन लसे अनूप।
तन मन प्रान कपोल दृग मिलत भये इक रूप॥

गौर श्याम बिचरत पये मनहुँ किहै इक देह।
सोहै मन मोहै ललन कोहै हरतिय नेह॥

पिय कुण्डल तिय अलक सो कर ककण सौ माल।
मन सो मन दृग दृगन सो रहे उरझि दोउ लाल॥

यद्यपि दम्पति परसपर सदा प्रेम रस लीन।
रहे अपन पौ हारि कै पै पिय अधिक अधीन॥

श्याम बरण अम्बरन को सुकृत सराहत लाल।
छराहरा अग राग भो चाहत नैन बिशाल॥

जो हिमहूँ को नाम सी कोउ उचरत सुख कन्द।
तिहि मुख की निसि दिवस हित चितै रहत रघुनन्द॥

जनक नन्दनी नाम नित हित हिय भरिजो लेत।
ताके हाथ अधीन ह्वै लाल अपन पौ देत॥

प्राण पियारी ललित पग धरत फिरत जिहि ठौर।
ताहि दृगन हित बिवश ह्वै लावत नवल किशोर॥

हार पदिक कुण्डल तिलक कबहुँ अक तन तीय।
छिन छिन विनही टरे रहत आय सवारत पीय॥
कबहुँ उडावत भ्रमर पिय हाकत कबहुँ बयार।
प्राण पिया हसि गहत कर कहत अली बलिहार॥

रूप-विलास

कुवर सावरे गौर हिय हरन दोउ लाडले।
नवल रसिक सिरमौर रूप भरे बिहरत रहत॥

अग राग दै अलिन मिलि किये ललन तन गौर।
इक छवि ह्वै प्रीतम प्रिया ललित लसे इक ठौर॥

कुसुम क्रीट कवरी गुही रग कुम-कुम मुख कज।
अजन अजित युगल दृग नाशा बेसरि मञ्जु॥

श्रुति कुण्डल भल दशन दुति अरुण अधर छवि ऐन।
हित सौ हसि बोलहि पिय हिय हरने मृदु बैन॥

भुज गर उर कटि कुसुम मय धरि भूषण पट पीत।
पायन नव नूपुर कहे ललित लसे दोउ मीत॥

एक चित्त कोउ एक बय एक नैह इक प्राण।
एक रूप इक वेश ह्वै क्रीडत कुवर सुजान॥

रीझि चितै चित चकित ह्वै रूप जलधि सी बाल।
वारत लाल तमाल द्विति अक माल दै माल॥

सब अपने भूषण बसन अपने ही कर लाल।
लाडिलि अग बनाइ छवि निरखहि नैन बिशाल॥

कबहुँ अचानक आय दृग मूरति नवल किशोर।
छल से गहि लीनो मनो निज हिय हरने चोर॥

कबहुँ निहारत नृत्य सुख ललन आइ तिहि गेह।
जहँ चातुर आतुर अली गावत पिय नव नेह॥

कबहुँ तहाँ हिय उमगि दोउ कुवर करत कल गान।
अली रूप रागिनि तहाँ वारत अपने प्राण॥

कबहुँ चितै दोउ परसपर रूप जलधि से गात।
रीझत वारत अपन पौ कहत बिवस ह्वै जात॥

सखियो के वचन जानकी के प्रति

करहिं अली रस पान जिनके जीवन कुवर दोउ।
वारहिं तन मन प्रान निरखि निरखि नव नेह छवि॥

इहि विधि बिलसै रैनि दिन युगल कुवर रस रासि।
दिव्य अमल आनन्द मय परे प्रेम की पासि॥

समय पाय सिय मिलन हित आइ गुरु पुर नारि।
रहसि कहत चित चकित ह्वै छवि सौ भाग्य निहारि॥

एरी सिय बरणौ कहा तव सौभाग्य अपार।
लग्यौ रहत बहु रूप धरि हरि जाने आधार॥

नयन मीन कच्छप उरज अरु नृसिंह कटि ठौर।
कृष्ण केश हिय राम बलि बावन तो सम और॥

कोटि कोटि ब्रह्माड को एकै ईश्वर जोइ।
तेरी हित जीवन सिये चहे निरन्तर सोइ॥

ब्रह्म शक्र शिव मुनिन के जो जीवन धन पीय।
ताकी तू जीवन जरी शील सागरी सीय॥

ब्रह्म रुद्र सुर गण सबै रहत जासु बस दीन।
सो पिय मुख निरखत रहे सिय तेरे आधीन॥

बात कहत रसकेलि की ढिग गुरजन लजि जीय।
दे निज भूषण नगन मुख कह्यौ मौन शुक सीय॥

सखी वचन राम के प्रति

तब आनन दृग अर्पि सिय आनन जागत तीय।
तेरी आनजु कहत हौ भल बस कीन्हे पीय॥

तेरी छवि देखत बिबस वारि सुसर्व सुमीय।
आतुर चितवत और कुछ इत उत चितवत पीय॥

सिय जानी रानी तुही सुख खानी व प्रवीन।
मानी छवि पानी किये रस दानी दृग मीन॥

हौ वारी सौभाग्य पर जनक दुलारी बाल।
चेरी चेरी कौ चहै मुख तेरी को लाल॥

सर्वस अर्पो तोहि पिय तू चित लियो चुराय।
तौ तौ बिन उनके अली नहि कछु सीय सुहाय॥

म्याइ प्रेम मान्दक प्रबल ते प्रिय सुधि बिसराइ।
करि बस बाधे गुनन सो तऊ तुही मन भाइ॥

बधे एकहू ठौर कोउ सो परबस ह्वै दीन।
सब अगन लालन बधे क्यो न होइ आधीन॥

बन्ध्य जीवत रसन सो बध्यो हृदय बल तैन।
अलि जानकित्वच परस रस रूप बधे दृग नैन॥

सीता की छवि

अरुण वरण तब चरण नख है कि तरुणि शिर मौर।
अनुरागी दृग लाल के बसे आय इहि ठौर॥

तो वक जावक रग छवि निरखति अलि अनुराग।
मनु मन भावन प्रेम रस पावत पायन लाग॥

गति गायनि पायनि परसि करि नूपुर झनकार।
पिय हिय हरने मन्त्र को करत सुचारु उचार॥

जघ युगल तब जनक जे अकि ग्रह उत्सव रम्भ।
पिया प्रेम कै भवन कै किधौ सुन्दर बरखम्भ॥

गुरु नितम्ब कटि सिंह मिलि पट गौतमी प्रवाह।
किंकिण मुनि गण अमर निज मन अन्हवावत नाह॥

नाभि गभीर कि भ्रमर यह नेह निरजगा माहिं।
तामह पिय मन मगन ह्वै नेकहु निकरचौ नाहिं॥

है अलि सुन्दरि उरज युग रहे तव उरजु प्रकाश।
नवल नेह के फन्द द्वै अतिपिय सुख की रासि॥

लस्यो श्याम तब तन कस्यो कचुकि बसन बनाय।
राखे है मनो प्राण पति हिये लगाय दुराय॥

सिय तेरे गोरे गरे पोति जोति छवि झाय।
मनहुँ रगीले लाल की भुजा रही लपटाय॥

कुसुमति भूषण नगन युत भुज वल्लरी सुवास।
लालन बीच तमाल के कन्ध पर कियो निवास॥

चकत तरौना भौह युग अलिबलि दृग मृग जोर।
रदन अमी कण बदन तब शशिरथ पीय चकोर॥

रघुवर मन रजन निपुण गजन मद रस मैन।
कजन पर खजन किधौं अजन अजित नैन॥

नथ मुक्ता झलकत पगे नाशा स्वास सुबास।
उरझि परयौ यह पीय मन मनहुँ प्रेम के पास॥

तब अलि छलकत अलक अकि रस शृगारिक धार।
श्याम भये रग भीजि तिहि प्रीतम प्राण अधार॥

सब दिशि कचन मय करत तव तन जोति अनूप।
मनु झरिझरि अगन परै अग रमावै रूप॥

सिय तब रूप अपार पिय पियत न नैन अघाय।
भये चहत सुर राज से सियरै अति अकुलाय॥

रूप भाग्य गुण भार नव योवन मारहि पाइ।
क्यो सहिहै दृग भार तो निरखत नाह डराइ॥

वारि अपन पौ दृगन तै डरि अलि कछू कहून।
रहत उतारत हीय महि पियहू राई लून॥

सर्व सवारत बिवश ह्वै तेरी छविहि निहारि।
बारि बारि पीवत रहत बारि बारि पिय बारि॥

तू सिय पिय के रग रगी रगे पीय तव रग।
रहे अली इक रूप ह्वै ज्यो जल मिले तरग॥

कबहुँ कहत पुर बधुन सो निज हिय हित की बात
स्वामिनि के गुण गुण सुमरि किंकरि गात न मात॥

प्रभाव वर्णन

धरें सीय पद ध्यान यहि विधि मञ्जु समाज सुख।
बसहिं पीय के प्राण प्रेम प्रगट तेहि भक्ति मैं॥

सिय मूरति जेहि हिय बसी तापहि नैन बिशाल।
उर राने आवत चले पारावत से लाल॥

जनक सुता सम देवता कहो कौन जग और।
जाके बस रघुवीर पिय ब्रह्म रुद्र शिर मौर॥

योग यत्र तप नेम व्रत त्याग त्यागिये दूरि।
होय अनन्य सो सेइये श्री जानकि पद धूरि॥

होब अल्प कृशसेव बिनु दीन जानि करुनेह।
सकल सुकृत मिलि सीय पद धूरि भूरि फल देह॥

उमा रमा सरस्वति सची जिहि बिभूति के रूप।
जयति सिया आह्लादिनी शक्ति शक्ति गण भूप॥

ए अलि 'नेह प्रकाशिका' बचन हिये मैं राखि।

ध्यान-मञ्जरी

बाल अली जी

सामान्य परिचय—जैन प्रेस लखनऊ मे ई० स० १९०८ मे मुद्रित तथा सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचन्द बम्बई वाले द्वारा प्रकाशित। स० १७२६ के फाल्गुन शुक्ल पञ्चमी को यह ग्रन्थ लिखा गया—जैसा नीचे लिखे पद से स्पष्ट है—

सत्रह सै षडविंश वरष मास फाल्गुनि।
शुक्ल पक्ष पञ्चमी अमर शुभवार लग्नप्रति।
तेहि अवसर यह 'ध्यान मञ्जरी' प्रगट भई है।
परम सुमगल करनि बरनि बर मोदमयी है।

विषय—'ध्यान मञ्जरी' काव्य और साधना दोनो ही दृष्टियो से रामावत शृगारोपासना का एक परम मूल्यवान ग्रन्थ है। विशुद्ध साहित्य की दृष्टि से भी यह प्रथम कोटि की एक विशिष्ट रचना है। ऐसी साफ-सुथरी मुहावरेदार भाषा का प्रयोग, भावना की ऐसी तीव्रता और सूक्ष्मातिसूक्ष्म रस-साधना का विवेचन अन्यत्र दुर्लभ है। यह नि सकोच कहा जा सकता है कि युगल सरकार श्री सीताराम के ध्यान का ऐसा ग्रन्थ दूसरा है नही, है नही। कनक भवन बिहारी त्रैलोक्यसुन्दर भगवान् राम तथा उनकी प्राणेश्वरी जानकी के रूप, रग, वेश, अलकार

का ऐसा सजीव वर्णन इतनी सजीली भाषा मे देखने को नही मिलता। यही कारण है कि शृगार उपासना के रसिक साधको मे इस ग्रन्थ का विशेष आदर है, और बडी श्रद्धा भक्ति और प्रीति से इसका अनुशीलन एव अभ्यास होता है। इसमे कुल २७३ पद है।

उदाहरण—

पहिरै तट हरियार वसन सुन्दर तन सोहै।
प्रतिबिम्बित बिधु बदन कञ्ज लोचन मन मोहै॥

कनक भीत नग लगे सघन जगमगे सुहाए।
मनहुँ अगार अपार नैन पाये मन भाये॥

ह्वै लोचन प्रभु रूप निरखि हिय तृप्ति न होई।
ताते त्यागि निमेष सहस दृग देखत सोई॥

तिन पर पानिप भरे जरे कारन मुक्ता अस।
प्रेमानन्द उदोत होत नयनन असुआ जस॥

नग नग प्रति प्रतिबिम्ब युगल झलकत छवि पावै।
मनहुँ भवन निज अग सुखद विस्व रूप दिखावै॥

तहँ इक परम प्रकाश रत्नमय बर सिंहासन।
तहँ सहस्र दल कमल कोटि तम तोम बिनासन॥

लसत चारु चहुँ ओर करणिका अति छवि छाजै।
तहँ सुन्दर रघुवीर रसिक सिरमौर बिराजै॥

सुद्ध सच्चिदानन्द कन्द बर बिग्रह जाको।
देही देह बिभाग आहि सो नाहिन ताको॥

ताही तनकी प्रभा ब्रह्म व्यापक जग जोहे।
घनीभूत जिमि तरनि तेज सब तिमिर विपोहे॥

श्याम बरन तन सीस जरकसी पाग रही फवि।
नव नीरद तै निकसि प्रात जनु प्रगट भयो रवि॥

श्री मुख पर लिय झलक अलक असल मे घुघरारे।
रहे घेरि नव कञ्ज मधुप सौरभ मतवारे॥

चित चितवत हरि लेहि सोह अस सावर भौहे।
दृग दीपन के ऊपर परति जनु काजर सोहै॥

केसरि तिलक ललाट पट न छवि परत विशेख।
ललित कसौटी उपर मनहुँ नव कुन्दन रेखै॥

पलक किधौ सिय रूप पिबन के अधरहि सोहै।
तहँ सुन्दर रघुवीर बरन बरुणी मनमोहै॥
मनहुँ पीय की जीह बरणि नहिं सकति सीय छवि।
सहस सर नय धरि कहन सो चहत नैन कवि॥
पलक मोहिनी पखा बाटि मखतूल छोरहै।
प्राण प्रिया पर करत पवन जनु नव किशोर हे॥
बडरे नैन चकोर जोर सदृश छवि पावै।
श्री जानकि मुख चन्द्र चन्द्रिका पीन जघावै॥
उन्नत नाशा मनहुँ स्वास श्रुति सिद्ध दरी है।
नागरि अग सुबास रमन को बिमल गरी है॥
अग्र सुमुक्त मञ्जु अधर अमृत अधिकारी।
मनहुँ प्रिया मन किधौ कञ्ज पर कवि छवि भारी॥
श्रवण कि भाजन युगल अमल मरकत मणि राजै।
लिये लडैती वचन अमृत पीवन के काजै॥
तहँ कुण्डल छवि भरे विविध मणि जडे लसत है।
जनु युग मदन मयूर नीलगिरि सिखर बसत हैं॥
झलकत ललित कपोल गोल अस सांवर पिय के।
मनहुँ अमल आदरश परम मन भावते सिय के॥
तिन मधि कुण्डल जुगल ज्योति जगमगत लसत अस।
चपल जमुन जल माझ भानु प्रतिबिम्ब परत जस॥
अधर सुरग समीप दन्त पगति नवली है।
जपाकुसुम पर लसत मनहुँ मुक्ता अवली है॥
कोमल अमल अलोल सरस रसना मन मोहै।
मनहुँ कमल दल तुल्य रमा मन्दिर मै सोहै॥
किधौं चतुर सिय सखी मोद सिय मन उपजावति।
मधुर भावती बात बहत हसि तिनहिं रिझावति॥
गिरा गभीर कि गरज होत आनन्द मेह की।
सीचि बढ़ावत बेगि बेलि हिय नव सनेह की॥
हसत लसत ताम्बूल बदन सो गन्ध सकेले।
जनु फूल्यो हृद कमल उठत सौरभ की रैले॥

चिबुकारुण सुखमा अपार झलकत मुखझाइ।
मनहुँ कि व्यापक ब्रह्म ज्योति यह वेद न गाई॥

कम्बु कण्ठवर रेख लसत अवधेश सुवन की।
करी जानि छवि सीव लीक जनु त्रय त्रिभुवन की॥

अल्प उदर पर ललित रोम राजी राजत अस।
सुन्दर मूरति रचत दई विधि सूत रेख जस॥

उलही किधौं सिंगार बेलि चह मदन सुहाई।
नाभि कूप के सो सलिल सो सीचि बढ़ाई॥

अकि अतिही कटि छीन जानि आधारहि दीनी।
बहुरि सुता पर त्रिवलि बन्ध दैके दृढ कीनी॥

जन दुख हरन नितम्ब चक्रवर लसत सुदरसन।
उपरि झलक कटि बसन तासु पर तेज पुञ्ज मनु॥

सोहत जानुर जघ अघ्रि सब अग रस भीने।
मानहु करि कर जुगल नाल बिनु कमल नलीने॥

चरन अगुरिनख सोह देखि कबि रहै मुख मूदे।
कमल दलनि पर अमल लगी जनु स्वाति कि बूदे॥

पीत बसन तन लसत परत दृगहू रपटी है।
नव घन पीतम अग मनहुँ चपला लपटी है॥

किधौं सिय रूप तरग रग रगि पीत भयो है।
छिन न तजत यह जानि प्रेम पथ रसिक नयो है॥

बाम अग नव रग भरी जानकि सुठि सोहै।
रूप अलौकिक बरनि कहन को कविवर काहू॥

जा बिनु रघुवर ध्यान कल्प भरि जो नर करही।
प्रभु नहिं होत प्रसन्न बृथा श्रम करि पचि मरही॥

जा रस की अनुमात्र छीट जाके हिय लागी।
वसीभूत तिहि सग रहत प्रभु रस अनुरागी॥

ता रस मय अग अग अमल सुन्दर बर सिय के।
परम उपासक गम्य प्रान जीवन धन प्रिय के॥

जघ जुगल किधौ रँभ खँभ किधौं सोह धामको।
चिदानन्द घन मात्र ध्यान इक गम्य राम को॥

गुर नितम्ब कटि छीत मनहुँ मृगराज नयो है।
यह गुर सिह मिलाप बारहे वरष भयो है॥
विविध चरन को सेय बसन कटि तट परिधाने।
मनहुँ कि थिय अभिलाष कोटि तन सो लपटाने॥
त्रिवली अमल अनग सरित त्रय धार समानहि।
अकि छवि जलधि तरग किधौ योवन सोय नहि॥
अलप उदर पर अमल रोम राजी छवि पाई॥
जनु उत ते इक सरल अलक की झलकत झाई॥
अकि तकि अमृत कुम्भ चली करि पाति पपीली।
उमगि श्रवत शृगार धार हिय मे कि रँगीली॥
किधौ पिय मन खजरीट रमत भूवनि नष रेषनि।
किधौ हरि मन बस करन मन्त्र लिखि सूक्षम लखनि।
तिहि मिलि मुक्ता माल लाल गुन पोहि बनाई।
नागरि अग जगमगति भिन्न रग सोह सोहाई॥
जनु सरस्वति सुर सरित मिलि रवि जा छवि दैनी।
मय पावन पिय नयन न्हाइ इहि ललित त्रिवेनी॥
अगिनित हार हमेल और उर चौकि जरी मनि।
कनक विविध मणि भाल माल बर कुसुम रही बनि॥
नुग उरोजनि बनी नील कचुकि कसि भारी।
काम वाज सिर कुलहकि जोवन गजकि अध्यारी॥
करतल अचल सुहाग भाग की राजत रेखै।
बाचत है नित नाह नेह सो त्यागि निमेखै॥
सौरभ सुरग सुठौनि लसत अगुरी अम करकी।
काम नृपति सर पञ्च कली किधौ नव केसरि की॥
गौर चिबुक पर तनक चिन्ह देखियत मेचक छवि।
जनु कचन के पीठ बैठि रसराज रह्यौ फवि॥
किधौ निश पति निशि सुवन मोद सो गोद खिलावे।
किधौ मधुप सुत कञ्ज गन्ध पीवत न अघावे॥
सुधा सदन के माझ रह्यौ किधौ राहु दन्त चभि।
किधौ रसिक मनि पीय सीय को लोभ लख्यो खुभि॥

अरुण सुधाधर अधर जग न उपमा कोउ तिन सम।
पल्लव जया बिगन्ध कठिन बिद्रुम कहिये किम।।
बर्तुल ललित कपोल नाह मन नैन बसही।
मनु मूरति धरि रूप भूप के आसन लसही।।

लगन पचीसी

श्री कृपानिवास जी कृत

सामान्य परिचय—१ लगन पचीसी—ज्ञाना अली के शिष्य रामकिशोर शरण जी की प्रेरणा से सेठ लक्ष्मीचन्द छोटेलाल बम्बई वाले ने सन् १९०१ मे लखनऊ प्रिंटिग प्रेस मे छपवाया। इसमे बिहाग, मारठा, काफी, जैजेवन्ती, टोडी, खम्भाच, झिझौटी आदि रागो मे श्री सीताराम की परस्पर प्रणय प्रीति का वर्णन है। यह सवत् १९५७ मे लिखी गई, ऐसा इसकी पुष्पिका से पता चलता है। कुल ४० पद और पृष्ठ २९ है। भाषा मे पञ्जाबीपन है।

विषय—लगन की पीर, लगन की चोट ही इस ग्रन्थ का मुख्य विषय है। प्रीति से प्रीति का ही शाधन होता है। जगत की वासनाओ मे मन की जो सहज आसक्ति है, उसका परिमार्जन भगवान् के चरणो मे गहरी ममता-प्रीति-आसक्ति से ही हो सकता है। और कोई उपाय है नही, हो नही सकता। पदो मे इश्क, आशिक, माशूक, महबूब, जुल्फ, दरद, लगन, दिवाना, दिल, दिलदार, ख्वाब आदि शब्द प्रचुर मात्रा मे व्यवहृत हुए है। सम्भव है सूफी प्रभाव के कारण ही अथवा उर्दू फारसी का ज्ञान होने के कारण। परन्तु सारी पद्धति आशिक-माशूक वाली है जो ध्यान देने की वस्तु है। बार-बार इस बात का सकेत है कि इश्कमजाजी ही पलट कर इश्कहकीकी हो जाता है। कतिपय उदाहरण —

(१)

सुन री सखी उस इश्क की कहानी।
दिल दरदी दिलदार दरश बिन देखि नजर भर करत दिवानी।
दिन अरु रात बात प्यारे की जात गई पर हाथ बिकानी।
कृपानिवास श्री राम सजन की सूरति हेरि मैं हार हिरानी।।

(२)

कोइ सूनो दरद दिवाने।
बेदरदी सो लगन लगी है चले दरद को घाते।।
दरद उठत बैठत मे दरद हि, दरद हि दिन अरु राते।
बोलनि चितवनि दरद भरी सी दरदमान मुसकाते।।

दरद मेखला पहिर फकीरी अब सुख होय कहाँ ते।
दरद गये से कौन काम की दरदहि भरे कुशलाते॥
दरद वदीनी दरद सुनावा दरद हमारे हाथे।
कृपानिवास दरद सो जीवनि ये ही लगन की हाते॥

(३)

लगन निगोडी मेरे पैडे माई क्यो परी री।
काटत कलेजो काती धरकत निसु दिन छाती।
नाथी कर के हालो मानो ताती शूली पै धरी री॥

नाहिं नगर मे न्यावरी कोइ नेही जन को।
बधे लगन के फदन मे उत करत कैद फिर मन को॥
मृदु नवनीत अनल धरतावत कुलिश किठन नहि छेरै।
मेरे मृगन के बान चलावे गज रिपु उर नहि नेरै॥
भ्रमर बास बसि बसै केतकी पुनि कुस कटक फोरे।
भरे लगन की सारग रस सौ फिर क्यौ सारस रौरै॥
लगन पेच सो खेच लियो मन फिर हा हा क्यो कूकै।
लगन अगन जर भय कोयले फिर अहिरन क्यो हूकै।
प्रीति पाय भर के फिर कैसे बिरह बलाय बढाबै॥
करै घायल प्यारी चितवनि लगि दुरि क्यो जहुर लगावै॥
मित्र सुधाकर अग्नि चबावे लगन चकोर बिचारै।
कृपा निवास निशाफल बिन निन नेही हाय पुकारै॥

लगन निबाहे ही बनि आवै।
भाव कुभाव खवाब जान दे नेही नाम कहावै॥
दृग अटके मन सौंपि दियो जब पीतम हाथ बिकावै।
अपनो मन न रह्यो भयो परबस कैसो ही न्याव चुकावै॥
तन दहु द्रवन पवन हम्मि उघरे तदपि लगन ललचावै।
शीश उतारि चरण ठुकरावै तब निज भाग सिहावै।
अवगुण बहुत सुगुण नहिं रचक तौ उनके गुण गावै।
नेहु निसोत नवल प्यारे को लाज दाग क्यो लावै।
कौडी प्राण गये कछु हानि न लाल रतन जो पावै॥
कुल सुख मुक्ति सुजात जान दै लगन न तनक गवावै।
कृपानिवास प्रीत प्यारो को छोडिन लोग हसावै॥

चोट लगी है री राम लगन की।
प्राण सुध न तन सुध न सुध न रही बदन प्रगट कर प्रीत अगन की।
औचकि उचकि चषन मग पैठी मूरति अति बर बरण गगन की॥
छीन सुथान बिरान करी मोहिं निपट अटपटी बान ठगनि की।
लाज जरी मरजाद टरी सब छाय परी अनुराग दृगन की।
कृपानिवास उसास हाय के पगन कहाँ जहाँ पगन दगन की॥

कोई प्यारे फकीर दिवाने।
इश्क अमल दो प्याला पीवत आठ पहर मस्ताने॥
घूमत खरे चलति मतिवारे बोलत मन बौराने॥
कहर मेहर मे सदा खुशाली दिलभर देखि लुभाने॥
चस्म भरी सूरत सावलदी साजन हाथ बिकाने।
गई हसै रौवे बर रावे चुप ज्यो रहत अपाने॥
वे महिरम घर बार के सब हसि हसि दै दै ताने।
कृपा निवास हुए दुनियाँ बिच कोइ घायल पहिंचाने॥

लगन निगोडी मेरे पैडै माई क्यो परी री॥
काटत कलेजो काती धरकत निसु दिन छाती।
नाथी कर के हालो मानो ताती शूली पै धरी री।
जहर मिलावत नीकै नई नई बात बनावति।
खैचति कठोर हलावति बधुवासी मे करीरी।
कुल शुद लाज भागी दुख भर पीर जागी॥
अदिया लगोही लागी महा विष सो भरी री।
कृपानिवासी कही घर की न बन की भई गई।
नहिं वारे गरने प्रीतम प्यारी सग गरी री॥
माई काहू के न लागो हेली चोट लगन की।
सीरी सीरी लागै आगी थिरी धीरी सुलगत पागे।
फिर जागै भारी जरनी अगिनि की।
जर पै लगावत लोन बरजत चारा कौन मौन
धरि मोहन बैठे जानत न मनकी।
जानी को जनाये जी की कहत सराहे नीकी
पीकी रुचि ऐसी ही की फीकी कहै मन की।
लगति न मानी बैरनी निपट कठिनता अहिरनता
पुनि कुटावती मेहरन दुख सुख धन की।

तीखी तीखी छैनी छौलै फिर फिर फूके तौले
पर हाथ बेचति मौले जौले चेरी जिनकी।
करखनि फन्दनि बाधी लै धन व्रत नियमादि
लगन लहर उदमादी दादी है ठगन की।
जब लगि लागति नाही तब लगि कुशल विहाई
कृपानिवास बिकाई पगन द्रगन की।

लगन निगोडी लगत सुखारी फिर पाछे दुखदाई री।
अखियन सो मिल गढ मे पैठे सब घर ले अपनाई री॥
लाज मर्याद नेम व्रत धीरज थाने सबल सिपाही री।
छीनै शस्तर पकरि निकाई आपु करे ठकुराई री॥
मन सो भूप सुबस कर गर्वित फेरे देश दोहाई री।
आपु चहू दिशि निडर किलोलत नेही को दुबराई री॥
लडुवा के मिस देत धतूरा बहुत करै मितताई री।
कृपानिवास प्रीत बश स्यानी को नाही बिकलाई री॥

लगन जाल है काल प्रगति कहो उलझी किन सुरझाई री।
सर्बस खोइ होय मन बिहरनि जिन यह लगन लगाई री॥
मति चेतन बवरी करि राख नेही मन बिकलाई री।
यौवन जुरमे जाय मिलै जनु सीरी पवन सुहाई री॥
बाढै रोग कहा कहौ सजनी भटकि मरै तनुबाई री।
घन लौ गरजनि लागति प्यारी मोर सुमन ललचाई री॥
पावै मारति औलनि गोलनि सो जानी निठुराई री।
देत जुवाँ क्यो दाँव पहिल की फिर लूटकुल तल गाई री॥
करत फकीर अमीरन के सुत घर घर भीख मगाई री।
कृपानिवास परी गर मेरे दुख दो भा सुख दाई री॥

लगन गरीबी गव गमायो भई दीन मतिहारी री।
चलिन सकौ थकि द्वार सजन के सुख दुख चाह बिसारी री॥
काम क्रोध मद मोह बिमर गये काज लाज कुल डारी री।
मातु पिता सुत बन्धु मित्र सो घरबर तजि भई न्यारी री॥
कर्म करो नहि मर्म भुलावो योग भोग जग टारी री।
प्रीतम बिन उझको नहि औरन गाठी लगन हमारी री॥
मन की दौर जहा लगि मिमटी अटकी इक सो यारी री।
जने जने सो प्यार करै सा जन्म जन्म की ख्वारी री॥

औरन को आदर विष जानो सुधा सजन किरकारी री।
और मिले घरदौर न मिलि हो प्रीतम पौरि पुकारी री॥
हा हा खाई हाइ फिर हो हो हारि हारि हिय हारी री।
कृपानिवास उपास राम सिया तन मन धन सब हारी री॥

लगन जरी कर प्यार सुघाई सूधत भई दिवानी री।
लहर चढी कछु ख्वाब जनाया दिल भर गर लिपटानी री॥
लपटनि कपट निपट दुखदाई तवाबुद ज्यो पानी री।
जहर कहर मे देत सुन्योरी दियो मेहर दिलजानी री॥
जानि पियो मन सजन हाथ को झीने स्वाद लुभानी री।
लालन के घर लगन कमाई लग बारनि उरझानी री॥
जौन लगे चित कौन करे कृत नेही यह गुजरानी री।
कृपानिवास दुकान लगन की स्यानी कौन बिकानी री॥

मिली तन प्यार सो प्यारी खुली मन इश्क गुलजारी।
सखी मो श्याम की बाते। कही है जो हुई राते॥
मिला था ख्वाब मे अलमस्त धरा था रीझ छाती दस्त।
उठी मै चमक मन बहरमन देखा सेज का मरहम।
हुआ मन हाल दरहाला मिलै जालम जुलुफ वाला।
न जानो चश्म दुखदाई खुशी मे डाल फिकराई।
लगे बेदर्द मामूका परी मै दर्द बम कूका।
कृपानिवास दिन रतिया लगी है राम की बतिया॥

लगन लगी जब जोर पियारे और मिलन मे लहना क्यारे।
दिल मिला दिलदार के दिल सो और मिलन मे लहना क्यारे।
लाख छोड खाक तन मे पाक हवै मन चहना क्यारे।
कृपानिवास राम आशिक ह्वै फेर दुनिया मे रहना क्यारे॥

अनन्य चिंतामणि

श्री कृपानिवास जी कृत

अनन्य चिन्तामणि

हस्तलिखित प्रति 'प्रमोद रहस्य वन' अयोध्या मे प्राप्त। आरभ मे सभी प्रकार के साधनो के फल का निर्णय किया है। यम, नियम, आसन, षड्चक्रभेदन तथा अमृतपान का वर्णन है। फिर ज्ञान-वैराग्य का उल्लेख है। फिर द्वैत, अद्वैत, विशिष्ट मत-मतान्तरो का निर्णय है। योग, ज्ञान

आदि साधनो से माया नही छोडती। फिर पञ्च भाव और पञ्च रहस्य का प्रकरण है। इसके उपरान्त 'स्वसुख' और 'तत्सुख' का प्रसग है और उसके जीने का वर्णन है। हनुमान जी गुरु है। उनके सूक्ष्म रूप का नाम कृपा सहचरी है। इसके अनन्तर 'प्राप्ति' का आनन्द विधान है और स्थूल-सूक्ष्म का विवेचन। इसके पश्चात् तमो गुण नाश का उपाय वर्णित है। इसके बाद भूत, प्रेत, देवादिको की उपासना का फल है। फिर 'अनन्य' का लक्षण है। 'अनन्यता' मे श्री हनुमान जी उदाहरण है। षट् प्रकार की अनन्य निष्ठा के द्वारा ही इष्टि प्राप्ति होती है। जैसे चातक स्वाती, अनन्यता के नामानन्यता, वेशानन्यता, इष्टानन्यता, वागनन्यता, प्रसादानन्यता, वृत्ति अनन्यता।

ऐश्वर्य और माधुर्य मे ऐश्वय के आस्वदन के उपरान्त ही माधुर्य का आस्वादन होता है। इसके उपरान्त है 'युगल स्वरूप निर्णय'। युगल स्वरूप मे सीता-राम-तत्त्व का भाव निरूपण है। इसके अनन्तर विश्व रूप की नित्यता का निरूपण है। इसके अनन्तर अनन्य शरणागति के स्वरूप का निरूपण है। आदर्श भक्त के लक्षणो मे प्रीति, प्रतीति, अचाह, अशकाशील, सचाई, सरलता, सुबक, गुरुमुख, दृढ़ता, सुबद, सवाद (साराहरी) चतुर, सत्यवाद, सुरसिकता, रोचकता, अनालस, आनन्दी, अनसोची, दयालुता, प्रतिपालक, उदार, कृपालु, अमानी, मानद, दानी, अमद, अकोही, एकाती, अदभी, भावुक, निर्मलता, त्यागी, अनुरागी, प्रिय, मोहममता-शून्य, मुक्त है। विशेष विस्तार से इन लक्षणो का वर्णन है। 'शृगार' के सुख का वर्णन अन्त मे विस्तार से वर्णन है। विरह की दस अवस्थाओ का वर्णन है।

रामरसामृतसिंधु

अन्त मे 'परा भक्ति' आती है। कुल मिला कर १६ प्रवाह है, आदि।

पूर्वरचित भगवान् राम के चरित्र का विशेष वर्णन—हनुमान जी जनकपुर मे पुष्पवाटिका मे साथ है। चित्रकूट प्रसग मे किशोरीजी के आग्रह पर वन-विहार के लिए चले है। देवताओ ने वहाँ प्रार्थना की कि दुष्टो का वध कैसे होगा ? कलह की वार्ता नही। केवट का प्रसग भी मिथिला जाते ही आता है।

(हस्तलिखित प्रति श्री हनुमत्-निवास (अयोध्या) मे महात्मा श्री रामकिशोर शरण जी के निजी पुस्तकालय मे प्राप्त।)

खुले पत्रो मे

प्रथम	प्रवाह	७२	पन्ने
द्वितीय	,,	४२	,,
तृतीय	,,	९४	,,
चतुर्थ	,,	२४	,,
पचम	,,	२८	,,

श्रीआण्डाल (रंगनायकी)

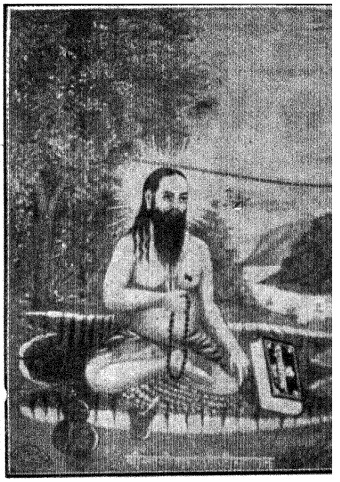

स्वामी श्रीअग्रदासजी

श्रीरामचरणदासजी महाराज

स्वामी श्रीयुगलानन्यशरणजी

पीताम्बर, गोरखपुर

षष्ठ	प्रवाह	२०	पन्ने
सप्तम्	,,	१८	,,
अष्टम्	,,	२४	,,
नवम्	,,	२४	,,
दशम्	,,	२१	,,
एकादश	,,	३२	,,
द्वादश	,,	१४	,,
त्रयोदश	,,	१४	,,
चर्तुदश	,,	२४	,,
पचदश	,,	२३	,,
षोडश	,,	११	,,

प्रत्येक प्रवाह मे अनेक तरगे है। छद अनेक प्रकार के है—वैताल, हरिगीतिका, मनोरमी, कवित्त, दोहे, चौपाई, सोरठा आदि है।

'रामरसामृत सिंधु' मे रसिको की उपासना तथा सुख का स्वरूप के ही विशेष रूप से वर्णन है। युगल रास विलास के आह्लाद, सुखानुभूति का विशेष वर्णन है। आठवे प्रवाह मे चित्रकूट का लीला-विहार और रास का वर्णन बडा ही भव्य है। चित्रकूट मे योगमाया के चमत्कारी प्रभाव से सभी देवता सखीरूप मे रास मे सम्मिलित होते है। युगल महारस के पिलाने-वाले परम गुरु श्री हनुमत लाल जी हैं।

रास-पद्धति

महाराज कृपानिवास जी कृत

सामान्य परिचय—लखनऊ के प० घासीराम के देशोपकारक प्रस मे सन् १९१० मे मुद्रित तथा सेठ छोटे लाल लक्ष्मीचद द्वारा प्रकाशित। इस ग्रथ मे कुल पृष्ठ ५५ और लगभग १५० पद है जो भिन्न-भिन्न रागो मे लिखे हुए है।

विषय—ठीक श्रीमद्भागवत की रासपचाध्यायी के आधार पर श्री राम रास के प्रसग का वर्णन हुआ है। लगता है श्री कृपानिवास जी ने ठीक राधाकृष्ण रास के आधार पर सीताराम रास का प्रकरण बाँधा है और प्राकृतिक शोभा का वर्णन भी अपने ढग का अद्वितीय है। भाषा साफ-सुथरी और कई स्थानो मे पजाबी पुट लिये हुए है। फिर भी इस प्रकार राम-रास का सागोपाग वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है। रसिक साधना मे कृपानिवास जी के पदो का बडा सम्मान है। अवश्य ही ये अनुभवी रासरसिक सत थे। श्री जानकी जी का मान-वर्णन करने मे कई अपूर्व सफलता मिलती है।

राम रस रग सो सग सिया प्यारी रास मडल मधि सोहै।
बनि ठनि रूप सिरोमनि सोहनि कोटि मदन रति मोहै॥
जैसी ये सरद निसा छकि चादनी जुगल चद छबि जोहै।
कृपानिवास विलास मगन मन कहनि कुशल कवि कोहै॥

नवल रसीले लाल रास रस मे खरे।
सहचरि असनि धरि भुज झमकनि कबहु ठमकि पै गलै धरै।
रूप झौक झुकि परति सखी जन झमकि धरै मद मे भरै॥
बक बिलोकनि चपला चौकनि कोमलता छिन मे न हरै।
अलिअवलि छबि कलित चहो दिस कवि को मिस उपमा न सरै।
कृपानिवास श्री जानकीबल्लभ नैननि ते न टरै।

निरषि छबि अटकि रहे दृग मेरे।
छकित छबीली छबिन छबीले मगन रसीले हेरे।
मद हसन टुक लसन दसन की कसन परै उर झेरे।
तिरछी झाकनि बडी बडी आँखनि लाखनि के मन घेरे।
रास बिहारी बिहारनि प्यारी घूमत मदन घुमेरे।
कृपानिवास श्री जानकीबल्लभ नीके नैन अएरे॥

निर्तत री रग भीने रास मे।
मदन गहल मद महल बिहारी दोउ गरबहिया दीन्हे॥
उघटत छद प्रबध गीत गति नटवर कला प्रवीन।
नूपुर नवल नवल मुख गावत तान मधुर स्वर झीने॥
अलकनि हलनि चलनि पलकनि की मलकनि अगन गीने।
कृपानिवास नवल कुजनि रम सिय जू राम नवीने॥

रग भरे राम रसिक रसबस करि प्यारी राम भवन रस माने।
सुरति बिहार उमग अनगति अग अग सरसाते॥
किंकनी नूपुर वलय मुखर कर लोचन रति इतराते।
कृपानिवास बिलास बिलासी सुदर सग सुहाते॥

हरि बिन को जान मेरे मन की।
आठ पहर मोहि कल न परत है प्यास बढी दरसन की।
लगन चोट लागी तन बल की हलकी चोटै घन की।
कृपानिवास श्री राम रसिक अब सुधि लीजै विरहन की॥

उर मे उठत रैन दिन हूकै।
लगन अगनि जरि भई हो कोयला जरी बरी फिर फूकै॥
मरम मारसो मरी रही मैं नई मार नहि चूकै।
कृपानिवास श्री राम रसिक सुनि मो बिरहनि कूकै॥

द्रुम द्रुम बूझ थकी बन हेरत प्यारी बैठी आय पुलनिपर।
तरु बिन कल्पलता मानो मुरझी झुकि झुकि परति सिथल धर॥
सखि जन धारि सभारि पबन ढर श्रम कण हर कोई गहि पट कटिकर।
कृपानिवास कहति कहा दुरिया राम रसिक मेरो मनहर॥

मेरो मन हरी लीनो हेली रसिक साँवरे चोर।
चतुर दृगन सो मिलि उर धसि करि कसि कसि लगनि मरोर॥
हसि करि बसि करि रसि करि मो सन लाज सबनि की रोर।
कृपानिवास राम छैला के फेल फसाई मे जोर॥

प्यारी ऐसे अन बोलनो कबहु न कीजिये ललन मनावै हसि बोलिए।
अपने चित मो प्रीतम के चित नित नयो हित क्यो न तोलिए॥
बिना दोष कहा रोष बढावो रस मे विष नही घोलिए।
कृपानिवास सिया मन अटके पिया घूघट पट खोलिए॥

पिय प्यारी बसि प्यार रास रस झुलेरी।
रहसि हिडोरै लसन जुगल छबि जन उपमा झूलैरी।
चद्रकलादि झुलावति गावति फरकत अग दुलैरी।
कृपानिवास जानकीवल्लभ निरखि जुगल छबि फूलैरी॥

राज कुवर मेरे सग लग्योरी।
जहा जहा जाउ तहा तहा लखाउ प्रेम बिबस रस रहत पग्योरी॥
सोय रही स्वपने चमकावै जागि उठौ तो मृदु मुसकावै।
हसि हेरो तब फूल मगल तन रोम करौ तब हाहा खावै॥
बेस दुराय दुरो परिबन मे दिष्ट चुराय बदन पट खोलै।
पग परसत अपराध छिपावत मन हरनी मधुबीनी बोलै॥
भवन छिपो खिरकी खरकावै पाय अकेली अक भरै री।
सरज् जाऊ न्हान मिस पीछै आयसु ना न्हान कौतिक करेरी॥
हारिब सो गृह आगे मेरे गुन गावै हसि बीन बजावै।
कृपानिवास राम रसिया वर रसिकनि हित नित रस बरषावै॥

उरझ रहे वा रसि कर पेचन सो।
राम रसिक पिया प्यारी के।
नाहिं सभारत रस मतवारो बस मे पन्यो मतिवारी के।
नासा चढनि बिलोकनि तिखी भीज गये रसवारी के।
कृपानिवास मान मनोरथ उघरत प्रान बिहारी के।
मोहि सोवन दै रैंन रही थोरी प्यारे।
सब निस सग अनग रमाई अगनि आलस भारे।
प्रीतम प्रीत की रीत न जानो स्वारथ मीत निहारे।
कृपानिवास सिया सु कुवारी हस कछु नैंन ततारे॥

भावना-पचीसी

कृपानिवास कृत

कृपानिवास जी कृत भावना पचीसी सिद्धान्त और साधना की दृष्टि से एक अनमोल पुस्तक है। सपूर्ण ग्रथ दोहो मे है। आरभ मे श्री जानकी जी की सखियो के नाम और उनकी सेवा तदनन्तर श्री रामजी की सखियो के नाम और उनकी सेवा का विवरण है। पहला १२ दोहो मे और दूसरा २१ दोहो मे है। इसके पश्चात् प्रात शृगार का वर्णन भोग, षोडशोपचार पूजा तथा फिर भावना अर्थात् मानसिक पूजा का प्रकरण है।

श्रीजानकी जी की सखियाँ और उनकी सेवा

प्रथमहि श्री प्रसाद जू, सकल सखिन सिरमौर।
जिनके कर विहरत सदा, दपति श्यामल गौर॥

चन्द्र कला गुन आगरी, रहस विचक्षन जान।
सुरुचि लाडिली लाल की, सेवत समै समान॥

विमला विमल विहार मै, रहत सदा लवलीन।
रहस सपदा लाल की, प्रगटति चाह नवीन॥

मदन कला रस मदन को, मदन जुगुल रस हेतु।
वदन प्रशसा को करै, अडिग भाव रस खेत॥

विश्व मोहनी एक रस, मोहि रही पद कज।
सिय वल्लभ की माधुरी, भरी धरी दृग पुज॥

उर्मिला उर अति सुख बसै, पिय प्यारी अनुकूल।
जुगुल वदन निरखत खिले, चन्द्र कमोदनि फूल॥

चम्पकला रस चौपकी, मानौ भरी भडार।
लाल लाडिली सुख सदा, देखत नित्य विहार।।

रूप लता विधि रूप की, पर्म उपासक एक।
राम जानकी महल की, टहल जु करन विवेक।।

अष्ट सखी ये मुख्य है, ओर सखी कह अन्त।
इनकी कृपा कटाक्ष ते, शुद्ध भये बहु जन्तु।।

जो चाहै सिय लाल की, रहस माधुरी केल।
तौ सब आस विहाय कै, कीजै इनकी मेल।।

श्री प्रसाद प्रमाद करि, अष्ट सखी गुन गाय।
अलि निवास जिनकी मया, महल माधुरी पाय।।

प्रथम पाठ इनको करै, पीछै और कराय।
रहसि माधुरी उर फुरै, सहल महल कौ जाय।।

श्रीरामजी की सखियां और सेवा

प्रथम चारु शीला सुभग, गान कला सु प्रवीन।
जुगुल केलि रसना रसित राम रहस रसलीन।।

हेमा कर वीरी सदा, हसि दपति मुख देत।
सपति राग सुहाग की, सौभागिनि उर हेत।।

क्षेमा समै प्रबन्ध कर, वसन विचित्र बनाय।
सुरुचि सुहावन सुखद सब, पिय प्यारी पहिराय।।

सखी पद्म गगा सुभग, भूषन सेवत अग।
सदा विभूषित आप तन, जुगुल माधुरी रग।।

अलि सुलोचना चित्रवित, अजन तिलक सवारि।
अग रासि सिय लाल के, करि जीवति शृगार।।

सखी वरारोहा हरषि, भोजन युगल जिमाय।
प्रान प्राननी प्रान सुख, राखति प्रान लगाय।।

लक्षमणा मन लक्षगुन, पुष्प विभूषन साजि।
बिहसि बिहसि पहिरावही, सिय वल्लभ महाराज।।

सुभगा सुभग सिरोमनि, सेज सोहाई सेव।
सिय वल्लभ सुख सुरति रस, सकल जानि साभेव।।

अष्ट सखी ये लाल की मुख्य जनाई जानि।
अलि निवास इनकी मया, महल माधुरी पानि॥

सेज सदन मनि सेज रचि, समय सरिस सुख साज।
हसि जनाय पधराय दोउ, सुमिरहु सुरति समाज॥

पिअ प्यारी सुख रस रसैं, वसैं सखी चहुओर।
दृग भोगी तत्सुख लहैं, कृपा रहसि मतिवौर॥

भोजन भोग विहार सुख, सद्गुरु सेस अहार।
सदा भावना भाव वस, समैं समैं अनुसार॥

सुरति प्रान दृग ध्यान धरि, जौ लौ प्रीति विहार।
सुरुचि समुझि सामीप झुकि, पुनि सब सौज सम्हार॥

लाड सुभोग जिमा वही, आत्त आरती साज।
लाड लडावात सेज सजि, पौढावैं महाराज॥

जुगुल चरन सेवैं सुखद, दृग प्राननि सो लाय।
कोमल पद प्रीतम प्रिया, कोमल करमन भाय॥

सदा भावना लीन यह, मीन जथा जल प्यार।
और साधना सब तजैं, भजैं कृपा सुख सार॥

भाग पचीसी पर्म सुख, पढि निति प्रीति प्रकास।
भाई मन पाई रसहि, गाई कृपानिवास॥

श्री कृपानिवास जी की

पदावली

श्रीज्ञाना इसी के शिष्य महात्मा रामकिशोरशरण जी की प्रेरणा से छोट लाल लक्ष्मीचद बबईवाले ने प्रकाशित किया। इस सग्रह मे लगभग चार सौ पद है और प्रात जागरण से ले कर शयन तक के भिन्न-भिन्न समयो और लीलाओ के पद है।

रसिकोपासक कवियो मे कृपानिवास जी विशिष्ट पद के अधिकारी है। इन्हे उतने हलके ढग से नही लिया जा सकता जिस ढग से आचार्य शुक्ल जी ने अपने इतिहास मे लिया है। अपने निजी आग्रह (दुराग्रह ?) के कारण भी कभी-कभी उत्तम से उत्तम वस्तु कुरूप और अभद्र दीखती है। इसीलिए यह वैज्ञानिक एव निष्पक्ष दृष्टि नही कही जा सकती। अस्तु श्री कृपानिवास के पदो से स्पष्ट है कि वे इस रस रहस्य के एक परम अनुभवी सत एव सफल कवि है। भाषा बहुत ही सुथरी, भाव बडे ही सरस।

उदाहरण—

सुभग सेज सदन रग राजत सियलाल सग रस अनग जीत जग प्रात लसे प्यारे।
मन स्वरूप मोहनिशि चद किधौ रोही सि ललनि छटा सोहा सिसुदर उपहारे॥
दोऊ लाल गसि रसाल प्रातकाल नहिं सभाल उभै चद्र प्रेमजाल सोवै मतवारे।
चहुओर सखि चकोर उझकै छबि ठौर ठौर चमचमात नैन भोर शर्द रैनितारे॥
छूटे दरि परद बन्द अगर सुरभि अति मुगध गुजत अलिबृद बृद सुख समन्द मारे।
सकल सखि चौप चमकि चाहि छकित रस कि रहति बार उझकि उछकि द्वार लगि सभारे।
औसर सुख समझि खरी रसविनोद विफुलभारी आलस तन देखि डरी मधुर भाव पारेउ सिमटी।
श्री प्रसाद आगे सब समाज पाय लगे कृपानिवास भाग जगे पलक कछु उघारे॥
जागे जब युगुल लाल आलस बसि छबि रसाल निरखि दृगनि सब सिहाल प्रात सुख बधाई।
बिथुरन कल कुचित कच सुमन विविध लसन सुरुचि उडगण लै तिमर कल चद शरनि आई।
आलस मद अरुण नैन घुरनि तन पकज अपन लैन वास भ्रमर माल भृकुटी सुघराई।
बदन मदन मद सु निधन रदन छदन बिंब कदन मगन अग मुरत तुरत सुरति मुख जभाई।
दोऊ जन भुज अशधरी शिथल अगालिंगन करी मनु तमाल कनक लता शाखा लपटाई।
दशन छद कपोल कलित चुबनि शशि मध्य ललित मनहु सुरति शारद की प्रगटी चतुराई।
नखन चिह्न श्याम अग शोभा मथि अति अनग मनु तमाल ललमुनी रैनि की बसाई।
बिगलित गलमाल ठरनि मुक्ता झरि सेज परनि स्वाति बूद प्रात शरद धरति सिधुमाई।
सारी शिर पैंच ढरे विविधि बसन फरकि परे परस्परनि प्यार भरे रति शृगार छाई।
बर उरोज नगन खरे देखि दृगनि श्याम हरे मदन कलश सुरस भरे लालन ललचाई।
मधुर बैन श्रवत मैन अलसानी अलि चलति सैन रैन की कमाई प्रिय नैननि बतराई।
गोर रग श्याम रग शारद प्रतिबिंब गगनि कालीदी जनु दीप दाम श्याम गौरताई॥
प्यार निरार भरि सुमोद करि बिनोद पिया गोद रगरसिकरैनि क्रिया साधि अक ल्याई।
प्राणपति सुजीव निरम पीवनि अनुराग भरी हरी रूप सुखमा सुख पाय तन समाई।
कछुक लाज सुरम काज निरखि निकट सखी समाज छबि बिराज नवल दोउ मुरकि दृग नवाई।
श्री प्रसाद जानकी जु बल्लभ सुख दानकी जु कृपानिवास प्राण की जु पारस निधिपाई॥

रग रगीले दोउ सोय जगेरी।
बिथुरी अलकै अलसी पलकै रग सनेह सुरग पगेरी।
मद रस छके बिराजत लालन ललना के रस रग ठगेरी।
कृपानिवास श्री जानकी बल्लभ सखियन के दृग निरखि परोरी॥

नवल छबीले दोउ सोय जगेरी।
अकथ कथौ कछु छबि सुघराई।
गौर श्याम भद्र श्याम गौरि मै बिंवतनु तरत बरन पर छाई॥
दृग अजन अधरन पर सोहैं कुच केसरि पिय उर लपटाई।
कचबर पेच औ चिरति झुलन बेसरि सरस समै बलखाई॥
सुरति समर बरबीर बिजय परलोचन घूमत युत अरुनाई।
कृपानिवास विलासनि सिया जू वल्लभ सो मृदुकहि मुसकाई॥

भोरहि छबि प्रीतम के मन भाई।
सब रस भरी उमग बढावति हसि हसि लाल जगाई॥
अजन खजन सुकर बनावत बसन सुगध भिगाई।
चोलसकेर सुभग तजु बैठी कुच दै पानि लजाई॥
पोछत बदन मदन रस मरमे प्रीतम प्रीत सवाई।
कुच कुमलाई कली उठावत चुटकी चटक जभाई।
अलक सवारत पलक उधारत सकल सौज अलसाई॥
पिया की गोद बिनोद बिहारनि चमकि अग अगराई।
नैन उघारि सखिन सो बोलति लालन सो मुसक्याई।
कृपानिवास श्री जानकी प्यारी प्यार प्रिया उर लाई॥

सखी कछु कहि नहिं जात री।
जब देखौ तब लाल लालची छिन छिन हाहा खात री॥
रस लपट मपुट कर मोही भोई मधुरी बात री।
जो बीती चितमित नहिं पइये हित हिय माझ समात री॥
सुख सो दुख दुख सो सुख जानो हाहा लाल सिहात री।
कृपानिवास बिलासनि चचल अचल दै मुसक्यात री॥

कुछ अकथ कथा है आजु की।
हसि प्रीतम चोली कस खोली बोली नाहिन लाज की॥
बोलत हित चित यतन उपावै गावै बिनय स्वकाज की।
अक निशक बक करधारी हारी हाहा हाज की॥
भुज भरी लई दई दई करिते पति पोषी रतिराज की।
कृपानिवास बिलास रमाई भाई सुरति समाज की॥

पिय के नैन प्रिया छबि उरझे सिया दृग पिय छबि लागे।
मनु द्वै रूप सरोवर मीनन मदन पलटि सुख रागे॥

प्रीतम प्राण बसैं प्यारी बश प्यारी पिया के आगे।
कहि लालन मैं सर्वसु तुम्हरो मैं तुम्हरी बड भागे।
तुम्हरी मया बड भाग बिलासनि बिलसहु सुख मन मागे॥
लाल रावरो हित सु अमोलक मन सब हेतन त्यागे।
तुमसो लाल निहाल चरण लगि मानो भाग सुभागे॥
राज रावरी बस्तु प्राण तन पगे रहो जिमि पागे।
यह सुख सुधा सदा कोई पीवै काई भूले विष दागे।
कृपानिवास प्रसाद स्वाद सो प्यायो जन निशि जागे॥

महारस भीनी रग भरी जोरी।
सिय अनुराग पगे पिय सुन्दर पिय सिय राग निबोरी॥
सिय की मया बिचारत घूमै पिय की रहसि समुझ मन मोरी।
मिली श्यामता गौर युगल तन मृग मद केसरि घोरी॥
छबि कौ छटा सी दमक दमकनि दामिनि हसनि मनोरी।
रस आनन्द मधुर झर इक रस सखि मन भर सरसोरी॥
गर भुज माल सु लाल लडावति अली लडावति प्रिय लडकोरी।
कृपानिवास श्री जानकी बल्लभ मोहिय ते न कदापि टरोरी॥

सदा चिरजीवो रग भरी जोरी।
सदा बिहार करो रग मदिर रग किशोर किशोरी॥
सदा सुहागनि के अनुरागनि रगे रहो बडभाग बटोरी।
पिय को प्राण बसो सिय सुन्दरि सिय मन श्याम बसोरी॥
पिया की चाह सुचात्रि कलो रहो सिया की मया स्वाति बरसोरी।
सिय मुख चद सुधारस द्रवो नित पिय की चादि चकोरी॥
हमरे नैन प्राण की सर्बसु अधिक अधिक सुख रस सरसोरी।
कृपानिवास उपास महल की टहल लगी सो लगोरी॥

सिय राम जु को ध्यान मेरे निशिदिन रह माई।
युगल बदन सुखमा सदन मदन अति लुभाई॥
क्रीट मुकुट चद्रकोर जटि मणि मुक्ताई।
कुडल कल करनफूल झूमक झुमकाई॥
भाल युगल दुतिय चन्द्र श्री अमन्द छाई।
बिकट भृकुटि मदन चाप चारि चरि चढ़ाई॥
युग कपोल अलक झलक मेचक बलखाई।
मनु दुरेफ मालकज मकरद लुभाई॥

खजन दृगन मैन दैन मैन मद चुराई।
नवल नथ सुहाग युगल नासिका सुहाई॥
अधरारुन बिंब लजित दशन पाति पाई।
कल कपोल बोल मधुर सुमन मन झराई॥
चिबुक बिंदु मिथुन मिंदु लसत श्यामताई।
जनु मिलाप किया राहु बसी मित्रताई॥
सुभग भाल पदिक हार कंठो तिमनाई।
ग्रीव ललित सीव सुभग भूषण सघनाई॥
श्याम भुजा अगदादि ककनि जटनाई।
गवरि भुजनि वल यादिक भूषण सुघराई॥
जावक युत जान हस्त पान अरुननाई।
पुष्प लिये गौर श्याम बीरी जु बनाई॥
उर सुगन्ध कर्पूरादि मलय कसराई।
युगल उदर सुघर सकत कहि न सुभगताई॥
राम पानि मधुप अवलि लै सुबास धाई।
गग ययुन धार वही नाभि अलि घुमाई॥
किंकिनी नवीन छुद्र घटिका सजाई।
मधुर मुखरबीन मनौ कामरति बजाई॥
नूपुर बर पायल पद गुल्फ वर्तुरताई।
युगल पद सरोज अलिनि मनु सुर सरसाई॥
गौर श्याम सुरस धान काम रति लजाई॥
अग अग नवल रग नवलहि तरुनाई।
कृपानिवास आस सुमति खास टहल लाई॥

सेज सुख सोये सावर गोरि।
प्राण वपुष मन लगन गोद मुख मिसटि भय एक ठौरि॥
लपटि भुजातन सोहति मानो नेह लती सुख द्रुम निमकारि।
पलक लगी वर बदन मनोहर मीन सुधासर बोरि॥
सीतल मन्द सुगन्ध सुचित मै समय समझ गुन कोरि।
कृपानिवास सियापद पकज सेवनि नैन निहोरि॥

युगल रस को रति गाय सुनावै।
प्रेम भरी सुख भरी सो सहचरी निज हेत जनावै॥
कबहु सुनै न बैन मन तनसो कबहु मुकर पद पावै।

समय समय सुख टहल महल की हितु सब लाड लडावै ।।
अगम अगोचर गोचर करि हैं अवक बचन दरसावै ।
चिनमय रस चिर पिय प्यारी को रसिक उपासिनु प्यावै ।।
सिय पिय सुख जन गुन प्रतिपालन अपने भाय बढावै ।
कृपानिवास अली अलबेली सबकी चाह बढावै ।।

समय सुहावनि सुन्दर जोरी ।
सजी नवल तन सुरुचि सखी जन धन लो श्याम सिया दुति गोरी ।।
नव भूषण नव बसन मनोहर नवल किशोर किशोरी ।
प्राणन माल सजी अलबेली फूल फरैं फल जनक ररोरी ।।
रूप सिहासन बिछे बसन पर गरबहिया पद टोरी ।
परम उदार उपासिन के हित छबि शृगार सदा यक ठोरी ।।
अष्ट भवन की सखी सिमटि सब बनि ठाढी चहुओरी ।
पीवत युगल माधुरी नैननि मतिवारी रग बोरी ।।
कोई बोलनि कोई चितवनि सो रति कोई मुसकन कियोरी ।
कृपानिवास पिय सिय सो लगि आखे मुरी नहिं मोरी ।।

सदा सुहागनि जनक किशोरी ।
आनद कन्द चन्द कैरव कुल बरपाये भल भाग करोरी ।।
भव धनु भजन जे नृप गउर बन बन बनेह निहोरी ।
अड अनेक चड यश गावत सो नागर बस प्रेम ठगोरी ।।
काल करास कप भुव फेरन अनुहर देव अकोरी ।
जो गुन निर्गुन सगुन गुन सागर सिय गुन रसित रसिक मनि सोरी ।।
शारद उमा शची रति कमला चरन सेव सकोरी ।
ज्यो हुतास कनिका रबि ऊपर बात मिलै धवै गति ओरी ।।
पति की प्रान प्रान की सर्बसु सर्वसु की बसतोरी ।
ते जन मन क्रम बचन सिया पद रति प्रसस तिन निगम बढघोरी ।।
शील स्वरूप सहज गुन मदिर अतर श्याम लसैं तन गोरी ।
कृपानिवास राम प्यारी छबि मो नैन ते छिन न टरोरी ।।

आज बने राम सिया सुदर सुघर बर रसके रसिक रसदान ।
रस की प्रवीण लिये बीन नवीन सिया पिया रस पुलकि ले तान ।।
रसही की रीझ रस भीज भेजाय रहे रस भरि जै जै धूनि रसकर गान ।
रस के विलास रसहास निवास अली रसभरी जोरी पर वारो तन प्रान ।।

हेली री रग धाम रगीले प्यारे शोभित सिया सग राम।
सुरग सिंहासन पर रग राजे दोउ अग अग ये वारो कोटि सतकाम।।
सुरग समाज बन्यो रग सो वितान तन्यो रग रसराज राज रग ददाम।
कृपानिवास प्यारे रग रस रासभरे रग मिल गवर सुरग घनश्याम।।

देखो भाई रग भरे पिया सोहत रग भरी सिया अगबाम।
रग भरी बतिया रिया रगीली नरबर रग कोटिक रग अभिराम।।
रग सो अभग सर भवन तरग ढरि चरसो सहेलि पर रग ललाम।
रग बिलास निवास अली मिलि झिलि रहे रगरि भुज दाम।।

रग महल दोउ राजत रग रसीले।
लावन लक अकन की सानिधि भुज असनि गुन मीले।।
नैन की बतरावनि भावनि लावनि बोलनि बदन हसीले।
उरहित भाव मिले रुचि बरणित करि नित केलि कबीले।।
सखि जनमन की प्रीति चातुरी मिली जुहरत रति सा रतीले।
कृपानिवास श्री जानकी बल्लभ रहसि उपासिक हीले।।

मेरो मन सु पथिक मग भूल पर्‌योरी।
प्यारी तन कानन बहुरगनि अगनि अग अनग फस्योरी।।
राजी रोम सघन द्रुम छबिमय लता जाल फासे कौन टर्‌योरी।
त्रिवली सरिता उचसैन कुच मध्य गुफा बसि नहि निकस्योरी।।
खजन करि लसै सु मनोहर बिपुल कटाक्ष सु मृगनि मख्योरी।
ज्यो वन सिंह सुछद फिरै गज धीरज नेम कुमान दर्‌योरी।।
बाल व्याल सखि ताल कपोलनि करन कज मकरद धर्‌योरी।
भौहे मधुप पाति आवति शर खजन मारग अटक पर्‌योरी।।
जयति प्रसाद सुनो अटवी सुख रूपचन्द बरपोप हर्‌योरी।
कृपानिवास बिलासनि सिय कृपा बिचरो वन मन मैन डर्‌योरी।।

नीवी करषत बरजत प्यारी।
रस लपट सपुट कर जोरत पद परसत पुनि लै बलिहारी।।
बदन घुमाय सिहाय महाजट तडित ज्यो चमकत बक निहारी।
तलपट राय मचाय धूम रस हसि हसि कृपानिवास सियहारी।।

करा सुभग सुख मद मतिवारी।
सुघरि उघरि उज्ज्वल रस तेरे मेरो मन होरा अधिकारी।।
परम उदारनि मग्न रावरी मृदुल चित्त मोहित हितकारी।
कृपानिवास बिलास भरी सिय पिय को मन बसरस बिस्तारी।।

पिय हसि रसरस कचुकि खोलैं।
चमक निवारति पानि लाडली मुरकि मुरकि मुख बोलैं ॥
टुकरहो सखी सखी कछु गावति भावन मदन बिलोलैं।
कटि गहि लटकि हटकती सुदरि अधरनि परसि कपोलैं॥
तलपटुराय लाय उरसो उर कोक कलानि किलोलैं।
कृपानिवास बिलासी दपति सपति रास बढोलैं॥

पौढे सुख सैन रैन रग महल मै।
सुरति सरोवर हस हसनी करत किलोल मद मदन गहल मै॥
अरी पान बलपीय जीय की सुजीवनि ग्रीबनि भुज भरि सुघर सहल मै।
अधर अधर धर सकुच परस्पर भयो है मिलन मानो आज यहल मै॥
सोतल मद सुगन्ध पवन जह बहत भवन सुख सरस चहल मैं।
जयति जानकी रमन कमल पद अली निवास नित रहत रहल मै॥

दोउ मुख झाँकै झरोषनि अलिया।
मैन किलोलत लोल रसिक मन मैन बढचो ज्यो रैन सुधुलिया॥
उघरे अग सग जगु राजत जनु सर पकज कचन कलिया।
उर उर अरत दरत केसर बर करत बिनोद बिपुल मद रसिया॥
परिरभन चुबन रस सनत चपला भूकपन हृलिया।
कृपानिवास बिलास बिलोकति आस सखी जनमन की सुफलिया॥

जयति रति खेतबर युगल सोभावनी।
दलि तन बसन की लसन अद्भुत बसै हसै सुकुमार रसभार जीति अनी॥
बिथुर कच अग जनु कज बन मधुप गन पिवत मकरद सुख कद सुखमा घनी।
नखनि रद छत प्रगट निघट उपमा जदपि तदपि कहि व्याज रसराज चूडामना॥
फूल घन अरुन जनु तडित मिल भासई नील द्रुम लपटि जत सुमन कचन तनी।
कीधौ पादप लतालाल मुनिया बसी शशी मुख महि जु बहु आय पूजत धनी॥
मिथुन तन एक सखि देखि चकृत नवल कमल केसर लिये रैन रति द्रुति सनी।
जयति श्री प्रमाद मुख स्वाद रसरास रलि पलति सुनिवास नहि जात महिमा भनी॥

पिय मिल करत बिलास बिलासनि माधुरी।
महा बिहार बिहारनि प्रगटे सुघर रसिक मनिका जुरी॥
वपुष घुमाय फिराय चक्रवत बिक्रम बिकट प्रकासुरी॥
कदुक कलन ललन ललचाये चलन चातुरी आजुरी॥

जत्र जराय सिहाय शुकल हो हसत लजावसि हातुरी।
जयति जानकी रवन केलि रस अलि निवास अलि आसुरी॥

ये री ये सुख मदिर सेज रसीले सोये।
प्रीतम अक लिये रस सागर मनु निस केसर पक जगोये॥
पिय उर भुज शृगार सरोवर परमा बेल बिमोये।
बदन उभय जनु सदन सुधाकर मिलत सुप्रेम समोये॥
गवर श्याम पद मिश्रित राजे मनु सुप्रिया गन होये।
कृपानिवास बिलासी दपति मैं निज नैन पोये॥

श्री स्वामी जनक राजकिशोरी शरण

'श्री रसिक अली'

(१) सिद्धान्त मुक्तावली

रामरसामृत के लोलुपो के हितार्थ सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचद बम्बई वाले ने जैन प्रेस लखनऊ मे इसे १९०७ ई० सन् मे छपवा कर प्रकाशित किया। इसमे कुल ५२ पृष्ठ और १५७ दोहे सोरठे है।

विषय—आरभ मे गुरु वदना है फिर रामरूप की कृष्णरूप से विशेष मोहकता का वर्णन है। कृष्ण के बाल रूप को देख कर भी पूतना ने विष से मिला अपना स्तन्य पिला दिया परन्तु उधर शूर्पणखा शत्रु की बहिन होती हुई भी राम के त्रिभुवनमोहन रूप पर मुग्ध हो उन्हे पति रूप मे वरण करना चाहती है। कृष्ण के रूप पर तो स्त्रिया ही मुग्ध हुई परन्तु राम के रूप पर दण्डकारण्य के तपस्वी मुनि भी आसक्त हो कर उनका आलिगन करना चाहते है। इस प्रकार राम का रूप परम मनोहारी है।

इसके अनन्तर दास दासी, सखा सखी भाव का वैशिष्ट्य दिखलाया गया है। होली, रास, हिंडोलना, महल और शृगार मे जो सेवा-भाव प्रिय लगे उसे ही ग्रहण कर तत्सबध से भावित हो कर निरतर प्रेमरस मे छके रहना चाहिए।

तत्पश्चात् साधन, भाव और प्रेम का प्रसग है। इन तीनो को बडी ही भावपूर्ण व्याख्या है उदाहरण सहित। फिर निष्ठा के भेद तथा प्रीतिरीति का स्वरूप विधान निश्चित किया गया है। भक्तिरस का वर्णन करते समय आश्रय आलबन का प्रकरण बडे विस्तार से आया है तथा रसो मे दास्य, सखी वात्सल्य, शृगार का सविशेष वर्णन है। अभिप्राय यह कि रसिकोपासना के सिद्धान्त का बडा ही भव्य मनोज्ञ ग्रथ है और यहा गागर मे सागर की उक्ति घटित होती है।

सिद्धान्तानन्यतरगिणी

हस्तलिखित प्रति प्रमोद रहस्य भवन अयोध्या में प्राप्त है। इसमे कुल १६ तरग और ५५० दोहे है। इसमे भावना का ही विषय मुख्य रूप से आया है।

अमर रामायण (सस्कृत मे)—लगभग ४००० श्लोक है। कनक महल, अष्टयाम, भावना तथा रससाधना का यह प्रमुख ग्रथ माना जाता है ।

रहस्य रत्नमाला—रसिक वल्लभ शरण जी का रस पर दोहे, चौपाइयो मे।

सिद्धांत चौंतीसी—सिद्धान्त के ३४ दोहे ।

होलिका विनोद—१३ कवित्त । सीताराम की

कवितावली

श्री जानकी करुणा भरण

अध्यायत्रयी

दोहावली

सिद्धान्त मुक्तावली

श्री रसिक अलीकृत

ज्ञानी योगिन करत सग ये तजि रसिकन सग।
सूख गर्त्त सेवन करत शठ तजि पावन गग॥

ज्ञान योग आश्रय करत त्यागि के भक्ति उदार।
बालिस छाह बबूर की बैठत तजि सहकार॥

पीस नवै सियराम को जीह जपै सियराम।
हृदय ध्यान सियराम को नही और सन काम॥

नारि मोह लखि पुरुष बर पुरुष मोह लखि नारि।
तहा न अनहोनी कछू कवि बुध कहत बिचारि॥

होनी होनी होइ तह अद्भुतता नहि जान।
अनहोनी तह होइ कछु अद्भुत क्रिया वखान॥

अनहोनी सोइ जानिये पुरुष रूप निधि देखि।
मोहय पुरुष वधुत्व करि अद्भुतता सोइ लेखि॥

सोगति दडक बिपिन मुनि भइ रघुबरहि निकारि।
याते अद्भुत रूप श्री रामहि को निरधारि॥

अद्भुत रूप निहारि कै सब जिय होत सुमोह।
विषतन प्यावत पूतना नेक न ल्याई छोह॥

रिपु भगनी पुनि राक्षसी जाकर मनुज अहार।
मगन भई लखि राम छबि करन चही भरतार॥

खरदूषन आदिक सकल मोहे राम निहार।
लडे सो निज इच्छा नही जिय बीरत्व विचार॥

ऐसे रघुबर रूप निधि सो मोहे सिय देखि।
पटतर ताकह पाइये अति अद्‌भुत छबि लेखि॥

उमा रमा ब्रह्मानि सिया महल सेवत सदा।
शारद चतुर सुजानि नित कृत चरित सुगावही॥

यथा अवध मिथिला तथा सुख सुखमा मरयाद।
इनहिं सदा उर धारिये त्याग सबै हमिसाद॥

प्रकृती अरु सब तत्व ते भिन्न जीव निज रूप।
सो प्रभु सो नातो बिसरि पर्‌यो मोह तम कूप॥

पुनि सोइ रसिकन सग करि लहै यथारथ ज्ञान।
नातो सिय रघुनन्द सौ निज स्वरूप पहिचान॥

दास दासि अरु सखि सखा इनमे निज रुचि एक।
नातो करि सिय राम सो सेवै भाव विवेक॥

होरी रास हिंडोलना महलन अरु सिकार।
इन्ह लीलन की भावना करे निज भावनुसार॥

बसै अवध मिथिलाथवा त्यागि सकल जिस आस।
मिलिहै सिय रघुनन्द मोहिं अस करि दृढ विश्वास॥

पूजे नहिं वहु देवता विधि निषध नहिं कर्म।
सरण भरोसो एक दृढ़ यह सरणागति धर्म॥

सो पुनि त्रिधा बखानिये साधन भावरु प्रेम।
साधन सोई जानिये यामे बहुविधि नेम॥

श्रद्धा अरु बिश्रभ पुनि निज सजाति कर सग।
भजन प्रक्रिया धारना निष्टा रुची अभग॥

पुनि अनर्थकर त्याग सब यह लक्षण उर आनु।
प्रथमहि साधन भक्ति के ताकरि भाव बखानु॥

क्रियारभ के प्रथम ही उपजे उर आनन्द।
क्रिया विषै दुख सहनता फसै न आलस फन्द॥

ए तीनो बुध कहत है श्रद्धा के अनुभाव।
श्रद्धा सम्पति होय घर तब बस्तू की चाव॥

सुनि लखि नहिं लौकीक मे दरशन ही आम्नाय।
सो सुनि चित्त साची गहै सो बिश्वास सुभाय॥

जामे करिये भाव पुनि सोइ परीक्षा लाग।
बहु विधि चित्त उदबेग ही तदपि तासु नहिं त्याग॥

यह निष्टा अनुभाव लखि जाके उर मे होय।
ताको कछु सशय नहि मिलै रामसिय दाय॥

जामे प्रीति लगाइये लखि कछु तिहि विपरीत।
जिय अभाव आवै नही सो निष्टा की रीति॥

दरश परस मे सुख बढ बिनु दरशन दुख भूरि।
यह रुचिकै अनुभाव सखि करै न रघुबर दूरि॥

भाव भक्ति तव जानिये यह जिय होय सुभाय।
क्षमा विरक्ति अमानता काल वृथा नहिं जाय॥

मिलन आसरजु बद्ध चित पुनि उत्कठा जान।
आसक्ति तद्गुण कथन प्रीति बसत अस्थान॥

नाम गाम मे रुचि सदा यह नव लक्षण होइ।
सिय रघुनन्दन मिलन को अधिकारी लखु सोइ॥

बिघ्न अनेकन होइ तौ प्रीति रीति नहिं हान।
आसक्ती नित नव बढै सो लखु प्रेम प्रधान॥

स्नेह सुलक्षण जानिये चित्त द्रवित लखि होय।
तन धन बिलग न मानही तजे बिछेदक जोय॥

सिय रघुवर सम्बन्ध करि दुख सो सुख इव भास।
सिय रघुबर सम्बन्ध बिन सुख सो दु ख निवास॥

यह लक्षण अनुराग के अनुरागी उर जान।
ताको करि सतसग पुनि अपनेहु उर आन॥

लखु लक्षण यह प्रणय के दृढ विश्वास जु होय।
बाढै उर अति सख्यता निज समता सखि कोय॥

लखु उपासना द्विविधि सो ऐश्वर्जाशय एक।
द्वितिये माधुर्याशया धरै यथा रूचेक॥

द्विभुज परात्पर रामसिय रासादिक करि युक्त।
ध्यावै नित गोलोक सो ऐश्वर्याशय उक्त॥

तथा अवध मैं ध्यावही रासादिक बहुरग।
बीच बीच मिथिला गवन चहू बन्धु मिलि सग।।

माधुर्य्या सोइ जानहु रसल जनन सुख मूल।
करै सदा सोइ भावना गहि लक्षण अनुकूल।।

पूर्व कहे ते प्रणय युत अष्ट सात्विका जान।
तनमन को यो धो भई ताहि सात्विका मान।।

असन पर अलके लसत भुज अगद छबि देत।
छरो छबीलौ फेट मे चित्त चुराये लेत।।

सजन सफरी से चपल अनियारे युग बान।
जनु युवती एती हतन भौह चाप सधान।।

ललित कसन कटि वसन की ललित तलटकनी चाल।
ललित धनुष करसर धरनि ललिताई निधिलाल।।

ललिताई रघुनन्द की सो आलम्ब विभाव।
ललित रसाश्रित जनन को मिलन सदा मनुचाव।।

कोकिल शब्द बसत ऋतु सो उद्दीपन जानु।
मन्द हसनि दृग फेरनी सो अनुभाव बखानु।।

पूर्व कहे ते मात्विका सबै सुदिप्ता जानु।
उग्र अरु आलस्य बिनु सचारिहु अनुमानु।।

अस्थाई प्रिय तारती प्रणय प्रेम अरुनेह।
अनुराग अस परम पर वारत तन मन गेह।।

दशा वियोग प्रयोग मे पूर्वक ही दश सोय।
अब रस रिपुता मीतता कहौ जस होय।।

मैत्री शान्ति रु दास्य के अरस परस सो जानु।
वत्सल सख्य तटस्थ दोउ सुचि सपल अनुमानु।।

सख्य अरु शृगार दोउ अरस परस लखु मीत।
शाति रु वत्सल दोउ यह सुचि सो अति बिपरीत।।

बनिता बृन्दन मध्य जब रघुबर करत विलास।
सुचि अरु अद्भुत हास्य यह तीनो रसन निबास।।

अन्दोल रहस्य दीपिका

श्री रसिक अली कृत

यह श्री जनकराज किशोरी शरण श्री रसिक अलिजी की परम मधुर रसमयी रचना है। ० सन् १९०७ मे जैन प्रेस, लखनऊ मे छपा। कुल पृष्ठ १६ और छद ४३ है।

विषय—बडी ही भाव भरी कवित्वपूर्ण भाषा मे आदोल रहस्य के रस का वर्णन किया या है। भाषा बडी ही सजीव, सरस, सशक्त। प्रिया प्रीतम के परस्पर लाने लडाने का बडा ही नोहारी वर्णन है। सखियो ने शृगार के जो साज सजाये है वह भी देखते ही बनता है। हिडोले र झूलते होने के कारण प्रिया प्रीतम के मुखमण्डल पर जो श्रमकण आ गये है उनकी छबि भी सी निराली है। अन्त मे इस शृगार-साधक प्रेमी कवि ने कह दिया है कि लाल की यह ललित ाला त्रिगुणमयी माया से परे की वस्तु है, वहा पुरुष नही पहुँच सकता, वहाँ केवल 'अली' को धिकार है।

उदाहरण—

बाढ्यो अधिक रस झूलना सखि छकी सब रस रूप।
खसी बसन कचुकि कसन छूटत टूटत हार अनूप॥
सो मुक्तामणि बिस्तरन पर कोमल चरण चभि जाय।

ाला त्रिगुणमयी माया से परे की वस्तु है, वहा पुरुष नही पहुँच सकता, वहाँ केवल 'अली' को धिकार है।

मृगी ज्यो सब ठगी नागरि रहि विरह तन घेरि।
मिलन चाहति लाल अक निसक हारी हेरि॥
ललित लीला लाल सिय की त्रिगुन माया पार।
पुरुष तह पहुचे नही केवल अली अधिकार॥
रसिक अलि जीवन यही ध्यावै रटै दिन रैन।
बिनु जुगल रस लीला लखे छिन पल हिये किमि चैन॥

पञ्चशतक

श्री रामचरणदास 'करुणासिन्धु' जी

रसिकोपासको मे शिरोमणि महात्मा रामचरणदास जी के लिखे 'पञ्चशतक' मे (१) विवेक शतक, (२) वैराग्य शतक, (३) उपासना शतक, (४) विरह शतक और (५) नाम शतक सम्मिलित है। शृगारोपासना मे एक प्रमुख उपजीव्य ग्रन्थ के रूप मे इसका आदर है। सिद्धान्त ग्रन्थो मे यह पञ्चशतक सर्वमान्य है। इन ग्रन्थो से स्पष्ट ही पता चलता है कि महात्मा रामचरण-दास जी रसिकोपासना के अनुभवी और विद्वान् सन्त थे। ज्ञान और निष्ठा का ऐसा मणिकाचन सयोग दुर्लभ है।

विवेक शतक

(२) राम रसामृत खण्ड

हस्तलिखित प्रति रहस्य प्रमोदभवन अयोध्या मे प्राप्त। इसमे वैराग्य, सन्तो की पहिचान एकादश भक्तो का वर्णन अन्त मे रसका प्रकरण है। कुल चार खण्डो मे समाप्त होता है।

'उपासना शतक,' और 'विरह शतक' से कुछ उदाहरण दिये जा रहे है—

शोभा वर्णन

नीच कर्म करने गई, सुपनखा मति कूरि।
राम रूप लखि रमि गई, दुष्ट भाव भय दूरि॥
गई पूतना कृष्ण ढिग, करन नीच के काम।
रमीन लखि कृत कर्म लघु, आपको न तेहि काम॥
गाइ बजाइ सुनाच कै, कृष्ण मोहि बृज नारि।
राम चरन दण्डक तपी, तिय भय राम निहारि॥
राम चरन गुरु एक ते, बहु गुन जाने जाइ।
जथा एक फल चाखिये, पेड भरे रस पाइ॥

राम चरन दुख मिटत है, ज्यो विरही अतिहीर।
राम बिरह सर हिय लगे, तन भरि कसकत पीर।।

राम चरन मदिरादि मद, रहत घरी दुइ जाम।
बिरह अनल उतरै नही, जब लगि मिलहिं न राम।।

राम चरन जे अर्ध जड, सुरति नयन सब पेखि।
बिरह अन्ध तन धाम धन, तेहि कछु परै न देखि।।

राम चरन जे धीर जग सुनै, सयन के फेर।
राम बिरह नहि सुन कछू कर्म धर्म श्रुति टेर।।

ज्ञान ध्यान जप जोग तप, जो सुधर्म श्रुतिसार।
राम चरन प्रभु बिरह बिनु, ज्यो बिधवा शृगार।।

राम चरन बिरही त्रिधा, मोर चकोर सुमीन।
सुनि यक लखि यक लीन यक, निज निज प्रेमहिं पीन।।

राम चरन रबिमनि श्रवत, निरषि बिरहिनी पीव।
अग्नि निरषि जिमि घृत द्रवत राम रूप लखि जीव।।

प्रेम सराहिये मीन को, बिछुरत प्रीतम नीर।
राम चरन तलफत मरे, तिमि जिय बिन रघुवीर।।

कब होइहि सजोग अस, दीप रूप प्रभु तोर।
राम चरन देखत मरहि, मन पतग होइ मोर।।

राम चरन कब तब गुनन, मनन करिहि मन रोक।
जिमि कामिनी मनहि मन, त्यागि लोक परलोक।।

जथा जतन बिनु लगत मन, तिय सुत तन धनधाम।
राम चरन यहि भाँति मन, कब लागिहि पद राम।।

बुधि निश्चै तब जानिये, राम चरन दृढ़ होइ।
यथा सती पिय सग दै, जगत नेह सब षोइ।।

तुमहि लगावहु तब लगे, मम सूरत रघुनाथ।
राम चरन कठ पूतरी, नचै सूत्र धर हाथ।।

कब नैननि भरि देखिहौं, राम रूप प्रति अग।
राम चरन जिमि दीप छबि लखि मरि जात पतग।।

कब रसना रामहि रटहि, जथा कूररि बिहग।
राम चरन चातक रटत, बारह मास अभग।।

सब कहँ फूल बसत सुख, अगिन लूक सम सोहि।
सकल सुजोग कुयोग भव, रामलला विन तोहि॥

रसमालिका

श्री रामचरणदास जी

सुप्रसिद्ध रसिकाचार्य श्री रामचरणदास जी महाराज 'श्री करुणसिंह जी' रचित (रसमालिका), रसिकोपासना के गले का हार है। इसमे परधाम, पर स्वरूप, पर रस, पर मन्त्र, ब्रह्म, जीव, भक्ति, योग, ज्ञान, वैराग्य, सत्सग, प्रेम तथा लीला बिहार का रहस्य बडे ही गम्भीर एव रहस्यपूर्ण ढग से वर्णित है। इसे श्री भरतशरण जी (श्री विश्वम्भरप्रसाद जी माथुर, भू० पू० प्रोफेसर गवर्नमेण्ट कालेज, अजमेर) ने प्रकाशित किया है। रसिकोपासना का सिद्धान्त एव उसके विनियाग की प्रक्रिया का अध्ययन करने के लिए यह ग्रन्थ परम उपयोगी सिद्ध होगा। कथा यो है कि एक समय ब्रह्मलोक मे चारो वेद अपने पारस्परिक सत्सग मे ब्रह्म का निरूपण करते हुए इस बात का निर्णय नही कर सके कि ब्रह्म का स्वरूप सगुण है या निर्गुण। अन्त मे चारो ही मिल कर शेष भगवान् के पास पहुँचे। शेष भगवान् ने लक्ष्मण जी के स्वरूप मे उन्हे दर्शन दिये। फिर वेदो के प्रश्न करने पर आपने परधाम, परस्वरूप, पर मन्त्र, पर रस, क्षर, अक्षर, सगुण और अगुण इन नौ प्रश्नो का स्पष्ट रूप से विवेचन करते हुए वेदो का सशय दूर किया। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ मे ब्रह्म, जीव, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, योग और सत्सग आदि गूढ विषयो का भी सुन्दर दिग्दर्शन कराया गया है। तात्पर्य यह कि भक्तिपथ-प्रदर्शक शृगार रस मे ओतप्रोत यह ग्रन्थरत्न अपने ढग का निराला ही है। शब्दावली बडी ही गम्भीर और भाव बडे ही गहन है। बिना अच्छी तरह डुबकी लगाये इस ग्रन्थ का भाव पकड मे नही आता। कुल ग्रन्थ १५ अवकाशो मे विभक्त है और प्रत्येक अवकाश मे भिन्न-भिन्न प्रकरण है।

सिद्धान्त

श्री तुलसी शृगार गुप्त रस दास्य बखानी।
यही चोट रहि गई प्राप्ति मे रस बिलगानी॥
सोई आनि रस वपु धरचौ अग्र स्वामी के पथ लहे।
टीका रचि निज ग्रन्थ के प्रगट रास रस निर्वहे॥
राम नाम वन्दौ यदपि मुख ते कहा न जाय।
ज्यो तिय निज पति नाम को कहत बहुत सकुचाय॥
तासु मध्य आमीन भक्ति महारानी जू।
दहिने सुअग परमीश जुगल छवि खानी जू॥
वरनन लगेऊ स्वरूप राग मगल करि।
सहसौ शिर महि नाइ चरण रज हिय धरि॥

शिर चन्द्रिका किरीट अमित शशि रवि छवि।
जनु शशि रस कहुँ पियति वेनि नागिनि कवि॥

हस बन्धु मुख लुब्ध अलक अलि अलि जनु।
भृकुटि कुटिल छवि हरे कोटि मनसिज धनु॥

दिव्य जलज सम नयन श्रवण लगि सोहही।
जेहि चितवनि की कृपा सुजन जिय जोहही॥

करण फूल मनि कनी वनी अवरनि गति।
विपुल दिवस निशि राज छपहि विन्दुन प्रति॥

जुगल वदन छवि धाम कोटि शशि छवि इमि।
मानिक मनि ढिग पोत होत द्युति त्यो जिमि॥

तिलक अधर रद विंब हास अद्भुत लसै।
जनु घन रवि शिशु जलज मध्य दामिनि वसै॥

वेसर स्वच्छ बुलाक अधर पर हलकई।
जनु वृहस्पति दिवि शुक्र हृदय शशि ललकई॥

चिबुक कपोल अमोल गरे मुक्तावलि।
राम चरण छवि अलख लखहि सग की अलि॥

परम रुचिर अगद ककन मुद्री वर।
शोभा छवि सु शृगार सुभग तिन कर घर॥

हार बीच बैजति पदिक उर पर बनु।
धनु जुग मडल नषतहि शशि मडल जनु॥

सारी किनारी जनेऊ अमर धनु कह हसै।
जनु दामिनि कै दमकि जमुन विच थिर लसै॥

कटि अवरन पट दिव्य उभय तन मे फबै।
सग छवि अलख अनूठि तुच्छ उपमा सबै॥

नाभि दिव्य द्विज राज अमी हद अलि जिमि।
रवि नन्दिनी छवि भ्रमर करै छवि तह किमि॥

त्रिवलि रेख छवि सीव सूत्र किकिनि फवि।
मनहुँ महा छवि छेकि हसति त्रिभुवन छवि॥

कटि पर वर पट एक जुगनु शोभा असि।
मरकत गिरि उर तडित मनहु पूरन शशि॥

विधु मधु गण्डहि मण्डि चरण नूपुर धुनि।
जनु अलि स्वरन कञ्ज पर रमतापुही गुनि॥

नख मयक सुत लाल वनज दल पर लसै।
मनहु स्वेत अलि मौन पियत अनुभव रसै॥

कोटिन विमल निशेश नखन प्रति वारिये।
जावक अनुपम अमल तडित द्युति कारिये॥

पगतल अमृत सिन्धु चिन्ह तेहि चर जनु।
कोइ सखि जन जिय मीन पीन तेहि रस मनु॥

हनुमत शिव शुक सनक हमौ पाँचो सखी।
रहहि सदा प्रभु निकट करहि आज्ञा लखी॥

सकल चिन्ह हिय वसहि प्रगट एकै दुई।
सेवि धर्म यह परम रहहि पिय मन छुई॥

लाडिली लालन तनु छवि सम उपमा इमि।
रवि ढिगि अमित खद्योत दीप द्युति हत जिमि॥

मानिक मनि जहँ पोत गुज द्युति किमि जगे।
कोटिन सर हरि सर सम कहत लज्जा लगे॥

जुगल रूप ह्वै द्वै कर कमल सचल सर।
राम चरण किमि कहै कृपिन सुर पुर घर॥

मनि श्रेणी वेनी वनी जनु अहिनी अनी मुक्तन कसी।
घन गिरि जनु शशि कुण्ड कहँ उडि चलिय झुकि रस की रसी॥

भृकुटी कुटिल अलि कञ्ज चष मुख इन्दु सर विगसित मनो।
विहसित अधर रद हद छवि जनु दाम शशि भीतर बनो॥

जुग वीर जनु तेहि तीर कचन कमठ शिशु निकसे वसे।
मुख कञ्ज पर वेसर मनहु चित लाल मित अलि होइ लसे।

को कहै छवि छाके रसिक नति मूक मय रस ते भरी।
प्रति अग कोटिन वारिये जग करनि रक्षक ले करी॥

वन विहार

सब राहस साज बनाये वन विहरत सो रस पाये।
बहु रग के फूल उतारी वन माल गुहै पिय प्यारी॥

बहु भूषण सुमन बनावे रचि प्रीतम को पहिरावे।
प्रभु निज कर फूल उतारी बहु कचुकि हार सवारी॥
सब सखियन को पहिरावे सखि फूलन माग गुहावे।
रचि सेत सुमन बहु सारी सुचि रग विरगी किनारी॥
प्रभु निज कर वर पहिराई मुख दिव्य सुगन्ध लगाई।
सब दिव्य अलकृत सोहै रस रास वसन्त रच्यो है॥

वसन्त विहार

खेलत वसन्त लाडिली लाल, सुख सिन्धु उमगि आनन्द माल।
वन अद्भुत अति जहँ नित वसन्त, प्रभु विहरत लीन्है सखि अनन्त॥
तन लसत स्वेत पट सुभग अग, जनु वाल हस वस बीच गग।
हसि रग विविध डारत कृपालु, जनु कुन्द लतन्ह पर बैठे लाल॥
सब सखिय सुमन ले विविध रग, एक रचि वितान मोहित अनग।
सर सुमन सिहासन रचि बनाइ, छवि कहत काटि शारद लजाय॥
तेहि पर सखियन बैठाय श्याम, लज्जित प्रति अगन्ह कोटि काम।
तहँ नाचत सखि करि विविध गान, धुधुकत मृदग धमकत निशान॥
वीना तमूर नेदुर उपग, रस भरिय भेरि वाजत मुचग।
नूपुर ककन किंकिनी सुराल, गति थेइ थेइ थेइ थेइ उठत ताल॥
गावहि अनूठि रागिनि रसाल, सुनि रस वस विहसत उठे लाल।
रस हेतु वरे प्रभु अमित रूप, एक ओर भई सखी छवि अनूप॥
पिय ओर चलहि पिचकारि चारु, सखी और अबीरन परी मारु।
भई कीच अगर कुकुम सुरग, सुख सिन्धु बढेउ आनन्द तरग॥
एक सखिय नाम हेमा प्रवीन चलि रस छल करि प्रभु पकरि लान।
कोइ हार पीताम्बर लिये छीन, कोइ निज उर प्रभु उर डारि दीन॥
कोइ चुवत मुख लालन लडाइ, कोइ हसत पान वत्सल लगाइ।
मिलि प्रीतम सखि अल्हाद रूप, रचि राम चरण राहस अनूप॥
मनि भूमि पर लगे नचन गति जगमगति प्रति छाही वनी।
जनु छवि शृगार मनोज रति लजि चुनि पगतर सजि अनी॥

सखियों का नृत्य

मनि तरु लतन्ह जगमगति जनु देखत चपल तिर्पित नही।
सखि नचहि मुद्राकार प्रभु विच बीच करते कर गही॥

बहु ताल वाजहि चरण चचल मुरत कर मुख चष हुए।
मुक्ता कलिय नूपुर खसे जनु अमिय सर बहु शशि उए॥
दहु ओर वाजन सदि वजावहि रमसिंहा धुधु धद्धधू।
भभ भेरि वज तड तड नफीर निशान धधकहि डक धू॥
सहनाई पिय पिय गुमकि गुम मृदग झनझन झाझही।
तम्बूर जग मुचग करतालादि अनगन वाजही॥
तरु सुमन वर्षहि श्रम अकर्षहि सकल हर्षहि रस भरे।
सोलहहि जिन शृगार रस भरि अपर रस बाहिर धरे॥

शृंगार

श्रम कन मुख सोहें कमल कोश मोती मनु।
तेहि उपर अरुण रज परम अनूपम को मनु॥
मेचक कच अलि जनु कमल बदन पर झुकि झिले।
शशि राहु मनहु दुइ कुटिल समर तजि नइ मिले॥
रतनन भरि झारी जल सुगन्ध सखि लीन्हे जू।
निज प्रभु मुख धोइ सुख मूरति चित दीन्हे जू॥
कोउ भुज गहि ठाढ़ी कोइ सखि अग अगोछे जू।
कोइ व्यजन करें कोइ अचल ते मुख पौछै जू॥
कोइ कुण्डल अलकें उरझि गई निरुवारे जू।
कोइ मुकुट सुधारें भूषण टूट सवारें जू॥
कोइ कसहि पीताम्बर अग सुगन्ध लगावें जू।
कोइ चँवर ढुरावें मधुर-मधुर कोइ गावें जू॥
सखियन के भूषन निज कर लाल सुधारी जू।
फूलन रचि चौकी सखि प्रभु कहँ बैठारी जू॥
कोइ चरण प्रक्षाले धूप दीप करें प्यारी जू।
छप्पन विधि भोजन लाइ सखी न्यारी न्यारी जू॥
फल फूल मूल दल अभिनिन्दिक बहु लावें जू।
प्रभु सखिन पवावहि सखिय देइ प्रभु पावें जू॥
रस पाइ परस्पर लै आचमन सु पान जू।
करें दिव्य आरती वाजन धुनि धुनि गान जू॥
एक सुमन सेज रचित प्रीतम को पौढाई जू।
सखि पाय पलोटहि कुल पद परसि लडाई जू॥
हसि हसि सब मागहि रास दान पुनि दीजे जू॥
प्रभु राम चरण उठि जल विहार कछु कीजै जू॥

नृत्य-विहार

नाचत नट नागर सुख सागर उमग्यो री।
लालन मुख विमल इन्दु मेचक उर चिबुक बिन्दु॥
सखि मुख चष विमल कज तज गति विगस्यो री॥
भृकुटि कुटिल चचरीक थिरकत रसिक लीक॥
गान विच अलि अलीक तजि ढिग निकस्यो री॥
कर कर गहि ललिय लाल झूमत गज मत्त माल।
लचकत कटि ग्रीव चरण हिरि फिरि चलत्योरी॥
अलकै ललकै कपोल कुण्डल हलकै कलोल।
जनु शशि उर रचिहि डोल राहु रवि झूल्योरी॥
यहि विधि गये सरयु तीर तीर पुञ्ज बन गभीर।
पुञ्ज सुमन पुञ्ज भ्रमरि गुजत जन ज्योरी॥
युग तट मणि मय पवित्र चित्रित श्रेणी विचित्र।
प्रभु मन भव जल सनेत्र करुण रस भरयोरी॥
नील रतन मानिक जनु सेज शयन मानिक फनु।
जुन वन भव प्रभु रवि अलि रसन रट रस्योरी॥
सुमति कहति सूरति वलि मूरति दिखराऊ अचलि।
राम चरण जग तजि लखु भवन भैमि क्योरी॥

जल क्रीडा

परि लेलि प्रभु मानस ललिय ललि लाल कोतूहल रची।
जल केलि क्रीडा क्रीड जहँ अह्लाद क्रीडा कल मची॥
जलजात कर उच्छरित जल जलजात फैकहिं अलि लची।
तेहि सग भ्रमरि उडाहि गुजत देखि कवि शारद नची॥
जनु पुर शशि टूटहि विथकि अहि बाल तेहि रस लूटही।
जनु स्वरन सपुट वेष्टि रस अलि आलि चपरि लै जूटही॥
प्रभु लेत पुनि फैकत लगत जनु अमिय घट भरि फूटही।
जिमि राम चरण हवाय सिय पुर काम रति कर छूटही॥
यहि विधि जल केलि हेलि खेलत पिय पियारी।
उमगत आनन्द माल हसत धरत ललिय लाल।
अधर अधर परसत मुख दरसत सुषमा री॥
मिलित लाल अलक बक बेसरि अरुझेउ तटक।
अलि कच कुण्डल बुलाक अरुझेउ उपमा री॥

जुनु जुग विधु चष कुरग गुरु द्वौ रवि अरि अनग।
अहि रजु कसि बीच वैर सब तजि सुख भारी॥
बहु सखि निरुवारित करताल हस बजावती।
बहु व्यग राग गावती मन भावति नहि न्यारी॥
कर ते कर जोरि सकल नित्तंत्त जल उपर चपल।
चरन चलत छुवत छटकि नूपुर रवकारी॥
रत्नालकृत विचित्र जगमग जल विच पवित्र।
जनु घन दिवि तडित विपुल दमकत दुतिवारी॥
छुम छुम थेइ थेइ तरग गावति पिय सग सग।
चलित लजित जग अनग वाजत करतारी॥
अद्भुत राहस अनूप देखहि कोइ सखि स्वरूप।
राम चरण देखै किमि नयन अन्ध चारी॥

हिडोला

झूलत लाडिली लाल हिडोले।
नील सघन पल्लव तरु शोभित जनु वितान घन माल
गर्जहि मधुर मधुर पिय मन लै कोकिल शब्द सुराल।
वरषत मेह झरत तरु अमृत बोलत मोर रसाल।
श्री सरयू उमगत उज्ज्वल जल लहरि उठत मानो जाल॥

त्रिविध पवन निन्दक मारुत चल पट फहरात सु लाल।
पद कर भूषन तडित नखत शशि निन्दन धनु सुरपाल॥
बहु सखि सग सग झूलति है बहुरि झुलावति बाल।
गावहि मधुर लाल मन मोहै करहि विविध रस ख्याल॥

मनहुँ मदन रति के व्याहन कहँ साजि सकल निज ताल।
लाल विहारि देखि वन भूलऊ बिसरि गयो सब हाल॥
यह रस राशि रसिक कोइ सखि सोइ निशि दिन रहति निहाल॥
रामचरण यह छाडि कहै कछु कारिख तेहि मुख भाल॥

दास रूप नहि मिलत रहत ढिग चाह कछू नहि।
तीन मुक्ति फल एक एक यहि रहेउ चारि गहि॥
तदपि त्रिगुण विन तजे दास पद कवहु होइ सिधि।
जो वनिता पति लहै पिता कुल रहै कवन विधि॥

सकल धर्म भये दूरि दामि भइ ब्रज युवती जब।
जप तप व्रत नेमादि नाश यह दास होइ तब॥

बिन जागे नहिं दास दास यह होइ काहि लखि।
बिना लखे कहुँ प्रीति प्रीति बिनु प्रेम सके भखि॥
बिना प्रेम की भक्ति हेतु घृत वारि मथइ जड।
बिन सतसग गवार यथा जग चतुर होइ बड॥
जहा आस नहिं दास दास जहँ आस न है इमि।
श्री रामचरण रवि रैनि एक स्थान उदय किमि॥
टाकी शब्द अनूप वज्र घाटी धरि फोरै।
शशि प्रति जल बिन पवन दीप यहि विधि चित जोरै॥
नहँ सरवर इक अमी सहस दल कमल प्रेम रस।
जेहि जन को जिय भवर पियत जग तेहि गुलाम वस॥

अष्टयाम पूजा विधि

श्री रामचरण जी कृत

[अगस्त्य सहिता के मूल श्लोको का पद्यमय भाष्य। मगला आरती से लेकर शयन तक के पद। लखनऊ प्रिंटिंग प्रेस से सन् १९०१ ई० मे छपाकर छोटेलाल लक्ष्मीचन्द बम्बईवाले ने प्रकाशित किया।]

सखियो और सीता का शृगार

कोइ जल कनक महावर दइ पग पीय के।
जनु मरकत मणि पत्र लिखति यश सीय के॥
जनक लली पद जावक चित्र लोल दई।
कनक पत्र जनु लिखति राम मन मोल लई॥
सिय पग पीठ धवल मणि एक ढिगन कनु।
बाल हस सब कञ्ज कोश वोडी जनु॥
बिवलि नूपुर सिय पग रतन कनक कर।
मनहुँ विचित्र भ्रमर अलि लाल कमल पर॥
नूपुर तीन अवलि पग राम सोनकर।
मनहुँ पराग भरे अलि नील कमल पर॥
सिय नूपुर तर गेज कनक दुइलर बर।
नूपुर पर पैजनी बनी शोभा घर॥

नपुर ऊपर गोडहरा जानकी पीय के।
जात रूप मणि चुनित चुनित तस सीय के।।
पग शृगार करे चतुरी श्यामा सखी।
कोई कहै जेहि बस भयो राम रामा लखी।।
मिय को छील रसालत पाँच त्रै एक ही।
स्वर्ण खोल भरि मोति जडाव लरन गुही।.
जानकी कटि जगमगति नील पट पर छई।
मनहुँ सप्तरिखि नारि बलाहक पर उई।।
रामचन्द्र कटि घेर तीनि लर किकिणी।
नील शृग मध्य प्रात सुरुज जनु दामिनी।।
जानकि कटि मण्डल त्रय किकिणी घनि गुही।
मनहुँ शुक्र की माल सूत्र दामिनि पुही।।
किकिणि तर कटि सूत्र उभय शोभा अमी।
कनक तमाल लता तरु दामिनि जालमी।।
ललिय लाल कटि सूत्र युगल सखि रचि भरी।
राम चरण शृगार छवि जनु मखल करी।।

श्री राम जी का शृगार

श्री राम जू के कण्ठ कण्ठा लसत अतिशय गजमनी।
त्रकोण कौस्तुभ उर लसै रवि कोटि शशि दुति सो घनी।।
कौस्तुभ तरे बर गुज कञ्चन मणि कनिन अद्‌भुत बनी।
उद्योत रबि शतकोटि हृद पर पदिक शोभा भनी।
नाभी तरे बरमाल मोहन कनक बिद्रुम ललागे।
वैजन्ति माला किकिणी तर लागि रतन पचरग जगे।।
श्री कृष्ण नीलारुण धवल पीता पिद्दौ लर जगमगे।
शृगार कृत बनमाल रबि ससि ग्रीवते अरु पग लगे।।
कञ्चन धौत इव कल सुमन षट कलित जरावन गुहि तजे।
नव नील घन नखतन्ह नव ग्रह तडित शशि रबि बहुलजे।।

सखियो द्वारा सीता और राम का शृगार

कोइ सखि सिय भ्रू मध्य सुभग सेदुर करै।
मनहुँ अमल शशि शिखर दिव्य दीपक बरै।।

राम भाल तिलकोर्द्ध गोरोचन रेख दुई।
पीत मनहुँ घन शिखर तडित जग मग छुई।।

कोइ सखि सिय कच झारहि रुचिर माग गुहि।
शीश श्रवण लगि मध्य मिलित मोती पुही।।

टीका सिय जू के भाल श्रवण लगि पर ठटी।
पट्टा कार कनक नवरत्न कनिन जटी।।

टीका पर चन्द्रिका राम दिशि झुकि रह्यो।
रबि शशि बहु त्रिभुवन उपमा कछु नहि लह्यो।।

सप्त शृग यक मध्य किरीट राम शिर।
मणि जटित रवि कोटि चन्द मिलि नहि थिर।।

राम अलक घुघुरारि कपोलन लगि लसै।
मनहुँ लुब्ध अलि कमल भोर पीवत रसै।।

सिय सेदुर टीका भाल बेडी बनु।
कनक शृग पर केतु दुइज शशि शुक्र जनु।।

बेदी बनी अनूप श्रवणता टकनु।
जनु शशि हृदय दुकूल कमठ शिशु कचन।।

राम श्रवण कुडल मकराकृत लोल जू।
जनु, तमाल तरु झूलत मथन हिडोल जू।।

कोटिन रबि पर तेज कोटि शीतल शशि।
जनक लली की बोर तेज शीतल तमि।।

अति सुन्दर सिय के अम्बक काजल बनो।
अरुण कज के कोष श्याम रेखा मनो।।

काजल देहि सखी दुइ लोचन श्याम के।
जेहि बिधि जनक लली के तेहि बिधि राम के।।

सीता मुख अधरारुण पर बेसरि हलै।
जनु मयक सुत अरुण कज दलन पर चलै।।

राम बुलाक मनोहर चिबुक बिन्दु कई।
पीत सकल छबि छेकि छाप जनु करि दई।।

नील बिन्दु सीता जू के चिबुक सखी करी।
वशीकरण जनु यन्त्र राम चितहित धरी।।

पहुची बलय बहूटा मणि कनक जरावही।
सीता भुज द्वौ मूल सखी पहिरावहि॥

राम भुजन बाजू बलय मुनि मन मोहिका।
खडुवा पहुची ककन मणिन मुद्रिका॥

सिय पछुवा चूरी ककरण मुदरी छल्ला।
बक आदि बहु भूषण कनक मणिन कला॥

पीताम्बर मणि कनक छोर मोतिन छजै।
शरद प्रात रबि तडित तप्त कचन लजै॥

ललिय लाल के भूषण अगिणित को कही।
राम चरण सखि जानहि जो लखि छकि रही॥

जेहि सखि कुज राम सिय जाही।
तह तह पूजन सखिय कराही॥
जानकि रमिक जानकी सगे।
बन बिहरहिं कभु कुजन रगे।
बिहरत सुख जानकी बिहारी॥

आवत रास बिहारी देखो सखि।
सरयू तीर शृगार विपिन ते अति अनूप छबि न्यारी॥
सीताराम मनोहर जोरी चितवन की बलिहारी।
कुडल अलक हलक बुलाक की दलकत हृदय हमारी॥
मग सखी सौहै अलबेली बनी ठनी छबिकारी।
सुमन सिगार किये नखशिख लौ निजकर श्याम सवारी॥
प्रभु आगे सखि खेलत आवे फूलन गेद उछारी॥
झुकि झुकि लेत परस्पर फेकहि लखि अनन्द पिय प्यारी॥
आये दम्पति रामचरण सखि सुमन सिगार उतारी।
नदशिख मणि भूषण सिगार करि सिहासन बैठारी॥

राजित सिय रघुबीर सिहासन।
कोटिन भानु प्रकास सिहासन कोटिन शशि सम सीर॥
कोटि काम रति दुति निन्दत द्वौ श्यामल गौर शरीर।
मणि बहु भाति विभूषण शोभित पीत नीलबर चीर॥
बहु सखि धूप की युक्ति बनावहिं बहु दीप सजीर।
बहु सखि रचि नैवेद्य बनावहिं बहु सखि लीन्हे नीर॥

बहु सखि मुख मज्जन पट लीन्हे बहु सखि लीन्हे बीर।
बहु सखि छत्र व्यजन चामर लीन्हे बहु सदि करत समीर॥
बहु सखि बाजन विविध बजावहि ताल देहि बहु धीर।
राम चरण सखि गौरी गावहि मधुरे स्वर गभीर॥
प्रथम चरण तल पुनि नख जावक नूपुर बारह बानकी।
सखि आरति करे प्रिय प्राण की निरखहि छवि राम सुजान की॥
पुनि किंकिणि कटि सूत्र मनोहर बहुरि अधर चप पान की।
दम्पति मुख सखि शशि चकोर थभि पुनि सर्वांग प्रनाम की॥
पुन किरीट चद्रिका निरखि पुनि राम चरण सखि पान की।
अगि अग छबि सुधापान करि रामलाल अरु जानकी॥

अलि छबि देखु किशोर किशोरी।
रघुनन्दन अरु जनक नन्दनी तरु शृगार युग रूप फरो री॥
केकि कठ द्युति श्याम रामतन कचन धौत जानकी गोरी।
रामचन्द्र कर शर धनु राजत सिय कर कमल गेद छबि छोरी।
रामचन्द्र कटि काध पिताम्बर सारी नील सीय तन गोरी॥
मनहु राम सारी होइ सिय तन सिय पट पीत राम तन कोरी॥
को छबि कहै बिभूषण भूषित को अस जो सखि मन न हरो री!
युगल मनोहर अग अग प्रति वारो छबि रति काम करोरी॥
बहु सखि निकट ठाढि सेवा बहु नत्य तान स्वर गान भरोरी।
रामचरण सनकादि शेष शुक शिव हनुमत मन यहै धरोरी॥

अति प्रेम मगन तनमन भीजै सखि आरति सैन सुरुचि कीजै।
युगल चद सब के सन्मुख नित चित चकोर भयो मदन रतीजै॥
सीताराम सुधा छबि निधि मह चलत मीन इव चख लीजै।
अग अग लखि रूपसार शशि नयन मगन रह रह पीजै॥
बहु सखि ठाढि साज सब साजे बाजन ता ' गान मधुरीजै।
रामचरण सखि करत आरती मन क्रम ब ' अर्पि दीजै॥

सैन चलिय पिया मोर राम सिय।
सकल सखी मुख चद बिलोकहि रैनि गई बहु तेरि॥
अलसाने लखि नयन उनीदे सहजा सखी निहोरि।
लालिय लाल सोवनार चलहु बलि सकल सखी करजोरि॥
सुनि सखि बचन उठे पिय प्यारी उतरि सिंहासन सोरे।
सखियन राम सीय जु के भूषण हर शिर हसि कछु छोरे॥

भूषण बसन उतारि राखि सखि सैन विभूषण थोरे।
सीय राम सोवनार चले सुख सखियन अति उमगोरे।।
मणिमय पलग ढिगन मुक्तावलि सेज बद कसि डोरे।
राम चरण उछीर गेदुआ पै फेन सेज पौढे रे।।

सयन कियो पिय प्यारी सेज सुख।
विविधि रग मणि मय मदिर मै जगमगात उजियारी।।
मदन मजरी की आयसु सखि प्रथमहिं सेज सवारी।
दिव्य सुगन्ध सुमन चहु ढिग रचि विविध रग फुलवारी।।
सीताराम अराम कीन सखि ठाढि नीर भरे झारी।
चतुर सखी पद पदुम पलोटहिं राहस बात उचारी।।
बीरा पीक दान सखि लीन्हे सयन भोग भरे थारी।
बाजन पच बजाव पच सखि सप्त स्वरन रसकारी।।
आइ नीद सुख साइ रहे रघुनन्दन जनक दुलारी।
रामचरण सखि बहु चौकी रहि बहु निज महल पधारी।।

श्री जीवाराम 'जुगल-प्रिया' जी

(१) युगलप्रिया पदावली

श्री जीवाराम युगलप्रिया के प्रेम भरे गीतो का यह सग्रह लक्ष्मीनारायण प्रेस, मुरादाबाद मे सम्वत् १९५९ सावन बदी १३ को छपा। इसमे विशेषत सावन, फागुन के झूल और होली के पद है जिनमे श्री सीताजी तथा श्री रामजी के प्रणय विहार, रास, झूला के दृश्य विशेष रूप मे वर्णित है। अनेक राग रागिनियो के पद है भाषा मे पूर्वीपन है। उर्दू फारसी के शब्द आये है परन्तु अपेक्षाकृत कम। कुल १०७ पद है और पृष्ठ ५६।

विषय—युगल लीला विहार, रास विलास कनक भवन, सरयू तट की कुजो मे तथा सखियो सहित नाना विधि होली के आनन्दोल्लास और सावन मे झूलन विहार। इसके अतिरिक्त श्री युगल प्रियाजी के दो और ग्रथ है। **शृगार रहस्य दीपिका** और **अष्टायाम**। यहाँ हम पदावलो से कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर रहे है।

ये जागे श्याम सिया सग रग भरे रग महल कनक भवन शैन कुज धाम।
अलसौहै सौहै नैन झपकौ है मोहै मैन अग अग सुरत समर छाम।।
निज कुज ते छटा सी छवि पुज पुज आई चन्द्रकलादिक बाम।
वीना मृदग उपग कठतार चग मिलित चरित गावती ललाम।।
यह रस राज समाज विलोकत विसरयो है सब मन काम।
युगलप्रिया मगनाई रसिकन धन मिलन हेतु रटत युगलनाम।।

मैं वारी युगल पर वारी।
दशरथ जू के श्याम सलोने गोरी श्री जनक दुलारी।।
नवल निकुज नवल बनिता चहुदिशा लसति अति प्यारी।
गान सरस बीना मृदग धुनि युगलप्रिया बलिहारी।।

नई लगन ललन तोसे लागी।
या मिथिला की आवनि मैं तेरी विपुल अली छवि पागी।।
लै चलु पिय प्रमोद वन मे जहा ऋतु बसत अनुरागी।
अवध रगमणि महल काचनी युगलप्रिया बडभागी।।
चले दोउ कुज सरयू तट को मखिन सग अलमाने दिये गलबाही।
विथुरित अलकावली मुखारविन्द शोभित मुखमा मनह रसिकन
दृग कज मजु प्रफुलित जनु युगलभानु प्रगटे बनमाही।
छप तस्करादि जेते रसिक भाव दुखित रहे सूख्यो हृदवारि रासध्यान नाही।।
युगलप्रिया रसिकन के हृदयवारि रास ध्यान।
बैठक मजि पुलकत आनन्द रोम रोम असुजाही।।
लाडिली बनी अलबेली बना मतवारो।
श्री मिथिलेश कुमारि सरस छबि दशरथ राज दुलारी।।
श्यामल गौर नखशिख मुख माठनि अग अग छबि भारी।
युगलप्रिया दरशन के मनोरथ तलफत प्राण हमारो।।

जादू भरी राम तुमरी नजरिया।
जेहि चितवत तेहि वसकरि राखत सुन्दर श्याम रामधनु धरिया।।
जुलफन युत मुख चन्द्र प्रकाशित नासामणि लटकन मनहरिया।
युगलप्रिया मिथिला पुर वासिन फसी जाल विच मानो मछरिया।।

प्यारी जू होरी खेलन आई श्री सरयू तट कुज अनूपम धाम।
वीना मृदग मुरचग उपग सौ गावै रगीली वरवाम।।
प्रीतम आये धाय ज्यो अनग छाये प्यारी भाल दै गुलाल बैठे यकठाम।
युगलप्रिया दोउ मूठी गुलाल भरत सब समाज अग ललाम।।

खेलै श्री सरयू तट मे रग रगीली फाग री।
पुर कछु ओर प्रमोद बनी मणि कचन भूमि विभागरी।
तिनमे पूरव दिशि मिथिला सम्बन्ध सदा अनुरागरी।।
चारुशिला कमला विमलादिक चन्द्रकला गुन आगरी।
देति सुधारि लली लालन कर कुकुम पिचकारी नागरी।।

याही ते तत्सुख स्व सुखी सम्बन्ध टहल प्रिय लागरी।
जे यहि रीति प्रीति मे हुलसत युगलप्रिया बड भाग री॥

हो हो खेलत दशरथ लाल रगीली आजु रगीली फाग।
ललना कनक भवन श्रीरग महल विच नजर अबीरी वाग॥
विपुल कुज चहु दिशा अलीगन चन्द्रकलादि विभाग।
सजि शृगार वसन भूषन पिय प्यारी परम सुहाग॥
नहरे लगीहौ दै रगन श्री सरजू अनुराग।
भरि डारत पिचकारी पियपर मिय कुमकुमा पराग॥
चद्रकला भिजोई दई अग पिय सिर केसरि पाग।
प्यारी करतारी मनहारी बलिहारी प्रियलाग॥
यह लीला लहरी अवलाकनि भजनि प्रेम तडाग।
अग्र स्वामि पथ लहयौ अमित सुख जुगल प्रिया बडभाग॥

आजु खेलो रग होरी सइया आपु खेलो रग होरी हो।
दशरथ राज कुमार छैल तुम कालि करी वरजोरी हो॥
तुम रघुवश कुमार लाडिले मैं निमि वश किशोरी हो।
कौन बात मे घटी हमारे यूथप सखी करारी हो॥
रूप गुनन मे नागर प्यारे हौ नागरि कछु थोरी हो।
जुगलप्रिया मुस्कात छबीली रग महल की पोरी हो॥

आजा पियरवा रसिक रघुनन्दन।
रसिक राय रसिकन हिय चन्दन॥
याहि कुज मिलि रसिक रगीली।
आनि जुरी विमलादि छबीली॥
हमरो कुज मग माहि रसीलो।
तनिक विलबि मरस रस पी लो॥
सुनि अलि वचन लाल मुस्काये।
मिलि तेहि सग लली ढिग आये॥
याही मे तत सुख स्व सुख लखायो।
जुगलप्रिया सेवा मन भायो॥

भवरा सवलिया रामा हो गोरी कमल सिय प्यारी।
एक सखी अवध पुर आई पाती सुगन्ध पहुचाई॥
वाचत ही मन विकल भयो आये गाधिसुवन उपकारी।
ल्याये चरित्र वन पावन कीन्ही सुर मुनि मन भावन॥

धनुष कथा सुनि हर्ष भये मुनि सग चलनि मतवारी ।।
आये मिथिला सर सयाही छबि जल अथाह जेहि माही।
अलिगन दल लखि मुदित परम मकरद पान फुलवारी ।।
यह रसिक जनन के दाया जब होय रहित छल छाया।
तब ही लोचन मगन छबि छावत जुगलप्रिया बलिहारी ।।

गलबहिया दिये बैठे दोऊ आय सरजू कुज पुलिन मन भाये।
मनिन जडित कचन की अवनी विपिन प्रमोद प्रमाद रसाये।।
चहु दिशि अलि गन लमत निकाये।
निरखि निरखि नैन नेह बढाये ।।
सीस चद्रिका क्रीट सुहाये।
कुसुमी वमन भूषन छबि छाये ।।
देत परस्पर पान खवाये।
मधुर मधुर बतिया बतराये ।।
रूप सुधा पीवत न अघाये।
अघटित प्रीति वरनि नहि जाये ।।
युगल प्रिया यह दपति की छबि निरखन नैन रहचौ मडराये ।।

उमडि उमडि आई वादरि कारी।
दशरथ नदन जनक लली जू बैठे सखिन सग महल अटारी ।।
कुसुमी वसन युगल तन राजत जगमगात भूषन उजियारी।
अलकै विधुरि रही मुख ऊपर मुकुट चद्रिका लटक सवारी ।।
चद्रावती मृदग टकोरति चद्रा तानपूर करतारी।
चद्रकला जू वीन बजावत गावत उमग भरे पिय प्यारी ।।
अधिक प्रवाह बढयो सरयू को भरे प्रमोद विलोकत वारी।
युगलप्रिया रसिकन के सपति अगम निरखि रतिपति बलिहारी ।।

रग झूले अवध विहारी हो सरयू तट सग लिये सिय प्यारी।
सावन कुज सुहावन पावन रतन भूमि हरियारी ।।
निज निज कुजन ते बनि आई नित्य सखी अधिकारी।
गावहि सरसाती बरसाती दरशाती सुख भारी ।।
कबहु झुलावत प्यारी प्रीतम कबहू प्रीतम प्यारी।
युगलप्रिया रसमात परस्पर दपति लीला धारी ।।

रसिक दोऊ झूलत सरयू तीर।
रघुनन्दन अरु जनक नन्दिनी श्यामल गौर शरीर।

राजत छबि मैं रतन हिंडोला तापर बोलत कीर।।
गावहि छबि अवलोकि प्रेम भरि चहुदिशि सखिन की भीर।
बाजत वीन मुचग उपग मृदग ताल अति धीर।
युगलप्रिया अति सुख वर्षत जब लेत तान गभीर।।

जागे दोउ भोर प्रीतम प्यारी सीय सुकुमारी।
आलस भरे अँडात परसपर अखिया अति चित चोर।।
नाशामणि वेसरि अधरन पर हलत सरस दुहु ओर।
मनहु शुक्र सुर सुर गुरु विचरत है कुजकोष के कोर।।
रूप गर्विता नवनागरि पिय नागर श्याम किशोर।
युगलप्रिया दोऊ अवधविहारी जो कछु कहिय सो थोर।।

आज चल देखोरी आली श्रीराम रसिक पिय रास रच्यो सुखदाई।
राम भूषन वसन श्याम मलोने अग लो नील ली सगलोनी अली समुदाई।।
वीना मृदग मुचग कठतार चग वाजत ईमन राग परम सोहाई।
युगलप्रिया गान करहि चद्रकला लाल प्यारी उमगि तनछाई।।

सियावर सावरे छबि देखि।
रहत न तन मन सुधि कछु सजनी लगत न नैन निमेखि।।
सजि सिगार परस्पर दोऊ गलबाही वर वेखि।
युगलप्रिया अलि चद्र कलादिक सुफल सजीवन लेखि।।

झूमि झूमि छायो रस अखिया।
गरजन मेह नेह बोलनि मैं नवघन श्याम राम जिन लखिया।।
दामिनि सी दमकति अग अगनि गौरव रन चहुदिशि लस सखिया।
युगलप्रिया हिय नटत रसिक जन ज्यो मयूरिशिर पर करि पखिया।।

खेलत वसत रसिकाधिराज।
रघुनन्दन सिय मग अलि समाज।।
नव अग अग वर वसन साज।
बाजै मृदग अरु विविधि बाज।।
तह अलिगन गावै सरस राग।
रागी जन मन अनुराग जाग।।
कहे चद्रकला सुनिये जू लाल।
प्रमदा वन फूल्यो द्रुम रसाल।।
सजि दोऊ चलिये सत रग।
मन मोहन दोउ मिलि येक सग।।

आये जहा वन मध्य धाम।
आयत विशाल सुखमा ललाम॥
तेहि मध्य कुज बैठे जू आय।
तब चद्रकला वीना वजाय॥
नाचन लागी अलि विविधि भाग।
गावहि वसत अति सरस चाव॥
ऋतुराज सहचरी वेष कीन्ह।
मेवा भरि थारन साज दीन्ह॥
फूलन सिंगार किये अपने हाथ।
निरखत छबि ह्वै रहे अति सनाथ॥
तब युगलप्रिया रुचि समय पाय।
झोरी गुलाल हारी मनाय॥

उज्ज्वल उत्कठा-विलास

श्री युगलानन्यशरण 'हेमलता' जी

(१) उज्ज्वल उत्कण्ठा विलास

सुमधुर मनभावन दोहो मे श्री जनकराज किशोरी जी तथा श्री दशरथराज किशोर जी युगल सरकार के सरस नाम, रूप, गुण, धाम और लीला की उज्ज्वल उत्कठा से परिपूर्ण श्री युगलानन्य शरण जी महाराज की यह पुस्तक पुस्तक भडार लहेरिया-सराय (दरभगा) से प्रकाशित हुई है। अत मे दी हुई 'पुष्पिका' से पता चलता है कि सवत् १९७२ भाद्र शुक्ल अष्टमी भौमवार को इस ग्रथ का लिखना पूरा हुआ था। सपूर्ण ग्रथ दोहो मे है।

विषय—आरभ मे ७० दोहो मे नामोत्कठा है, फिर ९४ दोहो मे रूपोत्कठा है, तदनन्तर ३४ दोहो मे गुणोत्कठा है, तदनन्तर ३७ दोहो मे धामोत्कठा है और अन्त मे १६० दोहो मे लीलोत्कठा है। इस प्रकार कुल मिला कर ३९५ दोहो का यह ग्रथ रसिकोपासना के आधार ग्रथो मे सर्वसम्मान्य एव उपजीव्य ग्रथ के रूप मे पूजार्ह माना जाता है।

उदाहरण—

लोक-वेद बधन विपुल विरस विचारि बिसारि।
जपिहौ जीवन नाम वसु याम मनादिक वारि॥
नवल नेहनिधि नाम मधि मीन समान सुलीन।
रहिहौ हाय हिराय हिय हर सायत पन पीन॥
महा मधुरता नाम सुख सागर रसना चाखि।
भुक्ति मुक्ति-अभिलाष तृन-राख मानिहौ राखि॥

बार-बार रसना सरस कब दैहौ उपदेश।
रटि रमिये निज नाम-गुन-धाम-सहित आवेश॥

श्री करुणानिधि-नाम गुण श्रवण समेत उछाह।
पल पल प्रति करिहौ कबहु छोडि-छाड दिल-दाह॥

नाम मनोहर मोदप्रद कलित कूक सुनि कान।
ह्वैहै कबहू मन वपुष विवस समान महान॥

बाहर भीतर करन कुल नाम माझ करि लीन।
अमनस ह्वै रहिहौ कबहुँ निदरि वासना झीन॥

सिय-जीवन-अनुराग-घन नाम सनेहिन साथ।
कबहु मोर मानस रमन करिहै होय सनाथ॥

नाम-मोहब्बत मीठ मोहि कबहु लागहै नित्त।
ज्यो लोभी कामी हृदै वाम दाम दृढ चित्त॥

नाम-लगन अतर कबहु लगिहै लोभ-समेत।
छन बिछुरत तन त्यागिहौ जिमि झख वारि वियेत॥

नाम रटन रसना कबहु करिहौं होस हिराय।
जिमि मयक-मुख प्रान पति निरखति तिय बलि जाय॥

रे मन निशिदिन नाम मुद धाम जपन उत्कठ।
करत रहो पुलकित वपुष निदरि आस-वैकुठ॥

कौन काम की मुक्ति सो जह न रटन सियराम।
नाम-रागविन निदरिहौं सोउ दिन अति अभिराम॥

जगमग पग पकज परम प्रेम-प्रवाह निहारि।
ह्वै रहिहै चेरी सुमति सुरति सोहाय विचारि॥

ललित ललन लोने युगल पद पकज प्रिय अक।
अति अनूप नव रग से रगिहौ विगत कलक॥

अरुन हरन-मन नख-प्रभा राकापति शत-तूल।
मृदुल सचिक्कन चाहि कब ह्वै जैहौ भवभूल॥

अमल ललित अगुरीन-छबि मधुर आभरन-सग।
कब जोहत युग जाइहै निमिष समान सरग॥

अमल कलम-कोमल-ललित सुपद-विभूषन-बीच।
मम मन मनि ह्वै लागिहै सुनत सुरव रस सीच॥

युगल चरन-अरविन्द मृदु मधुर मरन्द अमद।
मन-मिलिन्द कब चाखिहौ परिहरि वनविष-फद।।

जानु जघ जग मग महा मनहारी कल कान्ति।
सरस स्वच्छ शुचि निरखिहौ सजि सब विधि चित शाति।।

कृस कामद कटि केलिमय रुचि रसराज सुधाम।
किंकिन कलित उछाह-भरि लखिहौ कबहु अकाम।।

घन-दामिनि-निदरनि वसन रसन सोहाग-समेत।
मम मन-नैन निहाल ह्वै कब हेरिहै महेत।।

नाभि मनोहर निम्न सर सुभग अनूपम देखि।
त्रिवली तरल-तरग-युत लोचन सफल विशेषि।।

भाव-उमग बढाय उर रस पसु वपुष सवारि।
लखिहौ नाभि-सरोज-छबि निखिल अपनपौ वारि।।

उर उज्वल लावन्य निधि विस्तीरन रसरास।
विशद विभुषन मय मधुर कब लखिहौ पगि प्यास।।

कलित कचुकी चारु चख चितवत कुच कल सग।
लोभित ह्वै रहिहै सुदृग मन समेत रसि रग।।

सरसी रुह-सुन्दर-सुखद-कोमल-ललित-ललाम।
कबहुँ कञ्जकर रागमय तकि छकिहौं वसुयाम।।

मृदु अगुरिन-मुद्रिक मधुर मण्डित-मनि-कल-कान्ति।
नख नव नूर-समेत कब लखि रहिहौ सजि शान्ति।।

अधर मधुर मन मोहने असल राग-रस रूप।
कबहुँ भाव-भरि हेरिहो हरन-हीय-दृग-धूप।।

नवल नेह निधि नासिका मुक्ता-सुनथ-समेत।
झुकनि-ललित-डोलिनि अधर-परसनि-हिय-हरि लेत।।

अजन-अजित श्याम-सित-अरुन रग रमनीय।
सुख-समूह-वितरन कुशल लखि ह्वै हौ कमनीय।।

रे मन अमन अमान ह्वै निरखु नैन सुख-खान।
सुख-समाधि पैहै अवस हिरस-हिराय-हरान।।

सुखमा-भवन श्रवन कलित कुण्डल ललित समेत।
रमक-झमक-झूलन निरखि ह्वै हौं कबहुँ अचेत।।

झाई कलित कपोल मिलि महा मोद मन देत।
युगलानन्य शरन - हृदै - हारी सब सुधि लेत॥

युगल किशोर - चतुर - चरन - गहि गति रति - दृग-दैन।
निरखि हरखि उपमा निखिल हसि पैहो चख चैन॥

प्रीतम - प्रानप्रिया पगे - प्रेम परस्पर पेखि।
धन्य अपनपौ मानिहो तृन - सम त्रिभुवन देखि॥

अग अग पर वारिये अमित अनग - गुमान।
पल प्रति छवि शतगुन नवल लखि लहिहो सुखखान॥

श्री सीता - सुख प्रद - सुगुन सुधा सहस मधुरेश।
रमि - रमि रस हरषाइहो निदरि नेह - भव - वेस॥

सुन्दरता - माधुर्यता - सुकुमारता - सुवेष।
महा माद निधि गुनन मधि ह्वैहौ मगन निमेष॥

श्री सिय - स्वामिनि - सग सुख - सुखमा - सागर श्याम।
दिव्य - भव्य - नितनव्य गुन गैहो तजि धन - धाम॥

मन बच बपु श्री धाम मधि कब बसिहो सुख-सग।
देखन दृग दुति दिव्य महि मोद मयी रग - रग॥

श्री सीतावर रस रसिक तरु तृण गुल्म लतान।
निरखि नेह युत नाचिहो सविहाय भुव - मान॥

लोक लाज कुल काज को समुझि सुमन विष रूप।
बसिहो बिमला बिमल बुधि बलित लखत युग रूप॥

कबहूँ कनक निकेत रति हेतु माझ ललचाय।
मरम सजातिन सग सुठि मजिहो चित परचाय॥

धाम दरम देखत दृगन चलिहै कबहुँ प्रवाह।
आपा - पर बिसराय सुधि अचल चित्त चख चाह॥

अहो भाग अनुराग मम मानुष - बपु प्रिय पाय।
अचल बाम - सरयू - सुतट विषम बिकार बिहाय॥

मान प्रतिष्ठा धूरि - सम ऋधि - सिधि धूर - समान।
अनत बडाई विष निरखि बसिहो धाम प्रधान॥

अष्ट कुञ्ज कमनीय चहुँ ओर चारु चित चोर।
निरखि निछावरि होइहै तन मन रग रस बोर॥

ललना ललित सवारि तन अतन निबारि सचेत।
कबहुँ युगल छवि हेरिहो बसि श्री कनक निकेत॥

सुमन सेज मृद मन्द सद सदन सैन रस हूप।
लोचन लगन लगाय कब तकि छकिहो गत धूप॥

चहुँ ओर झम झम झनक नूपुर किकन बीन।
सुभग सहचरिन मधुर धुनि कब सुनहो निति लीन॥

रग महल मधि मोद निधि ललित लाडिली लाल।
पगे परस्पर प्यार कब लखिहौ होय निहाल॥

कबहुँ हेरिहो नैन निज अति अलसाने अग।
प्रिया प्रेम परतन्त्र पिय सिय समेत रसि रग॥

उन्मद दृग राते रहस अरस निबारन नैन।
निरखि हरषि बलि जाइहो सुनि सरसाने बैन॥

प्रेम प्रमोद महा मदन मद माते दोऊ प्रात।
झुकनि परस्पर प्यार पगि जोहि मोहिहो गात॥

आलस रस बस बर बचन सुमन सचन सुख सार।
उर उमग उमगाय कब सुनि ह्वै हो बलिहारि॥

सिथिल बसन भूषन लसन युगल ललन विपरीति।
कौन सुदिन अनुपम निरखि पैहो प्रीति प्रतीति॥

श्री यूथेश्वरि साथ युग जीवन रूप अनूप।
पट उघारि लखिहो कबहुँ परि उछाह-रस-कूप॥

रसावेश उरझनि उरसि उज्ज्वल लगन लगाय।
विकल वपुष मगल असन कर वैहो उमगाय॥

गौर श्याम अभिराम मृदु मूरति मोद निधान।
सखिन समूह सु मध्य मे लखि छकिहो पगि प्रान॥

श्री सहचरी समाज युत शुचि शृगार निकुञ्ज।
कबहुँ जात दृग जोहिहो करि चञ्चल चित लुज॥

श्री रसराज मधुर सदन माझ मनोहर जोरि।
सजि शृगार बिलोकहिं सब सन नाता तोरि॥

रग रग भूषन बसन नख-शिख रचि रुचि सग।
मुकुर देय कर कज मधि निरखैहो सोमग।

हाव - भाव अनुभाव रस सरस परस्पर पेखि।
ह्वै जैहो बलिहारि निज भाग अनूपम देखि॥

अहो सुदिन शिर मोर कब युगल दिये गलबाह।
मन्द मधुर मुसुकाय मुख कब लखिहो चितचाह॥

पल - पल पर रचिहो कदा केलि कदम्ब सचाह।
जिमि निधनी धन कामिनी प्रीतम मिलन उछाह॥

नमिमय महल सुजग मगित सुचि सुरभित सब भाँति।
सहज सौज - सयुत सदा तहँ सजि सेज सुकान्ति॥

ललित लडेती लाल तहँ प्रीति - महित पधराय।
लखिहो मधुर मयक - मुख मुख- सुखमा दृग - लाय॥

मैन सुभग सजिहै युगल हौ पलोटिहो पाय।
बार - बार निज भाग को अभिनन्दन करवाय॥

चरन - चारु नख - कान्ति प्रिय अक अमल उर - लाय।
सावधान सुख सैइहो गुन अनूप धिय ध्याय॥

सबहि तोषि सुन्दर सुखद सिय प्यारी पुनि पास।
हृदै विपुई उमगाय मुद पीवत सुधा सु प्यास॥

विशद - विनोद - विहार - हित उपवन सखिन समेत।
सुमन सुफल निरखत कबहुँ लखिहो मोद - निकेत॥

चञ्चल चखन नचाय चहुँ ओर नचन चितचोर।
युगल - किशोर रिझाय अलि पाइय प्रीति - पटोर॥

सखिन सजायो सेज सुचि छीर - सार - सुकुमार।
नवल निकुञ्ज अजूब वर रचना रहस - अगार॥

विविध सौज - सुख - सजन श्री श्यामा श्याम सुयोग।
अति अनूप अनुराग सजि मौज सेन सम भोग॥

सखी सनेह - समेत सुचि सेज मोहासन साजि।
लली लाल पधराय तहँ निरखि रही रसराजि।

चम्पक चामीकर चपल चपला नैन निहारि।
सिय - स्वामिनि - अग - सुरति करि दैहौ अुनगन वारि॥

कोटिन केलि - कला - कलित प्रति - पल ऋतु - अनुसार।
युगल ललन - लोयन निरखि पैहो शुचि सुखसार॥

अर्थ पंचक

श्री युगलानन्यशरण जी

(२) अर्थ पंचक

सामान्य परिचय श्री लक्ष्मण किला अयोध्या के महन्त श्री रामदेवशरण जी महाराज के आज्ञानुसार महात्मा श्री रामधारीशरण जी की प्रेरणा से सेठ वशीधर लडीवाले द्वारा श्री रामायण प्रेस लिमिटेड अयोध्या मे मुद्रित तथा मुजफ्फरपुर निवासी श्री रामबहादुर शरण जी द्वारा प्रकाशित।

विषय श्री युगलानन्यशरण जी महाराज लिखित 'अर्थ पञ्जक' रससाधना के आधार ग्रन्थो मे मुख्यतम है। इसमे बहुत सरल सुबोध दोहो मे तत्त्व निरूपण एव भाव विवृति हुई है। इस छोटे-से ग्रन्थ मे (१) जीव का स्वरूप विवेचन, (२) ईश्वर का स्वरूप विवेचन, (३) उपाय विवेचन, जिसमे सम्बन्ध भावना भी है (४) फल विवेचन जिसमे पुरुषार्थ तत्त्व का सविशेष निर्णय प्रस्तुत किया गया है और (५) विराधी विवेचन तथा अन्त मे काल क्षेप की व्यवस्था है। श्री गुरुदेव जीवाराम 'युगल प्रिया' के स्मरण के साथ ग्रन्थ समाप्त होता है। अभिप्राय यह कि थोडे मे, सार रूप मे सरल सरस सुबाध दोहो मे समस्त तत्त्व निरूपण बडी सावधानी से हुआ है। ग्रन्थ मनन करने योग्य है। गागर मे सागर भर दिया है ऐसा नि सकोच इस ग्रथ रत्न के सम्बन्ध मे कहा जा सकता है। युगल उपासना तत्त्व का विवेचन पडा ही मार्मिक है।

उदाहरण —

प्रबल वपुष प्रारब्ध विहाई। श्री सियवर प्रत्यक्ष मिलि जाई॥
सब छर भार सियावर माही। अरपन कियो शरन गहिबाही॥
दिनहिं बितावति दैव निहारी। सोई दृप्त प्रपन्न बिचारी॥
जगत जाल परसत नहि जिनको। लेश अविद्या ग्रसत न तिनको॥
श्री सीतावर मग बिहारा। विविध भाँति उत्साह अपारा॥
सतत टहल सुधा निधि चाहै। परम प्रमोद उमग अथाहै॥
प्रभु अनुकूल भोग निज जाने। तत्सुख सुखी स्वरूप लोभाने॥

निराकार सब मे बसत, भक्तन हिय साकार।
युगल अनन्य विचार बिनु, भटकहि अन्ध गवार॥
निराकार मे सुख नही, केवल व्यापक रूप।
सरस रहस साकार मधि, श्री श्रुति शेष निरूप॥

अन्त करण शुद्ध होवै जब। बिरति विषय अन्तर पावै तब॥
यम आदिक अष्टाग समेता। क्रम ही से अभ्यास उपेता॥
मानस कुञ्ज मध्य इमि ध्याना। रवि पावक मधि धाम प्रधाना॥

तामधि सिंहासन सुधरावे। दिव्य मनिनमय बसन धरावे॥
श्री सियिवर मूरति मन हरनी। ध्यावे तहा सहज सुख भरनी॥
नख शिख नबल अग रस सागर। चिनमय करै सदा मति आगर॥
भूषन सुभग अग प्रति जो हैं। निरखि निरखि पुनि-पुनि मन मोहैं॥
परम दिव्य कल्यान गुनाकर। श्री सीतापति रूप प्रभा कर॥
याही भाँति सदा मन लावे। कबहूँ प्रेम विवश प्रगटावे॥
भक्ति योग सहकारी सोया। होय ज्ञान निर्मल पद जोया॥
लहै मुक्ति कैवल्य प्रधान। छूटै त्रिविध वासना मान॥
यद्यपि ज्ञान सुसाधन नीका। तदपि कठिन गाहक निज जीका॥

इन्द्रिन के निग्रह बिना, दुर्लभ ज्ञान सुजान।
ताहू मे आयू अलप, ताते भजन प्रमान॥

हाय हमेशा हिये रहावे। नैनन नीर प्रभाव बहावे॥
खान पान मानादिक त्यागे। निशिदिन नाह मिलन अनुरागे॥

पति पत्नी स्वामी अनुग, पिता पुत्र सम्बन्ध।
धर्मी धर्म शरीर अरु, सुभग शरीरि निबन्ध॥
शेषी शेष नियाम्य अरु, न्यामक रक्षक रक्ष।
तिमि आधाराधेय ते, व्यापक व्याप्य समक्ष॥
भोग्य भोगता एक रस, शक्ताशक्त निहारु।
परिपूरन पूरन रहित, ज्ञाता अज्ञ बिचारु॥
सकल वासना हीन अरु, अमित वासना पीन।
निज पर दृढ सम्बन्ध इमि, जानत परम प्रवीन॥

यद्यपि सब सम्बन्ध अनूपा। तद्यपि पति पत्नी सुख रूपा॥
याहि माहि अति प्रीति प्रकासे। निरावरन प्रीतम रस भासे॥
स्वर्ग मोक्ष अभिलाष बिसारी। केवल ललन मिलन पन धारी॥
वपु चौबीस तत्व कृत त्यागी। समुझि हिये तर प्रभु अनुरागी॥
श्री सियाराम मिलन अभिलाषे। मायिक गुन गति श्रम बिन नाषे॥
प्रान सुषमना द्वार निकारी। भाल भेदि गये धाम खरारी॥
केवल सूषमना से गमनो। विधि वैभवदिशि ते अति बिमनो॥
अर्चिरादि पथ होय प्रवीना। रवि मगल छेद्यो अति झीना॥
प्रकृति आबरन उतरि बहोरी। बिरजा सरित लख्यो रग बोरी॥
तेहि सरि मज्जन करि बड भागो। लिंग देह सब विधि तेहि त्यागो॥
कारन तन बासना बिनासी। शुद्ध भया बहु विधि सुखरासी॥

बिरजा पार भयो अनयासा। निज सकल्प सहित गत आसा॥
अमल अमानव कर पर परस्यो। महाप्रेम सागर सुद सरस्यो॥
त्रिगुन रहित वपु बिरज बिवासी। दिव्य भव्य आनन्द निवासी॥
सदा प्रकास रूप सुचि सुन्दर। जेहि लखि लज्जित अमित पुरन्दर॥
हियवर रूप प्रकास मोहावन। भाजन भयो छयो छबिछावन॥
मनि मापान द्वार ह्वै नेही। चढ्यो बढ्यौ हिय हर्ष अदेही॥
निरख्यौ नैन मनोहर जारी। गौर श्याम अद्भुत रग बोरी॥
धनुष बाण कर कञ्ज विराजै। नख शिख नवल विभूषन साजै॥
कुण्डल क्रीट चन्द्रिका मोही। जेहि छवि छटा निरखि मति मोही॥
अग अग सौन्दय मोहावन। उपमा निखिल रहित मन भावन॥
सखी सहचरी अमित सुदासी। चहुँ दिशि चमक रही चपलासी॥
नाना मौज लिये कर माही। निरखि रही प्रीतम गल-बाही॥
यहि विधि सिय वल्लभ छवि देखी। यकटक रह्यौ नैन अनमेखी॥
सियवर अति सनेह युत ताही। सकल भाँति अति प्रीति सराही॥
मम चित्त चाह रही अतिभारी। कब लखिहौ परिकर प्रियकारी॥
तब आवन इत अद्भुत भया। मोद प्रमोद मोहि अति नयो॥
बड भागी सोई अनुरागी। जो मम निकट आय छलि पागी॥
या विधि तुगल किशोर सुधानिधि। बानी विमल कही सब विधि सिधि॥
सदा मोद मन्दिर रम लहिये। परिचर्या निज रुचि वस कहिये॥
अमित रूप धरि सेवा कीजै। यथा योग्य अभिनव सुख पीजै॥

मधुर मनोहर चरित वर, दम्पति केलि कलान।
निरखै हरखै एक रस, परिहरि अमित विधान॥

श्री जानकी सनेह हुलास शतक

श्री युगलानन्यशरण जी

(३) श्री जानकी सनेह हुलास शतक

इस ग्रन्थ मे महात्मा श्री युगलानन्यशरण जी ने श्रीराम से बढकर श्री जानकी जी की महिमा नाम प्रभाव, रहस्य का वर्णन किया है। महात्मा श्री युगलानन्यशरण जी राम की अपेक्षा जानकी के प्रति अधिक आसक्त है, अधिक अनुरक्त है। उन्होने अपने अनुभव के आधार पर सुन्दर, सरल, सरस दोहो मे अपनी भावना को बडे ही सजीले ढग से व्यक्त किया है। वे कहते है कि सारा विश्व राम का नाम जपता है परन्तु स्वय राम श्री जानकीजी का नाम जपते है और उनके रूप का ध्यान करते है, उनके चिन्तन मनन निदिध्यासन की केन्द्र बिन्दु श्री जानकी महारानी

ही है। युगलानन्यशरण जी की अनन्यता की, इस छोटे-से ग्रन्थ मे बडी ही भव्य मनोज्ञ अभिव्यक्ति हुई है जो सहज प्रभाव डालती है।

महा मधुर रस धाम श्री सीता नाम ललाम।
झलक सुमन भासत कबहुँ होत जोत अभिराम॥

रसने तू नव नागरी गुननन आगरी नाम।
क्यो न भजै सकोच तजि सजि मन मोद ललाम॥

सखी किंकरी भाव भल धारि सुर सने नित्त।
रमो निरन्तर नाम सिय निज हिय खोल सुचित्त॥

पर पति मगध नव नागरी रचत जौन विधि नेह।
चलत बदत सोवत सोई इमि कब नाम सनेह॥

रूप जीविका वप यथा पल पल सजत सिगार।
मम मन कबहूँ नाम छवि सजि है सरस सवार॥

तैल धार सम एक रस स्वास स्वास प्रति नाम।
रटौ हटौ पथ असत से बसौ रग निज धाम॥

दीप सिखा निर्वात जल लहर हीन तेहि भाँति।
कब ह्वै है मन नाम जप जोग रहित भव भ्रान्ति॥

यथा विषय परिनाम मे बिसर जात सुधि देह।
सुमिरत श्री सिय नाम गुन कब इमि होय सनेह॥

अन्ध नयन श्रुति बधिर वर बानी मूक सुपाय।
याहू ते सत गुन हरष कबहूँ नाम गुन गाय॥

श्री सरजू तट पुलिन मधि निसा उजारी माह।
हे सिय कहि कब बिवस ह्वै रहिहो दुति द्रुम छाह॥

लता लवग कदम्ब तर तर दृग पुलकित गात।
जयति जानकी सुजय जय जपिहो तजि जग नात॥

श्री रघुनन्दन नान मित करे जो कोटि उचार।
ताते अधिक प्रसन्न पिय सुनि मिय एकहु बार॥

जानकि वल्लभ नाम अति मधुर रसिक उर ऐन।
वसे हमेशे तोम तम समन करन चित्त चैन॥

जो भीजै रस राज रस अरस अनेक विहाय।
तिनको केवल जानकी वल्लभ नाम सहाय॥

प्रीतम की जीवन जरी रसिकन की सुर धेनु।
भक्त अनन्यन की लता सुर तरु सिय पदरेनु॥
बार बार बर विनय करि याचत श्री सिय देहु।
लोक उभय आसा रहित निज पिय नाम सनेहु॥
भुक्ति मुक्ति की कामना रही न रचक हीय।
जूठन खाय अघाय नित नाम रटो सिय पीय॥

संत सुख प्रकाशिका पदावली

स्वामी युगलानन्यशरण जी

(४) सन्त सुख प्रकाशिका पदावली

स्वामी युगलानन्यशरण जी महाराज के मधुर रस भरे पदो का यह सग्रह सन् १९१७ मे लखनऊ स्टीम प्रिंटिग प्रेस मे छपा। इसमे प्रेमस्वरूप भाववश्य भगवान् रामचन्द्र के प्रति रसिक भक्त हृदय का प्रणय निवेदन है जो अपनी सरसता और सहज प्रभावशालीनता के कारण पाठको के मन को मुट्ठी मे कर लेता है। श्री युगलानन्यशरण जी की पदावली मे प्राय सूफी शब्दावलियो की भरमार है। इश्क, आशिक, महबूब, जुल्फ, जुल्म, सितम, जख्म, दर्द, आह, फरियाद, वफा, जफा, यार, आदि शब्द इन्हे विशेष प्रिय है और छूटकर ये इन शब्दो का व्यवहार करते है।

बिलगि जनि होइयो हो पहलू प्यारे।
सजनी सिय सुन्दरी सग सुख सेज सोहावन सोइयो हो।
युगल अनन्य अली मद मत्त दृग दोऊ दिलवर छवि जोइयो हो॥
निठुर पन प्यारे उचित न लागे।
तुम बिन छन छन छैल छबीले मिलन मनोरथ जागे॥
दृग देखन ही दरद दिवानी दिल दुसमन दिन दागे।
युगल अनन्य अली अपनी लखि के कारन तृन त्यागे॥

सब मे परि पूरन राम न तिलभरि खाली।
जित जो हौ जिकिरि जमाय वही बनमाली॥
अखियन मे चश्मा चाह धरे रहु प्यारे।
सब विश्व विलास प्रकाश रूप उजियारे॥
नहिं नेकु बिषमता लेश देश दुति धारे॥
समता सुचि शहर निवास सजे सुख सारे।
तन मन बन पर्वत बीच फैलि रही लाली॥

नगारा नेह का नित बाजत आठौ याम।
सुनत श्रवन सुख रस जम दायक भायक भल छवि धाम॥
केकी कोकिल बीन सुधा से अधिक मधुर धुनि ग्राम।
जो नहि सुन्यो स्वाद मय इह धुनि लह्यौ न तिन विश्राम॥
जग ठग जड वचक तेई जन जो नहि सुमिर्‌यौ नाम।
युगल अनन्य रहित सशय अब मन पायो आराम॥

मोरी तोरी लागी लगन रघुबीर।
जानत जीवन जहान जहा लगि पगि रहि मति गति गीर।
मपनेहुँ शौक जौक दूजी नहि पल पल प्रिय पथपीर॥
जोइ जीवन धन चाह चारु चित सोइ सुखि सुगन गभीर।
युगल अनन्य शरन घायल दिल निरखत सरयू नीर॥

कैसे भूलि गई वर बतिया।
शरन मयुत मौपत सुख ठौर ठौर प्रिय पतियाँ।
सकल जीव निज जानि दया दृग देखत तजि गुनगतियाँ॥
हौं तेरी तूही मेरो पति दृढ प्रतीनि छकि छतियाँ।
युगल अनन्य शरन अन्तर उर रुचत नही जस जतियाँ॥

रसीले लाला लागि गई तोसे प्रीति।
जिय जानत पहिचानत प्रीतम विरहिन रति रुचि रीति।
चाह अथाह हमेश बढत चित रुचत न गज विपरीति॥
काहू सग रग निकसे नहिं छोड्यौ नीति अनीति।
युगल अनन्य शरन मिलि हौ प्रिय बढी प्रबल परतीति॥

पीके पियाला पिया परचैहौ।
पल पल प्रेम बढाय गाय गुन रग निधि छवि अरचैहौ।
मनमति गुनि गुरु ज्ञान ध्यान सब साधन हित खरचैहौ॥
नाह नेह बिन देह गेह कुल खेह समुझि न रचैहौ।
युगल अनन्य शरन सतगुरु श्री राम चारु चरचैहौ॥

अब हम भई मोहानिगि साची।
कृपा करी कोशल पति प्रीतम मधुर मोह घत भाँची॥
बिसरी विषय विभूति वासना नासी जगमति काची।
नूतन नेह बाधि नूपुर पद परा प्रीति युत नाची॥
साधन सकल निवारि नम करि युगल नाम सनराची।
युगल अनन्य शरन सीतावर रहस भावना याची॥

जानकी रमन पियारे तुमसन लगन लगायो।
कठिन गाठि नहिं छुटत छुटाये समुझि सनेह समाया॥
रसिकन सग रग पहिचान्यो पाँचो वपुष भुलाया।
मत मतान्त सब देखि चुकी सत सुख सपनेहुँ नहि पाया॥
अब जनि श्याम और नहि भासे रहे छोह छवि छाया।
युगल अनन्य शरन बन्दी पिय सपदि कीजिये दाया॥

बेदरदी दरद क्यो जाने हो।
वाके हिये न व्यापी ऐसी ताते दुख नहि माने॥
जाके पायबे आय न भासी सो हसि हाँमी ठाने।
मौन रहौ तो रह्यौ जात नहि बोलत डोलत प्राने॥
हार रही कछु यतन न लागे ऐसा व्यथा समाने।
युगल अनन्य शरन हरसायत उर बेधत दृग बाने॥

केहि विधि विरह बुझावो सखीरी केहि विधि प्रीतम दर्शन पावो।
शिथिल रहत अग अग विरह बस दरद भरी अकुलावो।
ओचक उठि बेहोश दवानी पिय पिय कहि बिलखावो॥
कबहूँ अचानक हाय हिये करि जीवन स्मृतक कहावो।
कहुँ सुधि पाय झरोखन झाँकति पथिकन से बतरावो॥
ना जानो कौनी विरमायो यह गुनि हिय पछितावो।
युगल अनन्य धारि धीरज कहुँ ललन ललित गुन गावो॥

अम्यरीति

कासे कहो को माने हमारी।
अपने जान चतुर स्यानी तू मेरे मत मतिमन्द गवारी॥
लग्यो न चाव चाद प्रीतम रस अबही तो भोरी सुकुमारी।
घायल भई न पिय गुन रचक ताही त देती गनिगारी॥
जब मिलि हौरे लिहै रसिया से टब करि मौन रहेगी प्यारी।
युगलानन्य दसा न नू कतर बरनत शरम सकोच अपारी॥

बरषत बुन्द विरह बरवारी।
करकत करक करेजो कामिनि कहि न सकत हिय हारी।
गरजि गरजि गरबी गाहक जिय जारत जम डर डारी॥
चहुँ दिशि चमचमात वैरिनि यह मदन कृपा न करारी।
मान मरोर लिये मादक छकि मन्द मयूर पुकारी॥

जहँ तहँ छाय रहे दुख दायक विरहिनि एक विचारी।
युगल अनन्य शरन सिय पिय बिनु वेदन अकथ अपारी॥

वरषा ऋतु रस बरसावै।
विरहिनि हिय हाय बसावै।
पल पल पिय मृदु मधुर मोहनी मूरति हित ललचावै।
मन्द गरजि गुनगान करत बादर मिस जस प्रकटावै॥
चपला चमकि देखाय दाह दिल दूनो दरद दिवावै।
युगल अनन्य शरन सिय पिय छवि छटा छला बछवावै॥

पिय और सुरतिया लागी।
अब न सोहात सदन सजनी।
उमत उमग रक अन्तर उर दरश चाह चित जागी।
बिस भाव चाव चरचा चल अचल दरद दिल दागी।
युगल अनन्य शरन सिय वल्लभ भेटिये छबि अनुरागी॥

सरयू तट बास सजावो।
निज नेह निशान बजावो।
लखि ललना लोभ लजावो।
गुरु सन्तन शरन सजावो।
दृग जान रग रुचि लावो।
इत उत की कुमति घौलावो।
सिय श्याम सनेह समावो।
गुन नाम निरन्तर गावो।
चित चोरन रूपहि ध्यावो।
मत परमानन्द मोहावो।
बहु बाद बिखाद तजावो।
समता सुख शहरहिं जावो।
नहिं अनत अनन्य लोभावो।

कैसे भीजे हमारा हियरा।
प्रभु प्रतिकूल क्रिया करनी मम होय रह्यौ रातम तियरा॥
श्रुति सम्मत सुख धाम रामधन श्याम निरन्तर नियरा।
दरश परश बिन हाय बढत नित अथिर अधिक दिल दियरा॥
शरनागत पावक पन प्रियतम बैन ऐन मुद सियरा।
युगल अनन्य बिना पाये पति वपु खरग अति पियरा॥

स्वामी श्रीजानकीवरशरणजी

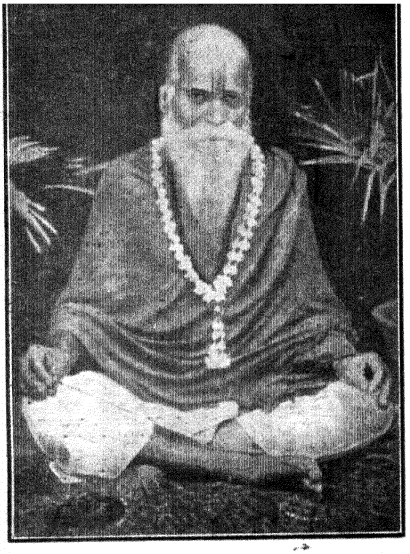

स्वामी श्रीरामबल्लभाशरणजी

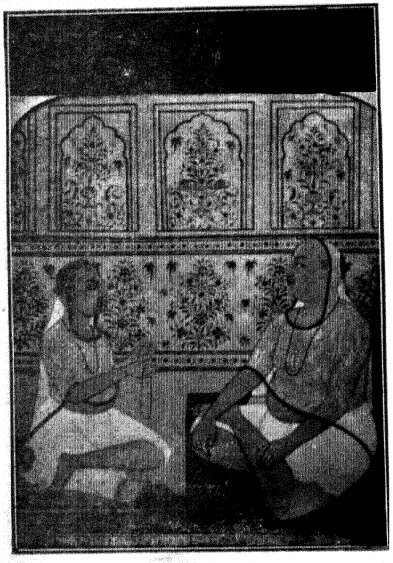

स्वामी श्रीसियासखीजी

श्री सीताराम नाम परत्व पदावली

स्वामी युगलानन्यशरण जी

(५) श्री सीताराम नाम परत्व पदावली

नाम की महिमा और रस पर एक बहुत ही प्रामाणिक अनुभव सिद्ध ग्रन्थ। राम नाम का मद पीनेवाले की मदहोशी का बडा ही भव्य चित्रण। समस्त ग्रन्थ यहाँ से वहाँ तक अनुभव के रस मे पगा हुआ है। लखनऊ स्टीम प्रिंटिग प्रेस मे कार्त्तिक शुक्ल १९६९ वि० मे मुद्रित तथा प्रकाशित।

नाम नेम छेम प्रेम हेम झलक दाई।
रटत हटत हाय फटत मोह पटल काई॥

अटल पद प्रवेश जटिल जीवन घन देश वेश पेश प्रीति उदित होत जोत जगमगाई।
मन मति गति गमन दूर नूर पूरहिय हजूर रहस मत महल शुचि सरूप दृग देखाई।
युग अनन्य परम प्रिय प्रसन्न तासु मूल फूल भूल शूल समन स्वाद सतत सरसाई॥

राम नाम मधुर सुरस पीवत पति पावै।
युग युग प्रति प्रभा पुज सयुत सरसावै॥
मद बिलास भास खास सु छबि छटा छावै।
लहर लय ललाम आम अनुपम अनुभावै।
युग अनन्य युगल रूप निकट नित मोहावै॥

झुकता हुआ आता है दिल शरसार नाम मे।
इसको पिला दिया कोई जन जहू जाम मे॥
चरचा चली इस बात की सब खासो आम मे॥
क्या खूब रहस नीद से सोता अराम मे।
ताकत नही है और की जो जावै धाम मे॥
खुरशैद से भी ज्यादे रौशन मोकाम मे।
मुझको दिया दया ही मे बरबास बाम मे॥
तकलीफ फद फानी न रहती है धाम मे।
खुद ख्याल युग्म खो गया फसियाद दाम मे॥

रटन रस रसिया बिरले देखे।
जिनके प्रान अधार नाम सुख सारन तजहि निमेषे॥
विमल बरन हिय हरन हार करि परिहरि विषय विशेषै।
अगुन सगुन युग रूप एक जिय लखहि अलेख सुवेषे॥

पगे प्रेम पन प्यार पीन तन अतन हीन बिन रेखे।
युगल अनन्य शरन तिनकी सुचि सोहबति चाह परेखे।।

पर प्रभु मिलत नामहि जपे।
देखिये दृग दिव्य हुति करि श्रुति सुग्रथन थपे।।
महा मोह मदादि मन भव से न सश्रिति कपे।
होहि नहिं सन्मुख कदाचित विहग पति अहि खपे।।
गगन शब्द अनूप मधिमन मगन छन प्रति छपे।
छवि अकथ छकि जकि जात आतम मरम गुरुमुख तपे।
होय युगल अनन्य जीवन अटल नहि भवन पे।।

सुमिरत नाम रग रस मिले।
सरस सुखमा सुचि सुरभि सग मिलित हिय सुख खिले।।
लोभ लालच दभ दुर्मति तृगुन ग्राहन गिले।
दमक दस धापरा रस रूपा हृदैथलु थिले।।
गौर श्याम स्वरूप नख सिख भाव सनमुख पिले।
युग अनन्य शरन परम प्रिय रहस रुचि दृग रिले।।

सीताराम नाम से सनेह सजावो।
पाय परम पद प्रीति प्रभा पति श्रुति मति लौकिक लाज लजावो।।
परम परेस प्रान प्रीतम सतसग सुरग अभग छजावो।
नाम परत्व विभव अनुपम गुन सुनत गुनत रुचि शान पजावो।।
योग विरति वर बोध भक्ति मय अनुछन करत कलेश भजावो।
युगलानन्य शरन सुधाम बसि नौबति नेह निशक बजावो।।

राम रस पीवत जौन सुभागी।
तिनके भाग अदाग सराहत सुर मुनीश अनुरागी।।
लाय लाय लय लगन मगन मन अतन तीन तम त्यागी।
होय रहे मद होश जोश छकि परा प्रीति मति पागी।
युगल अनन्य शरन साचे सद शौकी विमल विरागी।।

राम नाम मत्रसार प्यार सजि उचारो।
साधन समुदाय हाय हित हिय बिचारो।।
शुद्ध शाति सुचि सुभाव सतत धियधारो।
सीतापति पर परेश हुकुम पल न टारो।।

विशद वेद बैन सुरित समुझत दुखदारो।
सत गुन अनत शरन साबित निरधारो॥
रहित मान शान सपद सेवन सु बिचारो।
दुख सुख सम सुमति मन न करत तिमिर तारो।
युग अनन्य शरन विषम बादन निरवारो॥

राम नाम अति प्यारो हमारो।
सोचो शब्द स्वभाविक रमनिधि नेह निबाहन हारो॥
पारस मनि चिंता चय सुर तरु काम धेनु अगनित नितवारो।
अतरत्यागि निरन्तर निशिदिन काहू भाति करब नहिं न्यारो॥
अपर भरोश सदोश कोश दुख दारिद दाह दशोदिसि धारो।
चाखि चाखि हिय हरषि हरषि निज नाम सुधारस साझ सबारो॥
युगल अनन्य शरन सद्गुरु की कृपा कटाक्ष पाय उजियारो॥

भजिये युगल नाम अनूप।
है इहै रस रहस बीज सुसत श्रुति नहि रूप॥
प्रीति प्रनय प्रतीत पूरन सहित ध्यान स्वरूप।
रसिक सग उमग युतकरि छाडु भव भ्रम धूप॥
सहज अनुभव अमल भासत नसत कर्म कुरूप।
सुहृद साधु सुशील गुन गहि लहि सुमत सतरूप।
युग अनन्य शरन सुधारस सुभग सुमिरन भूप॥

मीठी लगे मोहिं अपने पिया को नाम अनूपम रग भरो जी।
अपर ठौर नहिं प्रीति बढत कछु छनछन मेरो हीय हरो जी॥
चारिउ फल के चाहन सपनेहु सुख सपति जगभार परोजी।
साधन सिद्ध नाम केवल दृढ मन बच करम सुबूझि धरो जी॥
बिना अयास रुच्छ नाना मत सागर सहजहि सहज तरो जी।
युगल अनन्य शरन सतत सुख अति बिचित्र तरभाव भरो जी॥

प्रथम नाम अभिराम रूप सुख सागर गुरु ते पावै।
रसना रटन लगाय हृदय अहलाद विशेष बढ़ावै॥
तजे नाम भ्रम श्रम वरनाश्रम कर्मा कर्म बहावै।
गहे सर्वदा प्रीति रीति रस सहज स्वरूप समावै॥
मौन हमेश रहे जग से सब बाद बिखाद भुलावै।
नाम अखड धार हरदम शमदम सनेह सरसावै।
युगल अनन्य शरन मर भीजन वस्तु बिलास बतावै॥

मति मेरी अलसानी सुमिरत नाम रगीलो।
पीके प्रेम पियूष माधुरी नाना रस निरसानी॥
रैन नीद दिन चैन चित्त बिच बिहूवलता बिलखानी।
मिले मधुर महबूब मिलापी नव मुद मगल मानी।
युगल अनन्य जानकी जीवन नाम निसा सरसानी॥

हमारी तेरी लागी है प्रीति अखड।
किसही तरह न छूटि जागी शीश होय सत खड॥
बिसरै हौ सब सुख माया मय आमय सखि ब्रह्माड।
सतगुरु सत सु शब्द श्रवन करि पगिहौ प्रेम प्रचड।
युगल अनन्य शरन रहिहौ इत प्रभु बल पाय उदड॥

कबहु दिशि मे रि हू हेरि ये लाल।
मै प्यासी प्रीतम पुनीत रस कीजिये जलद निहाल॥
निठुराई फावित न होत पिय सरस सुभाव रसाल।
उर आकुल अति रहत मिले बिन कठिन करजे साल॥
केवल आस राख रोई नित रसिक रीति प्रतिपाल।
युगल अनन्य शरन अपनाइये सब बिधि सियबर हाल॥

सवत सत उन्नीस पर, एको त्रिसति जानि।
जेष्ठ मास सित पक्ष पुनि, तिथि चौदशि अनुमानि॥

लषन कोट कौशल पुरी, सहसधार के तीर।
राम वल्लभा शरन लिखि, नाम पदावलि धीर॥

श्री प्रेम परत्व प्रभा दोहावली

श्री युगलानन्य शरण जी

(६) श्री प्रेम परत्व प्रभा दोहावली

श्री युगलानन्य शरण जी 'हेमलता जी' के प्रेमविषयक दोहो का सग्रह श्री लवकुशशरण जी ने किया और चर्च मिशन प्रेम (गोरखपुर) मे २२ वी नवम्बर, सन् १९१६ ई० मे छपा। आरभ मे जो गुरु-परपरा है, वह यो है—

श्री जीवाराम—'युगलप्रिया' जी
|
श्री युगलानन्य शरण जी हेमलताजी
|
श्री जानकीवर शरण 'प्रीतिलताजी'
|
श्री रामवल्लभाशरण 'युगलविहारी जी'

श्री लवकुशशरण लीला विहारी जी

इस सग्रह मे विरह-ज्वर, रूप-लालसा,प्रणय-विहार, लीला रसास्वादन,अष्टयाम भावना, रूपसुषमा, और अन्त मे सूफी शैली पर विरह वेदना एव प्रणय निवेदन है। भाषा प्रवाहमयी है। श्री युगलानन्य शरण जी की समस्त रचनाओ मे सूफी शब्दावली ध्यान देने योग्य है। इस सप्रदाय के अधिकाश सत साधको मे सूफी शैली के दर्शन होते है, परन्तु युगलानन्य शरणजी की रचनाओ मे वह विशेष रूप मे उभर आई है। सभव है उनकी आरभिक शिक्षा-दीक्षा उर्दू-फारसी की हो या यह भी सभव है कि उन्होने प्रेम का आस्वादन और अनुभव उसी प्रकार किया हो जैसा सूफियो मे मिलता है। जो हो, भाषा बडी साफ, प्रवाहमयी, सुपुष्ट और शक्ति-सम्पन्न है। भाव और भाषा की सशक्तता और सरसता और उसकी व्यजकता का जैसा भव्य परिचय युगलानन्यजी के पदो मे मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

उदाहरण—

विरह-ज्वर

सीताराम सु बिरह की जेहि अतर लगि चोट।
श्री युगलानन्य शरन तिन्हे रहत न प्रभु सुख वोट॥

प्रीतम कठिन कृपान से मति अन्तर उरभार।
सुमन माझ सूरति सजन जिन्ह लागै तित धार॥

हाय हमारे रैन दिन किन दुखात कहौ काहि।
बिना सिया बर दरद दिल बूझन हारउ नाहिं॥

बिरहिनि कर कति पलहि पल करि करि सूरति श्याम।
कौन भाति लालन मिलौ हौ अभागिनी बाम॥

हर हमेश मद मस्त रहु गहु गुरु ज्ञान महान।
जपु जग जीवन नाम नित हित चित्त सहित महान॥

बैनतेय सत कोटि सम सबल नाम जिय जानु।
बिपुल बासना पन्नगन समन करन द्रुत भानु॥

आखरिआ झाई परी बाट निहारि निहारि।
जी भरिआ छालोपरी नाम पुकारि पुकारि॥

नयन मयन सरसेस रस अयन सयन रस राज।
रयन अयन छाके छटे छटा छबीली आज॥

नाम नेह बिन वृथा सब पथ सप्रदा मीत।
प्रान बिना बपु नीर बिन सर नृप बिरहित नीत॥

अउवल इश्क कथा सुने धुने नेह सह माथ।
गुने सरुचि चित बीच सोइ सुख सुर सुन्दर गाथ॥

उठे दरद तब जरद तन हरद बराबर होय।
गरद मिशाल बिहाल नित हित हर साइत जोय॥

दरस पिआस निरास सब स्वास स्वास प्रतिनाम।
रटे घटे पल पाव नहि कबहू बिरह ललाम॥

देखे बिना बियोग ज्वर ज्वाल जले सब अग।
कब शीतल दृग होयगो निरखि जुगल छबि अग॥

दशा दिवानी रात दिन बदत बहकते बैन।
हात बिना घूमत फिरे छन छन टपकत नैन॥

जाति पाति कुल वेद पथ सकल बिहाय अनेम।
निस दिन पिय के कर बिकी रुकी न प्रीतम प्रेम॥

हेरत तब महबूब छबि छाई छटा रसाल।
लखत लखत नख सिख मधुर भई लीन सुधि त्याग॥

जग जीवन सुख सिंधु श्री पद पकज प्रिय अक।
युगलानन्य निहारि निज नयन निहाल निशक॥

एक एक आभा भरन भुवन आभरन अक।
चारेक दृग दरशन महाराज हात नर रक॥

नख सिख निरखत ही रहो नवल ललन गुन गाय।
विषम विशिष लागे नही सौष सरस सरसाय॥

सिय बल्लभ समबन्ध शुभ सेशी शेष विचार।
देही देह अखड नित नाता नेह निहार॥

पाच क्लेश व्यापै नही चित न होय विक्षेप।
जा जगमग मतमग मिले तन मन सन निर्लेप॥

हे सिय बर तव इश्क मे मुझ तकार पकार।
गहे रहत त्यागत नही बिह्वल करौ पुकार॥

दवा दरद दूरी करन है समीप तब श्याम।
अबि रहित दरपन मुझे दरसाइय अभिराम॥

जुगल किशोर बिहार रस भीने महल मझार।
दिये लाम वे परस्पर स्वादत सुरस अपार॥

चितवत तीर सुपीर हर बून्द न बरस्यो हाय।
भौंह कमानहिं से निकसि बेधि कियो नहिं हाय॥

मेह मनोहर मोद मय वचन विलास बिचित्र।
कबहू पिय बरसाइये जनि बूझिये कुमित्र॥

रैन जानिग जपिये युगल बरन बिशद रस राशि।
लहिये लाह अमोल मनि प्रीतम परम प्रकाशि॥

सूरति सरस सजाय सुचि सार शब्द सद सग।
रमिये राग अदाग युत मिटे मनोज प्रसग॥

दर्शन सर्सन सरस सुख हरसन मागहु जाय।
नर्सन कछुक न होयगो बर्सन उमर बिताय॥

गुन गावे रोवै रैन जागे त्यागे तीन।
हिय पागे पागे न कछु भागे भव मग दीन॥

निषिल विश्व को मूल जो अधिष्ठान दुति षान।
मूल बन्ध सुमिरन महित सोहै समुझ सुजान॥

खजन गजन नयन नव व्यजस बिनहि सोहात।
निरखत नेह सनेह सह मोल बिनाहि बिकात॥

निज निज मन सन्तन कह्यो प्रभु परतत्व प्रचार।
काहू बीच न भेद कछु सब मत सुख प्रद सार॥

प्रभु भावै सोई करै दास स्वतत्र न होय।
निज इच्छा नहिं राखिये रहिये सनमुख जोय॥

कामिनि कठिन पिशाचनी रुधिर चूसि सब लेय।
नेम प्रेम रस गधहू हिये न आवन देय॥

कहर लहर जस जहर मुद मेहर सहज नव नैन।
नजर नेह कबहू करै मोहू पर प्रद चैन॥

सपदि सप्रेम बिलोक दृग कुन्डल दुति दिलदार।
युगलानन्य शरन तहा अटकि प्रान बपु बार॥

बिपति बराबर हर्ष नहि जेहि जुत सुमिरन नाम।
धिग सुख सपति सपन सम बिसरावत श्री राम॥

चित्त वृत्ति रोके कुशल असल समाधि अनाधि।
श्री युगलानन्य शरन कहू कीजै साधन साधि॥

हौ सिय बर हाथन बिक्यौ होनी होय सो होय।
इत उत कतहू झाकिहौ प्रभु दरवाजे सोय॥
सिद्धाई सूली सहस समुझे सन्त सुजान।
नाम अमल माते रहैं जहै जहान बितान॥

अष्टयाम-भावना

नाम अमी मानम रमी शादा गमी समान।
काम कमी सश्रिति समी जमी प्रीति प्रतिभान॥
निवछावरि मनि गन करो प्रतिपल स्वास न पाय।
युगलानन्य न बिसारिये प्रभु रस दहि नहवाय॥
घटिक शेष निसा रहे उत्थापन सिय लाल।
मगल भोग सुआरती अवलोकन छबि लाल॥
ता पाछे मजन सुभग शृगारादि रसाल।
करि कुतूहल जुगल मिलि लखि दृग होहु निहाल॥
घटिक चार प्रयत यह करे भावना नित्य।
दृढ बिराग सु सनेह सह करि थिर चचल नित्य॥
बल्लभ भोग सु आरती सत रजादिक केलि।
निरखे प्रहर सुदिन चढे तक मुद मगल मेलि॥
राज भोग माला सरस भोजन नाना भाति।
केलि कुतूहल लखि छके जुगल जगामग काति॥
चिन्तन करे सप्रीति रुचि मध्य दिवस लो सैन।
मन बच पार बिलास बर कृपा प्राप्य रस अैन॥
प्रेमावेस सु जुगल छबि निरखे सहित उछाह।
सखी सु परिकर रग रगी गावे गीत उमाह॥
पुनि सर उपवन निकट कल केलि बिलोकन फूल।
घटि द्वै एक आनन्द अति बरसत महा अतूल॥
चारि घटी पुनि सुचि सभा सदन लाडिली लाल।
नेह न्याव निरनय रहस करहि प्रसन्न बिसाल॥
जूथेश्वरी समाज सब बैठी निज निज ठौर।
गान तान उत्सव परम बचन रचन रस गौर॥

सन्ध्या समय सु सौज सुठि भोग राग रस स्वाद।
घटिका चारि सुप्रेम नित कीजे समय सुयाद॥

सखी सु परिकर आरती करहिं अनेक प्रकार।
महा मोद मगल कुतुक कोलाहल सुख सार॥

रस मय मधुर बिहार बर रास कुज सुख पुज।
अर्ध निशा लो लगन करि ध्याइय करि मन लुज॥

व्यारु बिसद बिनोद युत बिबिध प्रकार कराय।
सैन कुज रचना रचे सुमन बिचित्र बिछाय॥

गावत मगल रहस गुन पौढाये सिय लाल।
निज निवास थल गवन करि चितै रहस रसाल॥

शेष निशा रसकेलि सुख अनुभव अमल सगम्य।
कृपा बिबस कोउ यक रसिक पावहिं अपर नरम्य॥

या बिधि आठउ याम छकि रहे भावना धारि।
सुधि बुधि लोक अरु वेद को पथ फलादिक वारि॥

कहे कहावे रम नही बिन ध्याये छबि सार।
ताते सब मन नात तजि भजिये युगल उदार॥

यह उज्वल रस रहम की बिसद भावना गोय।
मदा सुमन मधि ध्याइये सुचि त्रित चौगुन चोय॥

सीताराम सुनाम जपि करे महा मुद प्राप्त।
रहस अकथ कथिये कथ बरजहि सब बिधि आप्त॥

सीताराम परात्पर प्रेम प्रबोधक नाम।
साधन साध्य स्वरूप श्रम समन करन गुन ग्राम॥

मन चाहे कतहू चले रसना हिले न जाय।
प्रभु कृपाल करिहैं कृपा शमिहै सश्रित ताय॥

रूप-सुषमा

अमल कमल कर परस्पर परसन प्रीति प्रकाश।
युगलानन्य अली सुमन सुमन करन प्रतिकाश॥

बडभागी रागी रसिक बसिक बिनोद बिहार।
लखि लखि चखि रस रूप छबि कलित कपोल बहार॥

चिबुक चारु चमकन चतुर चखन चाहि चित वैन।
चपल चाह चूरन करन हरन हृदय तम मैन॥

कहा गुलाब कली कहा कठिन कठ कित कूर।
कोमल कमल चिबुक कहा अनुछन नित नव नूर॥

चिबुक चटक पर बिन्दु बर पीत श्याम अभिराम।
प्रीतम प्रिया स्वरूप जनु लिये ललित आराम॥

सरस श्याम प्रिय पीतबर बिन्दु युगल रसखान।
युगलानन्य सनेह सजि लखत रहो बसुमान॥

युगलकिशोर स्वरूप चित चोर बिन्दु बिच बित्त।
पल प्रति लगन लगाय के लगवाइय सह हित्त॥

श्री सीताबर बिधु बदन बनज बदत बहु लाज।
वेद न बिदुल बिकार युत कहो सुष्ट मुख साज॥

कहा कलक निकेत किल कला कलित लाचार।
युगलानन्य सुमुख प्रभा पल प्रति अगम अपार॥

लहर कहर जस जहर मुद मेहर सहर श्री वैन।
युगलानन्य निहारिये छावत छबि चित चैन॥

अग अग प्रतिबिम्ब परि दरपन मे सब गात।
बहु आभरन निवारि के भूषन जाने जात॥

जब जब जन्मो कर्म बस तब तब सिय पिय प्रीति।
बढे धाम बरबाश सह सुमिरत नाम सनीति॥

श्री सीता रामीय बिनु भए भयानक भीति।
बिनु सत कौनहु भाति नही दिन दिन गति बिपरीति॥

निर्मोही मेरा मेहरबान हरवान हुआ सब तौर।
किस के पास गुजारिये अपना हाल सजौर॥

अपना हाल सजौर दौर दिलवर तक मेरी।
जिसके केर मे बिकी भली बिधि तिसकी चेरी॥

हर यक तरफ निगाह किया दुनियाजिय टोही।
करुणा करिय कृपाल न अब हूजे निर्मोही॥

दीजे सिय वल्लभ सतस अवध सहर बर बास।
अथवा श्री कामद निट सुभग बिचित्र निवास॥

सुभग बिचित्र निवास खास निज महल सोहावन।
सर्वोपर आनद सदन पावन ते पावन॥

बिरति भजन सपन्न चित्त अनुछन मम कीजे।
युगलानन्य सुनास नेह निरमल नित दीजे॥

मन मैदा सम पीसिये रचित रुचि तर अभ्याम।
लगन कराही शौक सुचि मरयी सुरस हुलास॥

यद्यपि परदा परी बीच से चेरी छेरी।
श्री युगलानन्य सुप्रीति तऊ प्रभु तेरी मेरी॥

निर्वाहो निज नेह नव निर्मल नीरद स्याम।
अवगाहो मेरो मधुर मानस हस ललाम॥

आशिक औ माशूक हमारा नाम है।
समुझे फाशिक लोग न जोरत बाम है॥

एक जाति सब तौर गौर के किये से।
हरि हा युगलानन्य नाम रस रसना पिये से॥

नाम अमी रस मिला फेर आजार क्या।
राम महल मे गये बहुरि बाजार क्या॥

चखा स्वाद सत बरन फिरि आम अनार क्या।
हरि हा भया सु दौलतवत कहो शिर भार क्या॥

अमल अनूपम असल नाम श्री राम है।
और अमित सुनु नाम सो सदृश गुलाम है॥

किया खूब सा परख शषु दूकान मे।
हरि हा लिया ललाम सुनाम राम रसखान मे॥

किया फकीरी साच फेरि डर कौन का।
लिया नामनिज मुख्य काम क्या गौण का॥

दिया तसदुक भाल लाल के वास्ते।
हरि हा युगलानन्य खटक बिना आशिक रास्ते॥

श्री युगलविनोद विलास

ा-विहार

'युगल विनोद विलास' सहिता के पचम अध्याय का सरस काव्य में अनुवाद है। यह ढंग का अद्वितीय ग्रथ है। रसिकोपासको में इस ग्रथरत्न का बहुत आदर है।

जुगल विचित्र विहार किधौ कल हस हसनी।
किधौं मत्त मातग कलित करनी प्रससिनी॥

किधौं कामिनी काम किधौं यामिनी चदबर।
किधौं सजल घन दाम नीर अन्तर विनोद कर॥

किधौं अमल अनुराग रूप रस भूप सुतन धरि।
क्रीडत कुवर किसोर किसोरी व्याज साज करि॥

सखिन सहित घनश्याम राम अभिराम नवल तन।
रसिक मनोरथ मधुर कामदायक प्रसन्न मन॥

नबल नाजनी नारि कज कर गहि गरुर गुनि।
प्रीतम परम रसज्ञ रचत कौतुक अनेक पुनि॥

अति अगाध जल बीच डारि हरषत काहू पिय।
तिमि काचित वर वाम पकरि विन वसन करत हिय॥

रस निधि निज वर बाहु जत्र यत्रित ललना करि।
मगन होत छबि जोत परम प्रगटत सुधारि धरि॥

कैतब कुशल अजब नायिका एक कज दृग।
निपतित प्रीतम अग अमल मानो मनोज मृग॥

किधौं सचीपति सुमति नवल नग लषि समान घन।
गिरत छटा छबि सहित रहित आमर्ष हर्ष मन॥

किधौं मजीली स्वर्णलता सुर द्रुम सनेह तजि।
अमल तमाल अनूप रग रमनीय आप भजि॥

काचित कला निकेत बाम कूदत स्वतत्र जल।
गहत लाल कर कज जाय औचक असक कल॥

प्रीतम प्रेम प्रकासि परम पडिता रहस मधि।
ललिन समेत अथाह नीर मज्जति विचित्र विधि॥

ललित लडैती लाल सखिन सम्पन्न परस्पर।
नवल नीर कन कज करन सीचत विचित्र तर॥

कोमल कर पद कज मजु आघात सरस सुचि।
करहिं केलि कमनीय रमन रमनी समेत रुचि॥

महा मधुर धुनि छाय रही चहु ओर विलच्छन।
सखिन सहित सिय श्याम नवल रस समर अनुच्छन॥

कोउ सहचरी सनेह सनी लखि ललित उर स्थल।
मृदु तर सुपद सरोज हनत क्रीडा रस विह्वल॥

काचित सखी सलोन ललन दै अकमाल अति।
समुझि विपुल भय नीर मध्य मज्जन हित डरपति॥

अति चातुरी रचाय एक आली अलबेली।
गहि प्रीतम प्रिय अग गई बन बीच अकेली॥

काचित सखी सरोज मुखी अति सबल धारमधि।
पडी बडी हैरान हीय व्याकुल न रच सुधि॥

तरल तरगन सग वसन विलगान न जानति।
बहुरि होस हिय लाय विपुल व्रीडा मन मानति॥

सरस सकोच सजाय निकट प्रीतम न जात तिय।
कोउ अलिक गहि बाहि विहसि सनमुख कीन्ही पिय॥

तव व्रीडा सपन्न वाम मज्जति अतर जल।
निरखि नवल निज नैन नाह दीन्ही सुवसन भल॥

रसिक सिरोमनि श्याम राम अभिराम नेह निधि।
जुगल करज दै चिबुक बीच चुम्बन करि बहु विधि॥

कलित कपोल अमोल वाम निज प्रिय सजुत करि।
चाखत सुधा समूह अधर रस अति उमग भरि॥

जिमि चञ्चल पन छोडि चतुर चञ्चरी कञ्ज रस।
पीतव पद्म प्रमोद पाय घूमत सनेह बस॥

यहि विधि विपुल विहार सहचरि सग रग रचि।
करि सनेह रस लीन मीन मन हरन स्वाद सुचि॥

जल क्रीडा कमनीय निकर परिकर विशेष सजि।
भीने नवल निचोल सरस सिर सह आनन भजि॥

हेम मनोहर वरन छोभ वर वसन सुतन छवि।
दम्पति नेह नवीन परम प्रतिभा भसिति कवि॥

परिहेल प्रभु मानस ललीय लाल कौतूहल रची।
जलकेलि क्रीडा क्रीड जहँ अहलाद क्रीडा कलमची।।
जलजात कर उच्छरित जल जलजात फेकहिं अलि चली।
तेहि सग भ्रमर उडाहि गुजत देखि कवि शारद नची।।
जनु पूर शशि टूटहि विथकि अहिवाल तेहि रस लूटही।
जनु स्वरन सम्पुट वेष्टिरस अलि अलि चपरि लै जूटही।।
प्रभु लेत पुनि फेकत लगत जनु अमिय घट भरि फूटहिं।
जिमि रामचरण हवाइ सीयपुर काम रति कर छूटहिं।।

यहि विधि जलकेलि हेलि खेलत पिय प्यारी।
उमगत आनन्द माल हसत धरत ललिय लाल, अधर अधर परसत मुख दरसत सुषमारी
मिलित लाल अलक वक वेसरि अरुझेउ तटक अलि कच कुडल बुलाक अरुझेउ उपमारी।।
जनु जुग विधु चख कुरग,गुरु द्वौ रवि अलि अनग अहि रजकसि बीच वैर सब तजग सुखमारी।
कोउ सखि निरुआरनि करताल हसि बजावति वहु व्यग राग गवति मन भावनि नहिं न्यारी।।
करते कर जोरि सकल निरतन जल उपर चपल, चरण चलत छुअत छटक नूपुर रवकारी।
रत्ना लकृत विचित्र जगमग जल विच पवित्रैं जनु घन दिवि तडित विपुल दमकति दुतिवारी।।
छुम छुम थेइ थेइ तरग गावत पिय सग मग चलत लजत गज अनग वाजत करतारी।।
अद्‌भुत राहस अनूप देखहिं कोई सखी सरूप, श्रीरामचरण दखहिं किमि नयन अन्ध चारी।।

वहुताल बाजहिं चरण चञ्चल मुरत कर मुख चष छुये।
मुक्ता कलीय नूपुर खसे जनु अमियशर बहु शशि उये।।
युग युग सखी बिच बिच एक मध्य राम निर्नत।
सगीत ताण्डवी सुगन्ध गति अनेक ल्याई।।
गावत षट् राग राम रागिनि स्वर ताल ग्राम।
सब धरि सखि रूप राम राम हेतु आई।।
श्री जानकी रघुनन्दन मन भावति भई ब्रह्म रैन।
श्री राम चरण सकल जीव परमानन्द पाई।।
यद्यपि अली अपार, मुख्य गनी गन नायिका।
द्वै हजार हजार, एक एक सखी के किंकरी।।

उभय प्रबोधक रामायण

श्री बनादास कृत

महात्मा बनादासजी

महात्मा बनादास जी के अनेक ग्रन्थो का पता अब लगा है। उनमे साधन की ही विशेषता है—ज्ञान वैराग्य, भक्ति, नाम स्मरण, पवित्र जीवन का ही प्रकरण विशेष रूप से

आया है। महात्मा बनादास जी ने स्वय स्वीकार किया है कि बाहर बाहर से उनकी दास्य भक्ति है पर अन्तर के अन्तर मे मधुरा भक्ति है। अवध के अधिकाश महात्माओ की साधना का यही रहस्य है।

उभय प्रबोधक रामायण—लखनऊ के मुन्शी नवलकिशोर के छापेखाने मे दिसम्बर सन् १८९२ ई० मे छपा—'हरि अनन्त हरिकथा अनन्ता' तथा 'रामायण शतकोटि अपारा' के अनुसार श्री बनादास जी को 'उभय प्रबोधक रामायण' मे सात काण्ड श्री गोस्वामीजी के सात काण्ड से सर्वथा भिन्न है। इनके सात काण्ड के नाम है—मूलखण्ड, गुण खण्ड, नाम खण्ड, अयोध्या खण्ड, विपिन खण्ड, बिहार खण्ड, ज्ञान खण्ड और शान्ति खण्ड। इसमे दोहा, चौपाई, सोरठा, छन्द, कवित्तादि अनेक प्रकार के ललित छन्द है। भाषा बडी ही शुद्ध साधु और शुचि है। बनादास जी एक पहुँचे हुए सन्त थे यह उनकी रचनाओ से स्पष्ट है और इनकी शैली बडी ही मनोहर एव प्रभावमयी है। पाठक के मन को वह सहज ही गिरफ्तार कर लेती है और कालरिज के 'ऐशिएट मैरिनर' की भाँति पाठक पर कथा का जादू का-सा असर होता है। शेष भाग मे तो कथा रामचरित मानस के अनुसार ही चलती है परन्तु विहार खण्ड मे भगवान् राम वन से लौटने के बाद एक बार जनकपुर जाते है और वहाँ से लौटकर काशी मे काशीराज के सम्मान्य अतिथि होते है। यह सर्वथा नयी उद्भावना है। भक्तो ने भगवान् की जिस किसी लीला का जिस रीति से साक्षात्कार किया वैसे ही वर्णन कर दिया है इसमे शका के लिए कोई अवकाश नही है।

ऊपर कहा जा चुका है कि बनादास जी की मधुरोपासना परम गुह्य है एव गोपनीय भी। अतएव मुख्यत उनके ग्रन्थो मे ज्ञान वैराग्य के आधार पर भक्ति की प्रस्थापना ही विशेष रूप से परिलक्षित होती है पर जहाँ तहाँ अप्रकट रूप मे अनायास अन्तर की गुप्त धारा भी व्यक्त हो गई है जैसे—

इत उत घूमति बाग मृगा खग बिटप निहारति।
लगी सुरति रघुबीर मूरति ते नेक न टारति॥
सीता बूझति सखिन नाम तरू लता बिटप कर।
चहति न नेक बिछोह प्रीति पथ दृढि अति तत्पर॥
कहूँ कहूँ प्रगटत दुरत प्रभु सीता जनु सूर शसि।
कह बनादास बल्ली लता जलद पटल तट पर सुअसि॥

राम बाम कर सुमन गिरयौ धोखे सो भूतल।
रह्यौ न पूजा योग लेन पुनि लगे फूल दल॥
अन्तर्यामी सकल सदा जनकी रुचि राखै।
शारद शेश गणेश निगम नारद अस भाखै॥
प्रीति रीति पहिचानि बो त्रिभुवन तीनिउ काल महँ।
कह बनादास रघुनाथ सम कबहूँ ना उन कतहुँ कह॥

सिया राम हिय मध्य राम सिय के उर माही।
थप्यो पुष्ट तेहि काल तुष्ट आयो दोउ पाही॥
नख शिख देख तरु पउ भय जनु मुकुरहिं छाया।
तदपि न मानत तृप्त काल अति अलि लखि पाया॥

युक्ति वचन सखिय न कहिये ऐहै यहि बेर नित।
आजु ते प्रतिदिन नेम करि गिरिजा पूजिन लाय चित॥

हीय बनी उपमान तिहूँ पुर राम बना हमरे मन भावै।
दम्पति आसन एक बिराजे तजो रति कोटि मनोज दबावै॥
सावल गोर सोहात मनोहर तोप नही जेति ते शिव पावै।
दास बना धृग जीवन है असि मूरति में जो सनेह न लावै॥

राम सिया अवलोकनिचारु बिचारु किये न कोऊ लखि पावै।
गूढ सनेह न जात लखो सुठि शील सकोच हिये मे दुरावै॥
दोउ परस्पर भाव बढावत ताको कहाँ उपमा कवि लावै।
दास बना अति भाग्य के भाजन जाके हिये यह मूरति आवै॥

काम करि शावक के कर से अजानु बाहु उर सुठि बृहदशु यज्ञ पीत धारी है।
राजै भुज अगद औ ककण कनक कर जटित मणिन मुद्रिका कि छवि न्यारी है॥
राते अरबिन्द कर जानु पीन काम साथ मधनि रोमावली सो लागै अति प्यारी है।
बनादास कटि सिंह चरण कमल चारि श्याम गौर जोडी अग अग शोभा क्यारी है॥

भाग्य सराहै सबै अपनी जो समय तेहि मे अवलोकन हारे।
सावल गौर बनी बर जोरी बसू निशि बासर नैन हमारे॥
सुकृत पूरे सबै भली भाँति से दास बना उर माहिं बिचारे।
पाके समान अहै अजहूँ प्रभु के यश लागत जाहि पियारे॥

नाना मणि जटित मुकुट हेम शीश सोहै भानु से प्रकाश काक पक्ष छवि न्यारी है।
मेचक कुञ्जित नागछौना ज्यो लटकि रहे लपटि लपटि लागे जोहे अति प्यारी है॥
कैधो अलि अवलिन उपमा अनूठो मिलै आठो किये कवि जन जानौ छवि क्यारी है।
बनादास कुण्डल कनक लोल राजै श्रौण मीन छटा छाँटि डारे जाने जासु यारी है॥

बक भ्रुव कञ्ज नैन मुख छवि ऐन मानो सैन किये जाहि दिशि स्वाद तिन पाये है।
तिलक बिशाल भाल तडित कि द्युति निन्दै अल्पउ भैरेख जनु अचल सुभाये है॥
अधर दशन अति अरुण अनोखी आशै बिम्बाफल दाडिम न पटतर आये है।
गोले है कपोल मन मोल लेत बिना बित बना दास नासा शुक तुड हिल जाये है॥

चन्द मुख मन्द मन्द हसत हरत मन हर दम टरत तन ही से अति नीके है।
चोखी है चिबुक चित चोरि लेत बार बार बनादास द्युति मरकत मणि फीके है।।
कम्बु ग्रीव शोभा सीव लागति अतीव प्रिय हरि कन्ध जोहे जिन रहे निति ठीके है।
उभै भुज भारी कर ककण केयूर युत करज ललित धनु बाण अति ठीके है।।

उर सुठि वृहद प्रसून मुक्त माल भ्राजै तुलसी सु दल युत यज्ञ पीत भली है।
भुगु चर्ण रमा रेख त्रिवली विशेष छवि नाभि है गभीर जनु लाखो मन छली है।।
सिंह कटि तूण पटपीत है कनक काति तडित बिनिदित सुरति सुठि मली है।
बनादास जामा लाल ललित लगाये कोर वोर छोर जोह जाय जाकी मति हली है।।

जानु युग काम भाथ केरा तरु तुच्छ लागै जागै जीव सोत रोमावली जे जोहे है।
कोटिन मदन कोक दन रूप अग अग भूप वर्षा को ऐसो कौन देखि मोहे है।।
गुल्फ छवि गूढ है करुढ पैनि काय मुनि कमल चरण माहि चित्त जिन पोहे है।
बनादास मन है मतग जोर जग अति पग होत तबै अग अग लेत कोहे है।।

कनक भवन सिया रमण बिहार थल रचना न कहै योग गिरा मूक लई है।
सखी सीय सग मे शिगार शुभ अग अग शची रति मान भग मानो करि दई है।।
तहाँ पै सिहासन प्रकास न बरणि जात निरखि लजात भानु हेम मणि मई है।।
जोडी श्याम गौर बिराजमान ताहि पर बनादास नख शिख शोभा सरसई है।।

मानहुँ तमाल तरु निकट कनक बेलि लई है सकेलि छवि चौदह भुवन की।
जाल की सुअग पै अनेक रति भग होत कोटिन अनग व्याजु नृपति सुवन की।।
बनादास ऐसे ध्यान सदा जे परायण है ताहि मुक्ति आश नहि रह त्रिभुवन की।।
मन क्रम वचन निशोच भये सोय जन जाको है भरोस एक दारिददुवन की।।

मुकुट शिर हेम का भ्राजै मनो द्युति भानु लाजे है।
छटा जुलफौ कि अति नोदी निरखि त्रे ताप भाजे है।।
लसै घुघुवारि लट लोनी निरखि चित चोरि जाते है।
लटक उरजाहि के आवै नही फिरि कछु सोहाते है।।
श्रवन मे राजत मोती अनोखी पैन प्यारी है।
जिगर के जुल्प को काटै छटा अति ही नियारी है।।
बक भ्रुव नैन रतनारे सुभग अवलोकनि भाई है।
तिलक शुचि भाल मे भ्राजी मनहुँ चित को चोराई है।।
अधर अरुणार शुभ नासा दशन की कान्ति नीकी है।
हसनि मृदु भावती ही को छटा दाडिम की फीकी है।।
चन्द्र मुख श्याम के जेहि लगै तेहि त्रय लोक हल्का है।
निरखि मन तोष नहिं पावै नही तहँ मूल पल्का है।।

चिबुक चित चोर अति लेवै गरे त्रय रेख प्यारे हैं।
कन्ध केहरि के सुठि लाजै वृषभ से भूरि भारे है॥
गरे गज राग रुरे है विपुल मणि के न मोहै को।
उभै भुज काम करि करसे तिन्हे मूरख न जोहै को॥
बना इस ध्यान मे रमता तिन्हे हरि मे, जुदाई क्या।
जो आशिक पाक है दिल के उन्हे जग मे बडाई क्या॥

कमर केहरि से अति चोखी सुमन कर माल लीन्हे है।
छटा पट पीट की ज्यारी कोउ जन चित दीन्हे है॥
जबै युग जानु को पेखै कहाँ कैवल्य बासा है।
कमल पद को न जोहे जे तिन्ह यमलोक त्रासा है॥
दिशा बाये पै सिय राजै सबै उपमा टटोरी है।
न पटतर ताहि ले दीन्ही अधिक नृप की किशोरी है॥

बना कुर्बान चरणो पै कहनि औरह निज बहोबै।
वचन के ज्ञान की झल्की पलटि ताही कि पति खोवै॥

सीताराम झूला विलास

श्री रसरगमणि जी

श्री सीताराम झूला विलास इसे छोटेलाल लक्ष्मीचन्द ने जैन प्रेस लखनऊ मे जुलाई सन् १८९९ मे मुद्रित करा कर प्रकाशित किया। इस मे २५ पद झूला के और ५ पद नौका-विहार एव जल-विहार के है। सम्पूर्ण ग्रन्थ कवित्त मे है और भाषा साधारणत पुष्ट एव मार्जित है। झूलन के पदो मे लीला-विहार का एक ही चित्र बार बार आया है, सीताजी राम का झुला रही है, राम सीताजी को। फिर दोनो को सखियाँ झुलाती है और युगल मिलन का रस लेती है। नौका-विहार या जल-विहार के पदो मे भी एक ही दृश्य बार बार आया है। फिर भी कुल मिला कर यह ग्रन्थ रसिक साधना का एक अनमोल रत्न है।

उदाहरण—

सावन सघन घन गगन मै दरसत बरसत बारि घोर घहरि घमकि कै।
दिनहूँ न दीसत दिनेस ननिसीस निसि दुरत विदिसि दिसि दामिनी दमकि कै॥
राम रस धाम सिया सग रसरगमनी झुकि झुकि झोकन सो झूलत झमकि कै।
डरि मुसक्याय कहै कण्ठ लपटाय प्यारी लीजै रस रसे रसे रसिक रमकि कै॥

रसिकाधिराज राम पिया सिया प्यारी वग रग की उमग बरसावै रस झूलि झूलि।
झोका को लगावे झुकि झुकि मिलि जावे दोऊ अति सुख पावे रहि जावे मान भूलि भूलि॥

आली गीत गावे हाव भाव दरसावे प्रिया प्रीत मैं रिझावे नाचैं नई गति धूलि धूलि ।।
सावन सोहावन प्रमोद वन पावन मैं लषत हिंडोरा रसरगमनी फूलि फूलि ।।
छाय छाय आये चहूँ ओर घनघोर करि मोर जोर बरसे मधुरझरी लाय लाय।
लाय लाय गलबाँह राजन नवेली नाह सखिया झुलावे झुकि झुकि नाचे गाय गाय ।।
गाय गाय बोले मानो कोकिला मधुप कोर सरजू के तीर तरुफूले नीर पाय पाय।
पाय पाय पान मुसुक्याय रघुराय सीय झूलै रसरगमनी मनमोद छाय छाय ।।

करत सिय रघुबर बारि बिहार।
सखिन सखन जुत जुगल सलोने सरस परसपर पागे प्यार।
नई नाव छवि छई वितानन कलबल चलत सरजु जलधार ।।
लसत हिंडोर किसोर किसोरी कोरी नाचहि गाय मलार।
भादो घन बरसत भरदर भल दोउ दल भरि खेलहिं पिचकार ।।
दपति निरषि हसत निबसत छलि उर रसरगमनी आगार ।।

श्री रामनाम यश विलास

श्री रामरूप यश विलास

श्री राम रस रग मणि जी भगवान् राम के नाम और रूप के यश के वर्णन कवित्त रूप मे इस सग्रह मे प्राप्त है। पण्डित घासीराम त्रिपाठी के देशोपकारक प्रेस लखनऊ मे सवत् १९६५ अर्थात् सन् १९०० मे मुद्रित हुआ। विशुद्ध काव्य की दृष्टि से यह एक उत्तम रचना है। कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे है —

राम पिता सुखदा सुत भ्रात सु मातु सनेह जुता यसुजाम है।
राम सु मीत बिनीत सखा सु पुनीत सिखावत मन्त्र सु नाम है ।।
राम सु देह के पालक मालक दीन दयाल सु देत अराम है।
रामहिं प्रान के प्रान सु जीवन जीवहुँ के रसरग श्रीराम है ।।

रामही को दास मैं हौ रामही की आस मोहि,
राम दुख नास मम बास खास धाम हौ ।।
रामही की पूजा मेरे राम बिन दूजा नाहिं,
सीताराम शरण रहौ मैं आठौ जाम हौ ।।
रामही को ध्यान मेरे रामही को ज्ञान,
रसरग सख्य अभिमान राम को गुलाम हौ ।।
राजपद ठाम मेरे रामही को काम मेरे,
मागो सीताराम ही सो रट सो राम राम हौ ।।

जाग मेरे राम भूरि भाग मेरे राम,
गीत राम मेरे राम अनुराग 'रसराम' है।
धीर मेरे राम बरबीर मेरे राम,
हर पीर मेरे राम धनु तीर धर श्याम है॥
दानी मेरे राम सत्यबानी मेरे राम,
सिया रानी रतराम सुख खानी शील धाम है।
पात मेरे राम मञ्जु मात मेरे राम,
भल भ्रात मेरे राम सर बस रामनाम है॥

देह मेरे राम सु विदेह मेरे राम,
गुन गेह मेरे राम प्रदनेह मेह श्याम है।
रग मेर राम भव भग कारी राम,
सुभ अग मेरे राम बसै मग बसु जाम है।
स्वामी मेरे राम ब्रह्म नामी मेरे राम,
हियधामी मेरे राम सखा साँचे 'रसराम है।
तात मेरे राम मञ्जु मात मेरे राम,
भल भ्रात मेरे राम सरबस रामनाम है॥

कीजिये कृपा कृपाल निर हतु रसराम,
सुमिरौं सनेह बस रामनाम रोय रोय।
मानस के बिमल बिलोचनान बार बार,
जुग पद मख जोति जग मग जोय जोय॥
बान्त मम बिषे सुख दुख बिसराय,
पराभक्ति तोष पाय ध्याऊँ सान्ति सुख सोय।
सीताराम अहौ जन झूठ साँच आपही को,
आप अपनाय जेली पाप ताप धोय धोय॥

दीन बन्धु जानि राम रावरे को बन्धु मानौ,
ताते मोहि केहूँ भाँति आपौ मानि लीजिए।
आपही के माने मन मानैगो प्रमोद मीत,
मेटि भव भीति प्यारे साँची प्रीति दीजिए॥
बैन नाम नेह लीन रूप सिन्धु नैन मीन,
होवे प्रेम पीन त्यो अदीन सुखी कीजिए।
खीजिए न दोष देखि रीझिए कृपाल राम,
बसि उर धाम रम रग बन्धु कीजिए॥

श्री सरयू रस-रंग लहरी तथा अवध पञ्चक

श्री रसरगमणि

श्री रसरगमणि जी के इस ग्रन्थ मे श्री सरयू जी की महिमा का बडी भव्य भाषा मे वर्णन है। सीताराम के लीला विहार की दिव्य रम्य स्थली श्री सरयू जी की गुणावली गाते कवि कभी थकता ही नही।

उदाहरण —

लेत मुख नाम राम गग रस रग मनी,
देत सुख सग भारी भवभीति भूलती।
सरद ससी के कल किरनै समान,
तुग तरल तरग ताके ताप निरमूलती॥
परमत पाथ सीतानाथ अनुराग बाग,
बेलि रसकेलि उप फैलि फलि फूलती।
सरजू के कूल कौन पूछै रिद्धि सिद्धि भुक्ति,
मुक्ति झुड झाउन के झारन मे झूलती॥

जे वाशिष्टी मिष्ट बारि कुल इष्ट हमारी।
अवलोकत अनइष्ट हरनि सुख करनि अपारी॥
जयति कोशला कलित ललित धारा धरनीया।
द्रवरूपा रघुबीर कृपा भवदुख दरनीया॥
जय जननी रस रग मनि जगमग जग जाहिर चरित।
जय रघुबर दृग जलजजा जय जय जय सरजू सरित॥

जैस सब नामन मै रामनाम मुख्य पुनि,
रूपन मै जैसे राम रूप अभिराम है।
मास्त्रन मै जैसे रामायण सुवेद सार,
वेदन के मध्य जैसे वेद बर साम है॥
सरितन माहि जैसे सरजू सिरोमणि है,
भक्तन मै जैसे हनुमन्त जितकाम है।
तैसे सब धामन के मधि रमराम निधी,
धामाधिप अवध ललाम रामधाम है॥

श्री सीताराण शोभावली प्रेम पदावली

श्री सीतारामशरण रामरसरगमणि

श्री रामरसरगमणि जी का ८० पृष्ठो का यह ग्रन्थ देशोपकारक प्रेस लखनऊ से सन् १९०२ ई० मे श्री सीताराम शरण भगवान्प्रसाद जी की प्रेरणा से छपा। इसकी पूरी प्रति अब मिलती नही, एक खण्डित प्रति मिली है। ये पुस्तके ऐसे कागज पर छपी है कि इन्हे हाथ लगाते ही टूट-टूट जाती है। और इसलिए, बहुत सँभालकर इन्हे पढना होता है। मधुर रस के प्रेमसागर मे डुबकी लगानेवाले रामरस रग मणि जी की यह पुस्तक साहित्य, साधना और सिद्धान्त सभी दृष्टियो मे परम उपयोगी है एव इस सम्प्रदाय की रस साधना को समझने मे बहुत अधिक सहायक है। आरम्भ मे श्री सीताजी का नखशिख-वर्णन है जो बडा ही मनोहारी एव जीवन्त है। इसके अनन्तर श्री रामजी के अग-प्रत्यग का विशद एव रससिक्त वर्णन है। फिर पावस के झूलनविहार और फिर वसन्तविहार है। अन्त मे रासोत्सव का बडा ही मनोहारी प्रकरण है। यह नि सकोच कहा जा सकता है कि रामरसरगमणि जी को इस कृति मे अपूर्व सफलता मिली है।

मांग वर्णन

सिर चन्द्रिका चारु लसी रसरगमनी लखि के चखमे बड भाग है।
जोति जगै गुहि मोगिन की वर ज्यो तम तोम मे तारे उजाग है॥
जाहि मनाय उमादि रमा नितही निज माग को मागे सोहाग है।
सेदुर पूरित भूरि भरी छवि सीय सोहागिनि की शुभ माग है॥

बेनी वर्णन

नागिन की उपमा अनुरागिन के मन मे नहिं भावति देनी।
कञ्चन शैल सिगार कि धार किधो रसरगमनी अलि श्रेनी॥
रेशम लाल गुही सित फूल लसी ज्यो महा सुखमा की त्रिबेनी।
वल्लभ की बिरची अति बेस बिदेह लली की बिराजति बेनी॥

लिलार वर्णन

उज्ज्वल चारु मृ चन्दन चित्रित बन्दन विन्दु अमन्द उदार है।
भाग को भाजन साजन प्रेम को हेम पटा कि सोहाग आगार है॥
अर्ध शशी कि बसीकर जन्त्र परेमहुँ को बसकार अपार है।
शोभा धनी रसरग मनी मिथिलेश लली का ललाम लिलार है॥

नयन वर्णन

खञ्जन मान - बिभञ्जन श्यामल कञ्ज मनो सुखमा सरसी के।
भौंह कमान बिलोक निबान बिभाव भरे मनहारक पीके॥

कोमल कोटि कृपा कि कटाक्ष मनी रसरग पै कारक नीके।
राघव रञ्जन रञ्जित अञ्जन मञ्जु बिशाल बिलोचन सी के॥

नासिका वर्णन

सुक नासिक ते सिय नासिक नीक लखे रति लाजि रही लचि कै।
बर बेसरि बेस विराजि रही झुलनी छवि छाजि रही नचि कै॥
रस रग मनी मधुरे अधरान बीरी सु भ्राजि रही रचि कै।
मुसुक्यान सु जान पिया हिय मे सुख सम्पति साजि रही सचि कै॥

मुख वर्णन

बन्धुक विद्रुम बिम्ब जपा अरुने मधुरे अधरान पै वारौ।
दामिनि दाडिम कुन्द कली दसना वलि के दुति पै बलिहारौ॥
बैनन पै रसरग मनी पिक बैन निछावरि को करि डारौ॥
आनन पै सिय के शशि कोटिन दूर पवारि कै बारि उतारौ॥

कण्ठ वर्णन

कोमल औ कल स्वच्छ झलाझल राजित रेख महा छवि सीवाँ।
भूषन भूरि लसै रसरग मनी मुकता के अमोल अतीवा॥
केलि कला कि अदा उन मीलनि हीलनि राम सुजान कि जीवा।
कम्बु कपोति सु कण्ठ लजै लखि कै रघुनन्दन गोरिक ग्रीवा॥

हाथ वर्णन

चारू महा सुकमार सुढार हरै दुति हेम तथा ताडिता की।
कञ्ज मृनाल रसाल किधो युग धार लसै सुखमा सरिता की॥
दैनि अभै सुख लोक उभै रसरग मनी सम कल्प लता की।
राम पिया गर की बरहार सी बाहुँ उदार बिदेह सुता की॥

रम्भ सु दुन्दुभि सिंह सुधाकर श्री फल के उपमेय जे अग है।
आन ते नाहिं न जानि सकै न बखानि सकै सुमणीरसरग है॥
जानत केवल रामहिं एक कहै न सोऊ कोई और के सग है।
याही विचार उचार भयो सिय की सुखमा को समास प्रसग है॥

सर्व देह वर्णन

सोन सो सुन्दरताई समी सितलाई सोहाई प्रभा अमली की।
दामिनि ओप मनीरसरग मृदुल सुगन्धिहुँ चम्प कली की॥

कल्पलता सी लसै लहरानि अनूपम लाल तमाल रली की।
ज्यो छवि गेह सनेह की दीप दिप दुति देह बिदेह लली की।।

सारी वर्णन

झीन रगीन नवीन नितै ज्यो सिंगार घटा सुखमा बरसाती।
कञ्चन तार किनारी रची कल श्यामल राम छटा दरसाती।।
ताहि ते प्यारी जु प्यार समेत सदा निज अगन सो परसाती।
क्यो बरनै रसरग मनी जस सारी सिया तन मे सरसाती।।

पदपकज वर्णन

लाल रसाल महा उर मण्डित दामन के दुख दोष बिनासी।
शारद सिन्धु सुता गिरिजा जिन को नित पूजहि प्रेम प्रकासी।।
वेद को मूल सो नूपुर नाद जगै नखजोनि सुब्रह्म प्रभासी।
राम प्रिया पद कञ्ज तेई रसरग मनी हिय कञ्ज निवासी।।

अगुलि राम प्रिया पद कञ्ज की मञ्जुल मगल की कर वाहै।
नासन दासन के दुख के नख भूरि सुभागन के भर वाहै।।
रेख प्रकास भरे रसरग मनी तम मोहमयी हरवा है।
व्योम के तारन हूँ ते अपार अधीन के तारन ज्यो तरवा है।।

है दसहूँ उपनीषद - सार कि तेज दसौ अवतार के भ्राजै।
कै दसहूँ दिग पालन भालन के बर मानिक ये छवि छाजै।।
ऐकि प्रकाश स्वरूप लगी पग सो दसधा भगती सुख माजै।
की रसरग मनी सिय - पायन के सु दसौ नख सुन्दर राजै।।

पावस

सरयू के कूला बिरचित झूला झूलत सिय रघुराज आली।
रिमझिमि रिमिझिमि बरसत बदरा भीजत सिय सारी पिय चदरा जलकण
मुखन बिराज आली।।
लै पटकर रघुवर पटरानी बिहसि परस्पर पोछत पानी लखि सुब सुखी
समाज आली।
गावहि सखी सोहावन सावन सुनि रसरगमणी मनभावन अति आनन्दित
आज आली।।

झूलन

झूलत राम लाल अलबेलो।
लीन्हे सिय ललना अलबेली रमकत सनो सनेह नबेलो॥
मिलि गोरी गावत गरबोली हसत हसावत लहि मुद मेलो।
परिकर दृगन प्रमोद बढावत करि रसरग मणी रस खेलो॥

झूलत सिय स्वामिनि महरानी।
श्री महराज कुमार झुलावत सजि सनेह सनमानी॥
प्रीतम प्रीति प्रबल सखि प्यारी पग प्रमोद मुसक्यानी।
लखि रसरग मणी दुहुँ अखियाँ छवि सुख सिन्धु समानी॥

झूलत राम सिया रस रसिकै।
रस भरि गाय गवावत हिलिमिलि हिय सर सावत हसिकै॥
खात खवावत पान पानकरि अधर सुधारस फसिकै।
रस झूलनि रस रगमणी यह निरखत हियो हुलसि कै॥

मलार

झुकि झुकि सीताराम सु झूलैं।
सावन सरयू तट प्रमोद बन घन बरसत अनूकूलै॥
कल कामिनी कछोटा कसि कसि दोउ दिशि हसि हसि हूलै।
मिलि मलार गावत सिय पिय सखि सुनि सुरतिय तन भूलै॥
अञ्चल माल सुधारि मनेही लखि चञ्चल दृग फूलै।
प्यारिहुँ अलक सम्हारि लहै रस रग मणी मुद मूलै॥

झूलत रसिक राज रघुनन्दन।
झोकन बिहसि बिलोकन प्यारो प्यारी आनन चन्द॥
झझकि झमकि झुकि पिय कहँ बरजहिं अलबेली हसि मन्द।
लाल ललकि रस रग मनी उर लावत लहि आनन्द॥

आली री को झूलै इन सग।
नाजुकता न बिलोकत परकी झोकत अधिक उमग।
रसिकराज कहवावत पै नहिं आवत रस गति ढग॥
पियकर जोरि निहोरि हमायो छायो प्रेम उतग।
मणि रस रग रामसिय अगन वारत अमित अनग॥

रघुबर झूलत प्यारी सग।
रुचि लखि ललित झुलावत गावत राग मलार तरग
हसत हसावत पान खवावत खात सनेह उमग॥
आवत भवर उडावत कर सौ बसन सम्हारत अग।
दम्पति प्रीति रीति पर वारत तन मनमणिरसरग॥

झूलत रघुवर प्राण पियारी।
प्राणनाथ असन भुज धारी॥
सावन सरयू तट फुलवारी॥
लहर बिलोकि परै जहँ भारी॥
नभ घनघटा घेरि आई कारी॥
गरजत बरसत रिमि झिमि बारी॥
हरित भूमि तरुलता अपारी॥
बोलत दादुर खग मनहारी॥
सखि नख शिख सिंगार सवारी॥
गावहिं रागिनि मधुर मलारी॥
बाज बजाय नटहि दै तारी॥
निरखि युगल छवि होहिं सुखारी॥
झोंकि झुलावत अवध बिहारी॥
सिय डरपै पिय ओर निहारी॥
छवि छाके दोउ देह बिसारी॥
लखि रसरग मणी बलिहारी॥

कजरी

देखो देखो जी हिंगोरा झूले युगल मिले।
लोनी मिथिलेश लली लसी चपकली मानो रघुनन्दनील अरबिन्द से खिले॥
मन्द मन्द बुन्द परे मन्द मन्द झूले दोऊ मन्द हसि हेरें सुखसिंधु मे हिले।
प्रेम की उमग भरे सग रसरगमणी बारि कै अनग झाकी झाकत झिले॥

झूलत सिय रघुराज दुलारे।
बन प्रमोद बर सरित किनारे॥
गरिज गरिज बरसत घन कारे।
चातक मोर सोर किल कारे।
बसन सुरग अग दोउ धारे॥

तन जगमग भूषन उजियारे।
हिलि मिल गावहिं राग मलारे॥

बडे बडे बूद बरसि रहे बदरा।
सिय पिय झूलि रहे रस भीने भीजे सुरग चूनरि चदरा॥
लखि रसरग मनी दपति छबि मुर्‌यो स बाम काम कदरा॥

हिंडोरे झूलत युगल किशोरे।
बरषत घन हरषत सिय पिय हिय निरखत नयनन कोरे।
बस रसरगमणी मनमोरे रमकनि थोरे थोरे॥

रसिक बर हरि लीन्हो मन मोरा।
नवल उमग सग सिय लीन्हे झूलत रग हिंडोरा॥
हसि हसि सियदिशि झुकि चिन चोरत तिवत नयन मरोरा।
रूपधनी रमरगमनी उर बस्यो बीर बरजोरा॥

रसत रघुबीर सिय सरद सुख रास मैं।
सरद बन मजु मधि सरद कल कुज जह फूलि रहिं मल्लिका गुज अलि बास मैं॥
सरद शृगार सजि सरद सखि यत्र धरि सरद पद गान करि नचहिं स हुलास मैं।
सरद की सुभग निसि सरद चादनि बिलसि सरद शशि अमल अति उदित अकास मैं।
सरद शशि सरिस सिय राम मुख अमृत छबि पियत रसरग दृग प्रेमपगि प्यास मैं॥

शोभा बनी सिया दुलही की।
तन दुति कुद करै कुन्दन दुति मुख माधुरी चन्दते नीकी॥
लोचन ललित कज ते मजुल अजन भरे मनहु छबि पीकी।
सोहत सब भूषन गोरे तन तैसी लसनि चारु चुनरी की॥
अति सुन्दर सेदुर पूरित शिर मन मोहति सुखमा मौरी की।
बसत हिए रसरग मनी सिय-रघुबर जोरी भावति जी की॥

छोरो लला ककन सिय जू को।
एकहिं कर सुझावो सलोने यामे प्रमान नही कर दू को॥
छोरत छैल न छूटै छबीली बिहसति करि पट ओट कछू को॥
कह सखि सियपद गहो लाल अब यह न धनुष जो कियो युग टूको॥
सुनि मुसक्याय बदत रघुबर मन भावै सो आज कहो जनि चूको।
सुरझाये रसरगमणी प्रभु गिरह नेह उरझाय बधू को॥

बसन्त

बर पीत बरन आयो बसन्त।
सजे पीत साज सब सियाकन्त॥
बन पीत लता कुसुमित रसाल।
मधिमहल पीत मणि को बिशाल॥
भये पीत युगल करि अग राग।
पहिरे सारी पट पीत पाग॥
किये पीत उभय परिकर सिंगार।
पकवान पीत भरि कनक थार॥
दपति जिमाय जलपीत प्याय।
दै पीत पान पुनि अतरलाय॥
करि पीत आरती बदि पाय।
नटै पीत राग सु बमन्त गाय॥
धरि पीत बसन भरतादि भाय।
शुचि सदा जो हारहिं मुदित आय॥
रचि माली मालिनि डालि पीत।
ल्याए जनु पठयो मदन मीत॥
बदी जन बालक बृन्द वृन्द।
ऋतु पीत सु बरनन पढहिं छन्द॥
गुनि समय सु आयसु सबहि दीन।
सिय पिय लगे खेलन प्रीति लीन॥
सुर निरखि सुमन बरषत अनन्त।
रसरगमणी जय जय भनन्त॥

आज सिया पिया खेलत होरी।
श्यामल कौशल लाल रसीले जनक लाडिली गोरी॥
पगे प्रीति रस रीति बिराजत सखी सखा दुहु ओरी।
मारहिं मूठि गुलाल गेद सुम पिचकन केसर घोरी॥
गावत गीत गारिदै दोउ दल युगल हसत मुख मोरी।
बरजोरी करि रघुनन्दन को गहि लिए राज किसोरी॥
कहि जय जय अलि गठ जोरी दोउ पधराए यक ठोरी।
निरखि राम रसरगमणी मुख शशि भई आखि चकोरी॥

होरी खेलिए रघुराई सिया स्वामिनि सुखदाई।
राज किशोर जोर जनि कीजै दीजै मुद मधुराई।।
हरषित हिय हिय हरन हारिए पीजिए प्रीति अघाई रसिक रसनद उमगाई।।
लाल कपोल गुलाल मलाइय चुबन दै मुसक्याई।
अजन नयन निरजन नेही मन रजन अवाई कज खजन लजवाई।।
नव नागर नाचिए नई गति प्यारी के गुनगाई।
सिया सग रसरगमणी प्रभु बैठि बदन दिखराई हमे आनद बढाई।।

किए सिय राम शृगार फुलनमई।
फुल बगला तरे लसत युग सुख भरे फूल हिय हसत अनुराग दृग उमगई।
फूल आभरन पट फूलचन्द्रिका मुकुट फूल गुही अलक लट ललित मुख छबि छई।
फूल को गुच्छ सिय फूल धनुबान पिय लिए लखि जियत दोउ द्रुहन की द्रुति नई।।
फूलि रहि कुज कल चलत सुभगधि जल रचित युगत फूल सु फुहार भई सितलई।
बरदि सुर फूल उर हरखि रसरगमणी निरखि सियराम छबि करत दृग सुफलई।।

बसो मेरे नयनन मे सियराम।
गोरी जनककिशोरी श्यामा रघुबर सुन्दर श्याम।।
नखशिख भूषन बसन सवारे छबि कोटिन रति काम।
लखन छत्र युग चवर भरत रिपु दवन दाहिने वाम।।
हनुमत बीजत व्यजन लसत सब परिकर ललित ललाम।
कमल नयन बिहसत दपति रसरगमणी मुद धाम।।

राजत सिय रघुराज आज री।
सिहासन पर गौर श्याम तन निमिकुल रघुकुल सीस ताजरी।।
चवर लिये दुह ओर भरत रिपु दमन लषन धरे छत्र छाजरी।
हनुमत व्यजन करत कर अग छडी गहे रहयो सुजस गाजरी।।
धनुसर असि चर्मादि बिभीषन सुग्रीवादिक करन भ्राजरी।
जय जय जस रसरगमणी कहि करत सुमन झरि सुरस माजरी।।

राजत राम सिय रस मीन।
युगल सिरन किरीट कुडल मकर सुखमा पीन।।
सखि झषाकृत कल कपोलन चित्ररचना कीन।
चपल दृगन समेत देखे प्रगट द्वादश मीन।।
बनी एकहि वेषकी बलि आज सु छबि नवीन।
लखत परिकर प्रेम पगि रसराममणि सुख लीन।।

श्री रामशत वन्दना

श्री सीताराम शरण राम रसरग मणि

शृगार स्वरूप श्री सीताराम के वर दुलहिन वेश की बार बार मधुर भावमयी वदना। दोहे रस मे शराबोर है। अन्त मे पाच सवैये कवित्त है जो 'लालसा' परक है और उद्धव के 'आसामहो चरणरेणुजुषामह स्या' तथा रसखान के 'जो पशु हो तो' की याद दिलाते है।

बन्दौ दूलह वेष दुति सिय दुलहिनि युत राम।
गौरि श्याम रसरगमणि जन-मन पूरण काम॥

बन्दौं बर दुलहिनि सकल आए अवध दुआर।
मुदित मातु परिछन करहिं सुख रसरग अपार॥

बन्दौ सिंहासन लसे दुलहिनि दूलह चारि।
पूजहिं अम्ब कदम्ब लखि रसरगहु बलिहारि॥

बन्दौ सीताकान्त सुख रस शृगार स्वरूप।
रसिकराज रस रगमणि सखा सुबधु अनूप॥

बन्दौ भरताग्रज मधुर प्रेम सख्य रस रूप।
कृपा सिन्धु रसरगमणि बधु अखिल रस भूप॥

बन्दौ सीताराम प्रभु सुख रस रग प्रदानि।
गिरा अर्थ जल बीचि सम भिन्न अभिन्न सुमानि॥

बन्दौं दशरथनन्द शुभ गुण मन्दिर रस रग।
सिय हिय चन्दन चन्द मुख सुन्दर अमित अनग॥

बन्दौं पितु आज्ञा निरत लखन राम सिय सग।
अवध राज तजि बन गवन करन हरषि रस रग॥

बन्दौं सखा निषाद के नव नेही रघुराय।
तेहिं भेटे रस रगमणि प्राण सरिस हिय लाय॥

बन्दौं अवध बिहारि प्रभु सियबिहारि सुख धाम।
हिय बिहारि रस रगमणि मुनि मनहारी राम॥

बन्दौं रघुपति राजपति रमपति पति-रस रग।
गतिपतिपतिपति जगतपति रतिपति शत मम अग॥

बन्दौं श्री रघुवीर बर दयादान कर बीर।
धर्मवीर रसरग मणि युद्धवीर मतिधीर॥

बन्दौं राघव राम रस रूप राशि रस रग।
रघुनन्दन राजीव दृग राज सुता सिय सग॥
बन्दौं भक्ति सुभक्त जन भक्त प्राण प्रिय राम।
सप्रदाय शरणागती तिलक तुलसिका दाम॥

हे बिधि जौ करिए खग वृक्ष मृगादि तौ औध बिपीन मझार को।
हवै जल जतु जिऔ पै पिऔं बरबारि सुखी सरजू सरि धार को॥
बाहन श्वान बनाइय जो तो सवारी सिकारी श्री राजकुमार को।
जो नर तो रस रगमणी करु प्यार सखा रघुनन्दन यार को॥

अत्यज तो अवधेश को खास सफा करो भोर दुआर अगार को।
सूद्र तो सार करो सिय पीय को वैश्य बनो पुर औध बजार को॥
जो द्विज तो रबिवश गुरू कुल हवै पढो राम विवाह सुचार को।
छत्रि तो श्री रघुवशहि मे रसरगमणी सखा राघव यार को॥

राम सखा रसरगमणी अलि है सिय के पद पकज प्यार को।
है लघु बधु सु लच्छन लाल को ते नित लालत देत पुलार को॥
है रिपुशाल को बाल महोदर भाइ सबै भरतादि कुमार को।
श्री अवधेश औ अम्बन को अति छोट सुढोट है गोद खेलार को॥

पायन को पेखि पुनि नखखन परेखि युग जघा जानु जोहि लाग्यो लक ललचाय कै।
नाभी मे नहाय आयो उर मे उरायन सो भेटि भुजदड गहचो ग्रीवा गुणगाय कै॥
चाहिकै चिबुक को निबुकि रसरगमणी, वदन विलोकि भयो विवस बनाय कै।
लोचन निहारि रामचन्द्रजू के मेरो मन जकग्गिो जुलुफ जजीरन मे जाय कै॥

पद कज परसि पराग ते पुनीत भयो जोहि नख जोति जाय नूपुर मे कसिगो।
ऊरु अवलोकि कटि किंकिनी सु-पीत पट ताकि त्रिवली को नाभि सुधासराधसिगो॥
कढिकै उदर उर बाहु रसरगमणी भेटि ग्रीवा भूषन चिबुक विन्दु बसिगो।
गचतै चित्त मेरो रघुनन्दन वदन चन्द चाहत चलन मन्द हासि फासि फसिगो॥

श्री राम रस रंग बिलास

अयोध्यानिवासी श्री सीतारामशरण रामरस रगमणि जी का "रामरसरगविलास" सिद्धान्त, साधना और साहित्य की दृष्टि से एक अनमोल मणि है। हितचिंतक प्रेस रामघाट बनारस सिटी से आषाढ़ सवत १९६७ मे छपा। आरभ मे मगलाचरण, इष्ट वदना, गुरुवदना के १२ श्लोक है और उसके बाद आठ कवित्तो मे आचार्य की वदना है। इसके अनन्तर श्री रामनाम का यश, श्रीराम का रूपरस, श्री राम की कृपाभिलाषा, श्री रामायण की कथा (सार रूप मे, अतिशय

सक्षिप्त), श्री राम के प्रति अनन्यता, श्री राम का माधुर्य, पुन नाम प्रभाव, श्री राम का नखशिख वर्णन, श्री सीता जी का गुण प्रभाव वर्णन, आदि विषय इस ग्रथ मे कुल १८५ कवित्तो मे वर्णित है। भाषा बहुत साफ, सरल एव मार्जित है। सिद्धान्त और साधना की दृष्टि से यह ग्रथ बडे महत्त्व का है।

उदाहरण—

लोचन लाल के लोभी अली ललि कज विलोचन श्यामल फूले।
आनन श्री रघुनन्द कौ चन्द सिया चख चारु चकोरक भूले।।
जानकि जानकि जानकि जान पियारी के प्रीतम प्रान समूले।
यो रसरगमणी के हिया मेजिया वसिया रसिया सम तूले।।

श्री राम का ध्यान वर्णन

पायन को पेखि पुनि नखन परेखि युग जघा जानु जोहि लाग्यो लक ललचाय कै।
नाभी मे नहाय आयो उरमे उरायन सो भेटि भुजदड गह्यो ग्रीवा गुणगाय कै।।
चाहिकै चिबुक को निबुकि रसरगमणी वदन विलोकि भयो विवस बनाय कै।
लोचन निहारि रामचन्द्रजू के मेरो मन जकरिगो जुलुफ जजीरन मे जाय कै।।

पद कज परसि पराग ते पुनीत भयो जोहि नख जोति जाय नूपुर मे कसिगो।
उरु अवलोकि कटि किंकिनी सु पीत पट नाकि त्रिवली को नाभि सुधासर धसिगो।।
कढिकै उदर उर बाहु रसरगमणी भेटि ग्रीवा भूषन चिबुक निन्दु वसिगो।
चितै चित्त मेरो रघुनन्दन वदन चन्द चाहत चलन मन्द हासी फासी फसिगो।।

श्री सीता जी का ध्यान वर्णन

आनन श्री शशि काटिन की सुखमा सुखसार सिंगार सनी है।
श्री फल चपक बधुक कुन्द से अगन बाग बहार बनी है।।
कज सुखजन गजन नैन रमा रति जाके छटा कि कनी है।
राम धना धन प्रान समा सियजू रसरगमणी कि धनी है।।

श्री सीताजी का प्रभाव वर्णन

करुणा बसीली भक्त जीव की उसीली,
भव दुख की नसीली वेद विविद जसीली है।
वदन शशीली शोभा मदन लसीली,
रस रग शुमशीली मति प्रीति दरशीली है।।
मन्द विहसीली मजु गौरवगसीली,
पिय हिय हुलसीली राम रसकी रसीली है।

दिव्य गुणशीली नव्य नेह की कसीली,
भव्य सुख पर सीली सिय स्वामिनी सुशीली है ।।

प्रणत उधारणी है बिगरी सुधारणी है,
दिव्य गुण कारणी है टारनी कलेसकी।
औगुन बिसारणी है भक्त काज सारणी है,
मुख को पसारणी है प्यारनी परेश की ।।
महल विहारनी है मोरहौ सिंगारनी है,
राम मनहारनी है धारणी रसेश की।
रसरग तारनी कृपा की कोर ढारनी है,
विरुद प्रचारनी है सिया जू हमेश की ।।

प्यारी नैन प्यारे बसै प्यारे नैन प्यारी बसे,
उभै नैन चोरिवे को उभै नैन चोर है।
मुख मिथिलेश जा को मधुर मयक मोहे,
अवध किशोर चारु चतुर चकोर है ।।
राम घनश्याम मजु वैन मोद दैन धुनि,
सुनि स्वामिनी को मन नाचै मत्तमोर है।
शोभा मकरन्द रसरगमणी मृग फूले,
युगल लहि नेह भानु मोर है ।।

कनक भवन में प्रिया प्रीतम की झाँकी

सेत अगराग लाए रामलाल बसे गौर गोरी,
श्री किशोरी जोरी एक ही प्रभा की है।
सीस ताज चन्द्रिकादि भूषन बिराजे लाजे,
अग लखि शोभा काम-रति औ रमा की है ।।
आनन पै अमित हजार चन्द्र बलिहार,
नैन निहार मार-मारनि मना की है।
छाकी रसरगमणी सुखमा सिंगारता की,
कनक भवन प्रिया प्रीतम की झाकी है ।।

राम झाँकी विलास

श्री राम रसरगमणि जी के इस छोटे-से ग्रथ मे भगवान श्री राम के शैशव से लेकर सिंहासनासीन होने तक के समस्त रूपो की झाँकियाँ है जो दर्शनीय है। काव्य का सौष्ठव और

भावो की सुकुमारता इन झाँकियो को और भी मधुर बना देती है। यह ग्रथ स० १९६६ वि० के ज्येष्ठ श० पचमी को पूरा हुआ था जैसा इसकी पुष्पिका से पता चलता है।

श्याम अग बसन सुरग सोहै सग बधु नाचत तुरग चाल चलत चलाकी है।
ककन करन रसरगमणी माल उर भाल मे तिलक मजु मौर शिर ढाँकी है॥
चन्दन मुख मन्द मन्द हँसनि आनन्द भरी नैन अरबिन्द छबि फन्द मनसा की है।
झाकी जेहि झाकी यह बाकी रही ताकी कहा राम दुलहा की बर बाकी बनी झाकी है॥

बारिद बरन बपु बिज्जु सो बसन बन्यो बाण बाणासनवत बाहु बीरता की है।
बिबिध बिभूषन बिशाल बनमाल बनी बाम मे बिराजती त्यो बेटी बसुधा की है॥
बिधु सो बदन बर बारिज बिलोचन है बिहसनि बडी बाधा बिदरनि बाकी है।
बसै रसरग के बनज बुधि बोध बीच विश्व बीर रामकी बिमल बाकी झाकी है॥

सीता तडिता के तन बसन समान घन घनश्याम तन घट दुति तडिता की है।
मानो कल नील कज शील पुज सिया नैन लाल कजहू ते मजु आँखै रसिया की है॥
पैखै रसरगमणी शोभा दोऊ दोहुँन की मद मुसक्यात मोद प्रीति मति छाकी है।
तीनौ लोक झाकी बुधि कतहू न झाकी अस राघव सिया की जस बाकी बर झाकी है॥

जुगल किशोर गौर श्यामल मनह सने ललित सुबा हुकल कठन कसे रहै।
केलिके उछाह छबि छाके दोऊ दोहुन के लूटत अनन्द लीला लोभित लसे रहै॥
फेरत बिलोचन बिलोल त्यो विनोद माते राते रसरगमणि हेरत हँसे रहै।
आनद के कद दोऊ चद रघुनद सिय सरस हमारे हिया कमल बसे रहै॥

सियबर केलि पदावली

श्री ज्ञानाअलि सहचरिजी

सियबर केलि पदावली

रसिकोपासको का यह परम प्रिय ग्रथ भगवान रामचन्द्र और भगवती जानकी महारानी के परस्पर अरमपरम, आमोद-प्रमोद तथा लीलाविलास और प्रणय विहार का एक उत्कृष्ट आकर ग्रथ है। इस शाखा के उपासको मे इसका विशिष्ट आदर है। ज्ञाना अलिजी ने आरभ मे अपने स्वरूप का परिचय दिया है। यह आत्म परिचय परम रहस्यमय है और प्रेम मे भगवान और भक्त का कितना प्रगाढ रममय अपनत्व हो सकता है उसका बहुत ही भव्य निदर्शन है। तदनन्तर राम जन्म की बधाई और जानकी जन्म की बधाई के पद है। इसके पश्चात् 'लगन' की बडी ही मार्मिक व्याख्या है। यह व्याख्या साहित्यिक दृष्टि से भी विशेष उल्लेखनीय है। इसके बाद बारहमासा और षट् ऋतु मे युगल सरकार के अरस परस, झूलन, नृत्य, वन विहार, जल विहार, होली के पद है। प्राकृतिक [illegible] भूमि मे इन नानाविध लीलाओ का जो स्वरूप ज्ञाना अलि ने प्रस्तुत किया

है वह साहित्य और साधना दोनो ही दृष्टियो से सर्वोत्कृष्ट है। इस प्रकार इस ग्रथ मे ४०८ पद है। अन्त मे अष्टयाम सेवा कुज द्वादश विलास पदावली है जिसमे इस उपासना का तत्त्व बहुत सक्षेप मे, सार रूप मे वर्णित है। यह ग्रथ इस उपासना के लोगो मे परम आदरणीय है और साहित्यिक दृष्टि से भी अन्यतम है, इसलिए इसका विशेष परिचय उदाहरणो द्वारा देने की चेष्टा हो रही है।

यह ग्रथ मुशी नवलकिशोर के छापाखाने मे सन् १९१४ ईसवी मे छपा। स्वय लेखक ने ग्रथ के अत मे लिखा है—

अगहन सुदी सुदूर तिथि शनिबासर सुख मूल।
पवन सुवन दिन जन्म कर जानि समय मनु कूल॥
सियवर केलि पदावली ग्रथ समापित कीन।
ज्ञाना अलि श्री अवधपुर भक्ति निछावरि लीन॥

अपनी विनय का परिचय भी अन्त मे ज्ञाना अलि सहचरि जी ने कितने भोले शब्दो मे दिया है—

रूप माधुरी गुण कथन नाम युगल अभिराम।
धाम अवध मिथिला कथा यह जीवन विश्राम॥
ताते कछु मन मनन करि ज्यो त्यो मन समुझाय।
गाय लाडली लाल यश निज मति सरिस्स सोहाय॥
पिगल काव्य न कोष गति गण अरु अगण न होस।
यह सेवा फल सिय कृपा निश्चय परम भरोस॥
हे स्वामिनि सिय प्राणप्रिय प्रिय वल्लभा किशोरि।
रघुवर सियवर रूप निधि गुण निधि मय गति तोरि॥

हे जीवन धन लाडिली
हे नृप लालन मीत।
हे मन भावन भामिनी!
दीजै युग पद प्रीत॥
हे नट नागर नागरी,
छबि आगरि गुण खानि।
हे शरणागत रक्षिका
निज चेरी करि जानि॥
हे शशि बदनी छबि सुधा
अधराधर मृदु बैन।

पिय चकोर चित लुब्ध नित,
पियत माधुरी नैन।।
हे सुखमाकर सॉवरे,
श्याम सलोने लाल।
मृगनयनी छबिजाल मे।
फँसे रहौ ज्यो माल।।
हे गुण गाहक नेह निधि
जग जीवन विश्राम।
सियारमण सुखमा भवन
बड भागी सुखधाम।।
हे रसिकन जीवनजरी
युग युग पूरणचन्द।
घटौ बढौ कबहूँ नही
नित्य सच्चिदानन्द।।

आत्म परिचय

चन्द्रकान्ति मम मातुपितु, शत्रूजित नृप जान।
चारुशिला भगिनी बडी, ताकी अनुचरि मान।।
ज्ञा कहिये जो गोप्य रस, ना निश्चय जिय जान।
ताकी शरणागत भई, ज्ञाना अली बखान।।
अष्ट सखी सिय मुख्य है, तिनमह ज्ञाना जोय।
ताकी सहचरि द्वितिय बपु, ज्ञाना अली सो होय।।
ज्ञाना ज्ञान न जान कछु, ना निषेध करि दीन।
केवल सियबर शरण गहि, तासो गुनत प्रबीन।।
ज्ञान अखण्ड अनादि अज, जनकलली को पीय।
तासो बरी निशक ह्वै, ज्ञाना सहचरि सीय।।
अज अखड श्री रामवर, मूरति विश्व निवास।
तासो बरि गुरु कृपाकरि, ज्ञाना ज्ञान प्रकास।।
श्री मिथिला नैहर समुझि, सासुर अवधहि जानि।
दोउ घर सुखद सुसर्बदा, रहिहौं जह मनमानि।।

राम जन्म की बधाई

बारे के श्याम सनेहिया सुनिये नृपलाल।
सूरति प्यासी अखिया अति बिरह बिहाल॥
मिठि मिठि बतिया प्यारी चितवनि छबि जाल।
ज्ञाना अलि बिहसनि तेरी निशिदिन हियशाल॥
चतुर चूडामणि प्यारो नृपराज दुलारो।
बोलै मधुर रस बतिया यौवन मतवारो॥
चितवनि शर विषमानी जानी हो गुमानि।
ज्ञाना अलि पिय मन बसिया रसिया चितचोर॥
रसियाने कैसी कीन्ही बावरि करि दीन्हि।
इकतो मैं बारी भोरी दूजे बय थोरि॥
जुलमी जगत उजियारो कारो नृपबारो।
ज्ञाना अलि पिय छबि प्यासी सियचरण उपासी॥

श्री जानकी जन्म की बधाई

तित नई नइ आनद बधाई।
बडे भाग नृप भवन भले दिन सुता भई सुख दाई॥
निमि कुल सुधा समुद्र रमासी प्रगट भई सुखमा गुणा रासी।
असुरन मारि सुरन की जीवन विश्व विशद यशछाई।
जीवन जरी जगत की स्वामिनि अग अग छबि द्युति बहु दामिनि॥
उमा रमारति देखि लली छबि तनमन धन बलिजाई॥
सुन्दरि सब गुणखानि सलोनी ऐसी कहू भई नहि होनी।
नवषट चारि अठारह चौदह ज्ञाना अलि यशगाई।

सखी री आजु भई मन भाई।
सब गुण खानि सलोनी सुन्दरि बेटि सुनैना जाई॥
बहुत दिनन नृप शिव धनु पूज्यो सो फल प्रगट देखाई।
पुर प्रमोद केहि भाति सराहौ रानी कोखि जुडाई॥
सुनि सखि बचन साजि सब मगल मणि गण बिपुल लुटाई।
गज गामिनि दामिनि सी दमकत उर प्रमोद अनमाई॥
जाको निगम नेति कहि गावत शकर हृदय चोराई।
ज्ञाना अलि तेहि प्रगट देखियत निमिकुल सुयश बढ़ाई॥

लगन

लगन लागि मोरी तोरी बारे के सनेहिया श्याम।
लाज गई गृह काज न भावै सुधि बुधि भइ मोरी।।

सोई जानै जाके लगी, बिना लगे क्या होय।
लगन बिना पिय नहि मिलै, कोटि करै जो कोय।।

लगन हमारे श्याम सो, जाको लागी होय।
ज्ञाना अलि सोई सगो, और नही जग कोय।।

को जानै पिय पीर तुम्हे बिनु नव योवन जोरी।।

लगन करो तो लागि रहौ, तन मन आठौ याम।
लगन मे तोरो क्या लगै, केवल सुमिरन राम।।

लगन बिना लाखो यतन, करि पचि मरै अयान।
लगन लगी जाके हिये, सो अति चतुर सयान।।

आशिक भई पिया अपने पर यामे क्या चोरी।।

परि लखै पीतम सोई, सदा जिये सो जीव।
लगन सोई लागी रहै, ज्यो चातक जल पीव।।
प्रीति परीक्षा जानिये, पिय बिनु कछु न सोहाय।
पीर सहै पिय पिय कहै, परी परी पछिताय।।
ज्ञानाअलि छवि फन्द परी हौ कमी प्रेम डारी।।

सवलिया ने ना जानो क्या कीन।
सुधि बुधि सब हरि लीन।।
नेकु चितै चित चोरि मारि मुख जनु जादू करि दीन।
छलि करि बिवश कीन मन भावन चतुराई मे पीन।।

लगन बिना मन नहिं लगै, जप तप कछु न साहाय।
लगन बिना दृढ प्रीति नहिं, ज्ञानाअलि पछिताय।।
विवश भई छवि सरम पिया, लखि जाहि गुणन प्रवीन।।

रसिक शिरोमणि सावरो, मेरो जीवन प्रान।
चेरी ह्वै नेरी रहौ, यह मेरे मनमान।।
ज्ञानाअलि अवधेश ललन छवि लखि को न होय अधीन।।

सवलिया हो लगन लगी दिन रैन।
जब लागी तब काहु न जानी अब लागी दुख दैन।

भौंह कमान नयन रतनारे मनहूँ मदन शर पैन।।
फिरत बिहाल हाल कासौ कहौ बिनु देखे नहि चैन।
ज्ञानाअलि दिशि नेकु चितौ हसि करि कटाक्ष मृदु सैन।।

सिया बर हो कैसि लगाई प्रीति।
प्रीति लगाय निठुर ह्वै बैठे किन सिखई यह रीति।
कासो कहौ सुनै को मेरी यह तेरी अनरीति।
ज्ञानाअलि ऐसी नहिं चहिये ज्यो बारु की भीति।।

प्रीति की रीति नियारी करु यारी।
प्रीति सराहन योग मीन को बिनु जल मरण बिचारी।।
ज्यो चातक स्वाती जल चाहत पियत न सुरसरि बारी।
ज्ञानाअलि सियवर मन भावत जग सब लगत उजारी।।

कहौ सजनी श्याम सुन्दर की बाते।
जामो कटै दिन रातै।।
जबते गये कुवर मिथिलाते बिरह जरावत गातै।
कहँ वह हसनि बिलोकति तिरछनि बोलन चलनि सोहातै।।
चरबण पान पीक झुकि डारिन मन्द मन्द मुसुकातै।
घरि पल छिन छिन कल्प सरिस दिन यामिनि मोहि बिहातै।।
ज्ञानाअलि कब सो दिन ऐहे सुनिहो अवधते आतै।।

दृगन भरि श्याम सुरति बिनु देखे।
होत न चित मे चैन सखी री बीतत पलक कलप के लेखे।
जब आवत भुज अस धरनि सुधि होत हिये बिच बिरह बिशेखे।
करकत हिये हहरि हारी हौ प्राण रहो अवशेखे।।
सुन्दर मधुर माधुरी मूरति मधुर मनोहर बेखे।
ज्ञानाअलि दिलदार यार बिनु दुखी सुखी छवि पेखे।।

हमारी सुधि लीजै राजिव नैन।
दृग भरि हेरि फेरि असन भुज लावो हिये सुख दैन।।
ललकत मन छिन छिन मिलिबे को बिनु देखे नहि चैन।
आरत हरण बेद यश गावत क्यो न सुनौ मम बैन।।
रूप सुधा छवि दृगन पिआवो करि कटाक्ष मृदु सैन।
ज्ञानाअलि पिय बिरह बावरी नहिं सोहात दिन रैन।।

अवध नृप ललन बिना रतिया।
नहिं भावै बतिया जरै नित छतिया।।
पीतम रसिया वे दिल बिच बसियाहो।
हाथ नहिं आवै सदा तरसावे लखै को घतिया।।
ज्ञानाअलि गलियन आवै।
नइ नइ तानै गावै दृगन दरशावै करै रस बतिया।।

दरस रस प्यास पिया तेरी।
रसिक रसखानि सकल सुखदानि अरज मेरी।।
दिल का मेहर वे जाहिर जग उजियारा।
अवध नृप प्यारा प्रेमवश हारा बिहसि हेरी।।
ज्ञानाअलि माधुरि तेरी सुख सुखमा की ढेरी।
जानि सिय चेरी कञ्जकर फेरी राखु नेरी।।

जानि हो गुमानि मैने तेरि मुसुकानी।
भौंहे चाप सधानि नयन शर मारत तकि तकि तानी।।
करकत हिय बिच घाव न सूझै कासो कहौ मै बखानी।
ज्ञानाअलि दिल्दार यार की घाते सब मनमानी।।

पावस पिय मिलन आश सुनि सुनि घन धुनि अकाश दरशत पिय छवि प्रकाश मन मयूर नाचे री
दामिनि दमकत न थोर रिमि झिमि बरसत झकोर कोकिला कलाप मधुर दादुर धुनि भाचे री
झिंगुर झुम झननननन पवन चलत सुमननननन लेत तान तूतननननन सप्त स्वरन साचे री
ज्ञानाअलि चित बिलास पावस ऋतु पिय निवास आये लखि हिय हुलास विरह जरनि बाचे री

ललना नवेलि लाल मनहुँ नवल तरु तमाल आलबाल कनक बेलि चहूँ ओर छाई है।
सुन्दर मुख छवि रुमाल चितवत लखि दृग निहाल अनुपम छवि हृदय शाल जीवन धन पाई है
प्यारी छवि नवल जाल प्रियतम मन फसि मराल मुक्तागुन मञ्जुमाल निशि दिन यश गाई है
ज्ञानाअलि चित चकोर प्रियतम दृग दृगन जोर पीवत छवि रस न थोर क्षण क्षण सरसाई है

सखि उमडि घुमडि डरवावे।
कारे कारे बदरा गरजि गरजि करि प्रियतम छवि दरशावे।।
पिय पिय रटत पपीहा प्यारी दादुर मोर शोर सुनिकै झनन झनन झींगुर झनकारै त्रिविध पव
सरसावे

अति अधियारी कारि बिजुलि चमक न्यारि घुम घननन घहरावे।।
बरसत बारि सुखकारि मनहारि भारि घन घमण्ड करि छावे।
आवन अषाढ सुनि पिय मन भावन को मन अनन्द सुख पावे।।
प्रेम तृण अकुरन बिन दरशन लागे ज्ञाना अलि अति मन भावै।।

देखो कारे कारे बदरा प्यारे।
मनहुँ पिया घनश्याम मिलन को उमगि चले मतवारे।।
घूमि घूमि महि लूमि झूमि करि घननननन घहरावै।
बडे बडे बूदन बरसै उमडि चले नदनारे।।
महि हरियाइ भाइ द्रुमन सुमन शोभा सरयु पुलिन छवि छाई।
घन घोर शोर सुनि मो कुहुँकन लागे नचत महा सुख भारे।
देखि ऋतु पावस सरस सरसानि हिय पिय प्यारी मन भावै।
ज्ञानाअलि कनक अटारि चढि हेरि जब गावन स्वरन सम्हारे।।

अरज मोरि मानिले प्यारी पिय सग ऋतु सुख लीजिये।
अबकी पावस सुख सरसावत मन भावन बश कीजिये।।
नइ नइ तानन गाय रगभरि अधराधर रस पीजिये।
मुख मयक छवि सुधा सरावर चप चकोर सखि लीजिये।।
श्री प्रमोदवन लता निकुञ्जनि प्रियतम रुचि सुख दीजिये।
ज्ञानाअलि मन भावन पिय सग सरस परस सुख भीजिये।।

रसिक भये सिय रूप लखि, रसिया नाम कहाय।
तासो रसिकन के हिये, सिय वर रूप सुहाय।।
यक टक रहत निहारी।।
प्राण के हरैया दोऊ चित्त के चोरैया सजनी छवि दरशैया लखि शोभा न्यारी

प्रिय छवि मे प्यारी रगी, तासो श्यामा नाम।
प्यारी छवि मे पिय रगे, तासो प्रियतम श्याम दोउ रसिक बिहारी।।
लखि पिय प्यारि शोभा ज्ञानाअलि मनलाभा जम्यो उर प्रेम गोभा फिरै मतवारी।।

रसिक रस झूलिये झुलना मधुर मधुर हुलना।
डरपत हिय कम्पत तन प्रियतम बयस मधुर तुलना।।
बयस मधुर सुखमा सदन, मदन कोटि छवि अग।
सुख सागर नागर नवल, नवला नवल उमग।।
सुन्दरि श्यामा श्याम मनोहर अग अग छवि खुलना।
रसिक राज रघुराज सुत, रस लोभी रस खान।
रस गाहक रस बस करन, रसिकन जीवन प्रान।।
ज्ञानाअलि बलिहारि तुम्हारी क्या भूले भुलना।।

सजनी सावन सरस सोहावन।
झूलन आई पिय प्यारे सग सिय प्यारी छवि छावन

नव तरु लता मधुर मृदु कुंजन मधुर मधुर ध्वनि सुनत सोहावन
नतट मयूर कोकिला गावत मन भावन चितचावन ।।
नील पीत घन तडित बरन तन मदन कोटि रति छबि सरसावन ।
ज्ञानाअलि बलि बलि झूलन लखि गहि पिय कटिपट दावन ।।

रिमि झिमि बुदन बरसत बारी ।
बन प्रमोद सरयू तट बिहरत रघुबर सिय सुकुमारी ।।
ज्यो ज्यो भीजत सुरग पाग पिय त्यो त्यो सिय तन सारी ।
झीने बसन अग अग भीने वह सुख सरस बयारी ।
दुति दमकत दामिनि घन गरजत डरपि अक पिय धारी ।
ज्ञानाअलि पावस उमग रसिकियो वश करि मतवारी ।।

रसिक दोउ रहसि रहसि झूलै ।
सरस ऋतु पावस सुख मूलै ।।
नवल तरु लता ललित दरसै ।
उमड घन घटा अटा परसै ।।
बडे बडे बूदन नित बरसै ।
झुलावे झूलै सुख सरसै ।।

अलि चपलावलि अचल ह्वै, पिय प्रियतम घन पाय ।
नित नव सुख बरसन लगी, झूलन गाय बजाय ।।

सुनत पिय प्यारी चित्त फूलै ।
नवल सिय रसिक लाल झाकी ।।
बिलोकनि अलबेली बाकी ।।
नेकु जेहि ओर बिहसि ताकी ।
सोई बडभागिनि मति पाकी ।।

श्री सरयू तट निकट ही, सोम श्रवन बट छाह ।
नाह नैह ज्ञानाअली, बढत धरे गलबाह ।।
यही सुख प्रियतम अनुकूलै ।।

सिय रसिक बिहारी झूलै ।
सावन कुञ्ज सरित सरयू तट बन प्रमोद मुद मूलै ।
नख सिख सुमन शिंगार सजोरी अवध चन्द्र चन्द्राननि गोरी निवछावरि रति मदन करोरी तेहि सम एकन तूलै ।
सिय झूलै पिय झूमि झुलावै निरखि निरखि छवि बलि बलि जावै मन भावै कटि लचकनि मचनि हरषि हरत हिय शूलै ।।

जागरि बयस शिरोमणि सारी सिय प्यारी सब राज कुमारी लिये सोज ठाढी चहुँ ओरनि सेवा सुख अनुकूलै।
मगनयनी कलकोकिल बयनी गजगमनी सब रति मद मदनी ज्ञानाअलि सब निमि कुल छवनी छिन छिन छवि लखि फूलै॥

धीरे झूलौ रसिक रस बरसौ।
तुम घनश्याम सिया द्युति दामिनि अरस परस तन परसौ।
नवला नवल रूप रसप्यासी छवि अमृत दै दृग सुख सरसौ॥
ज्ञानाअलि गरजी अरजी सुनि भुज असन धरि नित नव दरसौ।

झूलन झूलै नवल रस रसिया।
श्री नृप नन्दन जनकनन्दनी गौर श्याम मृदु मूरति रसिया॥
तरु तमाल जनु कनक बेलि मिलि भुजबली उरझनि मनबसिया॥
ज्ञानाअलि अभिलाष नई नित कीजिय सिय पिय चरणन बसिया॥

रसिक बिहारी सिय सुकुमारी।
धीरे झुलावो गावो प्यारी को रिझावो लै बलिहारी॥
तुम गुण रूप उजागर नागर नागरि नेह सम्हारी।
सिय मुख चन्द्रचकोर चोरपिय छवि अमृत अधिकारी॥
गोय गोद झूलत रस लम्पट रसिकन हित सुखकारी।
ज्ञानाअलि सहचरि यश गावत जागि सुभाग हमारी॥

झमकि झुकि झूकन झूलैरी।
तन गौर श्याम अभिराम राम रमणी छवि खूलैरी।
सजि बसन बिभूषण सुमन माल ललना गण गावत पद रसाल
मुख चन्द्र बिलोकति भइ निहाल दृग कुमुदिनि फूलैरी॥
कमला कल कोकिल बरत गान बिमला बीणागति अति प्रवीण
सुभगा जु सप्तस्वर करि अलाप भुज असन मूलैरी॥
ज्ञानाअलि दम्पति रस बिलास नित कनक भवन कुजन प्रकास
भाविक जन जानत हिय हुलास नित यहि सुख तूलैरी॥

अनोखी रसिक पिय प्यारी।
झुलन चली सग सुकुमारी।
सुरग पिय पाग मनहारी।
चन्द्रिका सीय शिर धारी।
छबीली लाडिली सारी।
श्याम कटि पीत पटवारी।

देव नर नाग नृप वारी।
सबै निमिबश उजियारी।
झुलावै झमकि झुकि झारी।
गगन ध्वनि गान रसकारी।
भयो रसरग अति जारी।
परसपर झूलती नारी।
ज्ञानाअलि निरखि मन भारी।
करौ क्या प्रेमगति न्यारी॥

अबकि सावन सुख सौगुन परसौ पिय प्यारी सग झूलत दरसो।
श्री प्रमोद बनलता निकुजनि कहि न सिराय माधुरी बरसो॥
सिय दामिनि घनश्याम मनाहर नवल उमग अग भुज परसो।
नवला नवल झुलावै गावै मधुर मधुर ध्वनि सातो स्वर सो॥
घन ध्वनि दामिनि दमकि दशौ दिशि पकरि श्याम श्यामा कर करसा।
ज्ञानाअलि पावस सुखमा सुख पिय प्यारी सग निशिदिन सरसो॥

झुलावै झूलै झुकि झेली।
झनन झनन झीगुर झनकारे अति कौतुक केली।
उभडि घन घुमडि घेरि छाये।
ज्ञानाअलि सावन मनभावन नित नव सुख रेली॥

नवल दोउ झमकि झूमि झूले।
नवल हिंडाल कुञ्ज द्रुम फूले श्री सरयू कूले॥
नवल तन भूषण छवि पावै।
नवल बसन नव नेह परस्पर सखियन सुख मूले॥
नवल नवला बहु सग सोहे।
नखशिख रूप अनूप मोहावन स्वामिनि सम तूले॥
नवल घन चहूँ ओर छाये।
ज्ञानाअलि रस भाव बृष्टि लखि मिटि गइ हिय शूले॥

हिय बिच खट कैरि सजनी निशि दिन पिय की बात।
सावन आवन ह्यौ मन भावन सो दिन बीते जात॥
झुलिहौ झूमि झमकि झुकि पिय सग परसि मनोहर गात।
ज्ञानाअलि अभिलाष मिलन की आइ मिले मुसुकात॥

रसिया ना मानै सजनी झूलत मन न अघाय।
सोवत सजनी अपने भवनवा औचक मोहिं जगाय॥

बन प्रमोद कुजन कुञ्जन मे नित उठि झूलत आय।
ज्ञानाअलि सिय पिय सग झुलिहो अभय निशान बजाय।।

प्यारे दोउ हिलि मिलि झलै सखी नवल हिंडोर।
सावन सुभग सोहावन राजेत घन गरजत अति शोर।।
दादुर मोर पपीहा बोलत सुनि ललकत मन मोर।
प्रियतम प्राणप्रिया तन हरत सिय निरखत पिय ओर।
दोउ असन भुज धरे परस्पर रति मनमथ चितचोर।।
सीतारमण राम रमणी सिय नेह भरे छवि फूलै।
ज्ञानाअलि लखि युगल छैल छवि तन मन धन सुधि भूलै।।

नवल रसिक झूले प्यारी सग लीने।
मनसो मन दृग सो दृग दीने।।
चारुशिला अलि हरषि झुलाव गावे तान नवीने।
बजत मृदग ताल मारगी लेत तान स्वर झीने।।
बढत उमग अग अग क्षण क्षण पिय प्यारी रग भीने।
ज्ञानाअलि छवि निरखित ठाढी सो समाज वितकीने।।

झूलत सिया रघुकुल चन्द।
प्रेम भरि अनुराग बाढ्यो बदत नाना छन्द।।
हास बीचि विलास उमग्यो शब्द सुखमा कन्द।
पद्मबदनि यह निरखि शोभा देवगण आनन्द।।

झूलत रसिक मणि रघुलाल।
झुण्ड झुडनि चली भामिनि सोह गती मराल।
देखि झूलन सिया सियबर परी छवि के जाल।
देत झोका हरषि उर सब निरखि फूलत बाल।
निरखि नयनन परम शोभा पद्मबदनि निहाल।।

आज प्रियतम सग झूलोगी।
अबकी सखि सावन छवि छावन पिय के हिय फूलोगी।
नभ घन घमण्ड दामिनि दरसै रिमि झिमि बूदन बरसै जियरा तरसै
करिहौ सोय तन रसिया रस तूलोगी।
नव साज समाज सखि सजि कै गृह काज लाज सबही तजिकै मन भावन दावन
कर गहि कै नइ नइ गति खूलोगी।
सुन्दर सुख सानी सिय बतिया ज्ञानाअलि सुनि हुलसत छतिया मनमोहन जोहन
योग दोऊ गोहन लगि हूलोगी।।

सावनवा ऐलोरे झलनवा झुलिहौ सजनवा।
सावन ऐलोरे छवि दरशैलो सजनी रिमि झिमि बुन्द बरसै लोरे।
ज्ञानाअलि मुद सरसैलो जिय की जरनि बुझैलो मन भावन सुख मेलो रे।

झुलनवा दीजै थोर धीरे झूलौ झुलनवा।
सिय सुकुमारी वे जनक दुलारी प्यारी तुम रघुबश किशोर।
अधर सुधा रस पीजै पिय प्यारी सुख दीजै लीजै गरवा लगाय पिय शुलनवा मेटै मोर॥
ज्ञानाअलि झूलि झुलावै बहु सदिखन्त्र बजावै कोउ सखि तान सुनावै घन ध्वनि दामिनि शोर॥

आजु रसकेलि मचावोगी।
इन पिय प्यारे को रस बस करि हिय तपनि बुझावोगी।
करि नव सप्त शिगार मनोहर अग अग भूषण सजिकै
गान बजाय लगाय लाल उर सग मचावोगी।
तन् ननु तुम तुम तननननन छुम छुम छुम छुम छुमछननननन
तदियन दिरना तुम तन दिरना गति दरशावोगी।
सुनि सिय बानी सखिन सोहानी हिय हरषानी मन ललचानी।
ज्ञानाअलि यश गाय गाय सिय पिय मन भावोगी।

नटत नटवर नटि नागरिया।
सग सोहै अनोखी नवल बाल गुण गुण रूप उजागरिया।
लखि शरद रैनि छवि छाय रही प्रियतम प्यारी गलबाह गही।
मुख निरखि निरखि हिय हरखि हरखि नृत्यत सखि सागरिया।
मुख मयक रस पान करै मुसुकान परस्पर प्रान हरै।
जब उघटत सगीत गीत भई रस बस बावरिया।
क्षण क्षण नई नई गति लावे दोउ मिलि गावे स्वरन मिलावै।
ज्ञानाअलि गुण गावे मन भावे पिय प्यारी छवि आगरिया॥

खजन दृगन लेत मन सयनन।
सुख सागर नागर छवि आगर प्रेम विवश कहि कहि मृदु बयनन।
पिय वल्लभा प्राणधन जीवन जा बिनु निशिदिन क्षण पल चयनन।
त्यो चकोर चित चोर बदन शशि पियत सुधा छवि रस भरि नयनन।
जग जीवन जानकी रमण छवि कवि कोविद गावत मति पयनन।
ज्ञानाअलि दोउ छके रूप रस सुख सुखमा अग अग भरि पयनन॥

रसकेलि कलोल अमोल लोल दोउ कनक अजिर नृत्यत रसिया।
अवधेश ललन मिथिलेश लली छवि छैल छबीली मन बसिया॥

सम बयस किशोरी सहचरिया दमकै तन दामिनि द्युति लसिया।
गति गान तान लै सप्त स्वरन उघटत सगीत नइ नइ गसिया॥
अनुपम मयक युग मध्य चहूँ दिशि छवि ललना उडूगण दसिया।
ज्ञानाअलि देखत सुख समाज अस को न फसै यहि रस फसिया॥

जगजीवन जानकि जान शरद सुखदानी।
बिहरत अशोक बन सग सीय बरदानी।
ज्यो कञ्चनलता तमाल तरुन तरु जानी।
असन भुज लपटी बेलि सदा अरुझानी॥
शिर क्रीट चन्द्रिका धरनि मन्द मुसुकानी।
नखशिख भूषण वर बसन निरखि मनमानी।
सुखमा समुद्र सरि उमगि बही रसखानी।
ज्ञानाअलि पीवत नित तृपा नहिं भानी॥

नृत्यतर सकेलि निधान सखिन सग नीके।
धन जीवन प्राण अधार रसिक जन जी के॥
श्रुति कुण्डल करत कलोल कपोलन पीके।
लखि मुकुट लटक शिर क्रीट अलिन मन बीके॥
अलकावलि अलिमुख कुञ्ज रसिक रस हीके।
रसमत्त भौंह धनु नैन पैन शर ठीके॥
कटि पीताम्बर की कसनि हसनि सगती के।
लखि लगत कोटि नट नटनि मन्दगति फीके॥
अस नटवर वेष बनाय हरत मन सीके।
ज्ञानाअलि ऐसी कौन करति त्रय लीके॥

नित नइ नइ केलि कलोल लोल दोउ बन प्रमोद डोले।
रस लम्पट सुखमा सोहन छवि सोहन मन मोहन प्यारी पियगोह मृदु हसि हसि बोलै।
चटक चादनी छटा न थोरी पियमुख शशि सिय रसिक चकोरी असन भुजतोलै।
नव सनेह सुख रस की बतिया हाव भाव दृग फेरनि गतिया रसदतिया खोलै।
ज्ञानाअलि सिय पिय रसिक बिहारी बिहरत शरद रैनि उजियारी सखियन मन मोलै॥

आजु रस रास तैयारी। सुदिन मग सीय सुकुमारी।
मगल भरि कनक करथारी। कलश कल सुरभिबरबारी।
साजि नव सप्त मनहारी। नवल तन लाल की प्यारी॥
सबै निमिबश उजियारी। मलोनी सुमुखि छवि भारी॥
यन्त्र तन्त्रादि करतारी। सप्त स्वर सहित लयधारी॥

मूछँना मुरनि हसिनारी। निरखि सखि सबै मतवारी।।
ज्ञानाअलि सौज सजि सारी। पिया हित मिलन चलि झारी।।

रसिक रस खानी अब हम जानी।
चितवत ही चित्त चोरि भोरि करि मन मृग गति मद भानी।
मुख सुखमा छवि मदन मोहावन बोलत अमृत बानी।
करि मन मधुप अधर रस पीजै यह मेरे मन मानी।
हास बिलास राम मण्डल को सुनि मन मुदित जुडानी।
ज्ञानाअलि तजि लोक लाज गृह सियवर हाथ बिकानी।।

शरद सुखदानी मेरो छैल गुमानी।
नटवर वेष धरचौ प्यारी मग सकल गुणन की खानी।।
सुन्दर श्याम माधुरी मूरति सिय सुन्दरि पटरानी।
चितवनि हरनि मरनि तन मन धन नहि राखत कुलकानी।।
उपमा रहित सरस सुखमा छवि देखत मति बौरानी।
बाणी मौन थकित कवि कोविद रूप सुधा मति सानी।।
जुलमी जबर जगत यश जाहिर तिहुँ पुर नाम निशानी।
ज्ञानाअलि जेहि ओर चितै हगि सो यहि रस लपटानी।।

आयो वसन्त सोहागिनि के हित जाको सोहाग तिहूँ पुर छायो।
और है कौन कहौ जग मे जेहि को यश बेद पुराणन गायो।।
सीय सहेलि नवेलि सबै अलबेलि भरी गुण रूप सोहायो।
और कि काह चली सजनी जिन राजकुमारहि नाच नचायो।।
जाकी कटाक्ष बिलास अनोखि पिया चित चोर को चित्त चोरायो।
ज्ञानाअलि मन भावन को गहि आजु सियाजु को भेट करायो।।

खेलै वसन्त सिया जु पिया सग अग उमग महा सुकुमारी।
कोटिन राजकुमार कुमारि दुहू दिशि भीर भई अति भारी।
केशरि रग अबीर कुमकुमा धुधि गुलाल छई अधियारी।
एक सो एक महा रगरी पिचकाग्नि मारे प्रचारि प्रचारी।
रग तरगिनि भावन रग दुहुँ दल कूल समूल उखारी।
लाज भगी भयमानि अभागिनि गावलहि गीत रसीली गारी।
भीजि गये पिय के पट पीन सिया जु कि भीजि गई तन सारी।
ज्ञानाअलि सुख सिन्धु परी नहि सूझ कछू चहुँ ओर निहारी।।

नवल दोउ खेलत फाग अरे।
रघुनन्दन श्री जनक नन्दनी असन बाह धरे।
मन सो मन दृग दृगन लरावत कर सो कर पकरे।
अबिर उडावत दोउ मिलि गावत गति स्वर एक करे।
उर लपटावत कर छुटकावत पिय सिय फन्द परे।
ज्ञानाअलि यह युगल माधुरी यकटक ते न टरे॥

प्यारी प्रियतम दृग अलसान।
उनिदे मनहुँ साझ सरसीरुह रतनारे मदसाने।
क्षण मूदत क्षण खोलत नैना सखियन रुचि पहिचाने।
सुमन सेज मण्डप सुमनन रचि लखि सिय पिय मनमाने।
अमन भुजधरि बैठि सेज पर मन्द मन्द मुसुकाने।
ज्ञानाअलि लखि यह दम्पति छवि धन जीवन निज जाने॥

लाडिलि लाल जगे जग जीवन पिय प्यारी दोऊ छवि जाल।
मनहुँ तमाल तरुन तरु के सग लपटी कनक लता सियबाल॥
छूटी केश अलक अरुझानी बिथरि गई मोतिन मणि माल।
अमन भुज आलस रसमाते मधुर मधुर बोलत हिय शाल॥
अरस परस मुख चन्द विलोकत क्या बरणौ चितवति सुख हाल।
ज्ञानाअलि रसिकन जीवन धन अधराधर मधु पियत निहाल॥

पहिरावत पट पीत पिया कटि सियतन गौर श्याम रग सारी।
अग अग भूषण बसन मनोहर सजि कमला बिमलादिक नारी॥
बिछी फरस गद्दी तकिया धरि चौपरि खेलत तन मन वारी॥
भूलि गये दोउ खान पान सुधि याम एक दिन चढयौ पनिहारी।
ज्ञानाअली कलेवा कुञ्जहि चले क्षुधित सखि प्रेम बिचारी॥

युगल चन्द छवि दृगन निहारी।
श्यामा श्याम सिहासन सुन्दर बैठे सुमन कञ्जकर धारी।
श्याम पीत रग बसन मनोहर गौर श्याम तन जुल्फै कारी।
अरुण कञ्ज दृग बाण भौह धनु चितवनि जुलुम चलनि मतवारी।
विविध हास कोउ गाय मधुर स्वर बजत जन्त्र मृदु नृत्यत नारी।
डेढ याम दिन चढयौ कह्यौ अलि रीझि रसिक सिय सजी सवारी॥

चौसठि आठ सोरहो बत्तिस चारि यूथ सखि न्यारी न्यारी।
चली शिगार कुञ्ज ज्ञानाअलि युगल नाम जय जयति उचारी॥

आरति सखिन शिंगार सजोरी। पिय प्यारी छवि चन्द चकोरी ।।
बैठे सुभग सिंहासन प्रियतम सजल जलद सिय दामिनि कोरी।
बरसत सुधा माधुरी बिहसनि भरि भरि पियत दृगन पुट गोरी।
विविध स्वाद मेवा मन रोचक लिये खडी मणि थार भरोरी।
दाख बदाम छोहारा किस्मिस गरी सरस मिश्री रस बोरी।
पाइ श्याम श्यामा सग शोभित नीकी बनी मनोहर जोरी।
अतर पान दै गाय मधुर स्वर बजहि यन्त्र बहु नृत्य रचोरी।
सुमन माल पहिराय नागरी आरति करि बलि बलि तृण तोरी।
लै आदरस देखावत महचरि ज्ञानाअलि जय जयति मचोरी ।।

प्यारी बीण सुनी पिय कानन।
उठे नवल राजीव बिलोचन ज्यो मृग सुनि मृदु तानन।
चले जोहारि सभासद गृह गृह प्रियतम खान प्रियाकर पानन।
करि बरखास सियापुर बनि तन परी चोट घन घोर निशानन।
घतिटका चारि चहूँ युग बीते आइ मिले ज्यो तन प्रिय प्रानन।
बैठे लाल लाडिली के सग घन दामिनि उपमा मद भानन।
कियो निहाल लाल ललनन मिलि विविध हास कोउ करि दृग सानन।
ज्ञानाअलि दम्पति बिलास रस पियतहि बनै मूक कहि जानन ।।

रूप माधुरी , गुणकथन, नाम युगल अभिराम।
धाम अवध मिथिला कथा, यह जीवन विश्राम ।।

जानकी नौ रत्न माणिक्य

रामसखे विरचित

समान्य परिचय आरम्भ मे श्री मार्कण्डेय सहिता से हरिहर ब्रह्मादि प्रोक्त श्री जानकी जी की स्तुति प्रार्थना है जिसमे प्राय 'रघुवरस्याके सदा सस्थिताम्' श्री जानकी जी का ध्यान है। इसके अनन्तर रामकी दान लीला का वर्णन है। फिर कवितावली है।

डायमण्ड जुबली प्रेस कानपुर मे १८९९ मे छपी है। कुल ३७ पृष्ठ है। 'दान लीला के १२ पद है और 'कवितावली' मे २५ कवित्त है।

विषय कृष्णलीला के अनुकरण पर दानलीला का वणन है तथा कवितावली मे 'फटिक सिला' पर राम द्वारा सीता का शृगार, सरयू तट पर सीतारमण का कुञ्ज बिहार, ध्यान के पद, रास विलास, धाम, रूप, लीला और नाम की उपासना का सविशेष हृदयहारी मनोमुग्धकारी वर्णन है।

उदाहरण—

आवत पालि ग्राम तै, नन्दन कुँवरि नवीन।
अवधि लाल दधि दान को, रोकिव रसिक प्रवीन॥
बन प्रमोद की गैल बिच, करिये धनुष निवारि।
रोकन की मम युक्त यह, लहु सब सखा विचारि॥
करि धनुईयन वारि अब, बैठे सुर तरु की छाह।
राम सखे दीजै दरस, दै सुख की गलिबाह॥
सुनौ ललन हौ डगर वह, रोकी कैसे आजु।
रघुपति के नर्म सखा, तुम कहियो होइ सुकाज॥
पानन को रघुनाथ को, दयो नृपति यह देस।
याते सब मग कर लगत पुनि या बिपिन विशेस॥
तुम दधि लै आई सखी, लगिहै अब कछु दान।
बैठे है रघुवश मणि, करिये जाय सनमान॥

बिपिन प्रमोद मो बोरि महा ह्वै आवो दही लै बडी अलबेली।
मानत ना डर काहू को नेकहू पाई अचानक आजु अकेली॥
दीजौ हमें करि नेग तुहै भावतो चित्त की चोर हौ रूप नवेली।
बात हमारी सुनौ सब कान दै हौ तुम तौ दय जोग सहेली॥

ग्वालिन जोगन तुम त्रिया, तुम रूप जोग उदार।
हमरी जानि जबात सुनि, को हम करौ बिचार॥

जानत है तस्कारी पतिनी हम आदि अनादि की काहे को खीजिये।
सुन्दर श्री रघुनाथ जू लाडिले वातिनि की चतुराई न कीजिये॥
तन धन प्राण सबै आगे पिय चाहिये जो कर मे अब लीजिये।
बन प्रमोद की कुञ्जन मे चलि राम सखे रस भावतो पीजिये॥

तुम्हरी मृदु मुसक्यानि मे, हम तो गई बिकाइ।
राम सखे अब बिलसिये, बन प्रमोद सुख पाइ॥

घूम घुमारौ गुलाब को घाघरो पीत चमेली की ओढनी झीनी।
कञ्जकी लाल कसै कल कचुकी नील जुही की सजा पुजु दीनी॥
चम्पे को हार कनेरि की चन्द्रिका देखि कै चित्त भई रति हीनी॥
फटक शिला पै राम सखे पिय फूल सिगार सिया छवि कीनी॥

अवध की सहेली अलबेली नवेली आजु ढूढि ढूढि ढूढै फिर तरु तरु पतान मैं।
व्याकुल बिरह अग बूडी राम स्याम रग मातल अनग सिरमौर बल बतान मैं॥

सरयू के तीर निरखि बैठे रघुवीर भेटे बन कुटीर कुञ्ज कुसुम छतान मैं।
छूटे सिर बार भार राम सखे बार बार हरिहरि पुकारती हरी हरी लतान मैं।।
अवध के बिहारी अवतारी अब तान को राम सखे प्यारा दशरथ कुमार है।
सरयू को बासी निवासी ललित कुञ्जन को काछनी को काछे बनमाली सुकुमार है।
सीता रमण सुख भवन धनुष धारी मखिन मध्य नटवर सिगार है,
राम को विलासी अविनासी ईस ईसन को कामदा का नाथ सा अनाथ निराधार है।
गो लोक लीला चित्रकूट मे बिराजनि सब मध्य जामैं प्रमोद बाटिका सुहात हे।
बिकटाद्रि गोबद्धन सरयू नदी आदि उहाको सुखमा जेती इहो झलकात है।
रामसखे सूझत न महा मठ अज्ञन का जिनकी मनि नित कुसगनि मे बिकाति है।
नृत्य चरण अकित भूमि नृत्य राघव जू की मन्दाकिनी तीर तहाँ प्रगट दिखात है।।
मानो बिषै कटक काटि पटकि महीतल नृपति बराग जीति विजै हर्षात है।
नटक मयूर कीर कोकिला रटक गान वेली सा बितान तार धुजा फहरात है।
लटकि लटकि लता प्रतिबिम्ब जौ हटकी जल उज्ज्वल लहै धाइमी सुहाति हे।
राम सखे घट की स्याम प्रेम चटकी होत देखे फटक शिला भटक मिटि जाति है।।

रामसखे

कृत पदावली

खेमराज श्रीकृष्णदास ने निज वेकटेश्वर स्टीम प्रेस बम्बई मे सवत् १९७९ मे मुद्रित कर प्रकाशित कराया। इसमे कुल मिलाकर राम सखे जी के १७५ पदो का सग्रह है, कुल पृष्ठ ५२ है। इस सग्रह मे भगवान् राम और भगवती सीता की रममयी लीलाओ का बडा ही भव्य ध्यान है। भाषा साफ सुथरी है और कही-कही उर्दू-फारसी के शब्दो की भरमार है। इस शाखा के उपासको मे सूफी प्रभाव स्पष्ट है क्योकि अनेक स्थलो पर सूफी शब्दावली मिलती है। इतना ही नही भाव व्यजना भी लगभग वैसी ही ह। इश्क मजाजी की मामलता और हकीकी की सूक्ष्मता का एक साथ दर्शन होता है। कुछ पदो मे 'पछाही' प्रभाव स्पष्ट है तथा कही-कही मारवाडी मिश्रित पञ्जाबी का भी पुट है। लगता है श्रीराम सखे जी बहुश्रुत और बहुज्ञ थे और दश का पयटन भी किया था जिससे उन उन स्थानो के प्रभाव उनकी भाषा पर सहज रूप मे परिलक्षित है।

भावना की दृष्टि से यह स्वीकार करना पडेगा कि श्री रामसखे जी की सम्बन्ध-भावना सखी भाव की है और बहुत दृढ एव पुष्ट है। राम और सीता के विभिन्न अवसरो के रूप और लीला रस का आस्वादन इनके पदो मे खूब छक कर किया जा सकता है।

उदाहरण—

राघव भोरही जागे नीद भरी अखियन मन भावन।
बैठे उठि फूलन शय्या पर कोटिन काम लजावन।।

मृदु मुसक्यात जम्हात सिया तन झुकि झुकी परत सुहावन।
रामसखे या मधुर रूप लख मो जिय अतिहि जिवावन॥

आली मेरी आँखिन लागि गयौ है।
सुन्दर राजकुमार चितै कछु चेटक डारि दयौ है॥
चलि न सकति डग मगत भूमि पगतन मन विवश भयौ है।
रामसखे उर अवध सावरो निशिदिन रहत छयौ है॥

नैन मे आनि समान्यो मेरे अवध पियारो।
मृदु मुसक्याय छोडि जुलफै मुख चेटक सो पढि डारो॥
कहा करौं कित जाउ सखी री चित ते टरत न टारो।
रामसखे घर लगत दुखद अब भयौ मन छवि मतवारो॥

चुनरी रगना भिजावो मै तारी लैहो बलैयाँ।
वरज्या मानि अवधश लाडिले बार बार परौ पैयाँ॥
कामल कर जु मुरकि जैहै देखा जिन पकरो मोरी बहियाँ।
रामसख पिय जान देहु अब खीझै सासु घर महियाँ॥

अहो पिय राम पकरि सिय लीन्हा कटि पट सखियन छीनो।
होरी समै रास मण्डल मे मन भायो सो कीनो॥
मुख सो मसलि गुलाल मैथिली अखियन अजन दीनो।
रामसख लखि अवधलाल प्रभु प्यारी के रग भीनो॥

प्यारे सग होरी खेलत प्यारी।
बन प्रमोद रास मण्डल मे रग मच्यो अतिभारी॥
डारै सिया गुलाल पिया पर पिय छोडे पिचकारी।
रामसखे लखि यह छवि ऊपर प्राणन ते बलिहारी॥

सिय के सपने की पिय बात चलाई।
नेह भरे नम सम्वन सुनावत तिय तिमि दीन्ह दिखाई॥
तोरित तन कर कमल फिरावत सेज निकट चलि आई॥
आढे नील झीन सारी शिर काम घटा जनु छाई॥
लम्बे केश छुटे एडिन लौ रस वश लेज जम्हाई॥
वीरी बिहसि दई मो आनन मिलि हिय तपनि बुझाई॥
अति सुकुमारि फूलते कोमल मुख विधु निदित लुनाई॥
झलक तिलक जावक सी सीज्यौ पान पीक गल जाई॥

कोटि कोटि छवि सिन्धु वारिये जा परत्याई।।
चम्प कला चपलाने अद्भुत नैनन रही समाई।।
कैसे मिले प्रसिद्धि प्रिया वह करौ सो जतन बनाई।।
रामसखे कहि कहि हे सीते सुधि बुधि सब बिसराई।।

रामा मो पै मोहनी डारी डगभरित लोन जाई।।
बन प्रमोद की कुञ्ज गलिन मे मानन मृदु मुसक्याई।।
तलफत नैन रूप मद प्यास भय जुडवत मुरझाई।
रामसखे पिय उघर मिलागी लाक लाज बिलगाई।।

दशरथ जू के श्याम सलोन मुखडा टुक दिखाउ रे।
बिन देखे छिन कल न परत है अखिया रूप पियाउ रे।।
छाडि रोष पिय भेटि अक भरि तन की तपनि बझाउ रे।
रामसखे मुनि प्राण पियारे जियरा नहि तरसाउ रे।।

य दोउ चन्द वमा उर मर।
दशरथ सुत अरु जनक नन्दिनी अरुन कमल कर कमलन फरे।
चन्द्रवती शिर चमर ढुरावति आसपास ललना गन घेरे।।
बैठे सघन कुञ्ज सरयू तट चन्द्रकला तन हस हस हेरे।
ललित भुजा दिये अश परस्पर झुक रहे केस कपोलन नेर।
रामसखे छवि कहि न परति तब पान पीक मुख झुक झुकि गरे।।

मिलि जावो रामा पियारे।
बन प्रमोद मे खडी पुकारौ सुनिय रूप उज्यारे।।
मदर श्याम कमल दल लोचन मो आखिन के तारे।।
रामसखे जल बिन मछरी ज्यो तलफत प्राण हमारे।।

अब दशरथ जू को लाल होहली मन मरा छलि लै गयौ।।
मृदु मसक्याड छकाइ कै हली भखियन मे छवि छै गयौ।।
टूट गेद मिसि कचुकी हली अखियन मे छवि छै गयौ।।
महा सुघर नृप सावरो करि हेली छल झगर म ले गयौ।।
अधर सुधारस सिन्धु मे हेली बरवश चित्त डुबै गयौ।।
मोती युत शुक नासिका हेली अरु जिय चिबुक चुभै गयौ।।
उलिगन पान खवाइ के हेली चरी चारु बनै गयौ।।
पीताम्बर के छोर सो हली मुख मा हाकि रिझै गयौ।।

जुलफन प्राण फदाय कै हेली दृग शर कठिन गडै गयौ ।।
उर नख छत धनु छाइ ज्यो हेली निज अपनी यश कै गयौ ।।
तब ते कछु भावत नहिं हेली विरह विथा तनु कै गयौ ।।
विकल करी रिपु समर ने हेली हरद वदन वपु ह्वै गयौ ।।
अवध कुँवर की माधुरी हेली कौन देख रसि रै गयौ ।।
कल न परत छिन बिनु मिलै हेली पलक पलक कल्प वितै गयौ ।।
वरिहो अवध पिय उधर कै हेली कुल डर सकल भगै गयौ ।।
रामसखे हिय माँह री हेली लगन बीज हठ बै गयौ ।।

फटिक शिला मदाकिनि तीर। विहरत दम्पति रघुपति गीर।
विरचित पुष्प सुभग समीर। गुजत मधुप निकर मधु भीर।
नील वारिधर सुखद शरीर। कुसुम समूह विविध मणि गीर।
जनक सुता छवि निधि गभीर। तडित वरण राजित सुख सीर।
सुमन विभूषण पद मजीर। चन्द्रकला सखि गान सुधीर।
निवसत माल कुञ्ज तट नीर। लता वितान ग्रथित घन थीर।
सहचरि जटित रतन मणि हीर। गावत नटत हरत मन पीर।
सुमन पराग गुलाल अबीर। नृत्य मयूर नाद पिक कीर।
निवसत षट पद कज निधि छीर। विलसत ऋतु पति विरह अधीर।
जनु रति पति धरि तनु रणधीर। विश्व विजय हित कसि तूणीर।
यह छवि घन करि गाप्य अनीर। रामसखे मन परम कुटीर।

मिल जेवत पीतम सग सिया दोउ मगल मोद बढावे हो।
कौर परसपर देत चन्द्र मुख मन्द मन्द मुसक्यावे हो।
भोजन विविध परोसत विमला कमला विजन डुलावे हो।।
शोभा सिन्धु कही न परै कछु माधुरि कुञ्ज सुहावे हो।।
चन्द्रकला सखि झारि लिये कर सरयू जल अचवावै हो।
रामसखे प्रभु थोर प्रसाद रह्यौ अवशेष सुपावै हो।।

अचमन करत राम पिय प्यारी।
श्यामा पान लिये कर ठाढी रामा लिये जल झारी।
चन्द्रवती खर्का दर्पण लिये चन्द्रकला सुकुमारी।
सुभगा लिये वागौ पीतम कौ सहचरि लिये सिय सारी।
करि अचमन बैठे सुख आसन सकल जनन सुखकारी।।
रामसखे बलि बल दम्पति छवि सुन्दर बदन निहारी।।

नृत्य राघव मिलन

श्रीराम सखेजी

नृत्य राघव मिलन दोहे, चौपाई, कवित्त मे सवत् १८०४ चैत्र शुक्ल तृतीया को लिखा गया जैसा ग्रन्थ के अन्त मे स्वय ग्रन्थकार ने लिखा है—

सवत् अष्टादश चतुर शुक्ल मधुर मधु तीज।
भयो नृत्य राघव मिलन उद्भव सब रस बीज॥

इसमे कुल मिलाकर १५० दोहे और १४६ चौपाई तथा २० कवित्त है। इसके दो सस्करण प्राप्त है। प्रथम सस्करण की द्वितीयावृत्ति लखनऊ के मुशी नवलकिशोर के छापेखाने मे दिसम्बर सन् १८९६ मे हुई और एक और सस्करण बम्बई के छोटेलाल लक्ष्मीचन्द ने अप्रैल १८९७ मे लखनऊ प्रिंटिंग प्रेस मे छपवाकर प्रकाशित किया। इस ग्रन्थ मे लीला रस की अपेक्षा सिद्धान्त सम्बन्धी मुख्य तत्वो का सन्निवेश ही विशेष रूप मे हुआ है। इसमे भक्ति का स्वरूप, शरणागत धर्म, नाम रूप, गुण, प्रभाव, धाम, परत्व, अवध, प्रमोदवन, माधुर्य लीला, रामावरण, अवधावरण, जीव-ईश्वर सम्बन्ध निरूपण, नर्म सखाओ के रहस्य, रसिक साधका क लक्षण, रसिको की अनन्य रीति आदि गम्भीर विषयो का वर्णन बडी ही सरल, सरस एव सजीली भाषा मे मिलता है।

कुल मिलाकर यह ग्रन्थ राम रसिकोपासना के सिद्धान्त ग्रन्थो मे ही मुख्य रूप से लिया जा सकता है। इतस्तत लीला के और रूप लालसा मिलनमाधुरी, युगल नृत्य तथा सखाओ सखियो द्वारा शृगार विधान के पद भी मिलते है परन्तु है बहुत कम। विशेषत दिव्य प्रमाद बन, दिव्य अवध, के आवरणो का वर्णन है। भाषा बडी ही सरल निरलकार और साफ है। अर्थ और भाव तक पहुँचने मे पाठक को कही कठिनाई नही होती।

उदाहरण

प्रात समय सिया लाल पुष्प रचित शय्या पे जागे रग महल मे उनीदे अलसात है।
लट पटे पाग पेच अटपटे बैन मृदु उज्ज्वल रस भाव भरे मृदु मुसक्यात है॥
भूषन बसन शिथिल मर्गजी माल धर उरझे उरहार कच बिथुरे सुहात है।
ढीले अग आलिगण दिये भुजा अशन औ मदन मद छाके नैन झूमत जम्हात है॥

तामधि एक सिंहासन सोहै।
रचित विविध मणि अति मन मोहै।
तापर महा पद्म इक राजै।
दल सहस्र मोतिन मय झाजै।
तापर राजत सिया रघुनन्दन।
अत्सि पुष्प चम्पक मद गजन।

सिया करै सोरह शृगारा। चोरन चित अवधेश कुमारा।
माग सिन्दूर तेल रचि बेनी। चन्दन खौरि महा सुख देनी॥
पान खाति बोलति मृदु बैना। दमकत दशन हरत प्रभु बैना॥
भूषण जे हिमि रतन जडाये। चन्द्रिकादि अग अग मन भाये।
मणि मानिक जे पट मै पोहै। कञ्चन बिनु अगन अति सोहै॥

कमन किचुकी घाघरौ इनहि आदि कछु आनि।
बसन चूदरी श्याम रग राम सखे छवि खानि॥

कुञ्चन कवल फूल ऊपर अवध जाके,
शहर महल लौन अमित उदार है।
अद्भुत स्वरूप जाके कर्णिका सिगार चित्र,
अगर सुगन्ध रग पाँचौ जग पार है॥
रचित उज्ज्वल वितान बूद लीला रस सार है।
रामसखे मकरन्द भरे भवर बिहारवै करै
सीताराम सेवा दोऊ निर्विकार है॥
राम को रूप अनूप समुद्र मे,
आगरि नाव निवाह नही है।
आखिन्ह देखि जु जाति वही सब,
डूबि अथाहन थाह मही है।
फेरि फिरै न फिरावन हार को,
फेरे रहै सो उठाऊ वोही है।
रामसखे मति चाय करौ,
चित्त चुबक लोह की लीक सही है॥

काम कृपान खुली अलकै मुख शायक से दृग भौह कमानै।
चोट लगै न बचै रण भूतल बीर मुनीस बली भट जानै॥
गोल कपोलन्ह बीच परै मन घायल माते मनोरथ सानै।
रामसखे मुसक्यान मरोरनि नासिका मोति की पीर निदानै॥

सगम दिव्य कलोल कलोलन्हि भावती बिलसै बिलसावै।
शोभा तरग बढै सब के मन चाव चढै रिझवार रिझावै॥
होहि कुतूहल कोशल बीथिन्ह कोमल कोटि सुमेर नवावै।
रामसखे भीजे रस बदन श्री राजा दशरथ लाल भिजावै॥

सौरभ सौर पराग समीर सो चूर पिये मकरद भरे से।
नील हरे पियरे सितरग मैं अग सुरग रगे सुघरे से।।
बोलत बोर झलाझल ओप पै ओपत चोप पै चोप धरे से।
रामसखे रति मौन कि पौरन्हि आय खरे पधरे मधुरे से।।

चन्द्रमा भौन जहाँ परियक पै सेन निकुञ्ज त्रिखण्ड के ऊपर।
दपति जानकि राम तहाँ नर्म नीन्द भरे दृग जाइ बधू बर।।
सोवे समेत सुतन्त्र समाज ते मजरी सबै समान भरी उर।
सेवा विधान श्रीराम सखे करैं प्रीतम राम निया तन ह्वै कर।।

सुरभि नीर सुरभित सुमन सुरभि भोग ताम्बूल।
रामसखे सेवैं युगल मैन कुञ्ज दिन तूल।।
विविध केलि बचनादि सब सबविधि पूजि रिझवारि।
रामसखे नीराजहि सभा भवन पगधारि।।

लगत राम प्रिय प्रान तैं तजि न सकति उर त्याइ।
तिय स्वाधीन जुभर्तृका धोवत हरि तेहि पाई।।
कुञ्ज कुञ्ज प्रति राम को ढूढति सरयू तीर।
नारी यह अभिसारिका धरति न नकहु धीर।।

नित्य राम मण्डल रघुनाथा। सकल त्रियन को करत सनाथा।
तोषत सबन जासु तस भावा। कृपावन्त रघुनाथ सुभावा।
कहुँ नर्म सखन राम सिंगारैं। पुनि निज नयनन रूप निहारैं।
कहुँ अपनौ सिंगार करावैं। राम कान्ति नम सखन दिखावैं।
इन्हैं जु आदि ख्याल बहु खेलैं। नितहि राम रघुबसिन भेलैं।
यह वर ध्यान ताहि उर लागै। सो सब मत तोई लौ त्यागै।

रसिक लक्षण—

चित्त सन्तोष महा धन लीने। रघुबर की लीलन्ह अति भीने।।
रसिक अनन्य न मो मिलि लोभ। उनके पगन धोई मन छोभ।।
जानि नात निज बारहि बारा। राम समान करैं उपचारा।।
सखा सखी द्वै भाव जु राखैं। मधुर चरित्र राम के भाखैं।।
विधि निषेध सब कर्म जु त्यागैं। रहत सदा रघुपति छवि पागैं।।
पूजैं नही पितर बहु देवा। रामहि की भावै जिय सेवा।।
राखै एक राम विस्वासा। करैं न त्रिभुवन दूसरि आसा।।

राम कुटब कुटब निज जानै। सपने जग नातौ नहि ठानै॥
सीतापति कृत जग सब देखै। योते सब जिय सम करि लेखै॥
त्रिजग योजि आदिक जीवन गन। देहि न दुख काहू बच क्रम मन॥
आये हरष गये नहि शोका। तृण मान देखै ब्रह्मलोका॥
नृप अरु रक होई किन कोई। रसिक विना वे त्यागै दोई॥
रसिकन के नित भोजन पावै। रसिकन बिनु भिक्षा चित ल्यावै॥
राखै इक हिम अर्थ गदरी। जनु बिराग की त्रिया सुन्दरी॥
तुलसी की धारहि गल माला। भक्ति स्वरूपानन्य मराला॥
देहि तिलक निर्मातल चन्दन। हरदी बिन्दु पीत जग बन्दन॥
भृकुटी सन्त सीस पर जन्ता। करै मिही रेखन छविवन्ता॥
बोरि हर्दिका मैं धनुशायक। धरे भुजन छापैं रघुनायक॥
एक सूत बस्तर रग पीरा। राखै तन बानौ रघुबीरा॥
राम मन्त्र षड अक्षर काना। करै यही उपदेश प्रधाना॥

दयावान बानी मधुर, त्यागी सहित बिबेक।
लीन्हे निज चैतन्य चित, राम रास व्रत एक॥

कटि कोपीन कमण्डल धारी। बन प्रमोद कल कुञ्जन चारी॥
भनै नृत्य राघव जे बानी। राम रसिकता हिय उफनानी॥
राम रास ग्रन्थन मन त्याई। सुनै सुनावै प्रेम बढाई॥
मन क्रम वचन राम को ध्याना। करै सु निस दिन परम सुजाना॥
बचन रास के पद उच्चारै। मन करि रास धारना धारै॥
तनकरि रास सिंगार बनावै। लखि सिय राम रूप बलिजावै॥

सवत् अष्टादश चतुर, शुक्ल मधुर मधु तीज।
भयो नृत्य राघव मिलन, उद्भव सब रस बीज॥

ज्ञान दरश वैराग्य रवि, भक्ति नजर जब होइ।
रामसखे रघुपति मिलह, तब निज जिय सुख होइ॥

रसिक अनन्य वहै सुख सानी। राम रूप बिनु लखहि न आनी॥
छवि आसक्ति रहहि मन माही। क्षण पल राघव बिछुरत नाही॥
हेरि क्वऊ सुन्दर नर नारी। राम बियोग करहिं अति भारी॥
वेष नृपति छैलन असवारी। आवत राम ध्यान छवि भारी॥

सुनि कोकिल कर कूक, मृदु नटनि मयूर निहारि।
रामसखे मन करत झष, मिलन राम छवि बारि॥

अरुण पीत रग लखि छविकारी। मोहहि कलि सुधि अवध बिहारी॥
कहुँ विलोकि नग जटित नूपुरन। अवधलालकर रूप चुभत मन॥
सिन्धु सुगन्धि राग सुनि काना। लावत नयनन राम सुजाना॥
लखि श्रावण घन तडित शरद शशि। रह रघुनन्दन विरह चित गशि॥
देखि कुसुम वसन्त ऋतु शोभा। छावत राम प्रेम उर गोभा॥
रसिक अनन्यन कर यह रीती। नेहि उर लगहि ऐनि अति प्रीती॥
सो सुर पूज्य योनि कोऊ जिय। पाइय जासु जूठ तृप्ति हिय॥
ताकर जूठिन कर जु प्रतापा। करहि मुक्ति जिय बिनु तप जापा॥

रसिकन कर जूठन प्रबल, आप करी रघुनाथ।
शवरी के फल जूठ भषि, त्यागि मुनिन कर साथ॥

अद्भुत रत्न पुलिन सरयू तट। झरत तहाँ द्युति सुधा सोम बट॥
नटत राम तहाँ नित्य बिहारी। लीन्हे सग सिया सुकुमारी॥
कोटिन सखी सखा नृप घेरे। लिये यन्त्र गावहि प्रभु नेरे॥
रत्नागिरि तहँ करत उज्यारी। कोटि चन्द्र द्युति तापर वारी॥
हरित पीत सित श्याम सुरगा। फूले लतन फूल बहु रगा॥
चम्पक बकुल कदम्ब अशोका। मोहत लगत माधुरी वोका॥
तिन महँ सिया मान अति करही। राम मनाइ अक पुनि धरहि॥

हरिचन्दन सन्तान बहु, पारिजात मन्दार।
रामसखे इन तरुन की, कुञ्जै लसनि अपार॥

अन्तर ध्यान होहि क्षण मे हरि। ढूढि लैहि सिय तबहि प्रेमकरि॥
अन्तर ध्यान राम महँ प्यारो। लहहि सखी सु भक्ति करि चारो॥
बहि रगा अति रगा प्रेमा। पराभक्ति रसिकन सुख क्षेमा॥
कबहुँ सखी पूजहि मन लाई। राम वेष सखि कोउ बनाई॥
क्रीट शीश धनुही कर धारहि। तन मन प्राण निरखि छवि वारहि॥
चमर छत्र व्यजनादिक ढोरहि। करि प्रणाम हाथन पुनि जोरहि॥
वहिरगा यह भक्ति दिखाई। अतिरगा अब कहत बुझाई॥
कबहूँ सखी ध्यान अति ठानहि। नयनन मूदि राम हिय आनहि॥
अतिरगा यह भक्ति बखानी। प्रेमा और भनत रस सानी॥
कबहुँ सखी ढूढति मिलि पुञ्जन। शरद रैनि नरय् कर कुञ्जन॥

बूडी राम वियोग हृद, ढूढति व्याकुल अग।
रामसखे छवि बावरी, बेधी शरन अनग॥

कबहुँ फूल शय्यन सब हेरहि। कहि कहि राम पियामुख टेरहि॥
कहुँ गहि गहि बूझहि व्यासन सन। राम वियोग नही सुधि बुधि तन॥
डसहिन व्याल रामतिय जानी। झूमति फिरहि प्रेम रस मानी॥
कोऊ अति बिकल प्रेम बश नारी। बोली अस मैं राम बिहारी॥
मैं नृप के मणि आगन चारी। मैं भुशुटि सग भुजा पसारी॥
मैं कठोर शकर धनु तोरी। मै सिय सग कीन्ही गठजोरी॥
मै रघुपति प्रमोद वन वासी। मै नटवर बर राम बिलासी॥
प्रेमाभक्ति ललित यह गाई। पराभक्ति सुनिये सुखदाई॥
कोउ तिय कहहि मिलत सुनि गाना। सब मिलि गाइय राम सुजाना॥
तब सब मिलि सरयू तट गावा। करि करि नृत्य रूप दृग छावा॥
रघुनन्दन तब तत्क्षण आये। युवती सकल प्राण से पाये॥
लिये ललित धनुही कर तीरा। जनु अद्भुत कोउ काम शरीरा॥
राम धनुप माधुय अपारा। देखि काम निज धनुष बिसारा॥
रतन क्रीट घूघुर युत अलके। पान खात लखि लगत न पलके॥
कोउ सजनी आसन करि सारी। बैठारत पिय अवध बिहारी॥
कोउ तिय कहि अस भौहन तानहि। हम तुम्हरी गुमराई जानहि॥
सिया करहि सोरह शृगारा। रोचन चित अवधेश कुमारा॥
मग सिन्दूर तैल रचित बनी। चन्दन खौर महा सुख देनी॥
पान खाति बोलति मृदु बयननि। दमकत दशन हरति प्रभु नयननि॥
भूषण जे हिम रतन जडाये। चन्द्रिकादि अग अग मन भाये॥
मणि माणिक जो पटमहँ पोह। कञ्चन बिनु अगनि अति सोहे॥

कसनि कचुकी घाघरो, इन्हे आदि कछु आनि।
बसन चूदरी श्याम रग, राम सखे छवि खानि॥

फूलमाल मोतिन के गजरा। बलया करण लसत दृग कजरा॥
मुख उर अतर गुलाब लगाये। गुजत भ्रमर सुरभि अति पाये॥
मेहदी हाथ पगन मा हौरी। देखि देखि भई रति अतिबोरी॥
यह सिय छवि कछु बरणि न जाई। तापर प्रभु नित रहत लुभाई॥
मोरहु करहि शृगार श्याम घन। मोहन हित अति सिय दामिनि मन॥
जुल्फन तैल खौर सिर चन्दन। मुकुटादिक भूषण दृग अजन॥
बीरा मुख मणि माणिक हारा। चुपरे अग सुगन्धि उदारा॥
फूल गूथि अग अगन पहरे। मोतिन माल उठत छवि लहरे॥
कछनी कसन इजार सुरगा। बसन पीत पट ओढन अगा॥

अरुण हरित रग धनुकर सोहहि। स्वर्ण पख विचित्र शर मोहहि॥
भनेहुँ महा बैकुण्ठ सबन पर। तापर गोपुर मध्य अवध बर॥
अवध अवध की अवधि जो बरणी। लबधि प्रेम करि ताकर धरणी॥
तहँ सरयू मणि घाटन छाई। कहि न जात अद्‌भुत रुचि राई॥
फूले जल थल कमल अनन्ता। बन प्रमोद नित रहत वसन्ता॥
गुजत भ्रमर काकिला बालन। नटत मयूर काम जनु खोलत॥
बिनु देखे यह राज लुनाई। पल पल कलप समान विहाई॥
जब लगि तुम विहरहु खेटक बन। तब लगि हम अति विकल रहहि मन॥
क्षण क्षण लखहि झरोखन जाई। सन्ध्या की आवनि सुखदाई॥

नयननि त नहि होहु तुम, न्यारो क्षण पर लाल।
रामसखे यह बीती, करहि सकल मृदु बाल॥

नटहि राम अरु सिया परस्पर। मोर हस गति लेत गतिनबर॥
साहत राम सखिन मधि प्यारे। मनहुँ तडित अग बिच घन तारे॥
बीण मृदग मुरलिका आदिक। बाजन सखिन बजावहि स्वादिक॥
गये राम पुनि मार सुहाया। प्रथम भाग मधुपर्क लगाया॥
पुनि सखियन अस्नान करावा। गोदन ले शृगार बनावा॥
कोउ कर धूप दीप कोउ रचही। कोउ हिमथार भाग मृदु सचही॥
कोउ सरयू जल कर अचवावन। कोउ ताम्बूल देहि शशि आनन॥
कोउ आरती करहि अति प्रेमा। लखि प्रभु रूप मनावहि क्षमा॥
पिय सन्मुख ह्वै बाधति निव्या। मिलन हेतु नववधू सइव्या॥
एक रीति आठहु पटरानी। मिलन चहति प्रभु सौ रति मानी॥
अटकें तहँ घटिका ह्वै चारी। नारि सबै समप्रेम निहारी॥
जाइय अस समझी यह बाता। लखहि न कोउ काहू पहँ जाता॥

नर्म सखा

जे रघुकुल नृप सखा कहावहि। नृप चरित्र तिनक मनभावहि॥
रासादिक मृगयादिक रगा। रहहि सदा दाउन के सगा॥
राम तुल्य ऐश्वय राज सुख। यद्यपि जियत बिलोकि राम मुख॥
कहुँ सजि कै गज पर चढि हर्षहि। प्रभु की गाद बइठि रस वर्षहि॥
कहूँ मानिनी तियन मनावहि। करि बसीठि प्रभु कहुँ जु मिलावहि॥
कहुँ रति दान तियन प्रभु देही। कहुँ व्यजनादिक टहल जु लही॥
जानि नात निज बारहि बारा। राम समान करहिं उपचारा॥
सखा सखी ह्वै भाव ज राखहि। मधर चरित्र राम करि भाषहि॥

*

विधि निषेध सब कर्मजु त्यागे। रहत सदा रघुपति छवि पागे॥
कहुँ आपुहि रति पति रति पोषहि। धरि तियन तन अति प्रभु कहँ तोषहि॥
कहुँ नि तियन आपुरस बोरत। रास ठानि प्रभु जो चित चोरत॥
कहुँ रघुपति सग करि गलबाही। नृत्यत रग महल के माही॥
सिय जो करति केलि प्रभु के सग। चुम्बन मिलन आदि जेते रग॥
प्रभु अरु आपु परस्पर रूपा। पिये नित्य डूबे रस कूपा॥
यह सुख कहँ जो प्रापति होई। अस जग जन कोटिन महँ कोई॥
वैष्णव धर्म जन्म बहु करई। तब यह मारग कहँ अनुसरई॥
तुलसी कर धारहि गल माला। भक्ति स्वरूपानन्य मराला॥
देहिं तिलक निरमायल चन्दन। हरदी विन्दु पीत जगबन्दन॥
भृकुटी अन्त शीश पयन्ता॥ करहिं मिही रेखन छवि वन्ता॥

दयाबान बाणी मधुर त्यागी सहित विवेक।
लीन्हे निज चैतन्य चित राम रास व्रत एक॥

सुत दारा धन राज्य सुख मगन जगत जिय मन्द।
राम राम लखि रसिक जन लहत परम आनन्द॥

राघव सग इक सेज रमन नृप सखा प्रिये अति।
तहँ देखत मृदु रूप बढति रघुनाथ मिलन रति॥

बन प्रमोद रस राम छके रस छन्दन सिर्जत॥
जिय ईश्वर निज रूप पाय नित बदत द्वैतमत॥

प्रभु ह्वै अदृष्ट जल कूप तिनके हित प्रकटे निकट।
सब रसिक मुकुट हरितन अघट राम सखे रघुकुल प्रकट॥

अरे दिवाना कहा न माना झूठ भुलाना है पछिताना।
बिरादराना मोहब्बत ताना गोपुर जाना नही समाना॥
राम न जाना भजि शैताना फिरि आना पार न पाना।
प्रेम लुभाना जो कछु जाना नही ठिकाना बे भगवाना॥

श्री सीतायन

श्री रामप्रियाशरण प्रेमकली

स्वामी रामप्रियाशरणजी 'प्रेमकली' का लिखा 'सीतायन' ग्रन्थ के दो काण्ड मिलते है। रुकाण्ड और मधुर माल काण्ड। पहला काण्ड सितम्बर १८९७ मे और दूसरा काण्ड अक्तूबर श्री छोटेलाल लक्ष्मीचन्द बम्बईवाले ने लखनऊ प्रिटिग प्रेस मे छपाकर प्रकाशित किया।

बालकाण्ड मे सीता-उर्मिला श्रुतिकीर्ति माण्डवी के जन्म का वर्णन है तथा दैसवज्ञो द्वारा इनके आदि शक्ति जगज्जननी रूप का तत्त्व-विवेचन है। इसमे नित्य युगल रूप का बडा ही भव्य एव मनोहारी वर्णन है साथ ही श्रीराम और सीता का वास्तविक एव तात्त्विक स्वरूप का ध्यान है। दिव्यधाम, अयोध्या तथा उसमे कनक भवन का रहस्यमय नित्य रूप का ध्यान है और नारद द्वारा जनक को इनके प्रति सबध मे भविष्यवाणियाँ है।

रहस्य प्रमोदबन श्री जानकी घाट अयोध्या मे 'सीतायन' की हस्तलिखित प्रति प्राप्त है जिसमे—बालकाण्ड, मधुर काण्ड, जयमाल काण्ड, रममाल काण्ड, सुखमाल काण्ड, रसाल काण्ड और चन्द्रिका काण्ड—ये सात काण्ड है और क्रमश प्रत्येक काण्ड मे ४१, ३९, १२०, ५५, ३०-२८, ४—इस प्रकार कुल मिलाकर ३१७ पन्ने या ६३४ पृष्ठ है। 'सीतायन' रसिकोपासना का एक प्रधान आकर ग्रन्थ माना जाता है और उसकी इस साधना मे बडी प्रतिष्ठा है।

'सीतायन' के 'मधुर मालकाण्ड' मे प्रेमकलीजी ने आत्म परिचय दिया है जो इस प्रकार है–

प्रिया शरण गुरु भावना अरु निज भाव समेत।
युगल नायिका करि कहौ प्राप्ति भाव के हेत॥
नेह कली आचार्य मम प्रेम लली मम रूप।
युगल सुनयना की सुता अद्भुत युगल स्वरूप॥
वय सन्धिनि मधुराननी परम मनोहर अग।
गौर बरण सिय कुञ्ज मे रहत सदा सिय सग॥
मधुर भावना युगल की अरु शृगार रस रीति।
सो सब वर्णन करत हौ अति प्रसन्न अति प्रीति॥
द्वितीय मधुरता मे कहव सीता जन्म प्रसग।
जवन हेतु जेहि दिन भयो शिशु चरित्र बहुरग॥
बहुरि तेहि दिन जन्म है उर्मिलादि सुकुमारि।
तिन सब को वर्णन करब सुन्दर चरित बिचारि॥

षष्ट अष्ट षोडश दल बिमला। कमलाकर सिंहासन अमला।
षष्ट अष्ट षोडश मजरि है। चहुँदिशि राजति आनन्द भरिहै॥
तेहि के मध्य सिया अलबेली। अद्भुत राजति रूप नवेली॥
श्याम केश मस्तक भरि के है। सूक्ष्म सघन मणि मोति गुहे है॥
भाल बिशाल भृकुटि वर बाकी। काम धनुष छवि हरत हराकी॥

कञ्चन मणि मय थार लसत कर आरती।
अमित वेष धरि नाचति गावति भारती॥
वेद न पावत पार नेति कहि कहि रहि गये।
नृप को भाग सराहि मनहिं प्रमुदित भये॥

सघन श्याम चिक्कन कुटिल मस्तक भरि शुठि बार।
जननी निरखत चन्द्र मुख बार बार बलिहार॥

छमछम छननन पगन ते नूपुर बजत अनन्द।
जनक सुनयना सुत्त नवित शिशु लीला करु सीय।
जो यह छवि निरखत नयन चारि मुक्ति अनयीय॥
वेद विदित जो तत्त्व यह जनक सुता सोइ चार।
रानी देखहिं छवि मगन सब दिशि सुरति बिसारि॥
प्रिया शरण श्री जनक के अजिर महित सिय आदि।
ज्यहि हिय नैनन मे बसैं ब्रह्मात्मक सुख वादि॥
जेहि सीता क अश त अमित रमा रति होत।
अमित उमा शारद शची तहि तन की उद्योत॥
रहति सदा पुनि टहल मे क्षण क्षण भृकुटि निहारि।
जेहि समय जस रुचि लखति तेहि क्षण कौन प्रचार॥
मूल प्रकृति जेहि अश है जग जेहि भृकुटि विलाश।
विधि हरिहर जेहि गुण लिये रचिपालत पुनि नाश॥
जिनके चरण सरोज के अकन ते अवतार।
मीनादिक सब रूप हैं सिय के अमित बिहार॥
गोद लै चूम्बति दुलारति भाव होत आपरनि।
चुटकि ध्वनि सुनि नचति अजिर सो सकल सुख अनुसरनि॥
कबहुँ लखि प्रतिबिम्ब नाचति कबहुँ चलि गिरि अरनि।
परस्पर खेलति कुवरि सब किलकि झुकि पुनि डरनि॥
श्री राधा आल्हादि शक्तिनी ज्यहि श्रुति गावै।
कोटिन रति कह मोहि राम आचार्य कहावै॥
सा चन्द्रिका ते होत रूप गुण शील अमित छवि।
विमल अग गौराग देखि ज्यहि लजत बाल रवि॥
नन्द नन्दन क सग मे विविध रास रचना रची।
ब्रज गोपी सब सग मे सोइ रमा शारद शची॥

बाल बिहार

नखसिख मञ्जु मनोहर ताई। कहि न जाइ अगन रुचिराई॥
बिहरति महल सकल मन भावति। कबहुँ हसि हसि ताल बजावति॥
कबहुँ परस्पर नाच नाचति। कबहुँ मधुर स्वर मगल गावति॥
कबहुँ परस्पर बचन उचारति। कबहुँ मुकुर लै बदन निहारति॥

लखि छवि मगन होइ पुनि जाही। मुकुर हाथ से त्यागति नाही॥
प्रतिबिम्बहि पूछत तुम को है। इतै कहाँ ते आनि बसौ है॥
तुम केहि की पुत्री सुकुमारी। नखसिख मञ्जु महा छवि भारी॥
को तब तात कवन तब माता। मोसन कहहू सत्य सब बाता॥
छवि छवि निज प्रतिबिम्ब भुलानी। तेहि छन आइ सुनयना रानी॥
सिय चेतन्य भइ मातु निहारी। यह तो है प्रतिबिम्ब हमारी॥
मैं भूली अपनी परिछाही। यह तो अपर नारि कोउ नाही॥

यहि विधि अमित बिहार सुख, करनि रहति दिन रैन।
जननी लखि प्रमुदित रहति, अति छवि अति सुख ऐन॥
सकल सुता निमि बश की, सिय की रुचिहि निहारि।
सब समाज मिलि गइ हरषि, महली राम बिहारि॥

जस इत कुअरि मनोहर राजै। तस उत कुअर महा छवि छाजै॥
सब प्रकार सुन्दर चहुँ ओरा। अति प्रसन्न लखि मानस मोरा॥
तिन लखि छवि भइ प्रेम अधीरा। कस क्यो मन उपजी अति पीरा॥
जब लगि अधरन राम चुमइहै। तब लगि सुख कोइ यतन न पइहै॥
कोइ के अरुण चूनरी राजै। छवि की खानि मनोहर भ्राजै॥
सिय निज महिमा प्रकट देखाई। सो महि कहत एक नहि आई॥
लखी राम सिय अद्भुत रूपा। बरणि न जाय सो बात अनूपा॥
तब राजा बहु बिनय जनाई। सिय सन्तुष्ट भई सुख पाई॥
पुनि राजा निज प्रश्न सुनाई। कहिय बात सब मोहि बुझाई॥
सब ते परे पुरुष को अहई। का तेहि नाम कहाँ सो रहई॥
केहि के रचित भवन दशचारी। केहि महँ लीन होत जग सारी॥
सुनि पितु बचन परम हर्षाई। बोली सीता बचन सोहाई॥
सो सम्बाद सुन्दरी तन्त्रा। सीता की बर बाणि विचित्रा॥
तुम को नित्य पिता हम जानी। हमको पुत्री तुमहुँ बखानी॥
सबमे परे पुरुष श्री रामा। श्याम स्वरूप महा सुख धामा॥
हम ते उनते नहि कछु भेदा। रूप भेद पुनि तत्त्व अभेदा॥

जहँ दोऊ बिराजही तौन धाम सुनु तात।
प्रकृति पार गोलोक है तेहि मधि पुर विख्यात॥
नाम अयोध्या भनत श्रुति ब्रह्म बिष्णु शिव ध्यान।
उमा रमा ब्रह्माणि तेहि निशि दिन करत बखान॥

अब सुनु राम ध्यान मन लाई। श्रवण करत अघ पुज नशाई॥
बन अशोक सरयू तट सोहै। रचना सकल काम रति मोहै॥
कचन भूमि खचित मणि नाना। मत चित आनन्द मय अस्थाना॥
कल्प वृक्ष तहँ परम सोहावन। मूल तले मणि महल सो पावन॥
ताके मध्य वेदिका राजै। चिन्तामणि की कान्ति बिराजै॥
सिहासन मणि मय अति सो है। गज मुक्ता झालर लटको है॥

अयोध्या

राम अनादि सीता अनादि अवध अनादी।
तुम्हरी पुरी अनादि सकल कह बेद के बादी॥
दोउ राय अनादि अवध मिथिला की गादी।
चतुर्वेद षट शास्त्र पुराणादिक प्रतिपादी॥
तुम राजा सब जानतहू तुम्हरे गृह को बात सब।
अपरनि को तब लखि परे तुम्हरी कृपा कटाक्ष जब॥
लीला सकल अनादि जबहि यश रुचि तस करही।
ताकहँ आविर्भाव कहत श्रुति वाक्य न डरही॥
सिया राम पर रूप भक्त सग करहि बिहारा।
भक्तन के वै श्याम गौर युग शरण अधारा॥
सिया उर्मिला नेह अरु प्रेमा। अष्टयाम एक सग सनेमा॥

श्री काष्ठ जिह्वा स्वामी के कुछ लीथो मे छपे ग्रन्थो का पता लगा है जिनका इस 'रसिक सम्प्रदाय' मे विशेष आदर है—

१ **श्री जानकी मगल** —श्री जानकी जी के रूप का ध्यान
२ **श्री राम मगल** — श्री राम जी के रूप का ध्यान, पुन नाम, रूप, लीला, और धाम की दिव्यता पर विचार
३ **भूषण रहस्य** — भगवान् राम और भगवती सीता के शरीर पर सुशोभित विविध शृगार और आभूषणो का विन्यास
४ **अश्विनीकुमार बिन्दु**
५. **हनुमत बिन्दु**
६. **श्याम लगन**
७ **श्याम सुधा**
८ **जानकी बिन्दु**
९ **कृष्ण सहस्र परिचर्या**

इन नौ ग्रन्थो के अतिरिक्त भी श्री काष्ठ जिह्वा स्वामी लिखित और लीथो मे छपे कुछ और ग्रन्थ भी मिले है—जैसे,

गया बिन्दु, शिसा-व्याख्या (सस्कृत), सांख्य तरग और वैराग्य प्रदीप।

वृहद् उपासना रहस्य

श्री प्रेमलताजी

श्री सीतारामजी दोनो एक ही हैं। देखने में दो भासते है। केवल भक्तो के हितार्थ हमेशा उभय रूप धारण किये रहते है, परस्पर सम्बन्ध दोनो मे जल, तरग, गिरा, अर्थ, सुमन, सुगन्ध, रसोई, स्वाद, बिम्ब, प्रति, मनी, मोल, देह, देही, मेस, मेसी की नाई है।

गर्व करो रघुनन्दन जानि मन माहि।
अपनी मूरति देखौ सिय की छाहि॥

श्री सीतारामजी दोनो एक है और इनके चरित्र तर्क्य है। भाविक लोग कहते है कि हे श्री राम लला जी, आप श्री सिया जू के चेरे है, इस माधुर्य रस सानी बानी को सुनि मन्द मन्द मुसिकाते मन भाते, बोलते, भाविको के वशीभूत हो रहते हैं। भाववश्य भगवान्, सुख निधान करुणा भवन। इस ग्रन्थ मे तो निरे भाव ही भाव भरे है। भाविको के ग्रन्थो मे अभाव की बात ही नही होती। भगवत के आश्चर्यजन्य चरित्र भागवतो की ही बानी मे मिलेगे अन्यत्र नही। भागवत प्रभु के सग हमेशा विहार करनेवाले है। जहाँ वेद-वेदान्ती शास्त्र विद्याभिमानियो की स्वप्न मे भी गति नही, तहाँ अन्त पुर मे सखी रूप मे भागवत श्री सीतारामजी की देहली नित्य सेवा करते है और नित्य लीला मे भी दासादि रूप धरि-धरि प्रभु को परमानन्द देते है।

चारु शिला हनुमान पुनि, शम्भु सुशीला आलि।
दोउ तन ते सिय राम पद, सेवहिं आयसु पालि॥
दास सखा बहिरग ते, अन्तर पतनी भाव।
आत्म समर्पी भक्ति करि, मिले प्रभुहि महचाव॥

नाम प्रसग

अपर नाम सब विबुध गण, राम नाम सुर राज।
जापक उर अमरावती, राजत सहित समाज॥
अपर नाम अवतार सब, राम नाम सिय राम।
जापक उर श्री जनकपुर, विहरहि जहँ वशु याम॥
कोटिन साधन साधिये, कोटिन जन्म सुधारि।
राम नाम की रटन सम, सुखद न कहत पुरारि॥

रूप प्रसग

एकै पुरुष राम सब नारी। जहाँ लगि दृष्टि परै तनु धारी॥
सब महँ करै रमन सोइ रामा। आतम राम परधौ तेहिनामा॥
हम सब सिय की शक्ति स्वरूपा। सब के पति सोइ राम अनूपा॥
मिथ्या पुरुष सकल हम भाई। भीतर सिय की शक्ति समाई॥
यह विवेक जिन्हि के उर हाई। आतम ज्ञानी जानहु सोई॥

सिया अलिनि की को कहै, सुख सुहाग अनुराग।
विधि हरिहर लखि थकि रहे, जानि छाट निज भाग॥
बहुरि त्रिपाद विभूति ये, श्री, भू, लीला, धाम।
अवलोकहु रमनीक अति, अति विस्तरित ललाम॥
विश्व विलास निकुञ्ज अब, अवलोकहु यहि ओर।
नाटक होत जथार्थ जहँ, अति विचित्र चितचोर॥
नित्यानित्य पसार बहु, नूतन छन छन माझ।
उपजत विनसत लखि परै, जिमि जग भोर सु साझ॥

विद्या माया सिय बलराखै। निज बल बुद्धि अविद्या भाखै॥
दोउ माया सिय निज प्रगटाई। लीला हेतु प्रकृति बिलगाई॥
निज निज दल दोउ विरचि सुमाया। करहि चरित बहु जात न गाया॥
नराकार यक तन इक नारी। बनी उभय दोउ दलनि मझारी॥
लीलाहित आपहि दुइ रूपा। बनी नारि यक पुरुष अनूपा॥
सो जड माया पुरुष न नारी। प्राकृत जो नाना तन धारी॥
तेहि जड बन महँ विद्या माया। पैठि बनी सोइ निजहि भुलाया॥
जड महँ बैठि सुजडनि निहारी। मोती चेतन सक्ति विचारी॥
सनमुख रही विमुख भइ सोई। जड सग मिलि चेतनता खोई॥

हमहम करि दुख सहत अति, विवस मोह मद सार।
भोगहि निज कृत कर्म फल, फसि जड माया जार॥

विद्या माया कर दल जोई। सियहि भजत सब सनमुख होई॥
विमुख अविद्या दल दुख रूपा। भयेउ त्यागि सिय चरन अनूपा॥
चढ़हिं स्वर्ग कहुँ नरकनि परही। सिय पद विमुख विपुल तन धरही॥

जयति जयति सर्वेश्वरी, जन रक्षक सुखदानि।
जय समर्थ अह्लादिनी, सक्ति सील गुन खानि॥

जयति स्वतन्त्र सकल घट वासिनि। जयति सुमुखि अवलोकहु दासिनि॥

जयति नाम तव सब सुख दाता। जन्म मरन नासन दुख त्राता॥
जयति परम परमारथ रूपा। जयति चरित तव अकथ अनूपा॥
छमहु देवि अपराध हमारे। कीन्ह मोह बस जो अघ भारे॥
अब करु कृपा स्वामिनी मोई। कबहूँ हमरे मोह न होई॥
जयति परम पावन सुख मूला। जयति हरन सम्भृति भ्रम सूला॥
जय सरनागत वत्सल भामिनि। विश्व रूप चेतन बहुनामिनि॥
राम ब्रह्म की प्रान अधारा। जय जन पालक हरन विकारा॥

जयति शान्ति सुखमा सदन, क्षमा सील सर्वज्ञ।
जयति भक्ति प्रद शक्ति पर, सरल स्वभाव कृतज्ञ॥

जयति सखी गन मध्य विहारिनि। जयति सुकीरति जग विस्तारिनि॥
जय मद मोह कोह भ्रम हरनी। अमरन मरन दरन जन जरनी॥
पुरुष भाव उर धरि अग्याता। बिसरेऊ हम तव पद जलजाता॥
जग करता पालक सहरता। बने रहे हमही वरि नरता॥
अब करि कृपा सरूप लखावा। जानेउ अकथ अनूप प्रभावा॥
यह छवि बसै सदा हमरे मन। अस कहि परे चरन पुनि तिहुँ जन॥
परम कृपालय सिय मुसिकानी। बोली सरल मनोहर बानी॥
तुम्ह अतिशय प्रिय तिहुँ जन मोरे। मम महिमा जनि भूलेऊ भोरे॥
जो कछु भौमा तुमहि सुनाई। जानेउ सत्य सु बात सदाई॥
सनमुख जो पावहि कवनिउ तन। भजहि मोहि धरि सखी भाव मन॥
मम भूषण चन्द्रिका अनूपा। धारहिं ते सब मोर सरूपा॥
बिन्दु चन्द्रिका मुद्रा धारी। पावहिं मोहि निश्चय नर नारी॥

राम पुरुष यक बाम सब, रमण करै सब सग।
मोर निकट निवसत सु जिमि, बिम्ब श्याम शुचि रग॥

तन छाया इव कबहुँ न तजही। अस विचारि सनमुख मोहि भजही॥
जहाँ देह तहँ छाया रहही। देह बिना छायहि को लहही॥
छाया पुरुष मोर जो रामू। रमन करो तेहि सग बसु जामू॥
छनहुँ न तजत मोहि मैं तेही। उभय एक जिमि छाया देही॥
जब चाहो तब श्याम सरूपा। प्रगटो पुरुषाकार अनूपा॥
करो चरित तेहि सग मिलि नाना। भक्ति हित आनन्द निधाना॥
लीला ललित सगुन सुखकारी। पढि सुनि पावहिं जन मोहि झारी॥
सगुन उपासक युगल सरूपा। ध्यावहि ते न परहिं भवकूपा॥

दशरथ सुत राम सिया, जनक की दुलारी।
नखसिख सोभा अपार, लाजत लखि कोटि मार॥
बरनत छबि बार बार, सारदा उहारी।
भूषन मनि जाल माल, लसत विविध जटित लाल।
नैन कञ्ज ललित माल, तिलक मोद कारी॥
गौर वरन सियाराम, सुभग अग मेघ स्याम।
पीत वसन उत ललाम, इत सुनील सारी॥
राजत सुख गुन निधाम, मैवति पद विपुल बाम,
मीता कर कमल राम, धनुष वान धारी॥
सुर नर मुनि धरत ध्यान, कीरति कल करत गान,
प्रान के सुप्रान ब्रह्म, ब्रह्म के अधारी॥
सरन पाल अति उदार, हरन हेतु भूमिभार,
करत चरित विविध सार, वदत वेद चारी॥
'प्रेम लता' सोच त्यागि, युगल चरन कमल पागि,
जपिसु नाम जीह जागि, दमन दोष भारी॥

राम प्रसग

गऊ लोक के मध्य सो, अति विस्तरित ललाम।
निवसि जहाँ बिहरत सदा, अलिनि सहित सियराम॥

नहि तहँ कम धर्म तप ध्याना। कुजोग जग्य नहि जप तप ग्याना॥
पूजा पाठ न जादू टोना। तीरथ वरत न साधन सोना॥
जनम मरन नहि राग वियोगा। नहि तहँ पाप पुण्य कर भोगा॥
अहकार कामादि विकारा। नहि तहँ प्राकृत विषय विहारा॥
हठ सठता अविचार न रोषू। कपट दम्भ पाखण्ड न दोषू॥
नाना मत न सठता वेषू। राग विराग न ईर्षा द्वेषू॥
जाति बरन नहिं आश्रम चारी। वेद पुरान न इन्दु तमारी॥
पञ्च तत्व उरमिनि खट मन्दा। अष्ट प्रकृति नहि कोउ दुख द्वन्दा॥
सकल विकार रहित सो धामू। सब लोकनि ते पार ललामू॥
तेहि महँ केवल केलि प्रधाना। सिय सियबर कर कहहि सुजाना॥

अवलोकहिं बड भागिनी, ललना गन समुदाय।
निवसि सग बसुजाम सुख, तिन्हिकर बरनि न जाय॥

अनन्द अकथ अनूप निकाई। धाम प्रभाव बरनि नहिं जाई॥
कोटिन भवन विसाल सुहाये। जगमगात नहि जात सुगाये॥

राजहिं ललना गन तिन्हि माही। वृन्द वृन्द सिय की भुज छाही॥
जब जब करत चरित प्रभु नाना। भक्तनि हित सिय राम सुजाना॥
तब तब ते धरि रूप अनूपा। प्रगटहिं सग सुरुचि अनुरूपा॥
गुरु पितु मातु बन्धु परिवारा। बनहि सखा दासादि अपारा॥
लीला करहिं अमित तन धारी। ललना सिय पिय सुरुचि निहारी॥
खग मृग भूषन बसन सुवासन। हय गज धेनु रथादि सुखासन॥
भवन भण्डार सुपलग बिछौना। चमर छत्र मनि मानिक सौना॥

लीला केरि विभूति जो, सब सिय परिकर रूप।
मत चेतन आनन्द मय, त्रिगुनातीत अनूप॥

जेहि विधि रहहिं मुदित सियरामा। सोइ सब अलिगन करहिं सुकामा॥
सियपिय कृपा अलिनि के बीचा। सकल ममथन जानहिं नीचा॥
जहँ जस योग तहाँ तस रूपा। धरि साधहिं प्रभु काज अनूपा॥
करि कारज पुनि आलिनि अगा। धरि बिहरहिं सुख दम्पति सगा॥
पुरुष एक जहँ केवल रामू। अपर सकल तिय गन गुन धामू॥
नित्य विभूति धाम साकता। नित्य विहार न लखहिं अचेता॥
बिहरहिं जहाँ सग सिय रामा। तहँ नहि अपर पुरुष कर कामा॥
भूषन बसन सेज सुख सामा। सब चेतन अलि रूप ललामा॥
विविध रूप धरि श्री सिय आली। सेवहिं प्रभुहिं प्रम प्रतिपाली॥

कनक भवन विख्यात जग, राजहि जहँ सियराम।
तेहि की उपमा याग नहिं, अखिल लाक सुरधाम॥

अलिनि सहित सिय राम कृपाला। करत चरित तेहि माँहि रसाला॥
महल मध्य सुन्दर सर सोहत। निर्मल नीर घाट मन मोहत॥
सावकास चहुँदिसि फुलवारी। लगी ललित बहु भाँति सम्हारी॥
विपुल कुज सुख पुजनि पूरे। मनि दीपक बहु राजत रूरे॥
बिछे पलग बहु घले हिंडोरे। कुज कुज प्रति मोद न थोरे॥
मनिमय चित्र विचित्र अपारा। शोभित भीतिनि विविध प्रकारा॥
जेहि महलनि सियराम निवासा। अकथ तहाँ कर भोग विलासा॥
सेवहिं चरन अमित वर वामा। कहौ प्रधाननि केर सु नामा॥
श्रुति कीरति माडवि उरमीला। कौसिक कमला विमला सीला॥

चन्द्रकला श्री लछिमना, चारुसिला - ससिभाल।
हेमा - छेमा - जामुनी, मदनकला - रसमाल॥

प्रीतिलता श्री युगल विहारिनि। दुग्धवती - सुभगा - सुखकारिनि॥
ग्यान कला - कोविदा - कृपानी। सगुना - सरस्वती - मुदकानी॥

विस्वमोहिनी - मथुरा मीरा। प्रेमप्रभा सु द्वारिका - धीरा॥
ये सब जूथेस्वरी मयानी। सेवहिं दम्पति पद प्रन ठानी॥
कनक भवन के चहुँ दिसि घेरे। इन्ह के सदन सुशोभित नेरे॥
सबके भवननि सुख अनुकूले। भरेउ विपुल प्रद मोद अतूले॥
कुज कुज प्रति अलो अपारनि। जूथेस्वरी सुजूथ हजारिनि॥
राजहि गाजहिं पुर चहुँ फेरे। कचन भवन बने सब केरे॥
सन्तादिक आदिक बन नाना। मोहत सुभग न जात बखाना॥
फूले फर हरे लहराही। विहरहिं ललना गनितिन्हि माही॥

उपासक प्रसग

युगलोपासक

युगल उपासक चरण की, जे शिर धारहिं धूरि।
तिन्हि कहँ दशहू दिशि कुशल, नशहिं अमगल भूरि॥

युगल उपासक आनन्द रासी। श्री सियराम स्वरूप विलासी॥
कर्म धर्म साधन सुखकारी। करहि युगल सम्बन्ध विचारी॥
बहुमत बादी पन्थनि बारे। विपुल भर जग झगरत हारे॥
युगल उपासक दुलभ भाई। जिन्हि उरनि वसत सिय रघुराई॥
युगल उपासक चरण सु सेवा। कोटि काम धुक सम सुख देवा॥
जिन्हि के मन दम्पति सियरामा। बसहिं निरन्तर सब सुखधामा॥
तिन्हि कर मग रग सिवकाई। कोटि कल्पतरु सम सुखदाई॥
त्रिगुणातीत बचन वर करणी। युगल उपासक की श्रुति बरणी॥
युगल उपासक कर उपदेशा। जन्म मरण भ्रम हरण कलेशा॥
युगल उपासक जो गुरु करही। सो सम् सो जन श्रम बिनु भव निधि तरही॥

मन क्रम बचन विकार तजि, सेवहि जे सियराम।
तिन्हि की सेवा करहिं जे, पावहि ते मन काम॥

उपासना

पुरुष एक रघुपति अपर, जड चेतन सब जीव।
नारि रूप यह ज्ञाना दृढ, भयेऊ कृपा सिय पीव॥

नरतनु पाइहु आतम ज्ञाना। तजहिं न सज्जन जीव सुजाना॥
नारि पुरुष कवनिऊ तनु धरही। तिय स्वरूप निज सो न विसरही॥
जिन्हि पर कृपा करहिं भगवाना। तिन्हे लखावहिं आतम ज्ञाना॥
युगल रूप सेवा अधिकारा। पावहिं जिन्हि तिय भाव सुप्यारा॥

युगल उपासक मन क्रम बयना। सेवहि चरण निरखि छवि अयना॥
वरणो तिन्हि के कछुक सुलक्षन। सकल यथारथ कछु प्रतिपक्षन॥
श्री सियराम युगल अनुरागी। होत उपासक जन बड भागी॥
युगल भावना रस मन रगा। भूलि न करहि बिजातिनि सगा॥
युगल भाव वर्द्धक जो गाथा। पढहि सुनहि भजि सिय रघुनाथा॥

युगल चरण की आश इक, युगल धाम महँ बास।
रटहि रटावहि नाम नित, युगल हरण भव त्रास॥

जग प्रपच ते काम न राखन। युगल रहस्य सुधा रस चाखत॥
करहि सजातिनि सग निचन्ता। रटहि बैठि नतु नाम इकन्ता॥
कामादिक मद दम्भ विकारा। त्यागि भजहि सियराम उदारा॥
इष्ट स्वरूप नाम गुण धामा। जानहि सबके भेद ललामा॥
युगल सुभाव ध्यान गुण गाना। करहि सदा उर आतम ज्ञाना॥
आठऊ याम भरे अहलादा। रहहि पाय निज इष्ट प्रसादा॥
जो कोउ करै सु प्रश्न उपासक। युगल भाव सम्बन्ध प्रकाशक॥
यथा शक्ति तेहि बोध करावहि। प्रभु प्रिय हेरि न तत्त्व दुरावहि॥

पीत बसन कण्ठी युगल, पीत सु तिलक लिलार।
बिन्दु चन्द्रिका मुद्रिका, सहित नाम युग सार॥

पुरुष भावना जा हिय धारे। दास सखादि तदपि प्रभु प्यारे॥
गुप्त बिहार न देखन आवहि। हठ वश परेउ दूरि पछितावहि॥
हनुमदादि शिव धरि अलि रूपा। निरखहि गुप्त रहस्य अनूपा॥
अस विचारि जे चतुर उपासी। हठ तजि धरहि भाव उर दासी॥
तन ते दास सखादिक भावा। राखहि उर तिय भाव सुछावा॥
हनुमत सम नहि कोउ प्रभु प्यारे। दास सखादि भावना वारे॥

चारुशिला हनुमान सोइ, शिवसु सुशीला बाम।
चन्द्रकला श्री भरत पुनि, लखन लक्ष्मिना नाम॥

देखउ ग्रन्थ खोजि सब भाई। जीव मात्र तिय पति रघुराई॥

तत सुख बिनु न उपासना, बिनु उपासना जीव।
बन्धन दे छूटत नही, मिलत न श्री सिय पीव॥

प्रभुहि मिलन हित भाव सु नारी। धरि उर सेइय जनक दुलारी॥
तर्क वितर्क न यहि मह कीजै। युगल सरूप सेइ सुख लीजै॥
पति पत्नी कर भाव प्रधाना। रस शृगार केर सब जाना।'

जो निज उर यह भाव सुधारहि। तन दे दास सखादि उचारहि॥
ते प्रभु प्रिय कछु संशय नाही। आवत जात सु महलनि माही॥
कारण करन सकल रस केरे। रसाधीश शृंगार बडेरे॥

सुखदाई श्री सम्पदा, रामदेव सिय इष्ट।
पति पत्नी सम्बन्ध शुचि, जेहि महँ प्रद सु अभीष्ट॥

संस्कार प्रसंग

बिनु व्याही जिमि कन्या क्वारी। जानहु महस खसम की नारी॥
जब वह करै व्याह एक साथा। अरपि अपन पौ जेहि के हाथा॥
होइ एक पति जब तेहि खासा। तब मिथ्या पति होई निराशा॥
तिमि जग जन मनमुखी विलासी। सब देवनि के बने उपासी॥
सबकी पूजा अस्तुति बन्दन। करत मन्द तजि सिय रघुनन्दन॥
प्रभु सम्बन्ध हीन तिमि नाना। भजन भाव रति भगति सु ध्याना॥
जब लगि भजत न सिय रघुराई। गुरुमुख होइ अंग वेष सजाई॥
सब देवनि की परिहरि आशा। करत न जब लगि प्रभु विश्वासा॥
तब लगि राम मिलन अति दूरी। वेष विहीन सु भगति अधूरी॥
राम भगति बिनु लख चौरासी। मिटति न पावत शुभगति खाशी॥

अष्टयाम भावना प्रसंग

इष्ट का महत्त्व

वात्सल्य शृंगार वा, सान्ति सख्य अरु दास।
पाँचहु रसिक सुभाव महं, सेवहि प्रभु पिदव खास॥

बिनु सम्बन्ध स्वरूप न जानै। केहि विधि इष्ट सु सेवा ठाने॥
नाम स्वय - सेवा - अधिकारा। भाव - परापति सुख आधारा॥
मातु पिता - भगिनी-प्रिय - भ्राता। बस - विचार - महत्त्व सु-नाता॥
रस - अनन्यता - इष्ट - भावना। रीति - रहस्य - प्रबोध - पावना॥
अस्थाई - निज ये सब भेदा। जाने बिन न मिटत उर खेदा॥
ये चौबीस सूत्र सुखदाई। इन्ह के भेद भाव बहुताई॥
सम्बन्धनि महँ ये सब बानी। लिखी ललित नहि जाइ बखानी॥
जो सम्बन्ध लेइ सो जाने। रसिक अनन्य भाव सुख माने॥

श्री वैष्णव सम्बन्ध बिनु, प्रभु सेवा अधिकार।
सपनेहु पावत नहीं, करै कोटि उपचार॥

बिनु सम्बन्ध लिये तनु जोई। छूटै तो प्रभु लहहि न सोई॥
बिनु सम्बन्ध सुग्यान विचारा। व्यर्थ यथा गणिका शृगारा॥
लवण बिना बर व्यजन जैसे। बिनु सम्बन्ध सु वैष्णव तैसे॥
बिनु सुगन्ध के सुमन नवीना। तिमि वैष्णव सम्बन्ध विहीना॥
बिनु सम्बन्ध भजन व्रत कर्मा। होत न वैष्णव कहँ प्रद नर्मा॥
बिनु सम्बन्ध सु वैश्नव कच्चा। वेष बनाय न प्रभु रग रच्चा॥
वेष प्रताप तिलोकनि माही। पूजे जात सु भक्त कहाही॥
बिनु सम्बन्ध न स्वामी सेवा। पावहि वैष्णव सब सुख देवा॥
बिनु गौने की व्याही नारी। पति बिनु पिहर वहै दुखियारी॥
तिमि श्री वैष्णव वेष सु धारी। बिनु सम्बन्ध न मिलत खरारी॥
पाँचौ मुक्ति भक्तिरस भीना। लहहि न जन सम्बन्ध विहीना॥

निज निज रस के ज्ञातनि, खोजि लेइ सम्बन्ध।
सेवा करि मन बचन क्रम, नशै हिये को अन्ध॥

जो अनन्य एकै रस केरे। मन बच क्रम सियवर पद चेरे॥
युगल नामरत गत मद माया। हेतु रहित जीवनि पर दाया॥
ऐसे रसिकनि के पद सोई। भली भाँति सम्बन्ध सु लेई॥
गऊ लोक विच श्री साकेता। नगर अनूपम सोह सचेता॥
कोटिनि भवन विपुल विस्तारा। रचना अद्भुत अकथ अपारा॥
गलिनि गलिनि विरजा की धारे। कल्पतरुनि की लगी कतारे॥
चली बजार लतनि करिछाये। पुरवासी सुचि सुभग सुहाये॥
चहुँदिसि विविध विटप अमराई। विपुल जलाशय वरणि न जाई॥
विपुल विहार सु अस्थल माहँ। जिनहि दखि सुर मुनि मन मोहैं॥
कनक भवन तेहि पुर बिच राजै। कोटिनि भानु तेज लखि लाजै॥
अति उतग बहु केतु पताका। फहरत निरखि सुरनि मन थाका॥
ग्यान विराग कम करतूती। चलति न जहँ रस केलि विभूती॥

विविधि रगकी जटित मणि, परे झरोखनि जाल।
कलश कगूरा अमित शुचि, सोभित सुखद विशाल॥

बाहिर महलिन की रुचि राई। अद्भुत अकथ कहहुँ किमि गाई॥
भीतर कुज निकुज अनूपा। बने खचित मणि विविधि सरूपा॥
बिछे पलग बहु घले हिंडोरे। कुज कुज प्रति मोद न थोरे॥
चौवारिनि चित्राम सुहाय। मणि माणिक मय जाय न गाये॥
परदनि की अनुपम रचनाई। देखत बनै बरणि नहिं जाई॥

मखमलादि मृदु पाट पटोरे। बिछे लेत चित बरवश चोरे॥
जीना ललित न जात बखाने। लघु विशाल सुन्दर सोपाने॥
दीपक मणिन केर बहु भ्राजै। भेरि सख धुनि नौवत बाजै॥
समय समय अनूकूल अगारा। शोभित सुखद विचित्र उदारा॥
जब जेहि कुज जहाँ रुचि होई। तब तहँ सुख विहरहि प्रभु सोई॥
चन्द्रकला श्री चारु सुशीला। यूथेश्वरी उभय मन मीला॥
चन्द्रकला श्री भरत सुजाना। चारुशिला जानहु हनुमाना॥

कोटिनि यूथ सु अलिनि के, इन्हकर भुज बल पाय।
विहरहि सुख साकेत महँ, युगल चरण उरलाय॥

जहँ देखौ तहँ ललनहि ललना। सेवहि दम्पति त्यागहि पलना॥
निज निज कुजनि यूथ बनाई। वसहि मुदित सिय पिय यश गाई॥
कुज कुज महँ सिय रघुराई। निवसहि यक यक ढिग सुखदाई॥
सुनि न रसिक उर अचरज मानहु। सिया अलिनि एकै करि जानहु॥

विलग विलग सुख देत प्रभु, आलिनि रुचि अनुसार।
जानहि अलि हमरहि भवन, राजहि दाउ सरकार॥

कृपा खानि श्री जानकी, दया सिन्धु रघुनाथ।
बड भागिनि आली सकल, बिहरहि सम्पति साथ॥

समय विलोकि मुदम्पति जागे। नयन चहूँ प्रेमालश पागे॥
बारहि बार लेत अगडाई। खोलत मूदत चख सुखदाई॥
ढाँकत मुख दोउ कहुँ पट टारी। देखहि आलिनि नयन उघारी॥
अरुझि अरुझि सोवहि कहुँ जागहि। लखि छवि अली सराहति भागहि॥
जयति जयति कहि परदा टारी। गई कहति ढिग बलि बलिहारी॥
करि बिनती ललि लाल उठाये। तिहूँ दिशि तकिया द बठाये॥
अलसानी छवि नयन निहारी। भई मुदित आरती उतारी॥
मगल थार दिखाय निछावरि। कीन सुमणि गण पट प्रमोद भरि॥
उरझेउ लट भुषण सुरछाये। आलिनि अनिर्वाच्य सुख पाये॥
लेत उबासी दोउ अलसाने। पुनि लखि लखिनि ओर मुसिकाने॥
हास बिलास होत सुखकारी। आलस बिगत भये पिय प्यारी॥
लखहि परस्पर छवि पिय प्यारी। चिबुक निकर धरि गर भुज डारी॥
कबहुँ परस्पर सिय पिय दोऊ। करहि शृगार लखहि सब कोऊ॥
येहि विधि कीन्ह शृगार सुहावा। दर्पण लैकर आलि दिखावा॥
रीझहि निज निज रूप निहारी। उभय परस्पर गर भुज डारी॥

कुज कुज महँ परमानन्दा। उमगत जात जहाँ दोउ चन्दा॥
ग्यान कला यहि कुज मझारी। अधिकारिनि सिय पिय की प्यारी॥
धाय आइ चरणनि लपटानी। आपुहि अति बड भागिनि जानी॥
तब श्री प्रीतिलता सुखदाई। सयन कुज महँ चली लिवाई॥
सयन कुज महँ सादर जाई। पोढइ सेज सिया रघुराई॥
स्यामल गौर मनाहर जोरी। सुन्दर सुखद सुबयस किसोरी॥
अवलोकहि अलिगन चहुँ ओरी। जनु जुग चन्दहि निकर चकोरी॥

मधुर मुरब्बा खाय कछु, सुचि जल अचवन कीन्ह।
प्रेमलता अलि बिहसि सुख, बीरी निज कर दीन्ह॥

केलि कुज गवने अलि साथा। चली पाय रुख सिय रघुनाथा॥

युगल प्रिया अधिकारिनी, कुज हिडार सु माँहि।
समय जानि पठई अली, प्रमुदित दम्पति पाँहि॥

चले हिडोर कुज हरषाई। लगी सग ललना समुदाई॥

पावस ऋतु धरि विविधि तन, सेवत प्रभु सुख कन्द।
यह रहस्य जानहि रसिक, कोउ कोउ हृदय अमन्द॥

कबहुँ परस्पर झूलत दोऊ। उपमा याग न त्रिभुवन काऊ॥
बाढत पेग डरपि सिय प्यारी। लपटहि पिय अग गर भुज डारी॥
फहरत पट भूषण रव करही। मुक्तनि हार टूटि महि परही॥
छूटी अलके दाउ दिशि कारी। लहरहि ललित सु लागहि प्यारी॥
निरखहि अली परम बड भागिनि। दम्पति चरण कमल अनुरागिनि॥
कबहुँ प्रीतम सियहि झूलावत। लखि नखसिख छवि अति सुख पावत॥
कबहुँ चमर कहुँ विजन डुरावत। कबहुँ नचन पिय सिय गुण गावन॥

रासकुज

सुभग सिंहासन सिय रघुवीरा। बैठे सहित सजनि की भीरा॥
रासारम्भ सु आयसु पाई। कीन्ह नाइ शिर अलि समुदाई॥

कमला - विमला - लक्ष्मना, कृपा - कौशिकी बाल।
अधो उवारा - जामुनी, वागमती - शशिभाल॥

गुह्य

रसिकनि ते मागा कर जोरी। सुनहु कृपाल विनय यह मोरी॥
गुप्त केलि दम्पति जो करही। यहि कर ध्यान सिवादिक धर ही॥

रति शालादिक युगल विहारा। दूसर यह सम्बन्ध उदारा॥
कृपापात्र बिनु ये जनि भाखौ। मन्त्र समान गुप्त करि राखौ॥
विहरहिं अलिनि मग बशुयामा। कृपासिन्धु दम्पति सियरामा॥
कुञ्जनि कुञ्जनि बननि सु बागनि। बिहरत हृदय भरे अनुरागनि॥
येक नारि ब्रत प्रभु उर माँही। रहत गुप्त बहु जानत नाही॥

विश्वरूप प्रभु कुञ्ज सब, कुञ्ज रूप ससार।
विहरत श्री सियराम जहँ, सेवत जीव अपार॥
रटहि नाम तिय भाव उर, धरि दृढ सुजन ललाम।
चिन्तहि चरित प्रपज तजि, गावहि ते सियराम॥

रघुराज-विलास

श्री रघुराजसिंह जी

महाराज

नवलकिशोर प्रेस द्वारा १९२४ में मुद्रित और प्रकाशित।

इसमें, कृष्ण भगवान् और राम के झूलन, प्रेम कहानी, होली के पद है। अन्तिम भाग में प्रेमपरक विनय के कुछ भजन है।

उदाहरण —

आली सरयू क तीर गडो हिंडालना झूलत सीताराम।
मन्द - मन्द बरसत घन बुदन।
झरत मनहुँ कलिका नव कुदन॥
हरित बरन आराम छने छन दिशनि दिशनि दीपति दामिनियाँ॥
झमकि झुलाय रहीं कामिनियाँ।
पिय छवि दृग आराम॥
श्री रघुराज शोक सब विगरो।
पूरण पयो मनोरथ सिगरो॥
आनन्द आठो याम॥

झूलत कुजन भीजि रहे दोउ।
प्रिय मृदु बैननि मोहि गई सिय,
सिय मृदु बैननि मोहि रहे सोउ॥
सिय झझकति हरि करनि सभारति,
सिय के कर पकरत बिहसत ओउ।

श्री रघुराज छकी सब सखियाँ,
अखियाँ मे नहि पलक करे कोउ ॥

प्यारी हो आजु सखि रग - महल मे झूले कनक हिंडोरै।
चहुँकति उमडि घुमडि घन बरषत।
गाय गाय सावन सखि हरषत मजुल मोरवन शोरै।
फहरत अरुन वसन छवि छहरत।
लचकत लक मचत रस माचत लागत पवन झकोरै ॥
श्री रघुराज सुहावन सावन।
सरस सनेह सरस सरसावन जनक किशोरी अवध किशोरै ॥

आवत भीजन होऊ हो।
सरयू तीर कदम्ब झुलन हित सखि सब कोऊ हो।
बरसत मन्द मन्द घनन बुदन चुवत अरुण पट हो।
वै पटुका लै ओट करत कर वै गचल नट हो।
छहरि छहरि छिनि छन छन छन छवि पुनि पुनि दुरनि दिखानन हो।
मन् अघाति नहिं लखि लखि सिय रघुनन्दन आनन हो ॥
सुख सरसाबन सावन माझ सखी सब सावन गावे हो।
मोर शोर चहुँ ओर सुहावन सिय हुलसावे हो।
काशल राज अनोख लाडिलो जनक लाडिली जोरी हो।
बसहिं कृष्ण जन मनहिं सदा यह आशा मोरी हो ॥

रघुबर कैसी है तेरी नजरिया।
एकहु बार परति जेहिं ऊपर रहत न तनहि खबरिया ॥
हे अवधेश - लला बनरा बनि डालहु डगर डगरिया।
श्री रघुराज जनकपुर- नारी मोहे झाकि झझरिया ॥

लला तुम होहु न आखिन ओट।
एक पलक बिन दरश कलप सम लगत कुलिश सी चोट ॥
पीर पराई जानत हो नहिं यह सुभाव है खोट।
श्री रघुराज बिदेह- लली - पिय तजहु निठुरता कोट ॥

मेरो मन राम लला-सो अटको।
अब तौ बरबस जाय मिलोगी कोऊ कितेको हटका ॥
श्याम - सरूप नैन रतनारे कुटिल अलक मुख लटको।
लखि रघुराजहिं आजु लाज को टूटि गयो री फटको ॥

आली सियावर कैसा सलोना।
कोटि मदन - मूरति न्यौछावरि दै दै मुखी चलि भाल दिठौना।
मोर डरत जिय डगर नगर महँ कोऊ सखी करि देइ न टोना॥
हौ तो जाइ ललकि गर लगिहो रैहो न देइ जो मोहि भरि सोना।
कहर परी यह जनक-शहर-महँ छूटचोरी खान-पान निशि सोना॥
श्री रघुराज मौर वारे पर अब तो हमहि फकीरनि होना॥

सखि आज अनूपम वेष वन्यो अववेश - लला मिथिलेश-लली।
दोउ नैनन सैनन चैन करै रति मैन लजावत शोभ भली॥
अगराग रगे अनुराग रगे शिर चन्द्रिका पाग धरै विमली।
मुसक्यात बतात अघात न आनन्द कज मे पानि मे कज-कली॥
तनु केसरि नीर हनी पिचकी गुरु ग्रीषम ताप हरै सफली।
रघुराज विराजत राज-लला बलि जात विलोकति मजु अली॥

रघुवर खेलत सिय सग होरी।
सरयू तीर कुज सुख पुजन
भूषित सुखित करोरिन गोरी॥
परम रमनीय बन कलित कचन भवन
बहुत छनछन त्रिविध पवन सुमनोहरो।
कुन्द मुचुकुन्द बहु वृन्द आनन्द कर,
मन्द कर नन्द वन तरुन कुसुमित थरो॥
पुहुमि बहु पुहुम सुपराग - पूरित पृथुल,
झरत कल नल सकल सलिल रग केसरी।
नदत कल कीर कोकिल निकर मोद कर,
सरयू तट करत शीतल सकल सीकरो॥

वीण डफ वेणु मजीर मिरदग,
मुरचग सारग तहँ बजत बहु बाजने।
यूवति अनुराग भरि राग, बहु रागती,
बागती बाग महँ विविधि सुख साजने॥
चलत चामीकरन चारु पिचकारि,
केसरि मच्यो कीच सउलीच बहु रगमे।
नचति जति जति सुगति युवति तति,
रति सहित मेलि सुगुलाल रघुलाल सुउमगमे॥

कुज बिच सखि कहूँ सखिन बिच कुज कहुँ,
सखिन बिच सीय कहुँ सीय बिच राम है।
मनहुँ कहुँ जलद बिच दामिनी दमकती,
दामिनी बीच वहुँ दिपत घन श्याम है॥

चूमती पिय - बदन घूमती मदमती,
झूमती हरि भुजन निदरि सुर-सुन्दरी।
छीनि पिय कर कटक चटक कर धारि,
पहिरावती नेहवश अगुलिन मुदरी॥
झुकहि झझकहि झपहि जकहि जुमकहि जमहि,
लखहि ललकहि लुकहि हँसहि हुलसहि सही।
तकहि तरकहि दुरहि थिरहि थिरकहि थरहि,
वरहि धावहि वरहि रारिकहि नहि कही॥

लपटि कहुँ झपति कहुँ रपटि बहु निपट हटि,
जनक-तनया सहित करत सुविहार है।
मध्य सखि मगलहि निरखि रघुनन्दनहि,
बारही बार रघुराज बलिहार है॥

आली मेरो रघुवर करत सोहाग।
लै कुसुमन बनमाल बनावत बिहरत मा मग लाग॥
मो प्रतिबिम्ब विलोकि मुकुर महँ तजत तासु अनुराग।
अस रघुराज प्राण प्यारे मो सब परम अभाग॥

विलसति रघुवर आलि वसन्ते।
शीतल मन्द सुगन्धि - समीरित सरयू तट दिनान्ते॥
अमल कपोले कुण्डल लोले बिलसत आभा पूरे।
मनमिज केतु बिम्ब इव मनसिज मुकुरत लेन विदूरे॥
कनकामने पीतपट राजित नव - नीरद - मदहारी।
कनक गिराविव मरकत शृग तदुपरि तिमिरविदारी॥
जनक सुता-वदनद्युति - पूरित पाडुर वदन - बिहारी।
रघुवर बदन - नील - विभया हरिताभा जनक कुमारी॥
पवन वशादति सूक्ष्म-सलिल - कण पूरिततनुरतिकामम्।
ज्ञान वसन्तागमसरयूरिव जलै प्रसिचति रामम्॥
परमविशाल रसाल कुसुमकृत कुजे मधुकर गुजे।
सुखयति रघुराजा श्री रघुराज सखिम- समूह - सुखपुजे॥

भजन रत्नावली

श्री रामनारायणदास

अयोध्या निवासी श्री प० रामनारायणदास के रचे भजनो का यह सुवृहद् सग्रह उनके अनुज श्री माधवदास ने लखनऊ प्रिंटिंग प्रेस मे मुद्रित कराकर झोटेलाल लक्ष्मीचन्द बम्बई वाले द्वारा दिसम्बर १८९९ मे प्रकाशित करवाया। इस सग्रह मे विभिन्न समयो और लीलाओ के पद हैं जो सर्वथा राग-रागनियो मे गेय है। ग्रन्थ के अन्तिम भाग मे शृगार रस की उपासना के कुछ विशिष्ट पद हैं जिनसे यह पता चलता है कि श्री रामनारायणदास एक बहुत ऊँची निष्ठा के साधक थे और शृगार-साधना मे इनका गहरा प्रवेश था। भाषा मे कही भी पण्डिताऊपन नही है, न व्यर्थ का आडम्बर ही। भाषा बडी चुटीली, भावपूर्ण, सशक्त और प्रभावोत्पादनी है। राग-रागनियो का अच्छा ज्ञान है। मधुर रस का सुन्दर अनुभव है। भाव-राज्य मे मस्त विचरण करनेवाले अनुभवी सन्तो मे प० रामनारायणदास जी का स्थान अन्यतम है। स्मरण रखने की बात यह है कि आपमे कही भी अनावश्यक शृगार-प्रदर्शन का भाव नही आया है। जो कुछ है सहज है, सुन्दर है, सुमधुर है अतएव सुस्वाद्य है। उदाहरण —

भजन रीतावली

जैसी श्री जनकराज लाडली ललित भ्राजे कोटि रति लखि लाजे रूप कीसी माई है।
तैसे घनश्याम राम सुघट सुशील धाम लाजे लखि कोटि काम उपमा न पाई है॥
रूप से अनूप जोउ वय से विशेष सोउ कुल मे कुलीन दोउ सखि सुखधाम है।
राम नारायण कहि सखि न विचारो महि दुलहिनि लाय कहि दूलह श्री राम है॥

प्रभु मै अनाथ तव शरणे सनाथ भयो दीजे दीनानाथ भक्ति सुन्दर उदार है।
दिन प्रति सत साथ राहि दीजे श्रीयानाथ मागो बर जोरि हाथ दया के आगार है॥
मोहि न भरोसो हाथ ते भरोसो रघुनाथ अहा जगन्नाथ प्रभु तेरोई अधार है।
अनेक अनाथ प्रभु नाथ से सनाथ भए कैसे न सनाथ होउ नारायण नाथ है॥

सीता का रूप

रति मद दवनी कदब तरुणि बिच सोहत सिय सजनी।
नख शिख सखि शृगार अनूपम मोहे श्याम धनी॥
कुसुम कलीवर ग्रथित कुचन बीच अरुणी माग बनी।
चन्द्रिक ललित शीस पर सुन्दर शोभा सुभग बनी॥
बेदी लसित ललाट लसत अति चन्दन खौर बनी।
भृगुटि काम को दड नैनशर कज्जल ललित बनी॥
कनक किंकिणी जडित मोति युत श्रवण फूल सजनी।
ललित कपोल लसत अलकेवर मानहु छौन फनी॥

राम का रूप

स्मर मद दमन कदब कुवर विच सखी सियावर सोहै।
नख शिख लौ अग अनूप माधुरी लखि मुनि मन मोहै॥
रुचिर चौतनी चमक शीस महु कुसुम कली गोहै।
चिक्कन कच घुघवारे लसत वर अलिगन मिलि सोह॥
केशर तिलक कलित अति भाले कुटिल शुभग भौहै।
मानहु काम को दड सहित वर हाटक शरसाहै॥
कुडल कलित जडाउ करण युग नासा मणि सोहै।
रदन कुन्द अरुणाधर पल्लव हास्य मधुर माहै॥
उर बर कनक भाल राजन अति मणि मुक्ता पोहे।
भुज युग अणत जडित वूत सुन्दर कर धनुशर सोहै॥
नाभी गहर गभीर उपर वर मालपदिक सोहै।
कटि पट पीत कनक किकिणि युत लखि रतिपति माहै॥

झुकि झुकि झमकि कदब बिटप तर सखि सिया बर झूले।
जन दुख दमनी मन प्रिय पूरणी श्री सरयू कूले॥
बन प्रमोद उर माद दत सखि नाना तरु फूले।
चन्दन चम्पक कुद चमेली लखि रतिपति भूले॥
गुला बास गुलाब कदब सुगध सुर तरु नहि तूले।
उमडि उमडि घन गरजन सुन्दर चरषत अनुकूले॥
मणिन झडित बर कनक हिडोले झूलत मन फूले।
कुसुम सिंगार कलित श्री सिय पिय हसत अधर मूले॥
गाय झुलावे झमकि झुकि सजनी लखि मुनि मन डूले।
उर आनद भरी सब सजनी सुधि बुधि सब भूले॥
को वर्णे छबि छबि पर सजनी नहि त्रिभुवन तूले।
रामनारायण स्वामि श्यामरो सब के मन कूले॥

शरद ऋतु जान के सारी।
रच्यो सुख रास प्रभु प्यारी॥
धरे मणि मोति की माला।
सोहै मग सुदरी बाला॥
नचत बर नागरी राजे।
मधुर धुनि नूपुरे बाजे॥

टेरत बर तान को प्यारे।।
गावत स्वर सुदरी न्यारे।
घुमरि घुमि लेत हैं घुमरी।
सुधी जब व्याह की सुमरी।
भरी आनन्द में प्यारी
पकड कर राम को सारी।।
मिले सियराम अँकवारी।
नारायण राम बलिहारी।।

नटत श्री रामसिया मिली जोरी।
धवल सिगार धरे प्रभु प्यारी सोहे सखी बीच सुदर जोरी।।
धवल निशापति सोहे शरद का धवल काति चहु दिशि झलकोरी।।
छुम छुम छुम पग पैंजनिया बाजे ताता थेई थेई बोलत सखियोंरी।
ताल ताल मृदग मिलावे आलीगन मधुर मधुर स्वर गावे किशोरी।।
हास विलास भई बस भामिनी देह सुधी बिसरी सब कोरी।।
पिया भुज सोह सीय अक पर सीय भुज सोहे पिय अक भलोरी।
रामनारायण के प्रभु रमिया रस भीनी सुन्दर सखियोरी।।

राधो सिय खेलत हारी।
इत रघुनाथ सखा लिये अनुजन उत मिथिलेश किशोरी।
केशर कीच मची छत ऊपर रग बरसै चहु ओरी।।
चलो सखि देखन सोरी।।
मुख भीजो सिय जनक नदिनी चदन केसर घोरी।
रीझ रीझ दृग आजि लाल के लियो पीताबर छोरी।।
किये सब सुधि बुधि भोरी।।
फगुवा दियो है सकल मन भावन ठाढे युगल कर जोरी।
बदन करत सकल जग बदन चदन भाल लगोरी।।
हसी सब सखि मुख मोरी।
राम जानकी ध्यान बसो हिय गौर श्याम बरजोरी।।
रामदास दपति छबि ऊपर निरखि बदन तृण तोरी।
दृगन से क्षण न टरोरी।।

हम चाकर रघुनाथ कुवर के।
यम के दूत निकट नहि आवे द्वादश तिलक देखि यम डरपे।।
गुरु के बचन ज्ञान दृढ राखो सुमरन भजन सिया रघुबर को।।

तुमहिं याचि प्रभु और न याचो नहिं आश्रित कोउ नारी नर को।
अग्रदास स्वामी पटो लिखायो दसखत दशरथ सुत के कर को।।

शृंगार प्रदीप

श्री हरिहरप्रसाद

सच्चिदानन्दकन्द परब्रह्म परमेश्वर श्री दशरथनन्दन भगवान् श्री रामचन्द्र जी तथा श्रीमती जनकसुता जगज्जननी श्री जानकी महारानी का शृंगार मनोहर दोहे, कवित्त, सवैय एव पदो मे वर्णन किया है। लेखक ने स्वय अपने को श्री जानकी का कृपापात्र होना स्वीकार किया है। मुंशी नवलकिशोर के छापखाने मे सन् १८८६ ई० मे लिथो मे यह छपी। इसकी एक खडित प्रति प्राप्त है जिसमे कुल ११६ पद मिलते हैं। सभव है यह पुस्तक कुछ और बडी हो और अधिक पद उसमे हो। अस्तु। इसमे एक बहुत बडी विशेषता है कि लेखक ने दोहे और पद का क्रम रखा है और इसमे लक्ष्य करने योग्य बात यह है कि लेखक ने दोहे मे तत्त्व की बात अत्यन्त सांकेतिक रूप मे कह दी है और पद मे उसे ही भली भांति पल्लवित किया है। दोहे बहुत ही चुस्त भाषा मे हैं। थोडे से शब्दो मे अधिक-से-अधिक भाव भरने की क्षमता अपूर्व है। दोहे जितने ही सांकेतिक हैं, पद उतने ही व्याख्यात्मक और विवरणात्मक। कुल मिलाकर यह नि सकोच कहा जा सकता है कि शब्दो मे चित्राकण करने की शक्ति विलक्षण है और जहाँ जहाँ श्री जानकी जी के रूप, गुण वय, शृंगार, लीला, स्वभाव का वर्णन आया है, वहाँ 'कवि का हृदय भावो से भर आता है। श्री जानकी जी की कृपा का प्रसाद कवि को प्राप्त है यह शृंगार प्रदीप' से स्पष्ट है। उदाहरण—

इत कलगी उत चन्द्रिका कुडल तरिवन कान।
सिय सिय बल्लभ मो सदा बसो हिये बिच आन।।

बसौ यह सिय रघुबर का ध्यान।
श्यामल गौर किशोर बयस दाउ जे जानहु की जान।।
लटकत लट लहरत श्रुति कुडल गहनन की झमकान।
आपुस मे हसि हसि के दाऊ खात खिआवत पान।।
जह बमत नित मह मह महकत लहरत लता बितान।
बिहरत दोउ तेहि सुमन बाग मे अलि काकिल करगान।।
वहि रहस्य सुख रसका कैस जानि सकै अज्ञान।
दवहु की जह मति पहुचत नहिं थकि गय बेद पुरान।।
बिहरत गलबाही दिये सिय रघुनन्दन भोर।
चहु दिशि त घेरे फिरत केकी भवर चकोर।।

नक मुक्ता लहरै इतै उत नथ मोती हाल।
बिहरत गलबाही दिये निरखहु झाकी हाल॥
जिनके अग प्रसत ते भूषित भूषण होत।
होत सुगन्ध सुगन्ध युत पोतो मोती होत॥
शोभा हू शोभा लहत जिनके अग प्रसग।
बिधि हरिहर बाणी रमा उमा होहिं लखि दड॥
तिन सिय सिय वल्लभ चरण बार बार शशिनाथ।
चरण धूरि परिकर युगल नयनन माझ लगाय॥
देव सुधा सागर घरचो पद मुक्ता हित जाय।
भाग्य सरिस लहि निज भणित पातहु दियो मिलाय॥
विधि हरिहर जाकह् जपत रहत त्यागि सब काम।
सो रघुबर मन मह् सदा सिय का सुमिरत नाम॥

सिय जू रानिन मे महरानी और सभै रौतानी।
चितवत भौह् खडी कर जोरे इन्द्रानी ब्रह्मानी॥
गौरा पान लगावत रचि रचि रमा खवावत आनी।
आठौ सिद्धि खडी कर जोरे नवनिधि मनहु बिकानी॥
कोटिन ब्रह्माडन की प्रभुता रोम रोम अरुझानी॥
जो माया एकै घटि पर सबहि पियावत पानी।
सोउ चाहत जाकी करुणा को बार बार सनमानी॥
जा बिनु पातौहिलि न सकत जो सब घट माह समानी।
सत जनन की इष्ट देवता राम प्रिया जग जानी॥

श्री बन मनही मन मे भावत।
कहत न बनत बनत वह देखत कोउ सुकृती रस पावत॥
रग रगीले फूल सियामय मधुकर प्रेम बढावत।
भासत देखि कुज को अतर सिया चली जनु आवत॥
कबहु केसरिया कबहू चुनरी कबहु नील लहरावत।
कबहु गुलाली महकत पट छबि कुजन मे दरशावत॥
जेहि कारण जप तप को साधत घर तजि मूड मुडावत।
याको देखत सोई देवता अनायास उर छावत॥

जै ति सिया तडिता बरण मेघ बरण जय राम।
जै सिय रति मद नाशिनी जै रति पति जित साम॥

जयति श्री जानकी राम जोरी।
जगमग तनु गर तन जनु बिमल नखत गत बदन पर वारिये शशि करोरी॥
शरद नभ श्याम श्री राम मुनि मन अगमत मनहरन जोतिसी सीय गौरी॥
दोउ मिलि राम की रामता बनि गई जहा कलिकाल की नहि झकोरी॥
भई बडि भीर रघुवीर छबि लखन को झाकि झाकहि तिया तिनकतोरी।
बरत महताब पर परत पाखी यथा प्रेम बश होय रही देह भोरी॥
तहा सिय मातुकी का दशामे कहो देव मे भयल गिग यठ गोरी।
रीति व्यवहार तब कोक है कोक रै थकित गति देखि शशि जनु चकोरी॥

जगमग सिय मडप मे मगल मचि रहयो।
मगल पुरुष आपुइ जनु इहा नचि रहयो॥
सोरह विधि शृगार मदन मत मे कहे।
अनायास ते सिय अगन मे सजि रहे॥
अगन की उज्जवलता सो शृगार है।
नित नयो साजै ऐसो याको विचार है॥
शृग नाम अभिमान सो जामे नित्य बढ।
जेहि साजत अगन मे दूनो रग चढ॥
आपुहि मह मह महकन सिय जु को अग है॥
गन्ध लगावनि हारि मनहि मे दग है॥
नील कमल मे सिय दृग आपुइ अजिर है॥
अजन साजिन के मन तब लजि रजि रहे।
नित चिक्कन कच सिय के पिय के मनेह भरे।
आलिन तेल लगावनि मन सदेह परे॥
सिय अधरन पर लाली मानहु पीक है।
सखि कह पी कहुते यह लाली नीक है॥
अधरन ओठन तर रहि होहु उदास हो।
सोई ऊचो जा मे अमिय को बासहो॥
सिय पायन की लाली लहलह लहकत है।
नाउन लिये महावर लखि लखि अहकत है॥
सियतन पावन उज्ज्वल गग तरग से।
तिनको मज्जन केवल जनकी उमग मे॥

आन न यहि मम ताते आनन नाम है।
सिय मुख ही मे अर्थ बनत अभिराम है॥

माया के सब तजे हसनि मे समाय रहे।
राम से धीर पुरुष हू जामे लोभाय रहे॥
राम धरे धनुबाण सुरति सिय भौहन मे।
औ सूरति सिय जू के नयन रिसोहन मे॥
कानन मे सिय जू के राम लोभाय रहे।
लोग कहत गये कानन ते बउराय रहे॥
देव नजरि जह हार तितह का ताम की।
चूक सुधारहि सज्जन पतित गुलाम की॥
झूलत रग हिडोरना दम्पति भरे उमग।
मेरु शृग राजत मनो घन दामिनि यक सग॥

अवध बाग जस नदन तह ऊचो श्री खड।
कनक हिडोला तह पर्‌यो जामे कचन दड॥
जग मग रत्न अनेकन बग बग कचन पीठ।
नाद बिन्दु मडल लसै जह पहुचत नहि दीठ॥
तापर सिय बर राजत जैसे दामिनि वन।
दोउ दिशि प्रेम झुलावत साजन सुरतइ कन॥
राग समय मडल बध्यो झरन लगे रस बुद।
रोम रोम रस भीनत मिटे ताप दुख दुन्द॥
दोउ परस्पर अमिय मे बनि रहे गरके हार।
सुमनन की वरषा भई गरजन की बलिहार॥
वह ककण वह शिर पटा वह मोतिन की माल।
इन्द्र धनुष मडल बना पीतरित खरु लाल॥
श्रवण पुनर्बसु चौकडा नित सावन हि जनाव।
देखि मोर मन हरषत पहुची जडित जडाव॥
या जोडी पर वारो अपने तन धन प्रान।
पूरण मडल मचि रह्यो बाजत देव निशान॥

साख्य योग वेदात को छाडि छाडि सब जग।
चरण शरण सिय ह्वै रहहु करि मन माह उमग॥

सियाराम चरण चन्द्रिका

कविराज लछिमन

सियाराम चरण चन्द्रिका : जैन प्रेस लखनऊ से सेठ छोटे लाल लक्ष्मीचद बम्बई वाले ने मार्च सन् १९९८ मे मुद्रित करा कर प्रकाशित किया। इसमे राम और सीता जी के चरण कमलो का बहुत ही भाव पूर्वक ध्यान है। विशुद्ध काव्य की दृष्टि से यह ग्रथ उल्लेख्य है।

उदाहरण—

जुगल सुरग जोग बल के कला से तल भूपन भुअन सारदा के अवतार मे।
लछिमन नखन बहाली मजु मोती लर तरल तरगै गग अमृत अगार में॥
राव रामचन्द्र मैथिली के चरणाम्बुज पै वेर ही प्रभा जा दान कीरति प्रचार मे।
विज्जु धन भार मे न सिधु वार पार मे न रतन अपार मे न पारस पहार मे॥

देव वधूटी लवा वरस परी किन्नरी मौज मे मगल गावे।
त्यो लछिराम सची सुभ सारदा भाल विसाल पराग लगावे॥
ना गल लीन री देवि दिगग ना नक प्रणाम अभ वर पावे।
मैथिली श्री रघुनन्दन के पद कज प्रभा भर पूजन आवे॥

रामचन्द्र चरणाम्बुज त्रिभुअनपाल।
हरन जुगा जुग जन के ज्वर जय जाल॥
श्री रघुवर चरणाम्बुज आनद कद।
ध्यान करत जन जीते जग जम फद॥
सिअ चरणाम्बुज गोरे सज मणि मच।
पारस चितामणि छवि जारत रच॥
रामचन्द्र चरणाम्बुज गज रथ राम।
बरमत नृप सिरही रे मुकुट प्रकास॥
रामचन्द्र पद पावन सावन मास।
बरमत जन वन अमृत अचल अवास॥

श्रीरामचन्द्र विलास

श्रीनवलसिह 'श्रीशरण' युगल अलि कृत

एक खडित हस्तलिखित प्रति श्री हनुमत् निवास मे महात्मा रामकिशोर शरण जी महाराज के निजी पुस्तकालय मे प्राप्त है। उमा-महेश्वर सवाद म सम्पूर्ण पोथी है—प्रथम अध्याय मे राम की बारात का वर्णन है—भगवान राम अपने भाई लक्ष्मण के साथ सपूण मिथिला मे हाथी पर

बैठ कर सब को सुख देते हैं। वहाँ सभी देवता अपनी-अपनी पत्नियो को लेकर यह शोभा विमान मे बैठे देखते है। और फिर,पुरवासियो से मिल कर शोभा देखने है। मुनियो की रमणियो ने आरती की, हार पहनाये। उन्हे भी नेग निछावर दी जाती है। दूसरे अध्याय मे वधू-प्रवेश का वर्णन है। इसमे 'मुख दिखाई' का प्रसग बडा ही मधुर है। विवाहोत्तर देवपूजन का वर्णन तीसरे अध्याय मे है। ककन छोडने की लीला तथा मत्स्य वेधन लीला का वर्णन चौथे मे है। मत्स्य-वेधन मे श्री जानकी जी के हाथ मे मछली की डारी है और राम जी के हाथ मे धनुष। रामजी वेधना चाहते है पर सीता जी की कुशलता से मछली बच जाती है। पचम अध्याय मे विलास खड है—इसमे राम और सीता के सभोग विलास का बडा ही मनोहारी वणन है। छठे अध्याय मे 'चौठारी' का वर्णन है—जहाँ राम सीता का द्यूत वर्णन है। सातवे अध्याय मे श्री राम जानकी की काम-क्रीडा का वर्णन है। आठवे मे महारानी सभी सखी देवागनाओ के साथ अयोध्या पधारती है। नव अध्याय मे राम सीता का माधुर्य विहार है। दसवे अध्याय मे सीताकृत पार वणन बडे विस्तार से वर्णित है। ग्यारहवे अध्याय मे परस्पर उपायानोपाहार भेट पत्र-विलेखन का प्रसग है। बारहवे मे श्री राम-जानकी का पुन मिथिला गमन है।

सवत् १९०७ शालिवाहन १७६८ मे झाँसी मे यह ग्रन्थ लिखा गया।

उरझे सियपिय नह जाल री।
रूपरासि सियप्रिय सुह्लादिनी रसिक सनेही नृपति लाल री॥
रदछद रद मुगउ करधारी प्रीति विवस रस सिधु वाल री।
युगल अली जीवा तुर पति रसभागी दृग निधि विसाल री॥

सखि री मोका भूलति नहि सिय प्यारी।
केलि निकुज ललित सज्जा पर प्रिय तमाल ढिग कनक लता री॥
आल वाल सखिजन मडल मनु फूली ललित साखा सुभुजा री।
युगल अली सुमनोरथ फूलवर फलत फलत सुरहत सदा री॥

सेज हिडारो सोवत पिय प्यारी।
गावत गीत झुलावत नागरि रूप राशि जोवन मतवारी॥
मोद सुकुमारि अग सेवा पर पान करत माधुय सुधा री॥
चमरी विजन मारछल काऊ रूप प्रशसा कर काई नारी।
चहु दिसि काटिनि राजकन्या सेवत दपति रूप महा री॥

आजु री सिय छवि अधिक बनी।
निज कर श्री नृप लाल सिगारी अग अग सोभा अति ही जनी॥
मुक्ता माग सुमन वेणी रचि सीस चद्रिका रचित मनी।
बेदी भाल वदि भुति भूषण जटित विविध विधि हीर कनी॥

सियाराम चरण चन्द्रिका

कविराज लछिमन

सियाराम चरण चन्द्रिका · जैन प्रेस लखनऊ से सेठ छोटे लाल लक्ष्मीचद बम्बई वाले ने मार्च सन् १९९८ मे मुद्रित करा कर प्रकाशित किया। इसमे राम और सीता जी के चरण कमलो का बहुत ही भाव पूर्वक ध्यान है। विशुद्ध काव्य की दृष्टि से यह ग्रथ उल्लेख्य है।

उदाहरण—

जुगल सुरग जोग बल के कला से तल भूषन भुअन सारदा के अवतार मे।
लछिमन नखन बहाली मजु मोती लर तरल तरगै गग अमृत अगार में॥
राव रामचन्द्र मैथिली के चरणाम्बुज पे वेर ही प्रभा जो दान कीरति प्रचार मे।
विज्जु धन भार मे न सिधु वार पार मे न रतन अपार मे न पारस पहार मे॥

देव वधूटी लवा वरसे परी किन्नरी मौज मे मगल गावे।
त्यो लछिराम सची सुभ सारदा भाल विसाल पराग लगावे॥
ना गल लीन री देवि दिगग ना नेक प्रणाम अभ वर पावे।
मैथिली श्री रघुनन्दन के पद कज प्रभा भरे पूजन आवे॥

रामचन्द्र चरणाम्बुज त्रिभुअनपाल।
हरन जुगा जुग जन के ज्वर जय जाल॥
श्री रघुवर चरणाम्बुज आनद कद।
ध्यान करत जन जीते जग जम फद॥
मिअ चरणाम्बुज गोरे मज मणि मच।
पारस चितामणि छवि जारत रच॥
रामचन्द्र चरणाम्बुज गज रथ राम।
बरसत नृप सिरही रे मुकुट प्रकास॥
रामचन्द्र पद पावन सावन मास।
बरसत जन वन अमृत अचल अवास॥

श्रीरामचन्द्र विलास

श्रीनवलसिह 'श्रीशरण' युगल अलि कृत

एक खडित हस्तलिखित प्रति श्री हनुमत् निवास मे [illegible] शरण जी महाराज के निजी पुस्तकालय मे प्राप्त है। उमा-महेश्वर सवाद मे सम्पूण पोथी है—प्रथम अध्याय मे राम की बारात का वर्णन है—भगवान राम अपने भाई लक्ष्मण के साथ सपूर्ण मिथिला मे हाथी पर

बैठ कर सब को सुख देते है। वहाँ सभी देवता अपनी-अपनी पत्नियो को लेकर यह शोभा विमान मे बैठे देखते है। और फिर,पुरवासियो से मिल कर शोभा देखते है। मुनियो की रमणियो ने आरती की, हार पहनाये। उन्हे भी नेग निछावर दी जाती है। दूसरे अध्याय मे वधू-प्रवेश का वर्णन है। इसमे 'मुख दिखाई' का प्रसग बडा ही मधुर है। विवाहोत्तर देवपूजन का वर्णन तीसरे अध्याय मे है। ककन छोडने की लीला तथा मत्स्य वेधन लीला का वर्णन चौथे मे है। मत्स्य-वेधन मे श्री जानकी जी के हाथ मे मछली की डोरी है और राम जी के हाथ मे धनुष। रामजी वेधना चाहते है पर सीता जी की कुशलता से मछली बच जाती है। पचम अध्याय मे विलास खड है—इसमे राम और सीता के सभोग विलास का बडा ही मनोहारी वणन है। छठे अध्याय मे 'चौठारी' का वर्णन है—जहाँ राम सीता का द्यूत वर्णन है। सातवे अध्याय मे श्री राम जानकी की काम-क्रीडा का वर्णन है। आठवे मे महारानी सभी सखी देवागनाओ के साथ अयोध्या पधारती है। नवे अध्याय मे राम सीता का माधुर्य विहार है। दसव अध्याय मे सीताकृत पाक वणन बडे विस्तार से वर्णित है। ग्यारहवे अध्याय मे परस्पर उपायानोपाहार भेट पत्र-विलेखन का प्रसग है। बारहवे मे श्री राम-जानकी का पुन मिथिला गमन है।

सवत् १९०७ शालिवाहन १७६२ मे झाँसी मे यह ग्रन्थ लिखा गया।

उरझे सियपिय नह जाल री।
रूपरासि सियप्रिय सुह्लादिनी रसिक सनेही नृपति लाल री॥
रदछद रद सुगउ करधारी प्रीति विवस रस सिधु वाल री।
युगल अली जीवो तुर पति रसभोगी दृग निधि विसाल री॥

सखि री मोको भूलति नाहि सिय प्यारी।
केलि निकुज ललित मज्जा पर प्रिय तमाल ढिग कनक लता री॥
आल वाल सखिजन मडल मनु फूली ललित साखा सुभुजा री।
युगल अली सुमनोरथ फूलवर फूलत फलत सुरहत सदा री॥

सेज हिंडोरो सोवत पिय प्यारी।
गावत गीत झुलावन नागरि रूप राशि जोवन मतवारी॥
मोद सुकुमारि अग सेवा पर पान करत माधुर्य सुधा री॥
चमरी विजन मारछल काऊ रूप प्रशसा कर कोई नारी।
चहु दिसि कोटिनि राजकन्या सेवत दपति रूप महा री॥

आजु री सिय छवि अधिक बनी।
निज कर श्री नृप लाल सिगारी अग अग सोभा अति ही जनी॥
मुक्ता माग सुमन वेणी रचि सीस चद्रिका रचित मनी।
बेदी भाल वदि श्रुति भूषण जटित विविध विधि हीर कनी॥

छूटी अलक कपोल उरोजन जनु सिव सीस सुराज फनी।
नथ मुक्ता अधरो पर राजत मनहु सुधाकन कीर चुनी॥
स्याम वरन कचुकी कलित छबि गल भूषण सुषमा सु तनी।
भुज सुकुमार सोहाय आभरण ललित मुद्रिका जटिल पनी।
लहँगा सुभग किकिनी कटि मे कटक सुहसक ललित ध्वनी।
युगल अली सीता अग सुख मानिसि वासर हिय नेन सनी॥

भावनामृत-कादम्बिनी

श्री युगलमञ्जरी जी

हस्तलिखित प्रति, श्री हनुमत् निवास मे सुरक्षित—यह रस भावना का सुन्दर ग्रथ है। पन्ना ५५। साहित्य की दृष्टि से यह ग्रथ अद्वितीय है। भाषा बडी ही रसमयी रसभरी है—

प्रेम विवस हियरे लगत जिया लेतु चुराय।
हँसि हँसि रसवति आकरत भरयो सिगार सुराय॥
कल कपोल कुण्डल हलक अलक झलक छवि देत।
ललकि ललकि हिय सो लगत पलक चित्त हरि लेत॥
झूमि झूमि झुकि झुकि परत दिये अस भुजमाल।
हँसि हेरन चित चोरही कब देखिहैं सिय लाल॥
अलकै उरझी चद मुख दृग कपोल लसि पीक।
अजन अजिन रदसुपट सिय पिय अलिथ बदीक॥
अलसाते सुदृग मदन सुभाते बैन॥
उठे सुहाते सेज पर कब देखिहैं अलि नैन॥
करि करि चितन सेज सुख बितई जाम सु रीठि।
तिनको अलि कल परत कम सदै बसिये पिय पीठि॥

उरझी अलकै कुडलन हार हीय उरझानि।
अग अग उरझे दोऊ उरझी छवि हिय आनि॥
सुरझावन लागी अली उरझि गए सब अग।
यार झूमि उरझे सदा रसिक हीय दृग सग॥

भली बनी छबि आज की नही कही कछु जात।
मुनि जन तिय करि देतिहैं, नारिन की का बात॥
छोडि जुलुफ गल बाहि दै हिय गजमुक्ता हार।
दीरघ दृग घायल करत श्री नृपराज कुमार॥

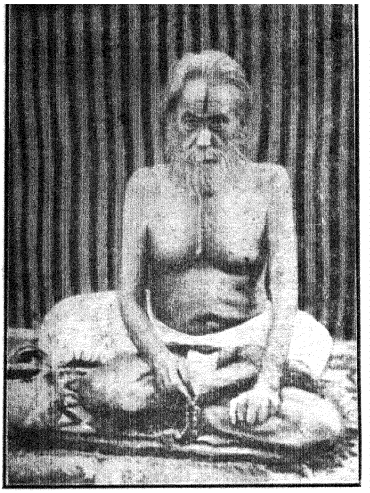

स्वामी श्रीसीतारामशरणजी

श्रीरूपकलाजी

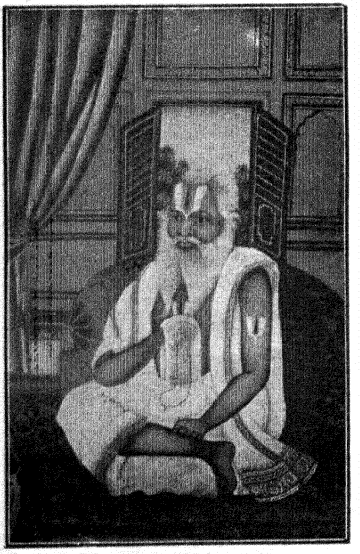

स्वामी श्रीसियारामशरणजी

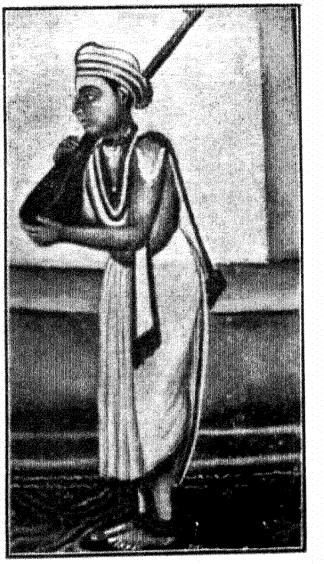

स्वामी रामप्रसादजी

गीताप्रेस, गोरखपुर

सीतावल्लभ लाल की सुछबि बिलोकिय तीय।
हँसि हेरत हिय सो लगत भरे नेह कमनीय॥

सुखद सेज पर राजही सेवत सखी समाज।
गौर स्याम सुखमा अयन रसिक सिरोमणि राज॥

समय-रस-वर्धनी

श्री सियाअली कृत

एक हस्तलिखित प्रति खुले पन्नो मे हनुमत् निवास मे प्राप्त है। कुल ९५ पन्ने है। कुल ग्रन्थ कवित्त सवैयो मे है। आरम्भ म नाम माहात्म्य है। फिर मिथिला माहात्म्य है। तदनन्तर है श्री सीता जी की छवि का वर्णन।

उदाहरण

सोहत नील निचोलनि पै घन अन्तर मे दुति ज्यो चपला की।
गाथे अनेक अमोल नगे जिनि छीनि लई छवि चन्द्रकला की॥
प्रेम सखी मुक्तागन रव छलै रै लरै विरची कमला की।
दृष्टि हटी न चली सिया क उरहार विलोकत राम लला की॥

इसके अनन्तर लीला और धाम का वर्णन है। तदनन्तर सीताराम के सयोग का वर्णन है—

प्रात लाल जागे सिया सग रति पागे अग अग छवि पै अनग कोटि वारे है।
रतन पर्जक पर अक धरे प्यारी निधि रक ज्यो निसक छिन होत नहि न्यारे है॥
छूटे बार भार वनमाला उरहार जूटे बार बार घूमे रसमत्त दृग तारे है।
घूमि घूमि जात अलसात ओ जह्मात दोऊ मन्द मुसकात राम सखे प्राणप्यारे है॥
छूटे केश पानपीक मण्डित कपोलन पै लटपटे पाग पेच अटपटे वागे ह।
मर्गजी माल वक्ष कुमकुम लपटाय स्वच्छ अग अग ढीलियो अनग रग पागे है।
भाल पद जावक मौ अकित पिय अवधि लाल राममखे नई बाल सग अनुरागे है॥

नित्य रासलीला

श्री सियाअली

श्री हनुमत् निवास मे पत्राकार प्रति हस्तलिखित, कुल ४१ पन्ने। कवित्त दोहे चौपाइयो मे—आरम्भ मे श्री अयोध्या की शोभा का बडा ही भव्य मनोहर वर्णन। नाना प्रकार के फूलो, फलो, वृक्ष-लताओ, पक्षियो का बडा ही सजीव चित्रण। तदनन्तर महल का महान् मगलमय स्वरूप वर्णन, तथा कुञ्जादिको की शोभा विस्तार। फिर युगल मिलन—

सुमन सेज सियालाल रगीले
करत केलि रस रूप उज्यारे।
कर कमलन गण्डन दोउ धारे
पीवत रस पिया राजदुलारे।
रग ललित रगन पर राजत
पुनि सुकलिन कमलन कर वारे।
चूमि रहे दोउ अग मनोहर
जिमि मधुकर सरोज मतवारे।
विहसि विहसि कछु कहत छबीले
सिया अली अलि सो छवि धारे॥

देखा आली सोभा अतिसे बनी री
रतन मनिन्ह जुत जडित सिंघासन
तापर जुगल किसोर रागिनी भीजे
अग सिन्द सुखश्रम ने जनु रवि बाल
सुअभित घणी री।
हीरन मे सिर कीट चन्द्रिका मानिन की छवि अमित तणी री।
अलकन लोल, कपोलन ऊपर नासा बेसर अलक जणी री।
रद तमोल दुति मैन वार वहु सो छवि कवि का कहत भणी री।
श्रम जल बिन्दु विराजत मुख पर सिया अली अति सुख सा घणी री॥
पीत स्याम औ अरुन कमल पर छलकन स्याम की आसकणी री।

सीतावर राम रवन नटवर वरवेश धरन
जुवती मन माद करन निरखो सखि सा री।
अगन्ह दुकूल कमै दामिनि द्युति अति सुलस
भाल तिलक भृकुटि मद अतुलित छवि त्योरी।
चिकन सुनि चिकुरि माह जूही सुमनन सुचाहि
अधर अरुनतर कपोल धारी दृग बोरी।
कुण्डल मृदु अति अमाल झूमत नागिनि सुलाल
सुन्दर सुकुमार अग चन्दन सुचि खोरी।
नैन अमल अरि सुमैन विहसत कछु कहत बैन
छवि समुद्र मनो तरग नासा मनिहि लोरी।
धारे भुज अस ललन नीदत गति हस चलन
सिया मुख ससि दृग चकोर दृग सो दृग जोरी।

सोभित भामिनि सु साथ पिय उर घन तड़ित गात
जिमि भुअग रहि दुराय चन्दन अग कोरी।
भौह कुटिल लसि अपार बिन्दा सुखमा की सार
मुख सुचन्द्र माननि मन लाल केरि झोरी॥
खजन दृग जोरि हँसत जोवन मह जोर कसत
अगण प्रति रस लखाय प्रीतम चित चोरी॥
वेणी सुमनन अपार गुही अलिगन सँभार
राखे पीठी दुराय नागिणीपतियो री।
क्रीट जडित मनिन्ह चारु मोती मानिक सुपार
झुके सिर सुचन्द्रिका जु उरझै दृग गारी॥
सोभा ससि जुगल बदन नख सिख सुखमा की सदन
लोभ गनि काम कोटि अगन प्रति दोरी॥
बाजत रव बिन मृदग नाचत मनि अति सुगन्ध
गावत नव सरस रग ललना चहुँ आरी॥
राजत नृप राज सदन वन प्रमाद सघन कुञ्ज
लीला ललित करनि काम रूप मा धरोरी॥
मागन सिया अलि सुदान लुब्ध मधुप इव सुजान
बसो महिन भामिनी सुकमल नैन मोरी॥

इसमे जल-विहार का वर्णन बडा ही रससिक्त है।

दम्पति रुख अति पाइकै चारु शीला हसि बोल।
चन्द्रकलादिक हेरितन करिय सकल दुई गोल॥
एक दिसि स्याम सब अलिनि युत एक दिसि सिय सग बाल।
लागे छीनन वारि कर अति सुप्रेम दोउ लाल॥
नाना भेद फुहार मे छीचि राम सिय बाल।
मुखन लेह जल मेलि मुख बडी प्रेम छवि॥
छूटि अग अग वसन छिपि योवन दृग हहरा जाल।
सहि न सकत प्रिय विकल मन लपटि लपटि उरझात त॥
विवस अक भुज मेलिकै मुख सो मुख हसि मेलि।
चचरीक जिमि जलज महँ करत विविध रस केलि॥

लाल अग वर स्वाद सुजागी
पिउ पिउ स्याम कहन सो लागी।

रच्छद करि गण्डन भुज भारे
सुरति केलि सखि गावहि न्यारे॥
जिमि कचन गिरि मेघ सुहाई
तिमि सुलाल पिया उर मे छिपाई॥

जे० बदी १, सवत् १९२९

श्यामसखे की पदावली

गोस्वामी श्री श्यामसखे के ४४५ पदो का यह बृहत् सग्रह कनक भवन अयोध्या से श्री लक्ष्मीशरण रामसनेही जी से सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचन्द बम्बई वालो ने प्राप्त कर लखनऊ प्रिंटिंग प्रेस से सन् १८३८ ई० मे छपवा कर प्रकाशित किया। युगल सरकार सीताराम के रूप रस एव लीला-विलास के पदो का यह सग्रह अपने ढग का अकेला है। भाषा मे कही-कही पजाबीपन है और कही-कही भोजपुरी का पुट भी मिलता है। ध्यान देने की बात है कि श्यामसखे जी न केवल रसिक भक्त है, परन्तु एक सधे हुए गायक भी है। समस्त राग और उनकी रागिनियो का इतना अच्छा भावपूर्ण उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है। भाषा मे बहाव है और कही-कही उर्दू फारसी के शब्द भी आये है, जो बहुत प्यारे लगते है। सम्पूर्ण रामलीला इसमे आ गई है और सीताराम के मिलन, झूलन, दरस परस और विरह का जैसा मनोहारी वर्णन श्यामसखे जी ने प्रस्तुत किया है और ऐसे भव्य रूप मे कि वह अन्यत्र मिलने का नही।

अस्तु, इस विशाल ग्रन्थ से कुछ उदाहरण देने का लोभ-सवरण करना कठिन है—

सिय पिय आजु सरस रस भीना।
सुफल मनोरथ भयो हमारो जगो जानकी ये बर दीन्हा।
दरसन हित लालच उर बाढी भई है बिकल लखि रूप नगीना।
श्याम सखे बिरहिन मन मोहन बसहि दृग सिय राम नवीना॥

चलु देखु सखी तन सावर को।
सिर मौर धरे सिय को बनरो।
श्रुति कुण्डल डोल कपोलन को।
छवि नासा मोतिन की लहरो।
चित खैचि गहे मिथिला पुर को।
तिरछी चितवन दृग हे कजरो।
बिसरे नहिं श्याम सखे जिय सो।
कर ककन मोह हिये गजरो॥

चित्रकूट चलु हे सखी फटक सिला के ओर।
श्यामसखे निज सखिन ले बिहरे राजकिशोर।
चित्रकूट चम्पक लता चामीकर तरु छाह।
चन्द्रकला विहरे धरे श्याम सखे गलबाह।
चित्रकूट कलि काम तरु काम कामदा देत।
राम धामदा सेइये श्याम सखे यहि हेत।
चित्रकूट बन बाग मे चारि भुजा ब्रह्मेश।
श्याम सखे सखि रूप धरि सेवहि राम नरेस॥

रघुवर कैसे बिसरिहो बतियाँ।
कब तो हाय साझ घरवाती मेरी तो लागि सुरतियाँ।
नदिया तीर भई जो बाते रस बस भीजी मतियाँ।
श्याम सखे सैयाँ श्याम सलोने तोको लगैहो छतियाँ॥

रघुवर आए नवल बनि नारी।
करि सिगार सुघर बनिता की सिर पर गागरि भारी।
बीने रात कहत घर घर मे त्यो जल पियनिहारी।
श्याम सखे सैयाँ रसिक बहादुर करत बिहार बिहारी॥

नयन बिच छाय रहो राघो जी के नैन।
लाली निरखि छकी मन आली सब तन मे मद फैलि रहो।
श्याम करत घायल निसु वासर सीतल मिसिर दै रहो।
श्याम सखे बाकी चितवनिया पर हूँ बिनु मोल बिकै रहो॥

चित चोरे प्यारे राघो की रसीली बतियाँ।
टेढी भौंह जुल्फ पर टोपी निरखत भूलि गई मतियाँ॥
नहि भावै घर का सुख सम्पति नहि भावै पिय सग रतियाँ।
श्यामसखे दिन राति सैया को अस मन होइ लगावो छतियाँ॥

हमारे मन पियवर के रस रगी।
जब से पियवर के रस राती तब से भई चित चगी।
धमनि फुलेल हमनि जुवनी सग फीको लागति सगी॥
श्याम सखे बिनु देखे माधुरी जोवन जात उमगी॥

निरदई श्याम से नैन लगी जल भरन भूलि गई गागरिया।
टेढी शिर पाग लटै बगरे तन सावर गावत रागरिया॥

मोहि देखि भभूत चलाइ दिया तब से चित चैन न नागरिया।
इत छैल के छौ रस ते न छकी भारी डर है उत सासुरिया।
इतहू से गई उतहू से गई बदनामी लई शिर सागरिया॥
पिय नेह के कारन छाडि दियो सारे घर लाज उजागरिया।
बदनामी उठाइ के श्याम सखे रसिया से मिली गरे लागरिया॥

पनिघट पर हमको मोहि लई दशरथ के प्यारे सावरिया।
जल भरत धरत कटि करकि गई सरेखत सारी सरकि गई निरखत छवि।
घूघट उघरि गई चित चचल ज्यो भई बावरिया।
फिर सभरत धरि धरि शीश घडा मन मोहन वालन नजर पडा।
दृग लागत चौगुन चाह बडा सुधि भूलि गई घर गावरिया।
धरि खीचि लई पिय पीत पटा मानो दामिनि के मग मघ घटा।
बिनु मोल बिकी हम श्याम सखे पिय के मग दीन्ही भावरिया॥

ठाकुर से मेरो ध्यान लगोरी।
ठाकुर दशरथ लाल हमारे ठकुराइनि मिथिलश किशोरी।
बैठे कुञ्ज धरे गल बहिया चन्द्रकला विमला चहुँ आरी।
श्याम सखे दम्पति छवि निरखत पिय प्यारी की सुन्दर जारी॥

मरो मन बावर भई आली।
निरखि निरखि नैनन की कटा छटा।
जुल्फ जाल खौर भाल मुक्तन के गर माल आसपास बालचाल मे नटा।
दीन्हे गर बाह बाह मरजू तट कदम छाह खलत कर कमल सखी माधुरी लटा लटा।
रसिकन सोय धरत ध्यान जीवन धन प्रान मान श्यामसखे पपिहा पिय मे घटा॥

लला छवि भामिनि आज करी।
टेढी पाग सुरुख रग जामा जुल्फनि पेच परी।
छडी गुलाब लिये कर गजरा कुञ्जन माह खरी।
श्यामसखे पिय भेट भई है हसि उर मालधरी॥

रसिक सिरोमनि राम।
बिहरे सग लीन्ह बाम।
चन्द्रकला किसला बिमला सखि राजति पिय चहुँ आर।
कनक लता के मध्य जुगल जनु दामिन के मग मार॥

झुकि रही अलकै लट काम। बन किशोर जहँ गुल्म लगे है गावत अलिगन गीत।
शुक दादुर पिक हम चन्द्रिका पिय प्यारी रस रीत।

गजरा मोहैं अभिराम।
कोई मुख पान खिलावत भावत कोई आदरस देखाय।
कोइ सखि करति गुलाब फुहारे कोइ कर धरि उर लाय।

अखियन मारे छवि धाम।
धिधिकट धुधुकट मृदग बजावत कोई सारिगम गति तान।
कोइ पट खैचत मैन दिखावत कोइ कर रति उत्थान कोइ श्रम पोछे तन घाम।
रसिकन हित पिय करत रहस रस पूरन रस सिंगार।
यह रस जान शभु सनकादिक सिय पिय राम विहार।

निज उर धारे सखे श्याम।
आवै गलबाह धरे हो प्यारी जी की छवि रसमाते।
प्यारी की लट कुण्डल अरुझाने मरुझन कौन करै।

जगे अखियन रसराते।
फूल उडावत गेद खेलावत सो सुख कहि न परे।
पगनि धीरे धीरे घर जाते।
श्यामसखे यह युगल माधुरी मन अभिलाख करे तनक मोहि तन मुसुकाते।

चलु सखि पौढे राजकिशोर।
कनक भवन के ललित कुञ्ज मे दुति दामिनि छवि जोर।
जनक लली चरनन पर लोटत रस बस करि घन घोर।
महलन मे मञ्जरी अलापे मधुरी तानन सोर॥
श्यामसखे सखि पीत पिताम्बर लै आई बडे भोर॥

सावली छवि बनि आई है।
अधर बिम्ब फल मधुर सुधाकर सुख रस सरसाई है॥
माग मोतिन सो छाई है।
राहु मदन जुग मीन पीन शशि मिलन सोहाई है॥
दशन दाडिम सरमाई है।
पान पीक झलकै कपोल कण्ठा रुचि राई है॥
कचुकी ललित लगाई है॥
अगिया भरे सनेह गेह प्रीतम फलदाई है॥
सकल सोभा अधिकाई है।
श्याम सखे मुसुकात मिली पिय के गरे लाई है॥

कगवा बोले मीठी बतिया अचरा डोले रे मोरी।
गगन मदिल चढि डोरिया लग हो बिनु पनिहारी की गोरी॥
पच पकवान पिया को जेवै हो अन्दिया चारो सेज डसेहो।
श्याम सखे ले सेज सुनैहो हिलि मिलि करिहो रे भौरी॥

चूनर मोरी भीजे हो राज।
रिमि झिमि बुद परत चूनर पर सासु ननद की लाज।
श्यामसखे तुमसे रग बस भई अब घर की नहि काज॥

मन बसि गई सरूप निहारे।
बाबा हो मोरि ब्याह करा दे रघुबर राज दुलारे।
मोरा जीवन सो अरुझानो सरुझन नहीं सभारे।
श्यामसखे मेरी ब्याह करा दे पजि कै लोक बिचारे॥

पिय बिनु सखी नीद न भावदा।
छन आगन छन गैल अथाई छन जुग जामिनि जावदा।
शीतल शशि कर निकर हुतासन जलद मनहु बरसावदा।
श्यामसखे कद वा दिन आवे भेटा पिया गरे लावदा॥

सजन सग सोइया रे रानी आली रे बिरह भरी सारी रात।
बन प्रमोद जहँ सीतल छहिया फूली रही जल जात॥
सेज सोहावन रस उपजावन पुरवैया सरसात।
फूलन के नख सिख लो गहना पहिराये भरि गात॥
श्यामसखे सैया अवध रगील हसि हसि पूछत बात॥

श्याम बिनु नीको न लागत धाम।
दिन दिन देह भई दुबरी सी रट लागी सियाराम॥
कब मिलिहै पिय बाल सनेही बीते युग सम जाम।
श्याम सखे मोहि भेट करा दे ताकी होगी बाम॥

लाल मोहि आस तेहारी हो।
सुनिए कोशल चन्द के एक अरज हमारी हो।
तुम जल निधि हम सरिता है तुम पति हम नारी हो।
तुम बासर हम राति है तुम चन्द हम चकोरी हो॥
तुम नायक हम नायका गठ बन्धन जोगी हो।
नात बात तुमसे भली जग नेह लवारी हो॥
श्याम सखे अपनाइए सब चूक बिसारी हो॥

सवलिया कैसे धरो जिय धीर।
बिनु देखे तोरि सावलि सूरति अखिया ढरकत नीर।
हम तुमरे जिय हम तुम जाने सासु ननद बेपीर।
छन छन देखत रस उपजावत बिछुरत बिकल शरीर।
श्याम सखे को दरद मिटावै बिनु बालमु रघुवीर॥

किन बिलमायो री।
बारी बयस सखी कर्पात रहनि दुख अमित मदन कर जरत झरत मद अगिया अग भिजायो री।

मास असाढ बूद बरसावन सावन सब सखि झूल झुलावन।
भादो रैनि भयावन सखि री हियरा मोर डेरावन।
आसि बन कमल कली बिन सायो री वे।
कातिक दिनकर अरघ मनावनि अगहन माग कढाइ बिलखि पिय बिनु गुनि गुनि मन श्याममखे मोरी अगिया जोर जनायो आयो गरवा मोरे लायो री वे।

मैया मगे ससुरा मे रहब पियारी।
नैहरा क पाँचो यार भये बैरी।
जो भी न रहा सो ननद बिगारी।
छोड दियो सग की पचीसो सखिया पिया पिया लागी है रटन हमारी।
श्यामसखे हम भइ है सुहागिनी फिरि नहि पिसब नैहर जत सारी॥

चढियो न जाय मोसे सैयाँकी अटरिया।
दश औ पाँच थान का लहगा बीस पाँच लागे मोतिन की नरिया।
बडी दूर पिया केर अटरिया।
कसकि कसकि उठे कमर हमरिया।
श्याममखे जिय हुलसि हुलसि रहे रस बस मैया जी जोरि हो मै यरिया॥

अटरिया कैसे के चढि जाउ।
तीनि महल को लाल अटरिया सैया सेज लजाउ।
पाँच सखी मेरे बैर परी है पाँचे देखि डेराउ।
श्याम सखे मै तो बारी सुहागिनि ठाढी भई पछिताउ॥

सुधि आइ गई सैया सपन बारे।
बौरी सी फिरो अगनवारे।
दिन अधिआर राति उजिआरी देवरा बोलावे भवनवा रे।
श्याम सखे रहे गगन मन्दिर मे काहे को कियो गवनवा रे॥

ढरकि गई रे मोरि बारी उमरिया।
बारी बयस परदेस सिधाये तब मे न लीन्ही खबरिया।
कबहुँ न डीठि बलमु मे लाई कबहू न सोई अटरिया।
लै चलु श्यामसखे जहँ बालमु फिरि मनिहो तोरि निहोरिया॥

श्री सीताराम-शृंगार रस

श्री महाराजदास जी

श्री जानकी घाट अयोध्यापुरी के महन्त महावीर दास जी उपनाम जनमहाराज ने 'महा-रामायण' के आधार पर श्री सीताराम के शृंगार का वर्णन दोहे-चौपाइयो मे किया है। यह छोटी-सी पुस्तिका राजपाली प्रेस, मुट्ठीगञ्ज, इलाहाबाद मे सन् १९१५ ई० मे छपी। आरम्भ मे भगवान् राम और भगवती सीता का परत्व-वर्णन है। इसके अनन्तर युगल सरकार के चरणचिह्नो का वर्णन है। तब दिव्य साकेत धाम और उसमे दिव्यलीला-विहार का वर्णन है। अन्त मे दो घनाक्षरियो मे प्रणय निवेदन है। उदाहरण—

दिव्य अयोध्या

बिरजा तट इक नगर सुहावन।
परम रम्य पावन मन भावन॥
दिव्य अयोध्या ताकर नामा।
दम्पति धीश जहाँ सियरामा॥
द्वादश दुर्ग बने अति सुन्दर।
एक मध्य जो परम मनाहर॥
विद्रुप चौखठ तडित केवारा।
इन्द्र नीलमणि जगमग द्वारा॥
कचन मणि मय भीति सुहाई।
कहौ कवनि विधि वरनि न जाई॥
क्रीट चन्द्रिका परम प्रकासा।
तहँ नहि रवि शशि करहि निवासा॥
अति सुगन्ध मन्दिर शुचि शाला।
तहाँ फेन सम सेज रसाला॥
हरित लाल मणि जगलन झलकै।
अगणित राम सिया छवि छलकै॥
ताहँ मणि मोतिन की झालरि।
जगमगाति आगन द्युति लालरि॥

स्वेत हरित सिन्धु रमणि सोहै।
आगन छवि लखि सुर मुनि मोहै॥
उत्तर कौशिल्या अज नन्दन।
प्राची दिशि हनुमत करै बन्दन॥
दक्षिण लखन उर्मिला स्वामी।
करशर धनुष युगल अनुगामी॥

भरथ शत्रुहन परम शचि, माडवि मग अनुरूप।
श्रुतिकीरति शृगार मय, सेवाहि रघुकुल भूप॥

कामियो को नारि जिमि तृषित को वारि जिमि भौरनु को प्यार जिमि फूलन कतार हो।
पकज को भानु जिमि मुनिन को ज्ञान जिमि रकन निधान पिक ऋतु सुबिहार हो॥
सुत जिमि मातन को नेह गोत नातन को हम मन भावै जिमि मानम किनार हो।
जन महाराज कर जोरि कहै बार बार तिमि प्रिय लागो सिय कोशिला कुमार हो॥
दीपक पतग जिमि राग है कुरग जिमि मणि है भुजग घृतपावक अहार हो।
नीर हूँ को क्षीर जिमि प्राण को शरीर जिमि नैन को पलक मोर घन रव प्यार हो॥
चातक को स्वाति जल पातक को पाप भल मती शिव पिव रति भावै जिमि मार हो।
जन महाराज कर जोरि कहै बार बार तिमि प्रिय लागो सिया कोशिला कुमार हो॥

जैसे भौरा सुमन रस, तैसे सन्त सुजान।
राम सिया रस माधुरी, करे निरन्तर पान॥
रमा उमा ब्रह्मानिया, मिया चरन की आस।
जाके बस सब देव है, कृपा कटाक्ष निवास॥

श्री राम प्रेम मंजरी

प्रेममञ्जरी विलास

श्री जानकी घाट अयोध्या के श्री गुरु हुजूरी जी महाराज के प्रधान शिष्य श्री महावीरदास उपनाम श्री महाराजदास जी के रचे हुए श्री सीतारामोत्सव विहार के पदो का यह सग्रह प० श्री रामवल्लभाशरण जी की अनुमति से देशोपकारक यन्त्रालय मे सन् १९०७ ई० मे छप कर प्रकाशित हुआ। आरम्भ मे श्री गुरु वन्दना है, तत्पश्चात् श्री गोस्वामी जी की वन्दना, श्री सरयू जी की वन्दना, अन्तर्गृही की परिक्रमा, श्री सरयू जी की बधाई, श्री हनुमत् जन्म बधाई, फिर श्री सीताराम युगल सरकार का ध्यान और लीला-रस का आस्वादन-वर्णन है।

सिया छबि नयना सुखकारी।
देखि रूप रति मन मारी।
मुख मडल बहु राकाशशि छबि उपमा कबि हारी।
सिर पर केश अमित अलि शोभा नागिन लटकारी॥
गौर अरुण शुभ अग मनोहर अरुण चरण नारी।
अरुण ललाट चद्रिका बेनी उदित तिमिर हारी॥
भूषण बसन अग मे जगमग नील पट्टसारी।
कठा कठ मनिन उर गजरा दामिनी झलकारी॥
उमा रमा ब्रह्मादि बदिता राम प्रिया प्यारी।
दास महाराज युगल पद बदौ मोमे पतित तारी॥

अब देखु अली सियाराम लला मनि मदिर मे मन मोद भरै।
छबि आनन्द कदकला झलकै चहु ओर प्रकाश बिलास करै॥
सजनी सजि आजु समाज बनो फुल दूलह दुलही देखि तरै।
महाराज सुदास के प्रान इह दृग मे दोउ मूरति प्रेम करै॥

आली निरखहु छबि अब प्रेम पिया।
जाके बदन मयन मत शाभा चितवन मे चित अमल किया॥
जाको सत सुरेश सम बैठक सिहासन पर बाम सिया।
जाको यश गावत सुरनर मुनि कबि कोविद शिवनाम लिया॥

सज्जन ममति चकोर चिते राम सिया रस रूप।
जैसे चन्दाशरद की शोभा अमित अनूप॥

कमल नयन खजन दृग अजन पीत बसन तूला।
अलि सब रामसिया मुख हेरत निमिष निमिष शूला॥
अवधपुरी कुजन की शोभा सुमन मनिन झूला।
रतन कनक मणिमय रच्यो नगन जडित चहु ओर॥
राम सिया प्रतिबिम्ब छबिलेन सबन चित चोर।
दास महाराज युगल छबि नख सिख दरस नयन खूला॥

निरखत सखि झूलन की छबि।
रतन जडित मनि मय जगमग दुति मनहु इन्दु के अटा॥
तामे शोभितराम सियाजू सरग बसन अग डटा।
सावन लता हरितद्रुम पल्लव उमडि घुमडि घन घटा।
बरिसत मेघ चहु दिसि रिमि झिमि दादुर पपीहा रटा॥

सावन सुख आनन्द भयो है उमगि नीर सरि नटा।
दास महाराज युगल छबि चितवनि प्रेम अमिय रस सटा।।

युगल छबि आज बनी बाकी।
अरुण चरण फल सुखमा की।।
शरद रैन भइ इदु प्रकाशित अमृत मय छाकी।
सुकुल बरण सब अमन बसन है कमलनयन जाकी।।
बैठे सुघर रसीले रसिया निरषु अली झाकी।
घेरि लिये चहुदिशि से मनि गन जैसे चद्र चकोर ताकी।
बाजत ताल मृदग सितारा सुरमुनि गावत जश जाकी।
दास महाराज हृदय सुख छायो राम सिया दोउ फल पाकी।।

सजि साज समाज युगल रसिया।
बैठे कनक भवन मे शोभित दरसन करत नयन बसिया।।
भूषण बसन बिचित्र अग मे क्रीट कनक मनि सिर लसिया।
कमलानन दृग जुल्फ अली सम मानो पीवत झुकि झुकि रस रसिया।
गान करत अवलोकि पिया सुख दास महाराज रसिक फसिया।।

सखि आये कुअर अलबेला।
देखु देखु छबि परम प्रकाशित यही नयनन कर मेला।
कैसो रूप अनूप है सजनी कोटि मदन मद हेला।
अवध छैल दोउ बीर बाकुरा तुरिह धनुष करि खेला।
दास महाराज निरखि किन लीजै दान अमर पद देला।।
सिया जी मैन दियो सखियन को लेहु ललन को घेरी।
काजर करि चुनरी पहिराई नाच नचाइ को तान दई मिर्दग तर ताल परी।
लखन लाल जी को चन्द्रकलादिक पकड लियो बरजोरी।
कमल नैन मुख निरखत सजनी हसि हसि बात करी गले पर बाह धरी।।
भूषन बसन रग से भीज्यो भीज गयो तन गोरी।
दास महाराज सुमन सुर बरसत रग मे रग करी गुमान से आप मरी।।
नैना रग से भरी।।

युगलोत्कंठ प्रकाशिका

जयपुर चन्वेली के श्रीसीतारामशरण 'शुभशीला' जी

श्री राजकिशोरी वर शरण (परमानन्द जी) ने श्री रहस्यप्रमोद भवन जयपुर मदिर, या से दूसरी बार सवत् १९९४ मे प्रकाशित कराया। प्रथम सस्करण मे यह पुस्तक श्री सीता-

रामशरण भगवान प्रसाद जी ने 'रसिक उरहार' नाम से छपवाया था। वस्तुत इसमे 'विनयमाला' और 'रसिक उरहार' दोनो ही सम्मिलित है। 'युगलोत्कठ प्रकाशिका' मे आरभ मे दोहे है और बाद मे गेय पद।

विषय—आरभ मे परिकरियो सहित श्री स्वामिनी जी की वदना है। रस से भरे दोहे बडे ही भावमय हैं। सपूर्णग्रथ बहुत ही प्रभावोत्पादक है। लीला रस के वस्तुत आस्वादन एव अनुभव से ओतप्रोत है। विरह ऐसी तीव्रता वेदना और उसका ऐसा निश्चल वर्णन अन्यत्र नही मिल सकता। कृष्ण भक्त कवियो मे जो स्थान घनानद का है, रामभक्त कवियो मे वही स्थान जयपुर चदेली का है।

उदाहरण—

परिकरि युत श्री स्वामिनी, सुख बिबर्धनी साथ।
हमको दीजे सुख सदा, अब गहि लीजे हाथ॥

पद पकज देखे बिना, बृथा जन्म जग जात।
सीतावर जुत मिलहु अब, छिन पल कलप बिहात॥

हे सीते नृप नन्दिनी, हे रघुराज कुमार।
तुम बिनु व्याकुल चित रहत, रही न नेकु सम्हार॥

असन बसन कुल कान तजि, सब से भई उदास।
बिरह अग्नि बाढत भई, तापै पवन उसास॥

ताहू पर घृत परत है टपकत नयनन नीर।
बुझत नही बाढत अधिक, को जानै यह पीर॥

गृह बाहर बन मे फिरू, कहू न चित ठहराय।
जह तह जिय घबरात है, अब दुख सहो न जाय॥

नैन मूदि कबहू रहौ, बैठी गृह एकत।
मूरति कौ अनुभव करौ, खोले फिर बिलपत॥

तापर फिर लीला रचित, चित अवलम्बन हेत।
प्रिय प्रीतम की कांति वह, कछु सीतल कर देत॥

तदपि चित्त माने नही, बिरह ज्वाल के जोर।
घन बिजुली सम दर्श दो, श्यामल गौर किशोर॥

बदन माधुरी गर्ज रव, बचनामृत जुत पीर।
बिरह अग्नि बूझे जबहि, मिलन वपु हो नीर॥

हे बिधु बदनी जानकी! हे सीतावर श्याम!
कब दिखाइहा बिधु बदन, पद पकज अभिराम॥

दृग चकोर मन भ्रमर है, रसना चातक नाम।
कब देखे प्रीतम प्रिया, सुख बिलास के धाम॥

कबहु कि वह दिन होयगो, प्रिय प्रीतम के सग।
भाव सहित अवलोकिहौं, जिमि चकोर परसग॥

पद पकज की माधुरी, मन मधुकर है लीन।
मिलन बिना व्याकुल रहत, बिरह व्यथा तन छीन॥

हे श्री सीते स्वामिनी! रसना रटत सुनाम।
चातक सम गति हो रही, सुनिये करुणा धाम॥

दृगन छबीली छबि बसी, जल समुद्र जिमि मीन।
ताहि बिलग मति कीजिए, हो तुम परम प्रबीन॥

बिथा होत जिमि मीन के, बिछुरे प्रीतम नीर।
वैसी गति मम देखि कै, कृपा करहु रघुवीर॥

देखत जग मे मधुरता, सुन्दरि सुन्दर रूप।
तन व्याकुल ह्वै जात बिनु, देखे रूप अनूप॥

रूप अनूप दिखाय के, कीजै नैन सनाथ।
अछत नाथ अस क्यो करो, देउ प्रिया को साथ॥

सुनि कोकिल की कुहुक मृदु, उठत हिये मे हूक।
सिसिक सिसिक कर मीजती क्षमा करो अब चूक॥

हम तो सब औगुन भरी,तुम हौ गुण की खानि।
गुनन आपने रीझिये, बिरदा वलि उर आनि॥

नटत मयूरी देखि कै, बिरह सतावै मोय।
केकि कठ तन की सुदुति, लखि-भुज मन भ्रम होय॥

कब भ्रम तुम यह मेटिहौ हे नृप राज किशोर।
गलबाही दीन्हे लखै, गौर श्याम चित चोर॥

देखत नृप तनया जगत, प्राकृत राजकुमार।
मिलिहो हममे कबहु अस, जस लौकिक ब्योहार॥

सब जग अपने मित्र युत, सुख भोगत दिन रैन।
हमकौ दुख दिन प्रति अधिक छिन पल कबहु न चैन॥

हे सीते करुणाअयन, जतन बन नहि एक।
केवल कृपा कटाक्ष को चातक की सी टेक॥

स्वाति-बूद पिय युत मिलन मेरे जी की आस।
पूरण कबहू कीजियो, जबलौ घट मे स्वास॥

और कृपा कर दीजियो, जब लग तन मे प्रान।
प्राण नाथ जुत नाम तव, रटै छोडि अभिमान॥

चातक रटि घटि जाव भल, घटे न मेरो नेह।
चरण कमल मकरद की दृढ भौरी करि लेह॥

बिरह तपावै माहि ज्यो बाढे, अधिक सनेह।
जैसे कुन्दन के तपै, निरमल होवै देह॥

काम क्रोध मद लोभ ये, जग मे करे सनेह।
तब सनेह के रिपु अहै नेकु न परसे देह॥

अरुण प्रीति छबि घटाकी, अटा बिलोकी जाय।
असुवन झर बरसन लगी, तन सब दई भिजाय॥

भई शिथिल नहि चल सक, सीतल स्वास समीर।
तन कपाय व्याकुल करी, बेगि मिला रघुबीर॥

बहु विधि भूषण नग जडित, दखि चढत है पीर।
कब पहिरैहौ निज करन, सुन्दर श्याम सरीर॥

बसन अमौलिक देखि कै, मन न धरत है धीर।
प्रिय प्रीतम के याग यह, मणिन जडित है चीर॥

रुचि रुचि बसन सम्हार तन, कब पहिनैहो पीय।
कोमल पुहुपहु ते अधिक, तन सुन्दर कमनीय॥

अग सुगध बहु विधि धरे, मणिन पात्र रमणीय।
पिय प्यारी के उर लसै, सुफल होय तब जीय॥

राज साज साहित्य जुत, सब परिकर लिय सग।
निमि दिन बिहरेगे कबहु, महलनि कुज अभग॥

बन बिनोद क्रीडा ललित, माझ सबेरे बाग।
कब देखेगे नैन यह, जगिहै हमरो भाग॥

फूल बाटिका महल की बिहरत युगल किशोर।
कबहु कि यह छबि देखि हौ,मनहारी चित चार॥

जल विहार सरयू सलिल, करत सखी जुत लाल।
कब देखे झीने बसन, चिपट रहे छबि जाल॥

कबहु परस्पर प्रीति बस, अरस परस शृगार।
करत देखिहौ प्राण पति, लहमनि कुज मझार॥

रचि सिंगार दोऊ खडे, दै हित सो गलबाहि।
कोटि रतन तब वारिहै, तन मन से बलि जाहि॥

कब देखौ वह माधुरी, जनक लाडिली सग।
प्रीतम हित बतिया करत, उर अति मोद उमग॥

सुरति बिहार बहार की, बाते अलिन समाज।
सुनि सकोच दृग लाडिली, देखहि बदन सलाज॥

कबहु कि वह दिन होयगो, जनक लली के पास।
चेरी ह्वै नेरी रहौ, लहौ अग सुबास॥

कब लखि हौं नख माधुरी, पद पकज दृग मोर।
जिन समि को तरसत रहै, मुनि गन भय चकोर॥

सरद रैनि की चादनी, बिहरत युगल किशोर।
नृत्य सहित दपति लखै, सखि मडलि चहु ओर॥

करै मान जब लाडिली, प्रीति बिबश तुम सग।
कब मनाय सिय स्वामिनी, आन बटाऊ रग॥

मुरक चलन तिरछी नजर, पिय तन चितवत नैन।
कब सुनिहौ निज कान सो प्यारे प्रीतम बैन॥

बहुरि मान को छोडि कै, प्रीतम उर उमगाय।
मिलत देखिहैं नैन यह, जन्म सुफल हो जाय॥

राम अमित मुख स्वेद कन, प्यारी तन झलकत।
करिहौं कब पखा पवन, हरिहौ श्रम हुलसत॥

सैन कुज पुनि गवन करि, करिहो सखिन निहाल।
सो छबि कब हम देखिहौ, प्रीतम सग रसाल॥

मिल बिलसत प्रीतम प्रिया, फसे रूप छबि जाल।
तन मन से अगन रमे, प्रेम छके रस चाल॥

बाते केलि कलान की, शील सकुचि दृग लाज।
कब देखोगी दृगन हम, रस बस रस के काज॥

रस माते रस पान कर, रस राते तब नैन।
रस छाके रसकेलि मैं, नैन मते छबि मैन॥

नैनन लखि छकि है कबै, मैन छकी दृग सैन।
नैना पल लागै नही, मुख से बनै न बैन॥

कब हम देखौ लाडिली, छकी छबीली कांत।
सिथिल बदन भूषण बसन, पिया केलि सुरतात॥

भूषण बसन सम्हारि है, सुन्दरि सकल सुदेश।
पलक पीक कज्जल अधर, यह छबि लखै हमेश॥

हे करुणाकर जानकी, राम जानकी जान।
सब परिकर की जान तुम, हे मम जीवन प्रान॥

कब दिखाइहो महल सुख, पय पीवत रुचि सग।
श्री महराज किशोर युत, सयन समय की सग॥

अलिगन पान कराय के, सयन करत सुख दैन।
प्रीतम सग पौढी महल, सखि छबि छकिहै नैन॥

लाल लाडिली छबि छके, जागे महलनि कुज।
कब यह छबि मै देखिहौ, जगि है भाग सपुज॥

मिलन सुधि कीजे हो मोरी।
कमकत हिये वियोग तिहारे, रैन दिवस सुनि बोरी॥
छिन-पल-कल नहिं परत सखी री, मिय स्वामिन बिन मोरी।
सुभ शीला की जीवन धन है, मिलि मिथिलेश किशोरी॥

जगे आली पिया प्रेम रस भीने।
नयनन नेह खुमारी झूमति, प्रिया अस भुज दीन्हे॥
रास नृत्य छबि सुख के भोगी, दृगन मैन छबि लीन्हे॥
सुखमा अग अपारी झलकत, रतिपति की छबि छीने।
सुभशीला मिय अलक सम्हारति, नेह शिथिल तन कीन्हे॥

प्रात समय आन सखी मधुरतान गावै।
प्यारी प्रीतम सुजान जगे दश पावै॥
राम श्रमित छबि निहारि वारि फेरि जावै।
तन मन की तपन मेटि उर मे सुख ल्यावै॥
आरति मुनि श्रवन नयन लली लाल जागे।
घुर्मित लोचन विशाल प्रिया प्रेम पागे॥

बिथिरित दोउ कच कपोल भूषण उरझाने।
नयनन छबि रति विशाल मोद मे समाने।
रास श्रमित अग शिथिल पुनि पुनि अलसावे।
प्रिया कध अस मेलि फिर फिर झुकि जावे॥
देखति शोभा अपार उर सुख उपजावै।
अधरामृत पान करन सिय जू सकुचावै॥
कहत बयन प्रिया सयन नयन से बतावै।
टुक लाज करो समुझि धरो परिकरगण आवै॥
शरद रैन उत्सव मे विविधि आज आये।
ते सब सुखमा विलास देखत छबि छाये॥
तिनकी तन नयन सयन करे उते झाको।
सुभ शीला ललित प्रेम दृष्टि इतै ताको॥

राम श्रमित भये लाल, रैन मैन जागे।
प्रिया केलि सुखमा मे लोचन अति पागे॥
थकित केलि श्रमित अग यद्यपि नहि हारे।
मयन ऐन जग करन सूर बीर मारे॥
परिकर गण विविध आज भाति भाति आये।
तिनके कछु बेन सुनत मन मे सकुचाय॥
प्रिया अस मेलि कध मसनद झुकि बैठे।
मानहु रति कामजीत विजय भवन पैठे॥
सहचरि गण सकल आये दर्श नैन पाये।
देखति छबि शिथिल अयन नयन मे लगाये॥
नयन ललित लज्जित की सुखमा कबि को कहे।
जानत सोई रसिक अली जिनके उर मोद बहै॥
सरिता उर घुमडि बाहिर को आवत है।
नयनन के मध्य मनहु दृग जासी दर्सत है॥
दृगन नीर प्रेम छयो मोद मैन भाई है।
सुभशीला करि प्रणाम पास अलि आई है॥

कनक भवन राजत पिय प्यारी।
पहिरे ललित बसन सु बसन्ती, सिय पिय मोह भरा री।
परिकरि गण सब समय रूप है, बाग बसन्त फुलारी।
ललनन के तन चप कली से, लसत भूषणन डारी॥

मदन मनोरथ केलि अनेकन अलि नव गुज तमारी।
हास बिलास मुकुन्द कली सम, दौडि मदन सनकारी॥
ललित तमाल बदन सिय सुखकर, करि कमलन गलबाही।
मनहु तमाल लता बेली द्रुम, लिपटहिं नेह भराही॥

आली हरो चित श्याम सलौना।
अद्भुत रूप अनूप सकल बिधि, कोशलेश सुत सुजन खिलौना॥
जिय अकुलाय लखे बिन वह छबि, पितु गुरु जन डर निरखि सकौ ना॥
हिय हुलसत प्रिय मीत मिलन को, अवध कुवर बिन कोइ को हौना॥
सचराचर व्यापक सुखदाई, रोम रोम मम श्याम समौना।
कृपाशील जस प्यारो छबीलो, गुन बल भूल हुआ है न हौना॥

वैष्णव-विनोद

श्री वैष्णवदास

काशी-निवासी बाबू कामेश्वर प्रसाद के सुपुत्र बाबू गया प्रसाद उपनाम वैष्णवदास के रचे हुए कुछ प्रेम-प्रधान पदो का सग्रह भारत जीवन प्रेस (काशी) से सन् १९०३ ई० मे छपा। इसमे राधाकृष्ण और सीताराम के प्रणय-बिलास एव लीला-विहार के १०५ पद है, जो अत्यन्त भावपूर्ण एव मधुर है।

उदाहरण—

हिंडोला झूलै सिय रघुराई।
मनिन जडित सुन्दर सिंहासन रेसम डोर लगाई॥
कदम की डार डार की झूला सरजू तीर सुहाई।
चातक मोर पपीहा कुहके कीरहु यह धुनि लाई।
सीताराम कहहु मेरे प्यारे जाते बिपति नसाई॥
स्याम घटा नभ ऊपर छाई दामिनि चमक दिखाई।
नान्ही नान्ही बूद परत कचुकि पर पौन चलत पुरवाई॥
राम मलार अलापत सुन्दरि ढोल मृदग बजाई।
देव विमान चढे हरखित मन सुमन बृष्टि झरलाई॥
मेघ स्याम मम बदन राम को सोभा कहि नहि जाई।
वैष्णव दास पाइ आयसु को पुष्प माल पहिराई॥

बृहत् पद-विनोद

रसदेव कवि

लक्ष्मीनारायण प्रेस (मुरादाबाद) से छोटेलाल लक्ष्मीचन्द बम्बईवाले ने मुद्रित कराकर सन् १९०८ ई० मे प्रकाशित किया। यह ग्रथ भी विशुद्ध काव्य की दृष्टि से सर्वथा आदरणीय है।

उदाहरण--

देख सखि सुभग छबि जानकी रवन की।
श्याम अभिराम तन काम तरु मनहु महि नील नीरद निरखि निखिल निज गवन की।।
क्रीट शिर ललित कल कलित कुडल जुगल वलित दिनकर मनहु अमित द्रुति श्रवन की।
पीत केसरि तिलक भाल भाजित विमल मनहु शशि बीच पथदेव गुरु गवन की।।
अलक आनन परी अमित झलकत कुटिल मनहु शशि घेरि जुग राहु रचि भवन की।।
लसत उरमाल मणि पीत पट कटि कसे मनहु घनजोति घन मिलत रुख पवन की।।
बाहु आजान कुल कमल रघुवश मणि चारु सर चाप करत कनि मृग ठवन की।
कनक नग जडित आसीन आसन रुचिर देखि रसदेव सतकाम मन भवन की।।

मजु सूरति मृदुल मोहिनी मन वसी।
क्रीट शिर पै ललित श्रवन कुडल कलित फलित शुभ भाल पै तिलक केसरि लसी।।
लसत पट पीत कटि कसत लट फसत मुख पियत जनु पन्नगी सुधा शशि मेघसी।
देखि अभिराम छविराम की जाम बसु मलत रसदेव सत काम के मुख मसी।।

देखु सखि आजु छबि जानकी जानकी।
वदन सोभा सदन कुद कलिकादन कदन लखि करत मति मदन के मान की।।
अग भूषन जडित मग पूषन तडित देव झूखन अडित विपुल फल दान की।
बास परजक कलखास रघुवश मणि दास रसदेव मोहि आस नहि आनकी।।

देखौ श्री रघुवीर की आखे।
श्याम सेत बिच अरुन कज सम जनु बैठ्यौ बटोरि अलि पाखे।।
चितवनि चलनि पलनि पलकन की मीन मनोज खज मृग माखै।
दीरघ जुगल कुटिल भृगुटी अहि जनु रसदेव लौटि रस चाखै।।

देखु री छबि अधिक बनी है।
गोल कपोल लोल कुडल कल बोल ठोल अनमोल जनी है।
भूषन बिन दूषन पूषन जनु मजु मयूषन जडित कनी है।।
दमन दमक दरसत विहसनि मे जनु घन मे घनजोति घनी है।
मुख मयक पर लट लटकत जनु पियत सुधा रस सरस फनी है।।

दृग दीरघ सित स्याम पूतरी उपमा छबि कवि कौन गनी है।
जनु अलि युगल कमल दल ऊपर पर पोछत मकरन्द सनी है।
हरि मूरति मजुल मनोज लखि सखि नख शिख रस देव मनी है।।

सिय की बेदी अजब बनी री।
सुवरणा पर विरचि सचित रचि चित्र विचित्र कनी री।।
कीधौ शशि पूरणा विकसित नभ दूनी दाह घनी री।
कीधौ प्रातकाल रवि कोरथ पूरण जोति जनी री।।
कीधौ अरुन जलज के भीतर झालरि जलज तनी री।
कीधौ महि सुत के ग्रह माथ राजित साजि अनी री।।
कीधौ कम्पा मे सम्पा फसि की अहि छोडि मनी री।
छबि मनोज मजुल निरखत यह कवि रसदव मनी री।।

देखु री छबि राम लला की।
लटके लट भुजग मुख पर जनु पियत सुधारस चन्द्र कला की।।
कनक कीट कुडल कानन पर दिज दुति देखि दबी चपला की।
शोभा सदन वदन की देखत मदन कोटि रस देव भला की।।

छबि मन राम लला की खटक।
तिलक विशाल भाल केशरि को घुघुबारी लट लटकै।।
पीत बसन की कछनी काछे आछे चखचित अतकै।
शोभा लखि रसदेव छकिन भे मनसिज कोटि न भटकै।।

कहा लाल गुलाल लगाए लाल।
सुख सौतिन के सग मे रसाल।।
राति रहे किस घात मे झूठी बात करत परभात काल।
छूटी अलक पलक अलसानी झलक रही छबि छलक आल।।
काजर अधर पीक पलकन पर जावक केसरि तिलक भाल।
भूलो बसन बसन कहा कीनो दसन दाग बर लागे गाल।।
बरबस झपटि लपटि काहू को उर उपटे बिन गुनके माल।
आयो इत रसदेव सावरो लखि बानिक सब मे निहाल।।

झूलत रघुबर जनक दुलारी।
परम पुनीत पुलिन सरयू की प्रफुलित लता मुदित बन झारी।।
मणि गण जडित गडित पटुली युत खम्भ युगल मजुल अधिकारी।
राजत रसिक शिरामणि दम्पति आभा अमित अनूपम भारी।।

ओनए नए नील नीरद नभ मन्द मधुर गरजत जलधारी।
दमकत दामिनि द्युति दशहू दिश चातक मोरवा कीर पुकारी॥
युवती यूथ जुरी जाहिर जग चतुरी जाय झुलावत सारी।
छवि रसदेव देखि दोउन की कोटि मदन तन मन धन वारी॥

झूलत लाल लली सग अलिया।
करत खडी सिगरी दिश बलिया॥
कचन कलित हिडोल ललित कल कुज बलित सरयू तट थलिया।
बरसत घन दरसत दाँमनि द्युति सरसत जल हरषत सरि चलिया॥
सीतल मीर समीर धीर बर गध गभीर खिली तरु कलिया।
लखि रसदेव उमग आनद को अवध शहर की गलिया गलिया॥

कारी कारी रे बदरिया कारी कारी लागै रे।
निज अधियारी सारी दामिनि उघारी बारी बारी रे उमिरिया बारी बारी पागै रे॥
मोरवा पुकारी हारी झिल्ली झनकारी भारी झारी रे डगरिया डारी डारी बागै रे।
अवध बिहारी रसदेव उरधारी ठारी थारी र मुरतिया प्यारी प्यारी जागै रे॥

विनय-चालीसी

श्री रूपसरस जी

श्री सियाशरण जी महाराज मधुकरिया जी के आज्ञानुसार श्री राजकिशोरीवरशरण जी (परमानन्द जी) ने टीका कर के ओरियेंटल प्रेस (अयोध्या जी) मे ई० सन् १९३२ मे छपवाया।

इसमे कुल ४० दोहे है। रूपलता जी का दासी भाव है। इसी भाव से भावित होकर आपने ये अनमोल दोहे लिखे हैं। भाषा बडी सुथरी और भावमयी है।

उदाहरण—

रघुबर प्यारी लाडली लाडलि प्यारे राम।
कनक भवन की कुज मे बिहरत है सुखधाम॥

गलबहिया कब देखिहौ इन नयनन सियराम।
कोटि चन्द्र छबि जगमगी लज्जित को टिनकाम॥

रग रगीली लाडली रग रगीलो लाल।
रग रगीली अलिन मे कब देखौ सियलाल॥

हे सीते नृप नदिनी, हे प्रीतम चितचोर।
नवल बधू की वीटिका, लीजे नवल किशोर॥

हस बीरी रघुबर लई, सिय मुख पकज दीन।
सिया लीन कर कज मे, प्रीतम मुख धरि दीन॥
निरखि सहचरी युगल छबि, बार बार बलिहार।
करत निछावर विविध विधि, गज मोतिन के हार॥

झूलन बिहार-संग्रहावली

श्री कृपानिवास जी

श्री रसिक निवास जी, श्री रसिक अली जी, श्री रामसखे जी, श्री रसभासिनी जी, श्री रसिक विहारिणी जी, श्री युगलप्रिया जी, श्री सरयू सखी जी आदि रसिकोपासको के झूलन सबधी पदो का यह सग्रह बम्बईवाले सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचन्द ने डायमड जुबली प्रेस (कानपुर) से सन् १८९८ ई० मे छपवा कर प्रकाशित कराया। सग्रहकर्ता है टीकमगढ के श्री लछिमनदास भडारी। वे लिखते है कि 'श्री परम उपासक श्री रसिकाधिराज सत शिरोमणि श्री १०८ श्री गोमतीदास जी के आज्ञानुसार' उन्होने यह सग्रह प्रस्तुत किया। जो हो, यह सग्रह कई दृष्टियो से परम उपयोगी है, क्योकि एक ही स्थान पर एक ही विषय पर अनक रसिकापासको क भजनो का तुलनात्मक अध्ययन भाषा और भाव की दृष्टि से सहज ही सभाव्य है। कई स्थानो पर लगता है केवल परपरा का निर्वाह हो रहा है, परन्तु अधिकाश पद हृदय से निकले हुए भावो की भव्य अभिव्यजना मे सर्वथा समर्थ सिद्ध हुए है। ऐसा प्रतीत होता है। इन्होने सीताराम-विहार की दिव्य लीलाओ का साक्षात्कार किया था और आनन्द विभोर हो कर प्रेमावेश की मधुमयी रसदशा मे इन पदो का निर्माण किया था। अस्तु

सावन आयो मन भावन को गरलावन माहि दीजै।
पावस पाये प्रान पियारे प्यार अधिक सुख कीजै।
कृपा निवास श्री राम रसिक को अधरामृत रस पीजै॥

जनकपुर तीज सुहावन आई।
झूलत साजि सवारि सखा जन पाद्य मनोज बनाई॥
पावस मेघ झरै रसवारी झिमरिम झिमरिम झरलाई।
अरुन बसन तन लपट सुहाये उपमा समन बिहाई॥
चहु दिस पुज पुज बनि नागर रग रग छबि छाई।
जनु छवि अकुर प्रगट धरनि ते लतन वितान तनाई॥
उमग झुलावत मगल गावत राग मलार जमाई।
त्रिविधि पवन की बहन अलिन की गुज समुज सुहाई॥
विविधि सधार बढत साथनी वेसम सग सहाई।
रीझत जापर जनक लाडली निज कर देत बुलाई॥

लहरै ललित लेत वै सघनि हास विनोद उम्हाई।
समै सुहावनि सावन तरुन ते हरित भूमि बिगसाई॥

सिया वल्लभ लाल झूलत हो जहा रामराम सीता लाल।
लाल कचन खभ सुदर ललित डाडीलाल।
लाल भूषन अग झलकत लसत चीर सुलाल।
लाल दोउ के बदन सोभा अधर वीरी लाल।
लाल सखिया लाल गावत गावति सब झुलावति लाल।
मोर हस चकोर कोयल भनत बानी लाल॥
लाल रीझत लाल ऊपर परस्पर सब लाल।
कृपा निवास सुलाल जो निरख नैन निहाल॥

ए दोउ झूलै रग हिडोरै।
दशरथ सुत अरु जनक नन्दनी चितवन मै चितचोरै॥
नान्ही नान्ही बूद पवन पुरवाईये सब थोरे थोरै।
हरी भरी भूमि घटा झुकि आई सरयू लेत हिलोरै॥
बानी विमल सखी सब गावै अपने अपने ठोरै।
नागरि नाम लिवावत पिय को हसत सिया मुख मोरै॥
हय दल गय दल रथ दल पैदल कोट बन्यो चहु ओरै।
उपबन माझ बिहगम बोले कोयल मोर चकोरै॥
बाजे बजन लगे चहु दिस सो मनो सघन घन घोरै।
निरतत नटी नटी लघु मोहन ताता थेई तान जो तोरै॥

हिडोरै झूलत सिया जू प्यारे।
परम मनोहर खभ कनके मानौ मदन सवारे॥
रतन जटित सुभ डाढी सुदरि छबि पटली मनि हारे।
तापै राजत राम जानकी लेत मधुर सुहुलारे॥
चितवन दोउ चित चार परस्पर आनद रस बिसतारे।
समै सुहावन सोभा परमित कोटि मैन रतिवारे॥
'रूपलता' सखि गहै झूलनो निरखन सुमति बिसारे।
कबहुकि चेतन होय झुलावत रस छाकी मतवारे॥
वर्षत वारिध लगत सुहावन छूटत प्रीत फुहारे।
भीजत जे बड भाग्य सराहत प्यारी चर्न अधारे॥
जो सुख उमग्यो का कहि बरनौ चिनमय केलि बिहारे।
कृपानिवास विलास विलोकत लोचन परम सुखारे॥

नवल पिय प्यारी जू रहस झुलावै।
सुरनि सिघासन नेह नवल दोउ खभ खरी छबि पावै॥
अग अनग उमग झोट रस रमत विनोद उपावै।
मदन मनोरथ घटा छई झरिचाह चपल वर्षावै॥
सकुनालकृत तलप मुखर बर दादुर समै जनावै।
कृपानिवास प्रसाद उपासिक देखि नैन लडावै॥

कीनै बसन मधि लसत दुनि कल कनक मर्कत मणि सनी।
जनु जोनि रजनी मिली सजनी सरद बादर चादनी॥
श्री राम बाम सु अग मिलकै सुभग साभा यो लसी।
जनु काम पावस श्याम घन मे तडित चचल रस बसी॥

सुभ पुलन पावनि सरित बर जहा झमि सावर झर झरै।
जनु भूमि इन्द्र सुफाग खेलन पियावर पर रग भरै॥
नव जूथ जथ निजु बनिजन चहु ओर लरुन लडावही।
जनु भक्ति भगवत की सुकीरत वेद श्रुति सब गावही॥

झुकि झपटि झोरे देत सखिया झमकि झाई जल लसै।
जनु मदन रति सर केलि अवस चपल कौति कर सरसै॥
दुम सघन वन फूले सुमन जहा सकुन मगल धुनि करै।
जन निगम छद अमद बानी दृयस उच्चरै॥

लै तान नवल सुजान कबहौ प्रान प्रमदा बारही।
सुम जानि निज कृति जानकी वर रूप दृगनि निहारही॥
यह झूलनौ सुखरास परम बिलास पावसि रितु कहचौ।
फूलि आस कृपा निवास की नित चरन पकज लगि रहचौ॥

झलावत राम रसिक पटरानी।
नेह नाह को निरख नागरी नैन मे मुस्क्यानी॥
कर गहि डारि चकी दृगन की चितवनि चन्द लुभानी।
कृपानिवास विलास मगन प्यारी प्रीतम के हित द्रानी॥

मिल झूलत सीया राम दोउ रसरग हिडोरे आजु भलै।
अरुन बसनतन भूषन झलकति सुमन सहित मनहार गलै॥
चतुर सिखावति नाम सिया लै स्याम आवै मुद लाज टलै।
मुख मोर हसै पिय ओर लखै पट घूघट मे दृग ओर चलै॥

स्याम गौर र ग एक भयो मनो प्रेम सिधु छबि गग लै।
यो केल परम सुख छाय रह्यो नव कज नवल रस नेह डलै॥
यक प्रीत बादरी गरज उठी झर ज्यौर बन्यो अलि प्रान थलै॥
सखिया कल कोकिल मोर मनो रम गान सुने रति राज छलै॥
चहु ओर समाज विराज रह्यौ मनो मोद वाग सुख फूल फलै।
अति नेह हुलास बिलास बढ्यौ लखि कृपानिवास के नैन खुलै॥

सिया रवन हिडोरै झूलै पिय जू के सग।
प्यारो नेह जनावू कर डोरि झुलावै गावत प्यारी गुन परम उमग॥
कोई मरस हिलोरो पिया करत निहोरो मन रावरे हाथ तनत रत तरग।
प्रिया रीझ भीज दग मैन दई अलि चतुर सभारि मिलाये अग॥
रस केलि रले सखि नैन पले देखि लुभाने अमित अनग।
रस प्रीत डरी सुख यह भारी कृपानिवास हुलास अभग॥

सिया रहसि हिडोरनै आज झूलै छ।
दाउ गरबाही महलन छाही छबि रग अगद फूलै छै॥
सुरति झाटलाल गैहै सुहावनि मनरा फेलन भूलै छै।
कृपानिवास सिया पिय सोभा देखि सखी जन फूलै छै॥

आज रस भीने प्यारे झूलत डोल।
कर सो कर दृग सो दृग सब से हस हस बोलै दोउ रस भरे बोल॥
फाग मेस अनुराग उघारत मुघर सुघट पट उट पट खोल।
कृपानिवासी हली मन दीन्हो जानकी बर कर थिर नित ओल॥

इन नई रीति निहारि बाढ्यौ अलिन उर आनन्द।
दृग कज प्रफुलित लाल के निरखत सिया॥
मुख चन्द प्यारी बदन जलजात छबि मकरद अलि पिय नैन।
रसपान करत न टरत छिन छाये छके दिन रैन॥

हिय हार उरझे दुहुन के त्यौ अली झोका देत॥
सुरझै न झोकति झपटि लपटी नवल पिय रस लेत॥
लखि श्रमित सम झूलन पिया प्यारी लई भरि अक।
लै गोद पिय झूलन लगे लखि छके वदन मयक॥

सनमुख मरस झूलन लगे अति झमक झोटा देत।
प्यारी पिया उर कठ लिपटी अली सो रस लेत॥

इक अली युगपट ग्रन्थ दै शिर मौर मौरी धराय।
वे ब्याहता बन लगी ललना मोद हिय सरसाय।।

आदोल केलि निकुज यहि बिधि झूले सिय रघुलाल।
पुनि चित्र बन मन मुदित गमने रूप निधि सुखजाल।।
कोटिन अलीगण सग शोभित रूप गुण की मूरि।
जिनको निरखि रति लाजत अपर उपमा कूरि।।

हिडोरै झूलत सिय ठकुरानी।
श्रुत कीरत उर्मिला माडवी रूप शील गुन खानी।।
मचौ हिडोला नाम लिवावति चतुर सखी मुसकानी।
सिय जू सकुच रही नहि बोली अग्रअली मनमानी।।

सिय झूलत हिडोरै पिय सग बनी।
सरजू तीर सोम बट छाही सग सखी नव नेह सनी।।
पहिरे बसन सुरग सुगधी भूषन जडित सुरग मनी।
गावत ताल रगीली तानन रस मालिन बलहारी मनी।।

झूलत सिय पिय आज हिडोरै।
घन गरजत बिजली अत चमकत बरसत रिमझिम बोलत मोरै।।
ज्यो ज्यो प्रीतम रमक बढावन सिय डरपत पकरत पट छोरै।
रसमालिन बिमलादि सखी सब नाचत थेइ थेइ तानन तोरै।

हिडोरै झूलत सिय प्यारी।।
सरजू तीर हिडोल कुज बिच सुरतरु को डारी।।
प्रीतम रमक बढावत गावत करि अलाप चारी।
डरपत लली दसन रस लागहि हसत सखी सारी।।
बैठी पिय भरि अकलीन सिय बडे प्रमोद भारी।
रसमालिन यह रस बिनोद लखि रति पति बलहारी।।

हिडोरै झूलत जुगल किशोर।
श्याम गौर मन हरन ललन दोउ अग अग अति चितचोर।।
भूषन बसन सरस रस छबि लख उमगत जोबन जोर।
चरबत पान परस्पर दोऊ निरखत दृग की कोर।।
हस हसि अली मदित मन गावै झोका दे दुहु ओर।
रसमालिन छबि निरख दुहुन की वारिय काम करोर।।

हिंडोरे झूलत भर अनुराग।
सिय जू के भीजे सुरग चूनरी सुभगराम सिर पाग॥
गावत राग मलार परस्पर छबि छहरत बनबाग।
विश्वनाथ मुख निरखत हरखत सरसत सरस सुहाग॥

धीरे धीरे झूलो लाल सिया सुकुमारी।
रूप रसीली रस मय मूरति सखियन प्रान अधारी॥
चन्द बदन मृग सावक नैनी दसन अधर अरुनारी।
कपति तन श्रम विन्दु विराजत सरजू सखी बलिहारी॥
रग महल मध्य पिया प्यारी दोऊ झूलै चहुँदिस सखि ठाडी गावत मलार।
विद्रुम पटली राजै दामिनि की छबि लाजै श्याम अग घटा मे रस की फुहारै॥
उडत बसन सिरकेस छूट रहे ललित कपोलहि परहि न सम्हारै।
सरजू स आजु स्वामिनी सुरग भरि नैन बिलोक सखी तन मन वारै॥

प्यारी सग झूलत पीतम प्यारो।
मृदु मुसक्यावत मोद बढावत नव जोबन मतवारो॥
रिमि झिमि रिम झिम मेहा बरसत गरजत बादर कारो।
सरजू सदी सिय पिय छवि निरखत जीवन प्रान हमारो॥

झूलत सिया राजिव नैन।
रतन जडित हिडोरना सखि राम सुत्र के अैन॥
स्याम अग पर गौर झलकत दामनी घन गैन।
मैथिली रघुवीर सोभा निरख लाजत मैन॥

नाम पियकौ लेहु नारि ज्यो सखिन मन चैन।
श्री जानकी नहि लेत मुख तै देत लोचन गैन॥
श्री जानकी नहि लेत मुख तै देत लोचन सैन॥
परस्पर झूलत झुलावत वदन मधुरे बैन।
अवधि पुर निज केलि दम्पति अग्र आनन दैन॥

झूलत राम राजिव नैन।
जनकजा सन मुख बिराजै तडित ज्यो घन गैन॥
हृदे झूलत मनहि फूलत रसहि पोखत मैन।
लाल के उर लागि राजित निरख रेखा अैन॥
परसपर अनुराग दोऊ बदत मधुरे बैन।
जालर घन निरख बनिता अग्र उर सुख दैन॥

सियाराम पचीसी

मदारी लाल वैश्य (सहादतगज, पुराना चौतरा लखनऊ) द्वारा किए हुए इस सग्रह को सेठ छोटे लाल लक्ष्मीचन्द (बम्बई वाले) ने रामा प्रिंटिग प्रेस (फैजाबाद) से अक्टूबर सन् १९०६ ई० मे मुद्रित करा कर प्रकाशित किया। इसमे 'सिया सोने की अगूठी', 'राम सावरो (नीलम) नगीना है।' इसी भोग पर पच्चीस कवित्त-सवैये है जो बडे ही मनमोहक और गेय है। प्रतीत होता है, इस समस्या की पूर्ति स्वय श्री मदारी लाल ने की है और एक ही प्रसग पर ये पच्चीस कवित्त-सवैये बडे ही प्यारे लगते है। भाषा साफ सुथरी प्रवाहमयी ओर प्रभावोत्पादिनी है। स्वरूप का ध्यान मन को बरबस आकृष्ट कर लेता है।

उदाहरण—

इतै मृग अक मुख उतै मृगराज लक,
इतै गजराज गति उतै मद मीना है।
तै नैन खजनीन उतै खजनीत,
इतै उतै खजनीन हीना है॥
इतै प्रेम पूरन है उतै प्रेम पूरन है,
इतै उतै दोऊ लखि मेघा गति दीना है॥
लषन गगन बानी गिरा देखि गिरै सिया,
सोने को अगूठी राम नीलम नगीना है॥

नैना अनियारे मृग खञ्जन से न्यारे,
देव शोभा के पिटारे सुठि मानो जग मीना है।
कम्बु सो ग्रीव दत दाडिम लजाने,
नासिका सी कीर शब्द कोकिला प्रवीना है।
हरिहू सकाने कटि पेख भुजदण्ड मानो,
माधो बखाने मेष करिवर को छीना है।
मेरे मन आली सुन आपहू बिचारि सिया,
सोने की अगूठी राम सावरो नगीना है॥

ऐरी सुन आली आज देखे है कुवर द्वै,
आये फूल लेन तहा दरस आज कीना है।
आई जा घरी से सुधि भूलत ना एको छिन,
कैसे करू वीर मेरो चित्त चोरि लीना है॥
बाणी सकुचानी आली किमि कहै रूप,
गानी को छानी हुलगानी ज्यो बारि बीच मीना है।

मदित मदारी कहै उपमा सब वारू सिया,
सोने की अगूठी राम नीलम नगीना है।।
कज से नयन रभा तरु से बिशाल जघ,
नाल से उताल भुज दड लव लीना है।।
शुक्र तुड नासिका मरालन की गति छीना,
कोकिला की बाणी भई बाणी पर छीना है।।
केहरि सो कटि वृप कध सो सुभग,
कध काम फर फद मृग द्रग धृग दीना है।।
कहै रामलाल जोडी रुचि रुचि बनी सिया,
सोने की अगूठी राम नीलम नगीना है।।

भजन, रसमाल

श्री वेकटेश्वर प्रेस मे छपा श्री हरिचरणदास जी के ग्रथ मे सीताराम के शृगार विहार एव विविध लीलाओ के पद साधना और साहित्य दोनो ही दृष्टियो से महत्वपूर्ण है। श्री हरिचरण दासजी ने ग्रथ के अन्त मे अपना परिचय दिया है—

राज्य है मझवली जग जाहिर सुखली तपा।
मौजे पैकवली पवहारी जी को धाम है।।
श्री स्वामी सीता आदि रामदास महराज।
जिन्ह के निशिवासर सियाराम ही सो काम है।।
तिनके लघु शिष्य हरिचरणदास पास नित।
कसबे गोपालपुर जीले सरनाम है।।
रानी हरियालि जी के मदिर महथ एह।
'भजन रस माल' कहि लही सुख आज है।।

सवत १९४७ के भाद्रपद कृष्ण १० रविवार को श्री हरिचरणदास जी ने यह ग्रथ पूरा किया—

सवत् मुनि[७] श्रुति[४] अक[९] शशि[१],
कृष्ण भाद्रपद मास,
तिथि दिग[१०] रवि दिन रोहिणी,
किए चरण हरिदास।।

इसमे झूलन विवाह, सरयूतट विहार, होली, वाटिका विहार, जलविहार, कनक भवन-विहार के गेय पदो का खासा अच्छा सग्रह एक साथ मिल जाता है। सभी पदो पर राग-रागिनियो मे नाम दिये हुए है।

झूलत झूलन अवध रगीले।
पहिरे हरित वसन वर भूषण क्रीट मुकुट झमकीले।
कहि न सकत छवि शेष गणेशहु शारद की मति हीले॥
अति सुख साजि झुलावति सिय सखि सोभित तन पट नीले।
जन हरिचरण युगल जोरी यह मोरे हिय मो वसीले॥

देखु छवि झुलन की सखी त्रिण तोरि के।
श्याम तन राम घन सुभग दामिनि सिया झुलत दोउ सरजु तट हँसत मुख मोरि के।
मजु मणिखभ सु विचित्र पटु ली जडित हरित वपु वसन नग लेन चित चोरि के।
देत अति झोक नहि रुकत पीतम प्रिया कहत हरिचरण मोहि चितव दृग कोरि के॥

राम सिया के झुलावे सखि झुलना।
कटि अतलस के लहगा पहिरे सारी सुरग रग तुलना।
हलकत हार हुमेल तिलरिया सिर सेदुर कर फुलना॥
कजरी गावै तान सुनावै श्री सरजू जिके कुलना।
जन हरि चरण रहस सावन के निसिदिन छवि एह भुलना॥

झूलत सिया सग प्राण पियारे।
रवि शत कोटि कोट दुति निरखत वदन मयक शरद छवि हारे।
कुडल झलक अलक लटकन वर अलि अवली जनु करत जो हारे॥
भाल विशाल तिलक गोरोचन नेन मऊ सरमिज रतनारे।
नासा मणि सोभित अधरन पर गले बैजती माल सँवारे॥
कटि किंकिनि पटपीत मनोहर कर कमलन धनु सायक धारे॥
मद हसनि रति मार विमोहनि चितवनि चोरित हृदय हमारे॥
सावन घन घमड चहुदिसि ने गरजत मेघ घटा अतिकारे।
जन हरिचरण झुलन झाँकी पर तन मन धन सखिया सब वारे॥

आजु सियावर झूलन झूले।
सावन अधिक सुहावन पावन छवि छावन सरि कूले॥
बकुल कदब तमाल देवतरु वन प्रमोद सब फूले।
कोकिल नाद गान सहचरि को सुनि धुनि सुनि मन भूले॥
लालन साथ सखा सब बनि ठनि सिया सखी सम तूले।

आज राम ब्याह सुनि पुर नभ जै जैति धुनि साजि के विमान देव देखवे को आयो।
मणिन मै वितार रच्यौ हरित वेणु पत्र खच्यो मानिक तह खम्ह सच्योअद्भुत छबि छायो॥
बैठे चारो कुमार कुल गुर दोउ श्रुति उचार रीति सहित दान मान गुनि जन गुन गायो।
मागे रुचि जाहि जोइ दीन्हो नृप ताहि सोइ लीन्हे कर चवर हरीचरण शरण पायो॥

राघो जी के उनीदे नैना।
लट पट पाग अलक मुख विथुरे बोलत कल बल बैना।
मोतिन भाल गले बिच हलकै झलकै छबि दिन रैना॥
ठुमुकि ठुमुकि पगु धरत धरनि पर गति लखि लाजत मैना।
जन हरिचरण कमल मुख धोवत सो सुख शेष कहै ना॥

मोरे मन मे बसो नृप लाल लली।
इत रघुनाथ स्याम सरसीरुह उत सीता चपा कि कली॥
सोभित सखा सहित रघुनदन उत राजति सिया सग अली।
क्रीट मुकुट कुडल श्रुनि सोहे सिया कि चन्द्रिका विदु भली॥

सरद सोहाई निहारा निशि नीका।
केदली मडप मध्य सिंहासन लषत भानु छाबे फीको।
तेहि रजनी अवधेश कुवर वर सोभित सग लिए सीको॥
सुरभी छीर विलोकि विमल विधु वरषत पोस अमी को।
जन हरिचरण निरखि जोरी युग हरखि मोद अति जीको॥

आलि री आज चलो श्री अवध नगर नृप कुवर खेलै जह फाग।
पहिरे वसन वसती जामा पटुकन मोती लाग॥
कर पिचकारी निहारि नैन भरि सुफल करौ निज भाग॥
मणिमय मुकुट मनोहर माथे गाछे पाख सुकाग।
केशर खोर भाल श्रुति कुडल लखत मदन तन जाग॥
गुनि होरी गोरी सब बनि ठनि चलि अग साजि सुहाग।
जन हरिचरण फाग सरजू तट निरखत अति अनुराग॥

नचाये हरि फाग नृप खोरी।
सग सखा रिपु वदन भरत अरु लखन रग झोरी।
पकडि अली मिथिलेश लली के मोतिन लर तोरी॥
एह सुनि सिद्धि कुवरि सखि सुदरि प्रभु पटुका छोरी।
जन हरिचरण दोउ दल रसवस लखत जुगल जोरी॥

देखि के सुन्दर स्याम धाम नृप दशरथ को कोटि शतकाम मद सोभा को सटको।
क्रीट मुकुट कुडल वनमाल हार मुकुटन को किंकिनी ललाम दाम नुपूर पग लटको।
ऐसो निकाई हरिचरण हिय छाई आज मुख की लुनाई शशि कोटि छबि छटको।
धाई पुरनारी कुल रीति को बिसारी वारी प्यारी पियनि रखत जग दुटे लाज फटको॥

रामप्रिया-विलास

भाव की रसमग्नता एव सम्बन्ध की अनन्यता का सुदर मधुर निदर्शन। राग रागिनियो पर ध्यान विशेष है और लक्ष्य है गेयता। परन्तु कुछ पद बडे ही सजीले और प्रभावपूर्ण है। भाषा टकसाली है, प्रवाहमयी।

राघो प्यारे आज खेले होरी किशोरी सग।
कुकुम अगर कपूर अरगजा मृगमद कीच मचोरी अबिरा की धूर-उडावत गावत धूम मची चहु ओरी॥
प्यारो परम प्रवीण प्यार सो पकरि मली मुख रारी मानहु जलद अक गहि दामिनि लरि शशिमो रग वृष्टि करोरी।
राम प्रिया दोउ निरखि परस्पर हसि झिझके मुख मोरी जनु खजन जुरि जुरत परस्पर बिज्जु छटा लखि भाजि चलो री॥

बिजन गोलैहौं पुष्प मालिनि मनैहो,
वस्त्र भूषण पन्हैहो नीकी पलक बिछैहो मैं।
बीरिहू लगैहो पग पकज दबैहो,
चारु चामर चलैहो दासी रावरी कहै हो मैं॥
अनत न जैहो न तु दीनता सुनैहो निज रामप्रिया
सीस काहू और पैन नैहो मैं।
राजन के राज महाराज राघवेन्द्र राम
आपकी कहाय अबकाहू की न ह्वै हौ मैं॥

मैं दरश लोभानी कोऊ जतन बतावै कोय।
इश्क दशा कोऊ आशिक जानै जो रग रातो होय॥
अलख अगोचर सेज पिया की क्योकर मिलना होय।
रामप्रिया को रघुकुल भूषन राह देखैया होय॥

भक्त-प्रमोदिनी

अयोध्या-निवासी प० रामलोटन मिश्र रचित 'भक्त प्रमोदिनी' परम प्रेमाभक्ति के रस म पगे पदो का सग्रह है। आफताब प्रिंटिंग प्रेस (फैजाबाद) से १९२२ ई० मे छपा।

दृगन बिच बसि गयो राज कुमार।
जिया मानत नाही ए तरिसि रहे दोऊ नैन दरस बिना कैसो करो दसरथ के लाल वै
तो रघुबन्शी दिलदार।।
अलक झलक घूघुर वाले चिकनारे कारे दृग रतनारे प्यारे कोटि काम वारी डोरो
लौटन के जीवन अधारे सुकुमारे बारे सन्तन प्राण अधार।।

प्रभू मै बटिया जोहो तोर। अब रही आश एक तोर।
लागे अषाढ मेघ नभ छाये पिया मोर नही हाल पठाए।
पपिहा पिउ पिउ शोर मचाए कृपा करो दशरथ के छोर सावन मे सखि झूले हिडोला,
गावत गीत प्रेम रस बोरा सुनि सुनि देत बिरह झकझोरा रघुपति हरी बिपत्ति सब
मोर।

भादो मास रैन अधियारी गरजत घन बरसत अति बारी।
कोउ न सुने यह बिथा हमारी देखो दयानिधि अपनी ओर।।
लागे कुआर शरद ऋतु आई चले पथिक सुन्दर मग पाई।
ऐहै कब पिया गले लपटाई लोटन कहत दोउ कर जोर।।

रहब कैसे नगरी तोरी रे सावलिया।
दोहा प्रीति करी सुख लहन को इत उत दोउ बन जाय।
निठुराई प्रभु मत करो दीनी सुरत भुलाय।।
लगब केहि कगरी।

करम कुटिल की फेर पडी, चलत न कोई उपाय।
तुंम चाहो पल मे बनै झषबो सब मिट जाय।
हीय भाग अगर हारे मै सेवक तुम स्वामी हो सुनिये कोशल राज।
अब तो निबाहै बनेगी।
बाह गहे की लाज।
फिकिर मेरी सगरी तोरि रे सवलिया।
अवध नगर सरयू नदी सतन को दरबार।
सिय राम तहा बसत नित लौटन के रखवार।
अवध की डगरी बपब सावलिया।।

सीताराम-नखशिख-वर्णन

प्रेमसखी-कृत

सीता और राम के नख-शिख का यह वर्णन विशुद्ध साहित्यिक दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। शब्दो मे चित्र खीचने की कला मे प्रेम सखी को अपूर्व सफलता मिली है। लीला विनोद का अन्तिम अश, जहा सखियो ने राम को लँहगा चोली पहना कर स्त्री-वेश मे सजाया है और सीता जी के पास गौने मे आई नई बहू के रूप मे प्रस्तुत किया है वह दृश्य दर्शनीय है। कुल मिला कर इस [illegible], रस की दृष्टि से, परम सग्रहणीय एव आदरणीय माना जायेगा।

कैधौ पारिजात के सुमन की ये पाखुरी है जावक सजोग अनुराग रस भीनी है।
जग चतुराई की कुसलताई पाई तब सुखमा समूह को विभाग विधि कीन्ही है॥
पति को अतन जानि रति कज ढिग आनि पच बान बानन की गासी धरि दीन्ही है।
विधि हर मेरे दम भालन की भाग थली प्रेम सखी सिया पद आगुरी नवीनी है॥

है युग खम्भ ए कचन के पलना पग झूलन आए सिगार है।
प्रेम सखी मन डोरी तनी गति हमन की सी झुलावत मार है॥
गावती गीत अली बिछिया रघुनन्दन नेह नचावत हार है।
पीन सुढार बनी चिकनी ये विराजत जानुकि जानु उदार है॥

नीलम नीली कमी समी है मध्य कचन के तन जाति केधौ सिगार पानि साजी है।
आई स्याम ताई की निकाई सब सिमिटि कै जाहि देखि देखि रोम रोम पिय राजी है॥
झीनि दरसात है विशाल छबि सरसात रूप सुधासर मे सेवार सी विराजी है।
प्रेम सखी मेरी जान सुखमा समूह राजी गुन गन राजी धौ सिया की रोम राजी है॥

प्रेम सखी सुखमा सरत उमडी छबि चारु तरग भली है।
प्रेम प्रभा ह्वै त्रिधा दरसै जिन पै परि डीठि हलीन चली है॥
देखे व नैनहि जात कही पिय के चित की विश्राम थली है।
धारे मनोहर रूप अली परमादिकि धौ सिय की त्रिवली है॥

बोरी रग नील है किशोरी जू के गोरे गात छवि सरसात देखि कचुकी सुहाई है।
नगन जटित बूटी चारु जर तारिन की असित निसा मे ज्यो नखत छवि छाई है॥
रुचिर बनी है नेह सो धेन मनी है जामे सुखमा घनी है प्रेम सखी मन भाई है।
उरज नवीन तरु चारी है विहारी दृग मृग फादिवे को प्यारी जारी सी लगाई है॥

प्रेम बसुधा से सिय अधर सुधा से बैन ललित सुधा से प्रिय अधिक सुधा से है॥
सहज हसो है अनखो है न कदापि होत बिबा से अरुन है कमल मोद बासे है।
माधुरी अनूप जाने प्रीतम के मन नैन रहत निरतन जो पियत पिया से है।
देखि देखि प्रेम सखी वारने करत प्रान जनम अनेक के अखिल अघ नासे है॥

नैन अनिआरे तारे पुडरीक पान सारे सिय पूतरीन पै द्विरेफ गनवारे है।
कछु कजरारे सील सागर सुधा सुधारे वरुनी विशाल धारे जोर छोर वारे है॥
दीन पै सनेह वारे प्रीतम के प्रान प्यारे उपमा न पावत विरचि रचि हारे है।
मीन मृग खजन बनाए विधि प्रेम सखी वारि वन व्योम बसै लज्जित विचारे है॥

वा अनियारी विलोकनि की छबि गाइबे को विधि की बुधिहीन है।
प्रेम सखी मिथिलेश सुता की कटाक्ष के कोर भए गुन तीन है॥
मीचु समान दशानन की सुर धेनु समानि सु पालत दीन है।
रूप सुधा की तरंगिनी सो निशिद्योस जहा हरि को मन मीन है॥

अमल कपोल पर तिरे सो बदाने कोन देखै वनि आवत तरौनन समेत है।
ढके नील सारी सो किनारी जरतारी कोर अलकै वलित ह्वै अधिक छबि देत है॥
तरनि तनूजा बिधु व्याल लघु लागे मोहि उपमा न दीन्ही प्रेम सखी एहि हेत है।
एई बड भागी जाहि सिय छवि प्रिय लागी परम अभागी जे अनत चित देत है॥

मेचक सघन सुकुमार हे सेवार हे ने सिया जू के सीस के विराज विसाल वार।
मोर पखवार तमधार मरकत तार पन्नग कुमार रचे कोटि कोटि करतार।
उपमा के हेत प्रेम सखी बुधिवान प्रभु करत रहत नित नए नए उपचार।
मोर पच्छ डारे त्वच पन्नग नवीन धारे मन मे न आवै तौ बनावै विधि बार बार॥

झीनी हू ते झीनी है नबीनी नित नित होत नील रग सारी प्यारी सुधा सो सुधारी है।
सब सुखकारी जापै मेघ माला वारि डारी दामिनी भी चहुवा किनारी जरतारी है॥
भागन की भाग ऐसी सुखमा सोहाग ऐसी सिया जू कृपा कै जाहि निज तन धारी है।
उपमा न आवै तो बतावै कैसी प्रेम सखी देखि देखि होत बार बार बलिहारी है॥

राजिव नैन के नैनन की छबि जानत नैन बिलोकि भये धनि।
तैसे बिसाल बडी वरुनी दृग सुदरता सखि आई सबै बनि॥
प्रेम सखी जिनकी सुखमा जुग कोटि लो शेश न आपु सकै गनि।
मीन मृगा अरु खजन वापु रे दै उपमा बदनाम करौ जनि॥

नामी की निकाई जाति कौन पह गाई जातै उपजै विरचि जो पसारे जग जाल है।
रूप सुधा वापि सी विराजत गभीर धीर रोमन की राजी जापै सूक्ष्म से बाल है॥
त्रिबली निसेनी सी अधिक सुख देनी श्रेनी हसन की आवत विचित्र मनी माल है।
प्रेम सखी मेरी जान सुदृढ बनायो यह पादप सिगार को ललित आल बाल है॥

जघा जानु युगुल विलोकि रघुवीर जू की उपमा को विरचि विरचि पछितात है।
कदली के खम्भ जे बनाए बहुतेरे ते तौ मानि लघु आपुको कम्पत पात पात है॥

मत्त गजराजन के कीन्हे सुडा दड फेर वापुरे लजाय कै निकारि दए दात है।
विधि सो न आवै तौ बताबै कैसे प्रेम सखी इनकी समान मोहि एई दरसात है॥

प्रेम सखी तरु सबै फूलन के भारन सो लता बेली अरुझानी भूमि झुकि आई है।
विविधि बहत वात सीतल सुगन्ध मन्द कुहू कुहू बोलै कारी कोकिला सुहाई है॥
अलिनी अलिन सग नलिनी निकुजनि मे मत्त मधुपान फिरै दशौ दिशा धाई है।
जनक सुता के अश भुज दीन्हे रघुनाथ तिन बन बीथिन मे रमत सदाई है॥
गोरे श्याम अग रति कोटिन अनग सग जाकी छवि देखि होत लज्जित बिचारे हैं।
चद कैसो भाग भाग भृकुटी कमान ऐसी नासिका सुहाई नैन जोर छोर वारे है॥
ओठ अरुणारे तेसे कुद से दमन प्यारे ललित कपोलन पै कच घुघुगरे है।
अश भुज धारे दोऊ नील पीत पट धारे प्रेम सखी राम सिया जीवन हमारे हैं॥

कचन की गुजरी विछिया तुम को लहगो अगिया पहिराइ हौ।
कचुकी माजु खवाइ विरी पहिराय चुरी अवतस बनाइहौ॥
माग सवारि कै प्रेम सखी शिर मेदुर दै फिर अक लगाइहौ।
दै तिय को छबि सुन्दर जू हम लाडिली जू के अजूरि नचाइ हौ॥

जावक लगायो जल जात ऐसे पायन मे बिछिया कलित ह्वै अधिक छबि छाई है।
घूमि रह्यो घेर वारो लहगो सबज रग नील जरतारी सारी कचुकी सुहाई है॥
प्रेम सखी अग अग भूषण विविध साजि वहू वहू कहत वधूटी गहि ल्याई है।
सुभगा सखी सिया जू के तुरत हजूरि कियो नवल बधूटी एक सासुरे ते आई है॥

फूल-बगला

श्रीमोदलताजी

श्री मोदलता जी द्वारा सपादित यह छोटा सा ग्रथ 'फूल बगला' भगवान राम और भगवती जानकी के फूल शृगार एव युगल विलास के पदो का एक सग्रह है। इस सग्रह मे सब प्रकार की सरस रचनाएँ है।

सजि सुमन शृगार, दोऊ मोहै भरे प्यार, छाई शोभा की बहार फुलबगला मे।
दोउ गर भुज डोर, हेरै दृग पट डारप्रेमी-जन-बलिहारि-फुलबगला मे॥
मन्द मुसकै निहार करै हिया आरस परस-रस वर्षो अपार फुलबगला मे।
झाकी बाकी मजेदार, गावे गुणी यत्र धार होत सुमन न्योछार फुलबगला में।
धन्य स्वामिनी हमार-धन्य राघो सरकार मोद नाचे जय जयकार फुलबगला में।

रगे मोरे नयना युगल शोभा।
श्याम गौर मिलि अनुपम झाकी मनहु मेघ सग तडित दुरैना।
अरस-परस गलबाही दीन्हे लसत मनोहर मृदु सुमकैना॥
श्रीट चन्द्रिका नासा मणि नथ डोलत कुडल कर्ण फुलैना।
'मजुलना' नख-शिख स्वामिक देखत भाव वखान बनैना॥

बिन देखे नयनवा न माने हो।
जब से लखी दृग माधुरी मूरति रूप सुधा रस चसकाने हो।
मुख सरोज मकरन्द पान करि जन मधुकर मन मस्ताने हो॥
जिमि शशि ओर चकोर विलोकत रूप सुधा रस चसकाने हो।
अहह सुजान राम प्रिय तुम बिनु कौन मौन मन की जाने हो॥

नैनन की बलिहारी हो श्री प्रिया जी।
भाव भरे रस भर है मनोहर मुद-प्रद अवध-विहारी हो॥
चितवनि चपल चतुर चित चोरत, मुरनि-ढुरनि अति प्यारी हो।
अजन विनही मोहावन वावनि, वर्षा वन सुखवारी हो॥
पगे प्रेम प्रीतम सुजान नित, नवल रसिक विहारी हो।
हेमलता उपमान वारि सब, अनमिष रही निहारी हो॥

ये दोऊ चन्द बसो उर मेरो।
दसरथ सुत श्री जनक नन्दिनी अरुण कमल कर कमलन फेरो॥
बैठे कनक सिहासन ऊपर, आस पास ललना गण घेरो।
ललित भुजा दिये अस परस्पर, झुकि रही केस कपालन नेरो॥
चन्द्रावति सिर चौर डुलावति, चन्द्रकाल तन हसि हसि हेरो।
राम सखे छवि कहि न पडत जब, [illegible]

श्याम अग बसन सुरग सोहै सग वधु नाचत तुरग चाल चलत चलाकी है।
ककन करन रस रग मणी माल उर भाल मे तिलक मजु मौर शिर ढाकी है॥
चन्दन मुख मन्द मन्द हसनि आनन्द भरी नैन अरबिन्द छबि फन्द मनसा की है।
झाकी जेहि झाकी यह बाकी रही ताकी कह राम दुलहा की वर बाकी बनी झाकी है॥

बाणिद बरन बपु बिज्जु सो बसन बन्यो बाण बाणा सन वत बाहु वीरता की है।
बिबिध बिभूषन बिशाल बनमाल बनी बाम मे बिराजती त्यो बेटी बसुधा की है॥
बिधु सो बदन वर बारिज बिलोचन है बिहसनि बडी बाधा बिदरनि बाकी है।
बसै रस रग के बनज बुधि बोध बीच विश्व बीर राम की बिमल बाकी झाकी है॥

सीता तडिता के तन बसन समान घन
घनश्याम तन पट द्युति तडिता की है।
मानो कल नील कज शील पुज सिया,
नैन लाल कजहू ते मजु आखे रसिया की है।
पैखे रस रग मणी शोभा दोऊ दोहुन की,
मद मुसक्यात मोद प्रीति मति छाकी है।
तीनौ लोक झाकी बुधि कतहू न झाकी
अस राघव सिया की जस बाकी बर झाकी है॥

जुगल किशोर गौर श्यामल सनेह सने,
ललित सुबाहु कल कठन कसे रहै।
केलि के उछाह छबि छाके दोऊ दोहुन के
लूटत आनन्द लीला लोभित लसे रहे॥
फेरत बिलोचन बिलोल त्यो बिनोद
माते रात रस रग मणि हेरत हसे रहे।
आनद के कद दोऊ चद रघुनद सिय
सरस हमारे हिया कमल बसे रहे॥

सीताराम संयोग पदावली

परमभक्त श्री बैजनाथ कुरमी

श्री बैजनाथ जी रामावत-सम्प्रदाय मे एक परम प्रवीण भक्त माने जाते है। इन्होने राम चरित मानस की टिप्पणी लिखी तथा गोस्वामी तुलसी दास जी के समस्त ग्रथो का भावार्थ लिखा ये स्वय मानस के एक सफल कथावाचक थे। सीताराम सयोग पदावली की प्रति पीले रफ कागज पर लीथो मे, जुलाई सन् १८८० ई० की मुशी नवल किशोर (लखनऊ) के छापेखाने से, छपी प्राप्त है। आरभ मे श्री श्री जानकी के जन्म की मगल बधाइयाँ है तब श्री रामजी के जन्म की बधाइयाँ है। तब सक्षेप मे रामकथा है और राम तथा सीता के रूपमाधुर्य का अलग-अलग वर्णन के पश्चात् इनके विवाह का पूरे विस्तार एव मरमता से वर्णन है। फिर युगल स्वरूप के नाना वध शृगार विहार एव लीला विलास के पद है जो अनुभव और साधना से परिप्लुत है।

झूलत सीय झुलावत नारी।
कनक जटित मणि रुचिर पालने शोभित आगन रूप उज्यारी।
कर कमलन सजि रुचिर पहुचि या पगन पहुचिया रुनुझुनुकारी।
सुखमा सदन वदन आनन्द निधि जननी निरखि जात बलिहारी॥

छबि देखि मगन रघुनन्दन की मिथिला पुर की सब कामिनिया।
श्रुति कुडल लोल छुटी अलकैं मुख चन्द्र मनो सित यामिनिया॥
शिर कचन क्रीट त्रिखड धरे बन माल गरे कुजर मनिया।
घनश्याम शरीर पै वारि धरी पट पीतमनो थिर दामिनिया॥
कटि तून शरासन बाण धरे गति कौन कहै सुख धामिनिया।
लखि सुदर रूप शिखानख लौ सब मोहि गई गज गामिनिया॥
मन आनन्द देह विहाल भइ यह बात कहै सब भामिनिया।
अब बैजनाथ सयोग बन्या वर योगि मिल्यो सिय स्वामिनियाँ॥

राम बना जस अजब सलोना।
तस नहिं सुना दीख नहिं नैनन ज्या न है नहि आगे हु होना।
श्याम अनूप भूप लालन का रूप समान विरचि रचोना।
भूलिनि लखि मुख चद माधुरी कामिनि दह गेह सुधि होना॥
औसर आजु राज मदिर मे लेवे ऊभ लाज धरि कोना।
सो पछिताइ खाइ बिप मरिहै खालि नयन लखिलवे रि जा ना।
मैं भरि अक सफल तन करिहौ उमगा मैं न लाज उर झोना॥
बैजनाथ सीता बल्लभ पै निश्चय आजु पतिव्रत खोना॥

राम बना कछु कै गयो टोना।
जब ते लखी सखी वह मूरति सूरति हिय से जात अजोना।
भय न लाज उर मैं न महाबल नेह उमगत हो मर होना॥
पैन कटाक्ष चुभी नैनन मे दिन नहि चैन रैन नहि सोना॥
छूटि धीर दृग नीर कपालन खोलि बोल कछु बोलि सको ना॥
टूटि बहत कुल कानि तीर तरु प्रेम प्रवाह रुकै रोको ना॥
मैं भरि नैन खोलि घूघट पट करिहौ देह सुगधित साना।
बैजनाथ जानकीनाथ के हाथ बिकात लोक सकुचोना॥

देखु सखी छबि राम बने की।
कचन मौर खौर चदन शिर जगमग द्युति मणि माल घने की॥
पग जावक ककण कर राजत भूषण सकल सुदेश ठने की।
बैजनाथ कहि कौन सकै गति मृदु कटि पर पट पीत तने की॥

राज कुवर बना राम सखारी।
मन भावत कहि जात न मोसन अलबेली छबि आज लखीरी॥

जामा जर कस मौर बिराजत पीत बसन मृदुलक ढखीरी।
कहत बचन सखि प्रेम विवश ह्वै बैजनाथ सुनि सब हरषी री॥

रघुवर रूप देखि मन भावत।
सुन्दर श्याम सरोज बदन पर मदन अनेक देखि बलि जावत॥
चदन खौरि मौर शिर ऊपर कुडल श्रवण अलक झलकावत।
मणि माला छबि पदक ज्योति उर कटक पोत देखि सकुचावत॥
पीत बसन कटि तडित बिनिदित चलनि मस्त मातग लजावत।
पान खाति मुसक्याति माधुरी दृग चितवति उर कहर जनावत॥
बैजनाथ मोहि सुधि नर हत तन मन बसु याम राम गुण गावत॥

राघो जी बना सलोना भाई।
सुन्दर बदन मदन लखि लाजत उपमा किमि कहि जाई॥
चदन खौरि मौर शिर शोभित अलक कपोलन छाई।
बिहसनि मधुर फेरि दृग चितवनि लखि चित लेन चोराई॥
कुडल श्रवण ललित कठावलि कुजर मणि छबि छाई।
पीत बसन अग लसनि मनोहर झाकत दृग न समाई॥
कमल चरण पर अमल महा उर नखन मधुर अरुणाई।
निरखि निरखि अग अग माधुरी बैजनाथ बलिजाई॥

श्याम सुन्दर रघुनाथ बने की।
छबि लखि मन न अघात री माई॥
निरखत ललकि पलक नहि लागत देह विवश होइ जात री माई।
आठौ याम श्याम रग भीनी का मन कछू सुहात री माई।
बैजनाथ भूली सब सुधि बुधि दृग माधुरि पगि जात री माई॥

तेरी छबि ने हमारो मन लीन्हे।
सुनिये जी राज कुमार सहज लाज कुलवती बाला गरुजन लाज अपार।
निरखत तव मुख चन्द्र माधुरी तन गति रहि न सभार।
चद्र चकोर मोर घन चातक स्वाती बद अधार॥
यदि गति मे तरनारि जनकपुर मन करि लेव विचार।
परत न चैन रैन दिन हमरे नयन बहत जल धार॥
बैजनाथ रघुनदन तुमही जीवन प्राण अधार॥

होरी आजु राम सिय फागु रचेरी।
बन प्रमोद फूल फूल विटप सब दल भारन भरि जात लचेरी।

गुल्म लता चहु ओर विविध विधि महि चित्रित मणि हेमखचेरी।
धवल धाम बहु बरण मनोहर कनक कोरि नग पीत गचेरी।
तामधि लाल लली राजत रसि मदन विलोकत छबि सकुचेरी।
नवल सखी अलबेलि प्रिया प्रिय राज कुवर लिये छैल जचेरी।
मोद उमगि उछाह भरे सब जयति जयति दुहु ओर मचेरी।
बीन मृदग ताल डफ बाजत नृत्यकार बहु भाति नचेरी।
बैजनाथ सुनि मोहित जग भयो सुर-नर-मुनि नहि एक बचेरी॥

हिडोरे झूलत सिय प्यारी।
रगभवन मधि लाल झुलावत गावत गुण नारी।
रग के झूलन छबिकारी॥
अली कली मो खिलो गीली निरखत छबि भारी।
रगके भूषण अग धारी रग गान करि बाध रगीली॥
नट तन वालनारी रगीली घटा मो घनकारी॥
गरजि घुमडि चपला चमकन मखि मोर शार भारी रगीली झूलन सुखकारी।
बैजनाथ दोउ लाल झुलन की छबि पर बलिहारी॥

हिडोरे माई झूलत युगल किशोर।
दशरथ सुत अरु जनक नन्दनी अरस परस भुज जोर॥
शीश मुकुट मणि माल हलन की पलन चलन चित चोर।
सुखमा सर युग कमल नयन लखि कुडल जनुरबि भोर।
मन्द हसन तन लसन विभूषण बसन कसन जर कोर।
जनु घन तडित विलास विविधि लखि सखि दृग चकित मयोर॥
भालतिलक लखि झलक अलक को पलक सहत नहि कोर।
ज्यो जस को तस हवै रस की वश हाय फस्यो मन मोर॥
नील पीन पट अद्भुत राजत श्याम वपुष ढिग मोर॥
वारो मैं बैजनाथ यहि छबि पर रति युत काम करोर॥

हिडोरे माई झूलत दशरथ लाल।
सोह बाम दिशि जनक नदनी कनक लता ज्यो तमाल॥
शीश सुभग मणि मुकुट विराजत मोहत तिलक सुभाल।
विथुरी अलक कपोलन राजत कुडल श्रवण विशाल।
पान खात मुसक्यात परस्पर चितवनि करत निहाल।
दै गल बाह लेत जब झोका उरझि जात मणि माल॥

श्याम गौर दोउ अग मनोहर पीत बसन ढिक लाल।
बैजनाथ छबि लखि बलिहारी सखि गावत दै ताल।।

लाल बिन कैसे मन धीर धरै।
बिन देखे मुख श्याम की शोभा नैनन नीर झरै।
होइ प्रभात बदन कब देखौ जियरा कल न परै।।
बैजनाथ कोउ श्याम मिलावै उरकी तपनि हरै।।

मोहिं इस्क पीर गम्भीर और नहि भावै।
बिन देखे छबि रघुबीर धीर नहि आवै।
तन श्याम सजल घन तडित पीत पट धारी।
मुख सदन बदन पर मदन कोटि बलिहारी।
शिर मुकुट पुरट मणि जटित तिलक द्युति जागै।
लखि ललक अलक की झलक पलक नहि लागै।
श्रुति कुडल नैन बिशाल कछुक कजरारो शुचि बिद्रुम बिंब अधरपर वारी।
भुज भूषण सहित बिशाल बान धनुधारी कटि कसे तूण पट रुचिर मदन छबिहारी।
मुख चन्द मधुर मुसक्याति बिरह शर मारे।
अब बैजनाथ बलि जाउ दरश दियो प्यारे।।

चित चाह लगी रघुनदन की।
कछु मोहि न भावत री सखिया।
गति सूरति आश चकोर भई मुख चन्द अनूप जही लखिया।
छबि देखि पगी नव नेह जगी सब लाज भगी जग को रखिया।
अवगाहन ते बिलगात नही तन श्याम पयोनिधि ते अखिया।
तन कप उठै बुधि मोरि भई धन देखि यथा अहि को भखिया।
अब बैजनाथ नहि छूटि सकै मन जाय फस्यो मधु को मखिया।।

राम सिय आजु बने परभात।
शीश मुकुट इत ललित चन्द्रिका कुडल श्रवण सुहात।।
चूनर सग बसन पीताम्बर शोभित श्यामल गात।
बैजनाथ छबि कहि न परत है रति शत मदन लजात।।

राम सिय सैन शाल अलसात।
आलस भरे उनीदे नैना झूमत झुकि झुकि जात।।
चन्द सरिस द्वउ मुख की शाभा कमल मनहु कुम्हिलात।
बैजनाथ छबि कह लै बखानौ लखि रति मदन लजात।।

हरषित दोउ यक सग रहेरी।
दशरथ सुत अरु जनक नन्दनी अरस परस पर बाह गहेरी।
को हर गौरि नेह इत म्राचो रूप सिन्धु रति काम बहेरी।
बैजनाथ द्वउ तन की सुखमा छबि सिगार जनु प्रेम गहेरी॥

बिगत निशा प्रातकाल जागे सखि लाल सघन व्योम तिमिर जाल अरुण प्रभा नाशी।
फूले बहु कमल ताल भागे बहु भ्रमर माल उडगण द्युति छीन हाल चकई पिय प्यासी॥
राजत मुख सेज भौन आलस वश सिया रौन उपमा रति मार कौन निरखत छबि दासी।
हुमसत पुनि मिलन पदक चिक्कन मदु छूटि अलक बिलुलित मुख चन्द झलक किधौ मदन फासी

धोवत मुख बिमल वारि पोछन मृदु बसन वारि मगल मय भोग धारि अलिगण चहुपासी।
उबटन मजन सुकारि अशुक भूषण सवारि वारत धन प्राण नारि दरश आश प्यासी।
नील पीत श्याम गौर जरकस युत जलज छोर कुटल घन भानु मोर मुकुट प्रभा खासी।
बैजनाथ सहित क्षेम धारे इमि नेह नेम जनु सिगार सहित प्रेम पावन सुखमा सी॥

हमारी दिशि हेरो प्यारे पीतम लाल।
तन हारी लखि रूप की रचना मन हारी तेरी चाल॥
मुख लखि हरष विवश दियो अबला तन मन धन सब काल।
चाहत निशि दिन रूप माधुरी चितवनि निरखि निहाल॥
मेहर प्याय कहर ना चहिये गहि भुज चहि प्रतिपाल।
बैजनाथ दृग प्यास दरश की छबि रघुनद विशाल॥

रगीले द्वउ राजत रग भरे।
श्याम गौर अभिराम मनोहर छबि मिलि होत हरे॥
दशरथ सुत अरु जनक नदनी अशन बाह धरे।
मरकत फटिक तमाल की चदा घन जनु तडित अरे॥
जनु ह्वै रूप एक ह्वै बैठे हरि तिय गिति निदरे।
बैजनाथ निरखत नित अलिया निशि दिन पल न परे॥

तिहारी छबि चाहत नयन पिये।
चद चकोर मोर घन दामिनि जल ज्यो मीन जिये॥
श्रवण सुयश मुख गान चरित की चाहत रूप हिये।
बैजनाथ गति एक रावरी नहि कछु चाह बिये॥
राम तेरी माधुरी प्यारी मो दृग लखि न अघाय।

चातक त्रिपित जल पाय॥
अबुज नयन बैन रस भीने जब हेरत मुसक्याय॥

यक टक रही दारु पुतरी ज्यो देश दशा बिसराय।
परत न चैन रैन दिन मोको कब उर मिलिये धाय॥
तिहारी छबि देखि सावरे मन् मेरे नहिं कलरे।
निशि बासर मोहि और न भावत कौन करी छल रे॥
चाहत पान माधुरी मुख की नयन रहि तपल रे।
बैजनाथ प्यारे लालन ऊपर वारि पिया जल रे॥

लखौरी आजु राजत सिय सग राम।
दिव्य कनक मणि जटित सिहासन आसन सुख को धाम।
शीश क्रीट इत ललित चद्रिका बदन उभय सुख धाम॥
कुडल वीर बुलाक अधर पर त्यो बेसरि दिशि बाम।
बेदो भाल तिलक मृग मद को कुसुम युगल गल दाम॥
बैजती बन माल पदिक पर चद हार अभिराम।
कनक बलय केयूर मुद्रिका भुज भूषण बहु नाम॥
नूपुर पग मजीर पीत पट तट चूनर रग श्याम।
पिय छबि नील जलद लखि लाजत तडित बरण सी बाम।
बैजनाथ यह दखि माधुरी वारो मे रति शत काम॥

श्रीरामविलास

ठाकुर मथुरा प्रसाद सिह (चौगडवा जिला बस्ती) का लिखा यह ४० पृष्ठो का ग्रथ दोहे-चौपाइयो में 'रामचरित मानस' का लघु सस्करण कहा जा सकता है। इसमे सरल सुबोध दोहे-चौपाइयो मे राम का चरित्र अकित है। सवत् १९६४ की चैत्र रामनवमी को यह ग्रथ लिखना आरम्भ हुआ। राम की बारात का वणन बडा ही हृदयग्राही है। इस ग्रथ की सब से बडी विशेषता इस बात मे है कि जनकपुर म श्रीराम के विवाह के समय जानकी की सखियो के साथ जो हास-परिहास होता है, वह बडा ही सजीव और आकषक है। श्रीराम और श्री जानकी का नख-शिख वर्णन भी कम मनोहारी नही है।

श्री सम्वत उनइस सै, चौसठि चइत सुमास।
राम जन्म तिथि राम गुण, वरणौ सहित हुलास॥
राम बरात समूह, पै कछु गिनती करत कवि।
डढ कोटि गज जूह, तीस कोटि बर बाजि है॥
कोटि पचीस उदार, जगमगात है पालकी।
बहुरि भार बरदार, सात कोटि पच्चीस लख॥

श्री राम जी का नखशिख वर्णन

पदतल अरुण सुमृदुल अति, कोमल बारिज फीक।
अरु गुलाब नहिं बाल रवि, सुखमा केर थलीक॥

सकल सुचिन्ह विराजत नीका। दहिने पद ऊधर स्वमतीका॥
अष्ट कोन अरु रभा बिराजे। हल मूसल अहिमर पट भ्राजे॥
वारिज स्यदन पवि जौ रूपा। सुर तरु अकुस ध्वजा अनूपा॥
मुकुट चक्र सिंहासन अहई। जम सुदंड जमदंड को दहई॥
छत्र चौर नर अरु जै माला। ये चौबिस दहिने पद थाला॥
पुनि बाये पद रेखा बरणी। मरज् मरिता गोपद धरणी॥
कलसा केतु जम्बुफल लसई। अर्ध चन्द्र दर लखि जिय फसई॥
पुनि षटकोन और त्रेकोना। गदा जीवनरु बिदु सलोना॥

सक्ती सुधा मुकुंड कल, त्रिबली झख समि पूर।
बीन बसि धनु तून पुनि, हंस चद्रिका रुर॥
ये अडतालिस चिन्ह नित, बसत रामपद माहि।
मथुरा सुजनन के सदा, सुख सुभदायक आहि॥

येइ येइ रेखा सियपद माही। दाहिन बाम भेद पै आही॥
मोहत काम कुर्म पद पृष्ठा। नूपुरादि भषन छबि श्रीष्ठा॥
कल अगुलिन अगुठन नख जाती। पकज दलासनि जनु मोती॥
दुहु पद जावक कलित सवारे। रचना देखि बिरचि जू हारे॥
मोहत उभै कमल पद त्राना। लाल मदन के जीह समाना॥
लसत कडा युग गुल्फ जान् अति। जघ केदली तरु किमानुहति॥
केहरि कटि सम लक सुहाई। किंकिणि मजु रुचिर अधिकाई॥
सुभग बिराजति पीअरी धौती। निदरि सिसुरवि तडित की जौती॥

राजत नाभी सर त्रिबलि, सीढी रोम से वाल।
उर मुक्तामणि माल जन, उडि बहु आव मराल॥

हृदै पदिक कल भृग पद रेखा। उर श्रीबत्स सुरुचिर अलेखा॥
दोउ भुज कलित बिसाल सुहाई। अगदादि भूषन छबि छाई॥
कनक सुमणि पहुची करमाही। रेख बिचित्र बरनि नहि जाही॥
अगुलिनि अगुठन नख दुति रूरी। मुदरी लेइ चोरि चितशूरी॥
याही कर धनु बान बिराजै। सुरन सुखद असुरन दुख साजै॥

जरद जडित अति मोहहि जामा । रतन निकन बहु लसत ललामा ।।
पीत कन्हावरि काखा सोती । छोरन माहि लागि मणि मोती ।।

वृषभ कध सम कध कल, मजु कम्बु सम ग्रीव ।
सरद इन्दु की मद हरण, आनन सुखमा सीव ।
अधर अरुण रद औलि मृदु, हसनि हरत जन चित ।
जनु बिद्रुम सु बिमान सुर, सभा सुमन बर्रात्त ।।

चिबुक सुहनु नासिका सुहाई । लसत बुलाक बिचित्र बनाई ।।
कल कपोल बरणौ केहि भाती । काम गेन समि जोति लजाई ।।
श्रवनन सुभग सुकुडल डोलहि । परसत गाल लेत मन मोलहि ।।
मोहत जुगल नैन छबि पीना । लाजहि कज खज मृग मीना ।।
अस छबि नहि त्रैलोक के बीचहि । चितवनि चारु सुधा जनु सीचहि ।।
उभै भोह साभा अधिकाई । मदन धनुष सम बरनि न जाई ।।
भ्राजत तिलक बिसाल सुमौली । केस निरखि लाजति अलि औली ।।
बिबिधि सुगध अलक गह बारी । बायस पर सम सुभग न थोरी ।।

पियरी पाग बिचित्र रचि, तेहि पर मणि मै मौर ।
अधिक सुहाई छबि निरखि, बिधिहू की मति हौर ।।
अनु जन युत रघुनदनहि, निरखि निरखि सब नारि ।
मधुरी मूरति उरमिनी, प्रेम बिवश भई झारि ।।

जनकपुर में सखी के साथ हाव विलास

चबल चखन दरश अतुराई । सखिन समेत राम पह आई ।।
लखि ननदोइन मय सुख कैसे । तलफत मीन नीर लहि जैसे ।।
पुनि किमि भई मुदित सब नारी । जिमि चकोरि राकेस निहारी ।।
तब प्रभु कैकरधरि सिधि बाकी । करि भृकुटी मुख अचल ढाकी ।।
बोली सुनिये राज कुमारा । बडे तसकर चित्त चोरन हारा ।।

चित्त हमार चोराय कै, आयो सासु के तीर ।
सिद्धि केर इमि बचन सुनि, बोले श्री रघुबीर ।।
भामिनि उलटी बात जनि, कहु निज औगुन मोय ।
मम आगमन सुजानि कै, तुमहि लुकाने जोय ।।

बहुरि रसिक पति पद सिर नाई । कहौ कथा रसिकन सुखदाई ।।
जे नेवत मिथिला पति केरी । आई राजकुमारि घनेरी ।।
अति निरदूषन अग सु बसनू । भूषन सकल सजे जिम फसनू ।।

सब के उर अभिलाष अभगा। बोलब हसब राम के सगा॥
जेहि परि जाकह ध्रुव अनुरागा। ताकह मिलत बिलम्ब न लागा॥
तिनहू सकल सुनी यह बाता। सिद्धि सदन आये चहु भ्राता॥
आई बेगि निकर हरषाई। आदर सिद्धि कीन सचुपाई॥
रघुबर रूप निहारन लागी। नयन प्रेम जल चल सुख पागी॥
कोउ कल जघ सुदेखति धोती। कटि किंकिणि लखि प्रमुदित होती॥
कोउ नाभी उर बाहु निहारी। जामा लसत कन्हावरि डारी॥
अधर सुबीरी अरुण सुहाई। बाल दिनेश प्रभा जनु छाई॥
काम म्यान ते किधौ निकारी। सिकली कीन धरी तरवारी॥
चिबुक सुहन् थल सुदर गालू। कोउ देखति नासा छबि जालू॥
कोउ जोहति नयनन की शोभा। जिनहि विलोकि मदन मन छोभा॥
सुधा गरल बारुनी समाना। श्याम सेत रतनार सुहाना॥
राम विलोचन जेहि दिशि करही। भरत जियत झुकि झुकि सो परही॥
भौंह चाप जनु मनमिज केरा। चितवनि शायक निब्र घनेरा॥
लागी जुवतिन के उर घाऊ। दरद करत अति सहि नहि जाऊ॥

देखति कोऊ ललाट की, सुखमा तिलक सुरूर।
कोउ अवलोकति अलकश्रुति, कुडल छबि रह पूर॥
श्री रघुनदन छैल नृप, चितवत जिन की ओर।
तेहि सुधि नहि घरबार की, जिमि मदान्ध जन भोर॥
रसिक शिरोमणि राम, नवल प्रीति अभिलाष अति।
जस जिनके उर जाम, रहा लालसा तवन रुचि॥
राउर मूरति नीर सम, हम सब के मन मीन।
किमि जीहैं बिरही घनी, भाषौ परम प्रबीन॥
मिरजे रहे वकि मनहि अस जब गौनब ससुरारि।
करब कतल मिथिला तियन, प्रीति षडगते मारि॥
बनिता जाति अबध्य हम, सब बिधि राजकुमार।
सो तुम कानि न लेम्हू, कीन्हेउ मन सुखसार॥

मारयो चखन बिसिख विषवारे। भृकुटी चाप चढाय के प्यारे॥
जग बीडा कुल सीव प्रमगा। ये सब होहि क्षणक मह ध्वसा॥
लागि प्रीति जो क्रम मनबानी। सो नहि छूटे शारग पानी॥
जैसे जल लहि सनरजु गाठू। अरु जिमि नवै न उकठ कु काठू॥
तिमि कबहू छूटै नहि नेहा। सरबस जाय जाय बरु देहा॥

ऊच नीच चाहैं जेहि पाही। लागै प्रीति सो अति प्रिय आही॥
तेहि देखे बिनु राजकुमारा। तरस न जाय कोटि उपचारा॥
यदपि रयन दिन मीत सरूपा। अवसि टिकै उर सुखद अनूपा॥

तद्यपि तरसत रहत चख, जुगल यार बिनु देखि।
जिमि चकोर राकेश के, जोहेहि सुखी विशेषि॥
जाति सीव कुल केर बहु, धर्म जाय नृप ढाट।
पै मूरति निज यार को, होय न नैनन ओट॥

बाचा शालरु परबस रहई। पै बियोग नहि यार सो लहई॥
बहु बिधि दुख सहि जाय शरीरा। नहि सहि जाय यार की पीरा॥
निज प्रीतम बिछुरत सुख जेते। भौमह दुख सम लागत तेते॥
यद्यपि हम अविवेकी नारी। जाति हीन सब भाति गवारी॥

राम का उत्तर

मोसम प्रीति करै जा प्रानी। जानि अजान कहू बिधि आनी॥
चख पूतरि सम भामिनी, जोगबहु मे तहि काहि।
अवगुण एक न दखहू, देखौ गुण तेहि पाहि॥
मम इमि बानि है लाडली, जानै नही हार।
न तु मोहि लहहि न मनुज करि, बहु बिधि के उपचार॥
जिन जिन प्रमी केर जग, सुनियत बडि मर्याद।
सोधहु तिन तिन माहि जा, हे यक यक अपवाद॥

बहु दुख सहि दिन करते कजा। लखहु बिचारि प्रीति किय पुजा॥
पै नहि करुणा करत दिनेशू। प्रेमिहि जारन परे कलशू॥
पुनि लखु तरसत रहत चकोरा। चितवत शशि मग प्रीति न थोरा॥
ताहि जोहि मानत निज छमा। बिधु मन नकु न गडी सो प्रेमा॥
प्रीति किये अति मणि ते नागू। बिछुरत तेहि सहसा न त्यागू॥
पै न प्रीति सा मणि के धसई। दिन प्रति उदित होय नहि झसई॥
चातक मोर जलद पर भारी। करत प्रीति सिधि राजकुमारी॥
नेकु न घन तेहि नेह बिचारै। ऊपर ते पवि पाहन डारै॥

अरु झख जल बस दिवस निमि, रहति न कबहू भिन्न।
मीन केर इमि देखि रति, नीर के मन नहि खिन्न॥
लखु प्यारी दीपक सिखहि, देखि सु सलभ लोभाय।
कूदि जरत कृषानु के, लेसहु दरद न आय॥

इमि बहु प्रीति मान है प्यारी। चलनि पोच हिय लखहु विचारी॥
एक तौ एक पर त्यागत देहा। एक न चितवत निरदै गेहा॥
हे मिथि आदिक राजकुमारी। ऐसन है नहिं नेह हमारी॥
अपने प्रीति मान जन सगा। तजौ न क्षण भरि प्रीति अभगा॥
प्यारी मम प्रीतम के काऊ। खर्ब जानि अभिमान देखाऊ॥
करो ताहि अतिनि कर बिशाला। जाते नावहि शिव बिधि माला॥
अरु सजनी सब भुवनन माही। सबहिन ते अरचावो ताही॥
कह तक बरणौ तासु बडाई। हमही ताको सीस नवाई॥

निज वहिके तनु मे तनिक, मर्म न टिकवो फूर।
कबहु सनेह न तजौ तहि, करै जो कोटि कसूर॥
राजकाज तिहु भुवन के, सम्पति सकल जु आहि।
अनुज तनय सिय देह निज, मोकह तम प्रिय नाहि॥

जस प्रिय लागत सहज सनेही। मानहु बचन कहौ सति एही॥
बिबिध शरीर धरौ जेहि लागी। कानन कानन बागहु जागी॥
दुख सहो सिर ऊपर कीता। पे परि हरौ न आपन मीता॥
गजगणिका अरु जमन जटाई। अजामील सेवरी कपिराई॥
रिक्षप पौनज तमचर राऊ। ये सब जानहि मोर सुभाऊ॥
जो निज बाट बटोरि सकल थल ' सो बाधे मम चरण नेह भल॥
अटौ मे सेवक इव तेहि सगा। सजनी यह मम बानि अभगा॥
मोसे नेह जोरि जो फेरी। आस करै दूजे सुर केरी॥

बहु बिननी वह जन करे, तौ न जाउ तेहि तीर।
येहू बानि मम कठिन है, कह मथुरा रघुबीर॥

रहे सु ग्रन्थ यह राम बिलासू। रसिक जनन कह परम सुपासू॥

रम्य पदावली

इस सुबृहद् ग्रथ की एक खण्डित प्रति मिली है। लेखक कश्चित् 'कोविद' कवि है। इसमे भगवान श्री राम और श्री जानकी जी के परस्पर अरस परस, मिलन, हास विलास, झूला और होली की लीलाओ के पद है। लगभग चार सौ पद इस सग्रह मे है।

रघुवर विहरत वीथिनि वीथिनि यूथिनि वन प्रमोद मुद तावत।
रग विरग रग ले सगन वजत मृदग न गावत॥
तिरहुति पति दुहिता वनिता कहु घेरि घेरि विलगावत।
काब करि बाब भरतादिक फौरन फाग मगावत॥

लाल लाल सग लाल वाल लखि सोम समूह सजावत।
मदार दुम सुमन सार सहदार सुमन वरसावत॥
विहसि विहसि रस रसिक शिरोमनि होरि होरि कहि धावत।
चाहत जानि प्रसाद समय कवि कोविद मुद मन भावत॥

होरी गोरी भई भोरी।
रघुनदन अरु जनक नदनी अनुशासन सब दोरी।
रग सरित वह वाय धाय धरि सबहि विहसि वरजोरी वोरी।
गान विधान नवीन धाहिनी प्रिय तर करमिलि जोरी।
कोविद कवि छवि वादन अद्भुत सुनि जय धुनि चहु ओरी शोरी॥

हिडोरा झूलत राज किशोर।
गरजै गगन मेघ मधुरी धुनि दामिनि करत अजोर।
श्याम घटा वगु पाति विराजै पवन चलत झकझोर॥
वसी वेन सितार सारगी सम का सुर एक ठोर।
ढोल मृदग मजीरा महुरि धुन उपजत घनघोर॥
गावत सुर नर नारि सुहावन सावन उठत अडोर।
निरखत सुर वर वधू पुलकितन राम नयन की कार॥
अति आनन्द उभय पुरवासी लखत राम की वोर।
कोविद राम सिया को झूलन कज मधुप मन मोर॥

झूलत उमग भरे पिय पिय सिय सग रे।
रतन जडित मै वना हिडोला प्रमुदित रग करे॥
युगल षभ विचित्र सोहै मोतिन लाल भरे।
हरित लतान वितान चारु तर केकी कूक करे।
कोविद कवि छबि निरखि हरखि हिय मुद आनद भरे॥

मैया सावन झूलन झूलो।
सेवन घन चाहत धन मित लखि सखि बनि रितु अनुकूलो॥
धीर समीर तीर सरजू को नीर सुरभि फुल फूलो॥
कोविद सुर तरु तरमनि झूलो।
गनि गन गन सम तूलो॥

भक्त मनरंजनी

प्रेम सखी-कृत

श्री प्रेमसखी की "भक्तमन रजनी" यथा नाम तथा गुण है। अनेकानेक राग-रागिनियो मे प्रेम के मधुर रस मे पगे पदो का यह सुदर सुबृहद् सग्रह वास्तव मे भक्तो के मन को प्रेमाह्लाद से परिप्लुत कर देने मे समर्थ है। सन् १९०१ ई० मे जैन प्रेम (लखनऊ) से सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचन्द ने छपवा कर प्रकाशित किया।

चचल चपल चाल चलत सुहाई रे।
चचल अनोखी बाल चलन मधुर मद॥
लचक लचक जात कामिन लजाई रे।
चचल नयन खज भृकुटी कमान तान।
मुख की चमक चारु चन्द्रमा लजाई रे॥
रसिक बिहारी रामचन्द्र को मिलन हेत।
धावत धरा के धाय नागर कुमारी रे॥
चमकि चमकि चख प्रेम को सुधारस।
मधुर मधुर रस पियत अघाई रे॥
प्रेम सखि देख प्रेम चन्द्रावलि बीर ऐसे।
सोलहो सिंगार कर राम को रिझाई रे॥

महारासोत्सव अर्थात् सीताराम रहस्य

यह श्री हनुमत्सहिता का अवधी गद्य मे अनुवाद श्री अम्बिका प्रसाद दैवज्ञ ('अवध मडलान्तर्गत जिला उन्नाव तहसील हसनगज औरामी ग्राम निवासी') का गद्य मे मिलनेवाला इस सप्रदाय का एक विलक्षण एव परमोपयोगी ग्रथ है। गद्य का नमूना हम नीचे दे रहे है। परन्तु, अनुवाद मे बीच-बीच मे कही कही सार रूप मे दो एक दोहे भी आ गए है। भाषा लडखडाती हुई परन्तु सशक्त है और भावाभिव्यक्ति म सफल। लखनऊ प्रिटिग प्रेस से सन् १९०४ ई० मे छपी।

कोई स्त्री अपने प्यारे को नमस्कार करती है कोई मद से अपने पियारे पर रिस करती है फिर ज्ञान भये प्रसन्न करे खातिर जैसे पतिव्रता लडाई को दूर करती है तैसे।

कोई सखी सकेत कुज के बीच मे जाय कै तहा नही देखती है तब अपने प्यारे सखा को बढ़ी रिस से रिसवावती है।

कोई सखी कुजवन मे जायकै तहा अपने प्यारे को देखि कै विरह की आगि मे जरती जो देह है ताको उत्कठा स्त्री की नाय लपिटि कै बुझावती है।

कोई स्त्री फूलो के मालो को गुहती है अपन प्यारे के लिए चरित्र गावती है कोई सखी फूलो की सेज सजाती है जैसे वस्त्रो की सेज बनावने वाली—

दोहा

माला फूलो के कोई गुहति चरित पिय गाय।
कोई सेज बनावती जिमि बस्त्रन की नाय॥

कोई स्त्री अपने प्यारे को छन भरि छाती से नही छोडती है अपने प्राणन ते परम पियार रक्षा योग्य जैसे स्वाधीन भर्तिका अर्थात् अपने ही वश अपना स्वामी।

कोई स्त्री अपने पति की इच्छा करने वाली आनद मे जल्दी जाती भई कुज ते और कुज मे घुसती भई जैसे आनन्द मे अभिसारिका स्त्री (अभिसारिका उसका नाम जौनि एकात मे लाज छोडि कै) अपने पति के तीर जाती है। यथा हित्वा लज्जाभयेश्रिष्ठामवेनमदनेन या अभिसार- यतकात सा भवेदभिसारिकेति।

कोई मानिनी सखी का नर्मता करि कै बशि करि लेते भये भली यतन से प्रेम की हचूटी बाणी से ऐसी बाणी बोलते भये।

हाव भाव के प्रभाव के जानन वाली कोई सखी राघव जी के आग मुस्क्याती है।

सखियो के नाम

उज्ज्वला काचनी चित्रा चित्ररेखा सुधामुखी हसी प्रशसा कमला बिशदाक्षी सुदंशका।
चद्रानना च[illegible] बरा कपूराकी वरारोहा ई सोरह १६ स्त्री रसोत्सुका है।

तौने कमल के पत्रो पर १६ सारह सखी शोभती ह मुनियो मे सरिट है अगस्त्य जी तिनके नाम सुनहु।

शोभ ना शुभदा शाता मनोपा सुखदा सती चारुस्मिता चारुरूपा चार्वंगी चारुलोचना।

हेमा क्षेमा क्षेमदात्री धात्री धीरा धराई सखी बहु विधि की सेवा मे युक्त रात्रि मे श्री मैथिली रघुनदन जी को सेवती है।

क्षीरोद्भावा भद्ररूपा भद्रचारु भद्रदा भावबर्जिता बिद्युल्लता पद्मनेत्रा पावनी हसगामिनी।

रमणीया प्रेमदात्री कुकुमागी रसोत्सुका यहा यतनी बारह सखी कमल के बाहर दलो पर बसती है।

महार्हा मालवी माल्या कामदा काममोहिनी रति क्षिती नतिवती प्रेमदा कुशला कला।

लीला यतनी बारह सखी उपदलन मे बसती है यई सब जनी श्री रामचन्द्र जी को सेवन करती है बडे प्रेम मे बूडती है आनन्द मे युक्त श्री राघव जी का देखती है।

फिरि अ।ठ दल के बीच मे बहु विधि के सुहागो म भरी कुजो मे ठाढ़ी सखिया नित्य ही राघव जी की सेवा करने मे युक्त दोहा।

फिरि बसुदल के बीच मे बहुविधि साजि सुहाग।
कचज म ठाढी नितहि हरि सेवन मन लाग॥

पहिले वेष कुज मे नम्रता करिकै श्री सीताराम जी बैठने भये तहा बिलासिनी नाम सखी मैथिली जी रघुनन्दन जी दूनौ जनेन को देखिकै।

जल्दी वस्त्र कुचुकी डुपट्टादि सीता जी को औ जामा दुशालादि राघव जी को औ गहन बुलाक कठादिको से और मालो करिकै भक्ति ते दूनौ जनो के अनूप रूप बनावती भई।

फिरि दूनौ सीताराम जी मालती कुज को जाते भये जहा (सागानद) नाम सखी रहती है तेहि की सेवा के मतगते प्रेम करिकै सीताराम जी दूनो जने परम आनन्द को प्राप्त भये।

फिरि श्री राघव जी सीता जी के सहित ('केलि कुज') के बीच मे जाते भये जहा नित्य ही (वृन्दासखी) नित्यानन्द मे बूडती है।

तहा आनन्द करिकै बिहरत है कलि के कुतूहल मे काम केलि करिकै सीता जी राघव जी को प्रसन्न करती भई।

तब फिरि मन के रमावन वाला (सुखद) नामकुज को देखि कै दूनौ जने परम आनन्द मे प्राप्त भये जहा (नित्या) नाम सखी शोवती है।

फिरि हिडोलक कुज मे बारम्बार घूमने ह तहा (प्रेम प्रदर्शिनी) नाम सखी बसती है तौनि स्त्री श्री रघुनन्दन जी का मनारथ पूरण करती भई।

सुन्दर डालना कुज मे प्यारी सीता जी के सहित श्री राघव जी जाते भये जहा (वसत-रगिनी) नाम सखी परम आनन्द मे भरी बसती है।

बसन्त ऋतु मे परम चित्र विचित्र फूलो करिकै लपेटित कोयल भवरो के झुडो से प्रसन्न कामदेव के बढावन वाला भोजन कुज मे मैथिली जी और सखियो करिकै सहित श्री राघव जी जाते भये तहा (सदानुमोदिनी) नाम सखी आनन्द ते भोजन छ रस के औ छप्पन ५६ प्रकार के भक्ष्य भोज्य चोष्य लेह्य तथा मालपुआ जलेबी लड्डू खाझ। खुरमा खीरपिर कै भोजन भगे सेवई मलाई पूरी बरा मुगारे मिथौरी मिही रोटी घी मे भीजी इत्यादि भोजन कटहर तोरई परवर इत्यादि तरकारी अदरख आम अवरा इत्यादि अचार किलहा गलका करौदादि खटाई आम धनि-यादिको की चटनी इत्यादिको के बनाय कै श्री सीतारामचन्द्र जी को तृप्त करती भई।

शयन करने वाला चारु नाम कुज का भगवान राघव जी नर्मा सेजो करिकै सहित देखिकै बडे आनन्द को प्राप्त भय।

जहा साक्षाल्लक्ष्मी वाली मदनमजरी नाम सखी स्थित ह्वै कै तहा सीता जी के सहित रामचन्द्र जी शयन करते भये तब शयन मे स्थित राघव जी को देखिकै प्रेम करिकै जगावती भई।

अष्टदल के उपकोनो मे बेली औ वृक्ष शोभित है माधवी चपा मल्लिका पुन्नागचमेली।

लौग लतिका अवरा तुलसी परम चित्र विचित्रै सब सुगन्धो से भरी सब फूलो से फूली है।

जिनके फूल बडे मीठे सवाद वाले पाता अमृत ते मीठे तिनकी शरणागत मे शोभित है जहा हसने मे आनिदित। गावती है नाचती है श्री सीता राम जी को देखती है हे अगस्त्य जी तिनके नाम सुनहु हृदय मे धारण करहु। बीणावती सखी बीणा का हाथे मे लीन्है औ सुगधिका स्त्री बशी का हाथे मे पकरे कविला सखी बिलास करिकै सहित औ शोष सखी सब शोभावो से भरी। सुख से

सातौ स्वरन भाव निषाद ऋषभ गाधार पर्ज मध्यम धैवत पचम ए स्वरन को धारण करिकै सुख के देने वाली सती ('खजनाक्षी') खजन की चाल के समान चचल आखो वाली रसोवा की मजरी रूपी खजरी का हाथ मे लिये। गान कला गीतो की कला जानने वाली सखी हाथ मे मीठे स्वर वाला मृदग लिये सारग लोचनी सखी बडे आनद करिके सारगी का बजावती है। सुखदामिनी नाम सखी छुवने के सुख देनेवाली सुख के मडलो से जटित सब सखिया सब नवो रसो के जानने वाली श्री रघुनन्दन जी के राधिका (यह रूप कृदनी 'राध साध समिद्धौ' धातु का है) सवन मे लगी। सरिष्ठ बार कमल की गुजरियो के दानो मे जटित सखिया स्थित महाचित्र बिचित्र मणियो से पवित्र मदिर मे चद्रमा सूर्य अगिनि के करोरि तेज को ठगने वाले चितामणि के मन के मोहन करने वाले मे ।। तहा मत्रो करि कै मल से रहित पवित्र सिहासन शोभित है मैकरन स्वर्णों से पूजनीय सुदरे नरम केवल ठगने मे प्राप्त होय कै गुरु की बाणी ते पार जाने मे स्वगम्य रूपवाले मे। सहित ओकार सब बीजो सब मत्रो से लपेटित जैसे मणियो के समूहो से युक्त ऐसे सिहासन के बीच मे श्री रघुनन्दन जी शोभित है। तेहि मे पैठनी भई कमल की पखुरियो के समान आखो वाली लबी लबी दूतो बाहे प्रसन्न मुखो वाली तपाय सानें के समान गहना स जडी जोनी सखी के जान की जीवन श्री रघुनन्दन पियारे है। आपस मे चित्रन क जानने वाल दूना जन आलिगन करत भय हसन की वाणी से हृदयो मे स्नान करते है रहस का आनन्द और सब सुख क आनद देन वाले घषणा ते रहित ऐसे रासेश्वर श्री राघव जी को नमस्कार है।

प्रभया रामचद्रस्य सीतायाश्चप्रभावत
सदा प्रकाशतेत्यर्थस्थूल परमपावन
यद्धयात्व निमिषार्धेनरसिका याति तत्पदम्।

भावना अष्टयाम

अथवा

श्री सीताराम मानसी पूजा

श्री सीतारामशरण रामरसरगमणि जी

[श्री सीतारामशरण रामरसरग मणिजी श्री अयोध्यावासी ने श्री सीताराम रसिक जनो के सुखार्थ रचना किया उसी को श्री सीतारामशरण भगवान प्रसाद जी के स्नेही श्री दुर्गा प्रसाद जी सवत् १९६१ मे चन्द्रप्रभा प्रेस (काशी) मे छपवा कर श्री सीतारामानुरागियो के हेतु सुलभ किया।

गद्य मे मगला आरती से शयन तक की मानवी सेवा का बडा ही भव्य मनोहारी वणन।]

ध्यान

राजत रत्न सिहासन मध्य सियायुत श्यामल राम सुजाना।
छबि सु लच्छन लाल लिए छबि जासु छपाकर कोटि समाना।।
श्री भरतौ भरतानुज चौर चलावत दक्षिण वाम विधाना।
मारुत मारुत लाल करे रसरगमणी कर यो उर ध्याना।।

बैदेही सहित सुर द्रुमतले हैमे महामण्डपे,
मध्ये पुष्पकमासने मणिमये वीरासने सस्थितम्।
अग्रे वाचयति प्रभजनसुते तत्त्व मुनीन्द्रै परम,
व्याख्यात भरतादिभि परिवृत रामम्भजे श्यामलम्॥

तब श्री राम रस रग बिहारी जू शयन करते भए।
बाम भाग श्री रसिक राज बल्लभा जी शयन करती भई।
श्री भक्ति भक्त दोनो दिव्य विग्रहो की चरण सेवा करने लगे।
तदुपरि श्री युगल क नयन पकजो को निद्रा से मुद्रित देखि सहित
समाज श्री भक्तिपरानुरक्ति जू
श्री युगल कृपाल जू को शोभा मन मे धरि मन्द पदो से
बाहिर निकसि के कपाट बन्द कर देती भई।
और सहित समाज शयनशाला के आवरण भवन मे विराज
कै झीनें स्वर से विहाग राग मे श्री युगल यश गाने लगी।
तदनन्तर शयन करि कै स्वप्नावस्था मे श्री सीताराम चन्द्र जू
के समीप प्राप्त भई सेवानुरागी साधक भी श्री भक्ति
पद पकजो को साष्टाग प्रणाम करि,
उनके नीचे दक्षिण मे शयन करि स्वप्न मे श्री सीतारामचन्द्र जू
के समीप प्राप्त भया और सुख सिधु मे मग्न भया।

परिशिष्ट

[क]

महावाणी

रस शृगार अनूप है तुलवे को कोउ नाहि।
तुलवे को कोउ नाहिं मोइ अधिकारी जग मे।
काचन कामिनि देखि हलाहल जानत तन मे।
यावत जग के भोग राग सम त्यागेउ द्वन्दा।
पिय प्यारी रस सिन्धु मगन नित रहत अनन्दा।
नही अग्र अस सन्त के सर लायक जगमाहि रस॥

कृपानिवास श्री राम प्रिया की कृपा अगम सब सुगम हमारे।
नित्य निकुज विहार करो रति रग रगी रहो लाडिली गोरी॥
प्रीतम प्रान सुजान के सग दिये गलबाह वसा हिय मोरी।
श्री चन्द्रकलादि अली गुनआगरि नागरि रूप लखे तृन तोरी।
ईश मनाय अशीशे सबै कि बनी रहे नित्य किशोर किशोरी॥

सखिन बिच नृत्यत युगल किशोर।
विपिन प्रमोद सरोजा तट पर दिव्यभूमि चमकति चहु ओर।
चक्राकार राम मडल रचि राग रागिनी के कल शोर॥
चन्द्रकला विमलादि रगीली, वीणा मृदग लिये कर जोर।
चारु शीला सुभगा हेमा लिए, मुरली मुचग चित्तरी जोर॥
चन्द्रा चन्द्रवती मिलि गावति, क्षेमा स्वरहि भरत रसबोर।
मदन कला करताल बजावत, सारगी नन्दा टकार।
पिय शिर सुभग मुकीट विराजै, चन्द्रिका सीता के शिर रोर॥
चन्द्रहार प्यारी उर चमकत, पिय उर मोतिन माल उजोर।
कोटि कोटि रतिकाम विमोचन, नटवर वेष श्याम अरु गौर॥
रूप माधुरी कहि न परत है, अग अग छबि कै उठत हिलोर।
कर मे कर दोऊ मिलि धारे, नयनन शैन चलत दुहु ओर।
कबहे अधर रस पियत परस्पर, रस मतवारे दोउ चितचोर॥

प्यारी हाव पियाचित करषत, पिय के भाव प्यारी निज ओर।
दोउ रस सिन्धु मगन रस लम्पट, अग्रअली नहिं चाहत मोर॥

देखो सखि अति अनन्द रास रच्यो रामचन्द्र,
रजनी छबि छिटकि रही सरद चादनी॥
बहु सखि मडलाकार नृत्यगान स्वर सभार,
नृत्यत रघुनन्दन मिथिलेश नन्दनी॥
कचन मणि लसत भूमि नृत्यत पद चपल घूमि।
नूपुर छननन छमक छमक छन्दनी॥
कमला विमलादि तान रागा अनुगादि गान।
करहि राग रागिनी कला कलिन्दनी॥
चन्द्रकला वीणा मुचग धुनि मृदग मधुर।
अपर सखि सीतार तार तर तरगनी॥
ताधिग-धिग ताधिग-धिग, ताधिन्ता ताधिन्ता।
धिकिट धिकिट धिधिकिट धिधिकट प्रबन्धनी॥
उघटत सगीत राग, ताल मूर्छानदि ग्राम।
हाव भाव पानि मुरनि नैन खजनी॥
श्री रामचरण युत समाज मेरे हिय मे विराज।
यह विहार नित अखण्ड रसिक मन्डनी॥

सरद पून बिमल चन्द बिमल मही अनन्द कन्द।
रामचन्द्र रास रच्यो देखन सघी धाई॥
सर्यू पूलिन बिमल कूल फूले बहु रग फूल।
कमल चम्प कतकी कदम्ब सुरभि छाई॥
बोलहि सारो मयूर कोकिला मराल कीर।
गुजहि अलि सकल राग रागिनी बनाई॥
किन्नरी अप्सरा गान मूर्छन स्वर ताल तान।
धरहि भूमि तरुन लतन नीर गगन जाई॥
बाजहि मृदग जग मारगी तमूर।
चग वीण बेणु आदिक स्वर ताल गति सुहाई॥
युग युग सखि विच विच एक मध्य रामनिरतत,
सगीत ताडवी सुगध गति अनेक लाई॥
गावहि षट राग राम रागिनी स्वर ताल ग्राम।
सब धरि सखि रूप राम रास हेतु आई॥

जानकी रघुनन्दन मन भावनि भये रैन।
ब्रह्म श्री रामचरण सर्व जीव परमानन्द पाई॥

आज सखी लखु रास मडल मे नृत्यत हैं रस रग भरे।
बन अशोक सम भूमि खचित मणि रवि सम अमित प्रकाश करे॥
श्री रघुनन्दन जनक नन्दनी अभित मदन तबि अग धरे।
क्रीट मुकुट चन्द्रिका मनोहर भूषन अग अग नगन जरे॥
कुडल मकर हार मोतिन के बैजन्ती बनमाल गरे।
नासा मणि झूलत अधरन पर केसर चन्दन खौर करे।
मोतिन माग भरी बरबेनी कुटिल अलक जनु भ्रमर खरे॥
मणि ककन पहुची कर चूरी बाजू वद जराऊ जरे।
नील पीत पट लसत दुहुन तन श्याम गौर मिलि लगत हरे॥
किकिन मुखर अरुण कर पल्लव पग नूपुर झनकार करे।
थेइ थेइ करत भरत स्वर अलिगन निरतत पिया सग अनन्द भरे॥
वजत मृदग ढोलक सारगी झाझ मजीरा वीन वरे॥
जगु जग् मखिन बीच रघुनन्दन करसो कर धर लसत खरे।
कर मडल निरतन मखियन मग निरखि मदन बहु मूरुछि परे॥
पूर रह्यो वन मडल सोरस अचर सचर चर अचर करे।
सुर मुनि अगम सुगम रसिकन को रस माला यह ध्यान धरे॥

रसिक दोऊ नूतन रग भरे।
विपिन अशोक राम मडल विच जनक लली रघुलाल हरे॥
अमित रूप धरि करि कछु चेटक जुग जुग तिय मधि श्याम अरे।
क्रीट मुकुट की लटकि चन्द्रिका झुकनि मदन पद दूर करे॥
मोतिन हार जुगल उर राजत कुन्द मालती माल गरे।
पग नूपुर मजीर मधुर धुनि ककन किकिनि मुखर तरे॥
मुरज मजीरा ढोल सारगी अरु मुरली के टेर करे॥
विविध ताल सगीत अलापन ततथेइ ततथेइ कहत खरे॥
कबहु मधुर मुस्काय के दम्पति निरखति छबि भुज अश धरे॥
कबहु सुरति करि ब्याह समय की फिरति भावरी रसिक वरे।
यह रस रास महा सुख सागर द्वादश योजन लो सवरे॥
रस माला भरि पूरि रही बन जग कोइ बुन्द प्रकाश करे॥

आज जनक दुलारी रस रगन भरी।
चम्पा के बरन वारी वसन सुरग वारी बदन मयक वारी रूप अगरी॥
अरुण अधर वारी बोलनि मधुर वारी तिरछी चितवनि सर मारति खरी।
वेसर सुपास वारी मुक्त मृनाल वारी उरज उतग वारी मदन जरी॥
मोतिन के हार वारी मध्य भाग छीन वारी।
जघन गभीर वारी भावन भरी।
गमन मराल वारी नूपुर झनकार वारी रसमाला उर वारी मोह्यो मनरी॥

सावरे सलोने जू झमकि झुकि आवेरे।
शरद की रैन पिया अधिक सोहावेरे॥
मद मुसुकाये प्यारी जू के गलबाह दिये उचे स्वर तान ले मधुर स्वर गावरे॥
रास मडल अली मग लली करधरि छम छम छननन नूपुर बजाव रे॥
कटि लचकनि ग्रीव मुरनि धुरनि नैन कुडल अलक मनि क्रीट झलकावरे।
नवल बिहारी प्रिया लली मग रमवस अली मग लता कुज मन ललचाव रे॥

प्यारी जू के चद्रिका मे चन्दहु लजायो रे।
नीलतम घन उडगन चहु दिशि सोहै जुग सुत नागिनी अमिय रस पायो रे।
भौहन की टेढी निरछी नैन की मान लखि वेसरि हलनहु मे चितहु चोरायो रे।
उरज उतशह, की कचुकी की चमकनि हारहू हमेलन की अलनि रमायो रे।
नवल बिहारी पिया स्वामिनी की निवी लखि मदन के रसवस कममस छायो रे॥

कर धरि पिया नटे पिया मुख हेरि हेरि।
चहु दिशि अलिगन छमछम छमकत मद मुसुकनि मे मदन रस भेरि भेरि॥
फहरत बसन सुगधन छहरत मोती माल टुटत सखिन के टेरि टेरि॥
उरज गहत कर अधर चूमत जब पूछन रसीली बात अली मुख फेरि फेरि।
नवल बिहारी प्रिया घूघट मिस निहुकत पिया रस लहत बाधत वन्द वेरि वेरि॥

सारद विधु चय विजित वरानन विधु कर निकर सुहासम्।
मदन चाप जित भृकुटि कुटिल तिल सुमन मुक्त धृत नाशम्॥
चारु चिबुक दर ग्रीव मनोहर स्वधर बिम्ब प्रतिभासम्।
मुकुर कपोल चिकुर चय चुम्बित नयन सरोज विलासम्॥
जनक सुता कर धृत परि नृत्यति ललित कठ कृत गानम्।
पद नूपुर रव रजित दश दिशिउर्चा रत ताल प्रमाणम्॥
पश्य मुदा रघुनन्दन मतिशय चित्त चमत्कृत वेषम्।

जनक सुता रजन रतिपति मद गजन मगमशेषम्॥
'श्री रसिक' भणित सीतापति गीत ललित पदावलि नीतम्।
सज्जन श्रुति सुख प्रद मिद मद्भुत मचित ताल विनीतम्॥

युगल छबि देखे नयन सिरात।
जन सुषमा सर मध्य लसत दोऊ नील पीत जल जात॥
वदन किधौ छबि नगर वसत जह सम्मति विविध लखात।
चोरि लेत चित को जब मृदु हसि करत परस्पर बात॥
कबहु बैठि चौसर खेलत दोउ हार जीत पक्षपात।
रूप भरी गुण भरी चतुराई सग सखिन की ब्रात॥
बिहरत कनक भवन गृह आगन कबहु अटन चढि जात।
देखत फिरत रसिक अरी तह तह जह जह प्रिय दोउ जात॥

सजीवन जीवन युगल किशोर।
रैन ऐन मद नैन चैन चय चखत चतुर चितचोर॥
हसत हसावन होश जोश विन वोस लेत रस वोर।
सुधि बुधि विशद विहाय छाय छबि होय रहे चन्द चकोर॥
आस पास सहचरी सोहागिनि सिखवहि मदन मरोर।
श्री युगल अनन्य अली रमिया दोउ उरझि रहे निशि भोर॥

दृगन भरि छबि लखु सीय रघुबीर।
कनक भवन राजत प्रिया प्रियतम श्यामल गौर शरीर॥
अग अग नव रग रगे वर, लसत सुरगी चीर।
फूल छडी प्यारी कर राजत पिय कर शुचि धनुतीर॥
नजर बाग अनुराग लाग फल नटत मोर मनकीर।
नर देही सुमिरन बैदेही हेतु वदन मुनि धीर॥
हृदय पत्र लेखनी प्रीति करु तत्व मसी मुदनीर।
श्री जानकी वर दम्पती छबि सम्पति लिखले सखी तसवीर॥

सीया जू के दृग छबि नित नवीन।
अजन मिस रजन मन पिय लखि श्याम सु डेरा कीन॥
गौर अग अरुणाम्बर झीनहु कहि न सकत अति झीन।
छिन छिन छटा घटा रस बरसत चित्त चातक रसलीन॥
नित सयोग वियाग न सपनेहु निज मुद खुद लैलीन।
कृपा साध्य गुरु जुगल विहारिनि जानहिं रसिक प्रवीन॥

प्रिया जू के नेह भरे दोउ नैन।
अजन युत रजन मनरजन अलिगन के सुख दैन॥
खजन मीन पकज दल दुरि बन कोउ जल मैन।
रती कहैं मैं अहौ रती भरि मैन कहैं सम मैन॥
उमा रमा ब्रह्मानि आदि सब तौली सुमति तु लैन।
श्री मिथिलेश कुमारि प्यारि पिय उपमा तो कहु है न॥
जेहि दिशि हसि दरसत सरसत मुद बरनत बरनि व नैन।
जुगल विहारिनि जानत प्रीतम जे निरखत दिन रैन॥

किशोरी ज के अनुपम रसमय बैन।
सुधा सुधाकर शुक पिक हू नहिं कोकिल हू सम हैन॥
मन्द हसनि रद लसनि अधर छबि फसनि प्रिया प्रद चैन।
अग अग छबि फवि कवि दवि मति सारद वरनि सकैन॥
करत विहार अपार पिया सग कनक भवन सुख दैन।
श्री जुगल विहारिनि भरि उमग सखि सेवति है दिन रैन॥

मद छाकी छबीली गहि प्रीतम को रग बोरे री।
मद विहसि मुख मोरि फेरि दृग झक झोरनि चित चोरे री॥
छीनि लई करते पिचकारी मुख भाडत वर जोरे री।
रसिक अली राघव कर जोरत गहि रहि अक न छोरे री॥

रघुनन्दन खेलत होरी।
विपुल सखिन जुत जनक नन्दिनी बनेउ सखा हरि ओर।
फाग मची बहु वाजन गानन होत शोर चहु ओर॥
लसैं सब सुन्दर जोरी।
कुम कुम की चमची सरयू तट लाल भई जल धार।
वर्षहि रग देवतिय नाचहि काहु पट न सभार॥
अग सब रगन वोरी।
राम सखन ललकारि अग्र बढेउ एत सखियन करि जोर।
भरत शत्रुहन लखन लाल को धरि लाई निज ओर॥
करहि मन भावत सोरी।
भूषन वसन उतारि लीन्ह सब निज भूषन पहिराई।
श्री राम चरन सखि छोड दीन्ह तब सीय की जीत कहाई॥
भई जय जनक किशोरी॥

परि मेरो श्याम सनेही मेरे वस अनुराग री।
अधरामृत दै गल भुज मेलो खेलोगी सग फाग री ॥
कुचनि गुलाल लाल पर डारो उरझो मनमथ जाग री ॥
नैनन की सैनन से छिरको प्रकट करो सब लाग री ॥
पिय के शीश ओढाउब चून्दरि मै जू धरो शीर पाग री।
लाल नचावो आपने आगे मै गावो हसि राग री ॥
जोइ जोइ कह्यो कियो सिय प्यारी भारी भरी है सुहाग री ॥
श्री कृपानिवास महा सुख निरखत सखिया सराहत भाग री ॥

श्याम मुख रग की बून्द ढरी।
मानहु काम कसौटी उपर कचन की कस परी ॥
अलकै चुवै मनहु घन माला रस अनुराग भरी।
श्री कृपानिवास अलीगण अखिया सीयवर रूप अरी ॥

श्याम मुख लाल गुलाल लगी।
नील कमल जनु प्रकट प्रात रवि अरुण किरन जगमगी ॥
अलकैघूमि आई मुख उपर केसर रग रगी।
षट् पद वधू आय अम्बुज लौ अरुण पराग पगी।
रूप अनूप विलोकत आली नेह सनेह मकी।
दम्पति अली रूप निधि सीते पीय अति रूप पगी ॥

सइया जाने न पैहौ डारो न मो पर रग।
श्री मिथिलेश लली की अली सब आनि जुरी एक सग ॥
सुनि सकुचाय रमाय दृगन दृग बोलत वचन उमग।
काह करेगी विपुल नारि लगि जावो हमारे अग ॥
कठ लगाय भिजाय भिजे रग बढ्यो परस्पर जग।
श्री युगल प्रिया यह फाग अनोखी लखि रति पति मद भग ॥

निमि दिन तरसे नयन मा री आली श्याम बिना।
जब सुधि आवत श्याम सुन्दर की हिय के मरोरे मदन मा री ॥
श्री दशरथ नन्दन प्राण पती को बिन देखे न चयन मा री।
श्री युगल अनन्य अली बिरहिनिया चाहत अब ही मिलन मा री ॥

जेहि दिन पिय से मिलन वा हो राम सोइ सुभ दिनवा ॥
मिलन उछाह अथाह माह मुख चाह बढत छिन छिनवा हो रामा ॥

सरल सुभाव जाउ बलिहारी विलमायो प्रभु किनवा हो रामा।
पलक कलप सम बीतत मीत विन व्यर्थ अहै जग जिनवा हो रामा॥
सरन भरोस एक सतगुरु प्रद हो सब साधन निवा हो रामा।
जुगल विहारिनि बिरह मरज हरि देहु दरस सुख छिनवा हो रामा॥

बैठे युगल बिहारी री सजनी दिये गलवाही।
पान बिरा पिय प्यारी मुख पिय देत पिया मुख प्यारी री॥
पान खात बतरात परस्पर हसि हसि अलक सवारी री॥
कबहु परस्पर मुख चूमत हैं पीवत अधर सुधारी री।
कबहु लटक पिय प्यारी ऊपर पिय उपर सिय प्यारी री॥
कबहु बलैया लेत परस्पर राई लोन उतारी री।
यह रस मोद निरखि सुख अह निसि होत पलक नहि न्यारी री॥

फूल बगला

बगला फूल मध्य दोउ बैठे सोहत श्यामा श्याम।
अरुन बसन प्यारी तन राजत प्रीतम पीत ललाम॥
जाही जूही ललित चमेली मेवति वैला दाम।
झम झम परत गुलाब फुहारे घनन घनन घनश्याम।
निरखि प्रिया अनुपम छबि प्रीतम नवल रूप अभिराम॥
कहत बनत नहि कहो कहा सखि ये कामहु के काम।
प्रीतम देखि प्रिया सुन्दरता कहत मनहि मन राम॥
हम तो बिके सदा इनके कर बिना मोल के दाम।
रहो दोउ आनन्द परस्पर श्री जानकि वर सुखधाम॥

युगल ललन नव छबि शृगारो।
फूल सेज चादनी सुफूलन फूल पाग सिर धारे।
जामा फूल फूल ही पटुका फूल पेच गलहारे॥
फूल कचुकी चूनरि फूलन फूल माग झलकारे।
फूल माल दोउ गरे बिराजत कोटि चन्द्र उजियारे।
मानो फूल सिन्धु मे खेलत रति मनोज द्वै तारे॥
फूल शृगार देखि प्रिय प्रीतम सखिया प्रान बिसारे।
श्री जानकी वर की भूरि सजीवनि वाह कहत बलिहारे॥

रथ चढि चले सरयू तीर।
रसिकनी मिथिलेश नन्दिनी रसिक श्री रघुवीर॥
प्रथम मास अषाढ पावस बहत त्रिविध समीर।
उमडि घुमडि घमड घन धुनि व्यापि रही गभीर॥
श्याम गौर सुरग अग सुपहिरि कुसुमी चीर।
जडे भूषण नगन के छबि देखु मन करि थीर॥
हरित भूमि विभाग कचन जटित मनि गन हीर।
हरित द्रुम सघनावली खग मधुर बोलत कीर॥
सहचरी गन अमित चहु निशि गान तान सुधीर।
युगल प्रिया सु उतरि रथ न पूजि मानस नीर॥

उमडि घुमडि आई बादर कारी।
दशरथ नदन जनक लली जू बैठे सखिन मग महल अटारी॥
कुसुमी बसन युगल तन राजत जगमगात भूषण उजियारी।
अलकैं बिथुरि रही मुख ऊपर मुकुट चद्रिका लटक सवारी॥
चद्रावती मृदग टकोरति चद्रा तानपूर करतारी।
चद्रकला जू बीन बजावति गावत उमग भरे पिय प्यारी॥
अधिक प्रवाह बढ्यो सरयू को भरे प्रमाद विलोकत वारी।
युगल प्रिया रसिकन के सपति अगम निरखि रति पति बलिहारी॥

रसिक दोऊ झूलत सरयू तीर।
रघुनन्दन अरु जनक नन्दिनी श्यामल गौर शरीर॥
राजत छबि मैं रतन हिंडोरा तापर बोलत कीर।
गावहिं छबि अवलोकि प्रेम भरि चहुदिशि सखिन की भीर॥
बाजत बीन मृदग उपग मृदग ताल अति धीर।
जुगलप्रिया अति सुख वषत जब लेत तान गभीर॥

किशोरी सग झूलत नवल किशोर।
दशरथ नन्दन जनक नन्दिनी सुन्दर श्यामल गौर॥
सरयू तीर सुखद प्रमोद बन विश्व भूमि शिरमौर।
ता मधि मणिमय रचित हिंडोरा लसत हेम मय डोर॥
चन्द्रकला सखि हरषि झुलावति विमला ढोरति चौर।
जुगल प्रिया यह मधुर केलि लखि सुधि बुधि सब भई भोर॥

झूलैं प्यारी झुलावै प्यारो।
मधुर मधुर कर कज मजु गहि रेशम रजु सुकुमारो।
नैनन निरखि नवेली विधु मुख मन्द हसनि नृपवारो॥
उरझि रहे अग अग रग रस सुरझनि अगम निहारो।
श्री युगल अनन्य अली दोउ नेहिन ऊपर सर्वस वारो॥

पिय लागो सावन मास आस यह मेरी।
चलि झूलै विमल हिंगोर गले भुज गेरी॥
भये हरित वरन वर भूमि सोहावन लागे।
फूलैं फलैं विपिन प्रमोद मोद मय बागैं॥
गुजत मधुकर करि शोर मोर मन रागैं।
भल समय सुखद अवलोकि निठुर पन त्यागैं॥
शुक चातक कोयल हस कोकिला टेरी।
सुनि प्राण प्रिया वर वैन नैन लखि प्यारी॥
गहि अक रग ज्यो सुघन मोद लहि भारी।
चलो मेरी जीवन जीवन सकल सुखकारी॥
श्री चन्द्र कलादिक सखी साज सवारी।

आयो सरयू वर तीर घटा घन घेरी।
विद्रुम नग मनि रचि हेम अनूपम झूला॥
तेहि बैठे सिय महबूब खूब अनुकूला।
सखि झुकि झुकि झमकि झुलाय पाय प्रिय दूला॥
नभ बिबुध बधू बहु हरषि बरषि रही फूला।
सुख कन्द मन्द मुसुकाय सिया तन हेरी॥
पट पीत नील फहराय लपटि अरुझानी।
सुरझावत सिय पिय बिहसि नही सुरझानी॥
दोउ नील पीत मिली हरित रग प्रगटानी।
सखि गावे हरे हरे गीत हेरि सुख मानी॥
प्रीतम तमाल तरु प्रीतिलता लपटेरी।
पिय लागो सावन मास आस यह मेरी॥

सब तजि होइहौ महल उपासी।
स्वर्ग मुक्ति बैकुन्ठ विसारौ होय गुरु पद की दासी॥

सद्गुरु वचन महारस मानौ परौ न भ्रम की फासी।
सेज विहार रास रस लूटौ त्यागि वियोग उदासी॥
युगल विहार भावना करिहौ भटकौ न तीरथ काशी।
और ठौर उझकौ नहिं नयनन राम सिया छबि प्यासी॥
गुरु प्रसाद भई रसिक छाप अब नाहिन बटु सन्यासी।
भाव कुभाव धरे कोइ मन मे कोइ करे उपहासी॥
लोक लाज कुल मान बडाई आश त्रास सब नाशी।
कृपानिवास कृपा करी सीय जू करिहौ युगल खवासी॥

करि सोरहो शृगार पिया घर जाना ही हौगा।
रति बिछिया प्रेमा सुमहावर चमकत प्रभा अपार॥
धृत सनेह तदीय सु नूपुर मधु मदीय मदकार।
उरु पर साटी सोइ धारो कर मनसिज उदगार॥
मान किंकिनी कटि मे सोहै प्रणय उरस्थल हार।
कुच पर राग अनुराग कठमणि महाभाव नथ प्यार।
रुढ सिन्दूर अधिरुढ सु कज्जल सौभागिनी शुभकार॥
मोहन मोदन कर्णफूल धरु जो सोहाग विस्तार।
शीश फूल मादन मनमथ मम शीश उपर सुठिधार।
यामे नित्य विलास सहस्रधा केलि अपरम्पार।
रति स्थायी की यह सीमा प्रबल अमित रसदार॥
यहि विधि करि शृगार मनोहर प्रीतम मन बसकार॥
व्यक्त यौवना तू अति सुन्दर गर्वीली गतिधार॥
रमकि झमकि के पिय सग मिलि के देहिं सुरति सुखसार॥
तब तो सौभागिनी तू पिय के ह्वै जैहो गलेहार॥
तू वे वे तू ऐक्य होय के फिर नहिं द्वैत प्रचार।
यथा अम्बु निधि मिलि के सरिता द्वै नहिं एकाकार॥
शिव शुक सनक शेष श्रुति हनुमत औ मुनि रसिक उदार।
यह उपासना रस समुद्र मे मज्जत साझ सकार॥
बिनु निर्हेतुकी कृपा सीय की यामे नहि अधिकार।
यह रसमोद बिना रस वेत्ता जानत नाहिं गवार॥

अनुक्रमणिका

अ

अग-सौरभ—२९
अगिरा—१०१
अगुरीय—२८
अशावतार—९०, ९४
अकुल वीरतन्त्र—४९,५६,५७,५८,६०,६१
अगस्त्य—१०७, १११,
अगस्त्य रामायण—१६६
अगस्त्य-सहिता—१२६, १५९, १८०
अग्निचक्र—५९
अग्नितत्त्व—४९
अग्रस्वामी—१२५, १२७ १३१, १३३, १३६, १३९
अघोरघण्ट—६३
अजात—४७
अजातरति—१०
अणिमादिकसिद्धि—६३
अणुभाष्य—८
अतिदेश—३०
अतिशून्य—६६
अत्रि—१०१
अथर्ववेद—९८
अद्वय वज्रसग्रह—४६
अद्वयस्थिति—३५, ४६
अद्वैत कवि—१७२
अद्वैत ज्ञान—६०
अधीरा—२५
अध्यात्मरामायण—१८०
अनगवज्र—६५
अनाहत चक्र—५९
अनिरुद्ध—९०, ९२
अनुकूल नायक—२६
अनुताप—३०
अनुभाव—१८, १९, ८०, १४७
अनुराग—१६, १८, ३१
अन्तर्यामी—८९
अन्त सम्मिलन—३७
अन्तियल्किदास—९०
अन्दाल—१०३, १६२
अपदेश—३०
अपलाप—३०
अपस्मार—२९
अप्रकट लीला—३४
अप्राकृत लीला—७३
अप्राणिजन्म—३१
अभिजल्प—३२
अभिसार—८२
अभिसारिका—२५
अभ्युदय—१००
अमरवारुणी—५२
अमरौली—५३, ६२, ६३
अमितार्था—२६
अमृत भाड—८७९
अयोध्या नित्यरासस्थली—११०
अरुण—२८, २९
अर्चना—७८
अर्चावतार—८९
अर्थपञ्चक—२, ११३
अर्द्धनारीश्वर—३६
अवजल्प—३२
अवतारवाद—८९
अवधूतमार्ग—५६
अवधूतिका—४५
अवधूती नाडी—६६
अवलोकितेश्वर मैत्रेय—३८
अव्यर्थकालता—८०
अष्टमञ्जरी—८३
अष्टसखी—८२

असग—४१
असूया—२९
अहंकार भाव—९३
आगमसार—४३
आचार—५८
आचार्य शुक्ल—१०१
आजल्प—३२
आत्म-निवेदन—७८
आत्मनिक्षेप—१०४
आत्मपान या अस्मिता—६४
आत्मरति—४
आत्माराम—४
आदिनाथ—४९
आदिरामायण—१६५
आद्य—२७
आनन्द भैरव—७१
आनन्द रामायण—११४, १६४
आनन्द वार्त्ता—८८
आब्सक्योर रिलिजसकल्ट—४६
आरोप तत्त्व—७४
आलम्बन विभाव—२६
आलवार—४, ५, ६, १०२, १०५, १६२
आलस्य—२६
आलोकितेश्वर—४०
आवेशावतार—८९, ९०, ९१, १८४
आशाबंध—१७, ८०
आज्ञाचक्र—५९
आज्ञाभाव—८१

इ

इच्छा-शक्ति—१४५
इडा—३६, ४३, ४५, ५१
इण्डिया आफिस—१६५
इण्डियन एटिक्वेरी—९७
इण्डियन थेइज्म—९७
इण्डियन फिलासफी—३९
इनसाइक्लोपीडिया आफ रिलिजन एण्ड एथीक्स—१०१
इन्द्र—९८
इन्द्रिय—६१
इपिग्राफिका इंडिका—९७
इस्लाम धर्म—८९
इक्ष्वाकु—९७
ईरान—६८
ईक्षण-कला—१७७

उ

उग्रता—२९
उच्चाटन—४२
उज्जल्प—३२
उज्ज्वल नीलमणि—२२, २३, २४
उज्ज्वल भक्तिरस—११३
उत्कण्ठा—३१
उत्कण्ठिता—२५
उत्तमा—२५
उत्तररामचरित—१६९
उत्तरीय स्खलन—३०
उदार राघव—१६९
उद्दीपन विभाव—३०, ११३, १५७
उद्भास्वर—३०
उद्वेग—३३
उन्मनी अवस्था—४४
उन्माद—२९, ३३
उपपति—२, १६३
उपपति भाव—१७५
उपादान—८८
उपाय—३६, ४४, ४५, ७३
उपाय सूर्य—६६
उपासक परिस्मृति—८१
उपासना त्रय सिद्धान्त—१८३
उपासना शक्ति—१०८
उपास्य परिस्मृति—८१
उपेन्द्र—२९
उमा—३६
उर्मिला—१६४, १६९
उलटबासियाँ—७६
उष्णीश—२८
उष्णीशकमल—५०, ६६

ऋ

ऋग्वेद—९७, ९८, १००
ऋणात्मक-धनात्मक—४६, ४७

ए

एकता—४७

ओ

ओटो श्रेडर—१४६
औत्सुक्य—२९

क

कनिष्ठा—२५
कपाल कुण्डला—६३
कपाल वनिता—६१
कपिल—२९
कबरी—२८
कबीर—५४, ५५, ६८, ६९
करमाबाई—७१
करुणा—२८, २९, ४४, ४५, ४६
कर्बुर—२८
कर्ममुद्रा—४७
कलहातरिता—२५
कल्पावतार—९०
कश्यप—४०
कल्याण कल्पद्रुम—१३०
कानूपा या कानपा—६१
कापालिक—५३, ६१, ६२
कापालिक साधना—६४
काम—१६, ७३, ७४
काम कला—४६
काम कला विलास—४६
कामरूप—५६, ७९
कामानुगा—१५, १६
कामिल बुल्के—११४, १६५
काय व्यूह—७९
काया योग—६८
काया शोधन—३७
कारण देह—८५
कारणार्णवशायी—९०
कार्पण्यम्—१०४
कालिदास—१०२
क्रियाशक्ति—९०, १४५,
कीर्त्तन—७८
कुचनीस देश—७१
कुण्डलिनी—५९, ६०, ६७
कुण्डलिनी योग मूलक साधना—५६, ५९
कुमारदास—१६९
कुब्जा—७९, १६४
कुलक्षेत्र—५६
कुरुक्षेत्र—१६४
कुल और अकुल—५६
कुलतन्त्र—५७
कुलशेखर अलवार—१०२, १०३, १०५, १६२
कुलार्णव तन्त्र—४३
कुसुभ राग—३१
कृच्छाचार—६७
कृष्णदास कविराज—१७३
कृष्णदास गोस्वामी—७१
कृष्ण प्रसादजी—८०
कृष्णभक्त प्रसादजी—८०
कृष्णभक्ति आधार—२६
कृष्ण भावनामृत—१०
कृष्णरति—२७
कृष्णावत मधुर उपासना—६
कृष्णावत सम्प्रदाय—१०६
कृष्णेन्द्रिय तर्पण—७४
कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छा—७४
कृष्णोपनिषद्—१०३
केयूर—२८
केलिपद्म—२८
केवल—४७, ८०
केशवर्द्धन—२८
केश सस्कार—३०
क्लेशघ्नी—१५
कैकेयी—१०८, १७०
कैलास—५९
कैवल्य रूप—६३
कौमार—२७
कौल—५४, ६०
कौलाचार—४२, ६०
कौलोपनिषद्—५८
कौशल्या—१०८
कौशाम्बी—३९

ख

खण्डिता—२५
खेचरी भाड—८७

खेचरी मुद्रा—५१, ५२
ख्रीस्तीय धर्मसमाज—८९

ग

गरुड पुराण—१०७
गायत्री—१०७
गालवाश्रम—१३५, १३६
ग्लानि—२८
गीत गोविन्द—१८५
गीता—२, ५०, ९७
गीतावली—६, ११६
गुण कीर्त्तन—३३
गुण मञ्जरी—७९
गुणावतार—९०, ९३
गुप्तचन्द्रपुर—७२
गुह्यसमाज तन्त्र—३९
गुह्य-साधना—६, ३९, ४१, ४२, ४६, ४७, ४९
गोरा अन्दाल—४
गोपा—७१
गोपालभट्ट गोस्वामी—७१, ७९
गोपिकाभाव—१५२
गोपीनाथ कविराज—४१, ८७
गोप्तृत्व वरणम्—१०४
गोरख—५२
गोरख सिद्धान्त सग्रह—५१
गोरखनाथ—५६, ६७, ६८
गोरक्ष पद्धति—५१, ५२
गोरक्ष विजय—५०, ५१
गोलोक—२५, २६, १५३, १५४, १५५
गोविन्द लीलामृत—१०
गोस्वामी तुलसीदास—११५, ११७, १३३
गौडीय वैष्णव—८, १०, १७३
गौडीय सम्प्रदाय—१०७
गौणी रति—२०, २१
गौतमीय तन्त्र—१६
गौराग देव—१०
गौरी प्रिया—७१

घ

घूर्णा—२९
घृत स्नेह—१७, ३१
घोसुण्डी—९७

च

चण्डालिनी कन्या—७१
चण्डिकायतन—१६८
चण्डीदास—७१, ७४, ७६
चतुर्व्यूह—९७
चतुष्क—२८
चतुष्की—१८
चन्द्रकला—११०
चन्द्रगुप्त—३८
चन्द्रधर शर्मा—३९
चन्द्रनाडी—४५
चन्द्रावली—८२
चर्याचर्य विनिश्चय—६१
चल-अचल—४६
चान्द्र रामायण—१६६
चापल्य—२९
चार्वाक—७०
चिज्जगत्—२२, २३, २४, २५
चित्तवज्र—४१
चित्रकूट—१५१, १५२, १५३, १५५, १६५
चित्रकूट माहात्म्य—११४, १६५
चित्रजल्प—३२
चित्सत्त्व—२३
चित्सुखी—३०
चिन्मय राज्य—८८, ९१
चैतन्य—६,
चौरासी सिद्ध—४९

ज

जगद्दल विहार—४०
जड-जगत्—२२, २४
जडता—३३
जनकपुर—१६६
जयदेव—७१, १८५
जनरल आव दि रायल एसियाटिक सोसायटी—९७
जराख्य सहिता—१०५
ज्वलित सात्विकभाव—१९, ३०
जातरति—१०

जानकी गीतम्—१५९
जानकीस्तवराज—१५९
जानकी हरण—१६९
जालधर गिरि—६६
जालधर नाथ—६१
जीव कोटि—९१
जीव गोस्वामी—७, ८, २३, २४, ७१, ७८, ७९, १३७, १७३
जीव शक्ति—६०, ७२
जे० एस्० एम्० हूपर—५
जैकौबी—९६
जैवधर्म—२२

ड

डाक्टर ग्रियर्सन—१२१

त

तन्त्रालोक—५६
तजकी रतुल फुकरा—१२७
तटस्थलक्षण—७
तटस्था शक्ति—७२
तत्तद्भावेच्छामयी—१६
तत्त्वमग्रह—३९
तत्सुखी—३०
तथागत—३९
तदेकात्मरूप—८९, ९१
तनु मोटन—२६
तपसीजी की छावनी—१२२
तर्कशास्त्र—४०
तक्षशिला—९७
ताण्डव नृत्य—६४, १४७
तारक मन्त्र—१४३
तिरुविरुत्तम—१०
त्रिकायवादी महायानी बौद्ध—८९
त्रिकोण चक्र—५९
त्रिपिटक—३९
त्रिपुटी भग—३४
तुडबन्ध—२८
तुलसी—११६
तुलसी की गुह्य साधना—११५
तैत्तिरीयोपनिषद्—७७, ९८, १००

थ

थेरवादी—३८

द

दण्डकारण्य—१०४
दमिडोपनिषद—५
दर्शनी—७०
दशम द्वार—५१
दक्षिण नायक—२६
दक्षिणाचार—४२, ६०
दादू दयाल—५४, ६९
दाम्पत्य भाव—१०६
दास्य भाव—१०६
दास्य रति—१६,
द्वारका—११०
दिव्य देह—२४, ५३
दिव्य प्रेम—७०, ७३, ७४
दिव्य बोधि सत्त्व—४१
दिव्य भाव—४२, ७२
दिव्य लीला—७२
दिव्य सभोग—९
दिव्य साकेत धाम—४
दिव्य साधक—६०
दिव्य सौदर्य—७४
दिव्यीकरण—७२, ७४
दिव्योन्माद—३२
दीपकर बुद्ध—४०
दीप्त सात्त्विक भाव—१९
दुरत रामायण—१६६
दुष्टवध—२७
देवकन्या—७१
देवरामायण—१६६
देवी भागवत—५८, ६३
द्वेषजन्य रागात्मिका—७८
दैवज्ञ—२६
दौमोडीपाद—६१

ध

धनात्मक महासुख—४६
धर्मकर—४०

धर्मकाय—४१
धर्मपाल—३८
धर्ममुद्रा—४७
धर्ममेघ—४४
धात्रेयी—२६
धारिणी—४२
धीर ललित—२६
धीर शान्त—२६
धीरा—२५
धीराधीरा—२५
धीरोदात्त—२६
धीरोद्धत—२६
ध्रुव—४७
धूमायित सात्विक भाव—१९, ३०
धृति—२९
धृष्टनायक—२६

न

नन्द—८०
नवधा भक्ति—१६६
नागार्जुन—४१
नाथपथ—३७, ६८
नाथ सम्प्रदाय—६१, ६२, ६३, ६५
नाथसिद्ध—६८
नाम-भाव—८१
नान्द पाञ्चरामत्र—१४, १०२
नारायण वाटिका—९७
नारीतत्त्व—४५, ४६
नालदा—३८
निज गुरु—१२१
निजेन्द्रिय तर्पण—७४
निजेन्द्रिय प्रीति इच्छा—७४
नित्य गोलोक—२४
नित्य चिन्मय राज्य—८८
नित्य देश—७२
नित्यधाम—७९
नित्य लीला—३३, ७३, ८७, ८८
नित्य वृन्दावन—८, ७३
नित्य सहचरी—२५
निम्बार्क—६
निम्बार्क सम्प्रदाय—८, १०७
निर्गुण भक्तियोग—१४
निर्गुण शिव—६३
निर्देश—३०
निर्माणकाय—८९
निर्वाण—४७, ६७
निर्वेद—२९
नि सत्व—१९
नीवीविस्रसन—३०
नीलाम्बर सम्प्रदाय—७०
नीलाम्बरी साधना—५६
नीलिमा राग—१८, ३१
नीली राग—३१
नूपुर—२८
नृसिंह—२९
नृसिंह पुराण—१८०
नेह प्रकाश—१३७
नैयायिक रुद्र वाचस्पति—१८५
नरात्म—५३

प

पच काल—१०५
पच पवित्र—५६, ६४, ६७
पच मकार—४२, ४३, ५६
पचम पुरुषार्थ—८०
पच विध मुख्यारति—२०
पच सस्कार—१३९
पचामृत—६३
पचाश्रय—७६
पद्म-पुराण—९, १०४, १८०, १८१, १८२
परकीय मधुररस—२३, २४
परकीया भाव—२४, ६९, ७०, ७१
परकीया रति—७१, ८१
परत्व—१
परम पद—६९
परम प्रेम एव परानुरक्ति—९९
परम प्रेष्ठासखी—२५
परम शिव—५९, ६०, ६३, ७६
परमसत्य—६७, ७६
परम सुदर—७६
परम हस—१००

परवशी भाव—३१
परव्योम—२५, ९०
पराकाष्ठा श्वास भाव—८१
परात्परदिव्य प्रेम—७५
पराभक्ति—३
परार्था रति—२०
परावस्थ—९०
परावृति—४१
पराशर—११९
परिचारिका—२६, ३२
परिजल्प— ३२
पशु भाव—४२, ७५
पाच रात्र—११, १४, ९७
पाडर—२८, ५०
पक्षधर मिश्र (जयदेवकवि)—१६८
पाद सेवा—७८
पारद—५३
पारमार्थिक सत्य—६५
पारमितानय—४०
पारस्कर्य गृह्य सूत्र—९८
पाल्यदासी भाव—८१, ८२
पिगला—३६, ४३, ४५, ५१, १४
पिड—५५
पिप्पलाद मुनि—१४८
पीठमर्दक—२६
पुनीत—४७
पुरश्चरण—४२
पुराण सहिता—१५७
पुरातत्त्वानुसधानी समिति—१२०, १२७
पुरान्स इन दि लाइट ऑव माडर्न साइस—९
पुरुष और प्रकृति—२३
पुरुष तत्त्व —४५, ४६
पुरुष सूक्त—१००
पुरुषावतार—९०, ९२
पुष्टिमार्ग—१०, १२
पूर्व राग—३३
प्रकट लीला—३४
प्रगल्भा नायिका—२५
प्रजल्प—३२
प्रणय—१, १६
प्रणव तनु—५३
प्रति जल्प—३२
प्रतीप—१९
प्रद्युम्न जी—९०, ९२
प्रपच—५७, ५८
प्रपत्तिवाद—५
प्रमात्मिका शक्ति—१०८
प्रवास—३३
प्रसन्नराघवम्—१६८
प्रसाधन—२७, २८
प्रज्ञा—३६, ४४, ४५, ५३, ७३
प्रज्ञाचन्द्र—६६
प्राकृत—२६
प्राकृतदेह—८५
प्राकृत लीला—७३
प्राणसखी—२५
प्राणायाम—५१
प्रातिभासिक—७२
प्रियता रति—२०, २३
प्रीतिरति—२०
प्रीति-सदर्भ—२३, २४
प्रेमदेह—८७
प्रेमपचक—४६
प्रेमलताजी—११९
प्रेम वैचित्र्य—३१, ३३
प्रेम साधना—७०, ७६, ७७
प्रेमाभक्ति—३, ८०
प्रेमास्पद—७६, ९९
प्रेयस—२९
प्रोषित भर्तृका—२५
प्रौढा भक्ति—३

फ

फाहियान—३८

ब

बग-साहित्य-परिचय—७१
बलदेव उपाध्याय—४०
बलदेव विद्याभूषण—१७३
बुद्ध—६५
बुद्धभद्र—३८
बुद्धितत्त्व—१०१

बूलर—९६
बोधिचित्त—४४, ४८, ५०
बोधिसत्त्व—६५
बौद्ध दर्शन—४०
बौद्ध वज्रयानी—६१
बौद्ध सहजिया—३७, ३८, ७१, ११८
बौद्ध साधक—६७
ब्रह्मधाम—२५
ब्रह्मपुराण—१०१
ब्रह्मयामल—१८०
ब्रह्मवैवर्त्त पुराण—२२, १०६
ब्रह्म शक्ति—५८
ब्रह्म सम्बन्ध—१२
ब्रह्म सहिता—२२, १५७
ब्रह्माण्ड—५५
ब्रह्माण्ड पुराण—१४५

भ

भक्तमाल—१३५, १३६
भक्तिरसामृत सिधु—२२, ८०
भक्ति-सदर्भ—७
भक्त्यावेश—८९
भगवदाकर्षिणी—१५
भगवद्गुण दर्पण—१३७
भरद्वाज सहिता—१००
भवभूति—६१, ६३ ५६, १०२, १६८
भ्रमर दूत—१८५
भाडार कर—९७, १०२
भागभद्र—९७
भागवत—७२, १०६
भागवत धर्म—१०१
भागवतामृतकर्णिका—९३
भावचूडामणि—६१
भावदेह—१०, ११, ८५, ८६, ८७
भावमार्ग—८६
भावयोग—७९
भावसाधना—८७
भुसुडि रामायण—१४५, १६६

म

मजरी देह—९, ११, ७९, ८३, ८४
मजिष्ठ राग—३१
मजुल रामायण—१६६
मजुश्री—३८
मत्रजप—५५
मत्र तनु—५३
मत्रनय—४०
मत्रयान—४०
मत्रयोग—४२
मत्र रामायण—१०२
मत्र साधना—८५
मथरा—१७०
मति—२८
मत्स्येन्द्र नाथ—४९, ५६
मत्स्योदर कौल—५६
मथुरादासजी—१३०
मद—२९
मदन—६१, ६२
मधुर भाव—४८, ५३, १३५, १३६
मधुर रस—२२, २३, ३२, ३४, १३६, १७७
मधुराचार्य—१३७, १३९, १६३, १७१, १७३, १७५, १७६, १७९
मधुरा रति—१६, २१, २३, ३२
मधुस्नेह—१७, ३१
मध्यमा—२५
मध्व—६
मन वृन्दावन—७२
मन्वन्तर—६८, ९३
मरीचि—१०१
मर्यादा पुरुषोत्तम—९५
मर्यादावादी दास्य भाव—११७
महत्कौल—५६
महत्तत्व—९०, ९३
महाकवि हनुमान—१६६
महाकारण देह—८५
महातारा—४०
महानाटक—१६७
महाभारत—९९, १०१, १०२, १०३
महाभाव—१६, १८, ३०, ३१
महामुद्रा—४४, ४७
महामेर गिरि—६६

महायान—३८, ४०
महायान सूत्रालकार—४१
महारामायण—१२७, १४४, १६५
महावाणी—८
महाविष्णु—१०२, १०५
महावीर चरित—१६९,
महाशभु सहिता—१५६, १८०
महाशून्य—६६
महासघिक—३९
महासदाशिव सहिता—१५७
महासुख—३७, ४४, ४७, ४८, ६४, ६६, ६७
माडवी—१६४
मातृकुक्षि—५९
मादन—३१, ७२, ७३
माधव—२९
माधुर्य केलिकादम्बिनी—१७१, १७२
माध्वीक रस—१११
मान—१६, १७, १८, २५, ३१, ३३
मानवीय सौदर्य—७४
मान शून्यता—८०
मानुषी तनु—३९
माया शक्ति—७२
मायिक विश्व—२४
मारण-मोहन—४२
मालती माधव—६१, ६३, ६४
मिथुन—३५
मिथुन योग—४२, ४७
मिथुन योगाभ्यास—५
मीरा—४, ७१
मुख्यारति—२०
मुग्धा नायिका—२५, १६५
मुण्डकोपनिषद्—८७
मुरली—२९
मूलाधार—२१, ३७, ५०
मूलाधार चक्र—५९
मृणाल—६६
मृति—२८, ३३
मेखला योगिनी—६१
मेरुगिरि—६१, ६६
मेरुतत्र—४३
मैन्द रामायण—१६६
मैकनिकल—९७
मैत्रविश्रम्भ—१८, ३१
मैत्रेय—४१
मैथिली कल्याण—१६९
मैथिली महोपनिषद्—१४६
मैथुन—४६
मोट्टायित—३०
मोदन—७२
मोह—२९
मोहपाश—६०
मोक्षकार गुप्त—४०
मोक्षलघुता कृत—१५
मौलाना रसीद—१२७

य

यशोदा—८०
युगनद्ध—३५, ४५, ४६
युगबद्ध मूर्त्ति—५६
युगल—३५
युगलविनोद विहारी शरण—१४४
युगलानद शरण—१७३, १८२, १८३
युगावतार—९०, ९४
यूथभाव—८१
यूथेश्वरी—१४८
योग—५९
योगसाधना—६४
योगसूत्र—४८
योगिनी तत्र—४३
यौवन—३०

र

रघुवश महाकाव्य—१०२
रघुनाथदास गोस्वामी—८, ७१, ७९
रक्तिमा राग—१८, ३१
रति—३, १६, २८
रति मजरी—७९
रति विलास पद्धति—७३
रत्नमाल—२८
रत्याभासज—२९
रस—४८, ५५, ११०
रस और रति—७२

रसतत्त्व—४९
रसना प्राणवायु—६६
रसराज—३
रस-रूप-तत्त्व—२१
रसायन—४८
रसार्णव—५३
रसार्णव सुधाकर—३३
रसिक प्रकाश भक्तमाल—१३९
रसिक बिहारी शरण—१२५
रसिक भक्तमाल—१३९
रसिक सम्प्रदाय—११९, १३९, १६३, १६६
रसेश्वर दर्शन—४८
राग—७, १६, १८, ३१, ३५
रागवर्त्म चन्द्रिका—७९
रागमयी भक्ति—१, ७, ११
रागात्मिका भक्ति—७८, ७९,
रागानुगा भक्ति—२, ७, १५, १६, ७८, ७९
राघव—३०
राजगृह—३९
राजदन्त—५१
राजयोग—४२, ५५
राजाभोज—६६
राजाराम पाल—४०
राजा लक्ष्मण सेन—७१
राधा—२५, ७९
राधावल्लभ—८१
राधावल्लभीय—६
रामकथा—११३, १६५
रामगीत गोविन्द—१८५
रामचरणदास—१२९, १७३, १७९, १८२
रामचरित मानस—९२, ११६, १९२
राम जानकी विलास—१६६
राम तापनी उपनिषद्—१०२, १४२
रामदास गौड—१६५, १६६
राम नवरत्न सार सग्रह—१२९, १५६, १७९
राम पटल—१८५
राम रहस्योपनिषद्—१४६
रामलिंगामृत—१७२
रामानद—६
रामानन्द स्वामी—१२३, ११५, १२५, १२९, १८४
रामानुजाचार्य—५,६,१०२,१०६,१२२,१२३
रामायण चम्पू—१६६
रामायण मणिरत्न—१६६
रामायण महामाला—१६६
रामावत सम्प्रदाय—६, ३७, ९५, १०६ ११८, १४०, १५१
रामी—७६
रामोपासना—९९, १०१, ११९, १४१, १५६
राय रामानन्द—७१
रास—२७, ७२
रास पचाध्यायी—१०१, १४७, १७०
रुचिभक्ति—१, ८
रुक्षसात्त्विक भाव—१९
रूढ महाभाव—३१
रूप—२७, ८२
रूपकला—६
रूप गोस्वामी—७, १५, २७, ७९
रूप भाव—८१, ८२
रूप मजरी—७९
रूप लीला—७३, ७५
रौद्र—२९

ल

लययोग—४२
ललना प्राणवायु—६५
ललित मान—१८
लक्ष्मी हीरा—७१
लालास्रव—२९
लावण्य मजरी—७९
लिगनी—२६
लीला—१२, ३०, ७२
लीलारस—४
लीलावतार—९०, ९३
लीला विलास—७२, ७३, ७९, ९९, ११४, १५१, १६६, १६७
लीलाविलासी सखी भाव—११७
लोकनाथ गोस्वामी—७१
लोक सवृति सत्य—६५
लोमश रामायण—१६६
लोमश सहिता—११०, ११३, १४६
लोहित विन्दु—५०

व

वक नाल—५१
वज्र—६२
वज्रकाय—४८
वज्रधर—६१, ६६, ६७
वज्रयान—३८, ४०, ४४, ४७, ५३, ६५
वज्रयानी—६२, ६३, ६४, ६५
वज्रसत्त्व—४७, ६६, ६
वजौली—५०, ५३, ६३
वनदेवी—२६
वन वृन्दावन—७२, ७३, १५५
वनस्रज—२८
वन्दन—७८
वय—२७
वयस भाव—८१
वलय—२८
वल्लभ—६
वल्लभाचार्य—१०७
वसिष्ठ—१०१, ११९
वसिष्ठ-अरुन्धती-सवाद—१६६
वसिष्ठ-सहिता—१५५
वशीकरण—४२
वसन—२८
वाग्वज्र—४१
वाचस्पति—४८
वाचिक अनुभाव—३०
वाच्य—२६
वाण भट्ट—६१
वात्सल्य—१६, २०, २३, २९
वामाचार—४२, ६०
वायु पुराण—१०२
वाराह पुराण—१८०
वारुणीपान—५२
वाल्मीकि—१०१, ११३, १२७, १७२, १७६
वाल्मीकि सहिता—१५०
वाल्मीकीय रामायण—१६३, १७३, १७४
वासक सज्जा—२५
वासभाव—८१
वासर—२९
वासुदेव—९१, ९७
विच्छित्ति—३०
विजय तत्र—४३
विजल्प—३२
विदिशा—९७
विद्यापति—७१
विद्वेषण—४२
विधि-निषेध—१, २, १७७
विन्टरनीज—४१
विन्दु—५१
विपाक-विमर्द—४७
विप्रलब्धा—२५
विप्रलम्भ विस्फूर्ति—३१
विभाव—१८
विभु—८९
विरजा नदी—२४, ११३
विराट् पुरुष—१००
विलाप—३०, ३३
विलाप कुसुमाजलि—८
विलास—३०
विवर्त्त विलास—७१
विशुद्ध चक्र—२१
विशुद्धरति—७५
विशुद्ध रस—७५
विशुद्धाख्य चक्र—५९
विशेषक (तिल्क)—२८
विशेष रति—७५
विश्रम्भ—१८, ३१
विश्वनाथ चक्रवर्त्ती—२४, ७८,७९
विश्वम्भरोपनिषद्—१२८, १४३
विश्वस्त—२९
विश्वामित्र—१६९
विषयावलम्बन—२
विषाद—२९
विष्णु—१६९
विष्णुपुराण—१७८
विसृष्टार्थी—२६
वीभत्स—२८, २९
वीर—२८, २९
वीर भाव—४२
वृन्दावनेश्वर—८२, १८४
वृहत् कौशल खड—११३, १७०
वृहत् गौतमीय तत्र—२२

वृहत् भागवतामृत—८
वृहत् सदाशिव सहिता—१५७
वृहदारण्यक—९९
वृहस्पति—१०१, १४३, १५०
वेणु—२८
वेदव्यास—९०, १०७, १७०
वेशचार—४२, ६०
वेलुल्लवादी—३९
वैकुंठ—२५
वैजयन्ती—२८
वैदिक मणि सदर्भ—१३७
वैधीभक्ति—१,१५,७८,८०
वैन्दवदेह—५२
वैभवावतार—९०, ९४
वैवर्ण्य—२९
वैष्णव फेथ एड मुवमेट—२४
वैष्णवधर्म रत्नाकर—१२३
वैष्णव सहजिया—३७, ७०, ७३, ११८
वैष्णवाचार—४२, ६०
वोपदेव—१२३
व्यभिचारी भाव—१८, २०, ११३
व्यष्टि विराट्—९०
व्याधि—२९
व्यूह—८९
व्योपदेश—३०
व्रजदेवी पिंगला—७१
व्रजनिधि ग्रथावली—११५
व्रजभाव—७८, ८१
व्रजरस—२६
व्रजलीला—३४
व्रज वनिता—२५
व्रजवासी भाव—२८
व्रीडा—२८

श

शकराचार्य—६३
शखिनी—५१
शक्ति और शिव—५६
शक्तिनाथ—६४
शठकोपमुनि—१०६, १६२
शठकोपाचार्य—१०३
शठनायक—२६
शठारिमुनि—१०
शतपथ ब्राह्मण—१०५
शबरी—१६६
शशिभूषणदास गुप्त—४६
शाक्तदेह—५३
शाक्तसाधक—५७, ६७
शाण्डिल्य मुनि—१०, १४३
शान्तरति—१६, ५०
शान्तिरस—८१
शारदातिलक—१०२
शिव-शक्ति— २१, ३५, ४७, ६७, ६९,
शिव सहिता—५९, १०७, ११३, १४६, १४९
शीत—१९
शीलभद्र—३८
शुकदेवजी—११९, १२६, १२७, १५३
शक सहिता—१५१, १५२, १५५
शुद्ध तत्त्व—१६
शुद्ध सत्त्व—८०
शुद्धाद्वैत मार्तण्ड—१०७
शुद्धाभक्ति—१५
शुभदायिनी—१५
शून्यता—४४, ४५, ४६, ४८, ५३, ६५
शून्यवाद—६५
शृगार—२८
शृगारभावना—६
शृगाररस—३, २३, ३२, १०८, ११०
शेष—२७
शैवकालिकमार्ग—६१
शैवाचार—४२, ६०
शोक—२९
शोण—२९
श्यामा नाइन—७०
श्रम—२८
श्रवण—७०
श्रवण रामायण—१६६
श्री कील्हस्वामी—१३६, १३७
श्रीकृष्ण—९०
श्रीकृष्ण त्रिपाद विभूति—२४
श्रीकृष्ण सन्दर्भ—२४

श्री गोविन्द भाष्य--८
श्री निवास आचार्य—१०, ११
श्री पद्म--६१
श्री पर्वत—६१
श्रीमद्भागवत पुराण— १५, २२, ९४, ९९, १०७, १११, १४७, १७०, १७३
श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण—९९, १३९, १६३, १७३, १७४, १७९
श्रीराम—९०
श्री रामतत्त्वप्रकाश—१७७, १७९
श्रीरामतत्त्व भास्कर—१८३
श्री रामतापिनी—१२६
श्री राम नवरत्न—१८१
श्री राममन्त्र—१२६
श्री राम विजय सुधाकर—१२६
श्री राम स्तवराज—११९, १५८, १५९
श्री रूपकलाजी—१३५, १३६
श्री विष्णु पुराण—९७
श्री व्रज निधि—११२
श्री सम्प्रदाय—१२७, १३९, १६२
श्री सुन्दरमणि सन्दर्भ—१३७, १६३, १७३
श्रुतिकीर्ति—१६४
श्वेत—२८, २९

ष

षट्चक्र—५९
षड् ऐश्वर्य—९१
षडक्षर मन्त्रराज—१३९, १४३, १५०

स

सकर्षण—९०, ९२, ९७
सकल्प कल्पद्रुम—८५
सकीर्ण—३४
सक्लेश—४५
सचारी भाव—२०
सजल्प—३२
संत साधना—५३
सधिनी शक्ति—२, ७२
संभोग काम—४१
संभोग शृगार—३२
सवित् शक्ति—२, ७२
सवृति—४५
सवृत रामायण—१६६
सस्थान भोग—४१
सस्पर्श—३३
सखा भाव—८१
सखी—२६
सखी भाव—७८, ७९, ८१, ११७, १६५
सखी भेद—२५, ७८
सख्य—७८
सख्य रति—१६, २०, ३१
सख्य विश्रम्भ—१८
सगुण शिव—६३
सच्चा—४७
सत्य भामा—१६४
सत्योपाख्यान—११३, ११४, १६९, १७०
सत्त्व—१९
सत्त्वाभासज—१९
सदाशिव—३६, ६९, ९०
सदाशिव सहिता—१२५, १४४, १५६
सनत्कुमार तन्त्र—९, ८१
सनत्कुमार सहिता—१८०
सनातन गोस्वामी—८, ७१, ७९, १७३
समञ्जस-पूर्वराग—३३
समञ्जसा-उभय निष्ठारति—३०, ७५
समय मुद्रा—४७
समरस—३५, ४६, ५९
समर्था—३०, ७५
समष्टि विराट्—९०
समुत्कण्ठा—१७, ८०
सम्बन्ध रूपा—१५, १६, ८०
सम्बन्धानुगा—१५, १६
सम्बन्धभाव—८१
सम्भोगेच्छामयी—१६
सम्मोहन तन्त्र—२२
सरहपा—५५
सरहपाद—४४
सर्वदर्शनसग्रह—४८
सर्वशून्य—६६
सहज—५५, ५६, ६०, ६१, ७२
सहज काय—४१, ४८
सहजगान—७४

सहजियामार्ग—५६, ६९
सहजयानी—६४, ६५
सहज समाधि—५४, ६८
सहज साधना—५, ३५, ६७, ६८, ६९, ७५
सहजानन्द—४७, ६४, ६७
सहजिया—३६, ६९, ७३, ७४, ७५
सहजिया वैष्णव साधना—५६
सहजोलिका—५६
सहजौली—५३, ६२
सहस्रगीति—१०३, १०६, १६२
सहस्रार—३७, ५०, ५१, ५९, ६७
साख्य कारण देह—८५
साकल्वमल्ल—१६९
साकेत—११०, ११२, १५४, १५५, १८१
साठी—७१
सात्वतधर्म—१०१
सात्त्विक भाव—१८, १९, ११३
सात्त्विकाभास—१९
साधक देह—९, १०, ११, ८५
साधक भक्त—१८
साधक स्थिति—७६
साधन - भक्ति—८०
साधना—२६
साधनात्मक बोधि चित्तत्त्व—४४
साधनाभिनिवेशजा—८०
सान्द्रात्माप्रेम—८०
सान्द्रानन्द विशेषात्मा—१५
सामरस्य—६४, १०९
सायण माधव—४८
सार्वभौम—७१
साक्षात्-शक्ति—१४५
सिद्ध देह—९, १०, ११, ६३, ७२, ७८, ७९
सिद्ध भक्त—१८, २६
सिद्ध मार्ग—५६
सिद्ध सम्प्रदाय—४८
सिद्धान्त सग्रह—५७
सिद्धस्थिति—७६
सिद्धान्तमुक्तावली—१०
सिद्धामृत—५६
सिद्धान्ताचार—४२, ६०
सिद्धान्त रत्नावली—८
सिद्धैक वीरतन्त्र—४०
सिलवन लेवी—४१
सीतोपनिषद्—१२९, १४४, १४५
सीता-सावित्री—९८
सुखराज—६४
सुखावती—४७
सुजल्प—३२
सुतीक्ष्ण—१०२
सुन्दरी साधना—६८
सुप्ति—२८
सुब्रह्म रामायण—१६६
सुमित्रा उपासना शक्ति—१०८
सुमैत्र —३१
सुवर्चस रामायण— १६६
सुषुप्ति—५८
सुषुम्ना—३६, ४५, ५१, ६३, ६६, ६९
सूद्दीप्त—१९
सूफीसाधक—६८
सूरदास—१०१
सूर्य नाडी—४५
सूर्य चन्द्र सिद्धान्त—४९
सूर्य चन्द्रस्त्री-पुरुषभाव—५२
सूक्ष्म देह—८५
सोऽहम्—६१
सोलह मुख्य यूथेश्वरी—११०
सौन्दर्य लहरी—६३
सौदामिनी—६१
सौर्य रामायण—१६६
सौलभ्य—१
सौहार्द रामायण—१६६
स्तम्भन—४२
स्थायी भाव—१९, २३, २८, ३२, ८७, ११३
स्थविरवादी—३९
स्थूल देह—८५
स्निग्धसात्त्विकभाव—१९
स्नेहजन्य रागात्मिका भक्ति—७९
स्मरण—७८
स्मित—२९
स्मृति—२९, ३३
स्वकीया—२५

स्वप्न—५८
स्वभाव—८५, ८६
स्वभावज
स्वभाव देह—८६
स्वमुखी—३०
स्वय दूती—२६
स्वय भगवान्—९१
स्वरूप देह—६८
स्वरूप लक्षण—७
स्वरूप लीला—७३, ७५
स्वाश्रयतया शक्ति—७२
स्वाश रूप—८९, ९१
स्वाधिष्ठान चक्र—५९

ह

हस—१००
हसविलास—९४
हस सन्देश (हसदूत)—१८५
हजारीप्रसाद द्विवेदी—६९, १७७
हठयोग—३७, ४२, ५५, ६८
हठयोग-प्रदीपिका—४९, ५२, ६२, ६३
हनुमत्सहिता—२, १११, ११३, १३६, १८०
हनुमन्नाटक—११३, १६६, १८०
हरप्रसाद शास्त्री—६१
हरिभक्ति रसामृत सिन्धु—७, १३
हरिवश—९९
हर्वर्टवान गूथर—४५
हर्ष—२९
हर्षचरित—६१
हर्षवर्द्धन—३८
हार—२८
हारीत स्मृति—१२६
हाव—३०
हास—२९
हास्य—२९
हितहरिवश—६
हिन्दुत्व—१६५, १६६
हिरण्यगर्भ भगवान्—१५३, १५७
हिरण्यगर्भ सहिता—१८०
हिलियोगस—९७
हीनयान—३८
हुएनसाग—३८
हेरुक् भगवान्—६१
हेला—३०
हेवज तन्त्र—४५, ४७

क्ष

क्षान्ति—१७
क्षेत्र—२९
क्षेपण—१९

ज्ञ

ज्ञान वज्र—४१
ज्ञान शक्ति—९०, १०८
ज्ञान—४४
ज्ञानावेश—८९, ९१